परमानन्द-सागर

[श्रीमद्भागवत-दशम स्कंध पर आधारित नित्य-भगवल्लीलाएँ]

संपादक :

गो० श्रीव्रजभूषण शर्मा

(शु० तृ० गृहाधीश्वर)

पौ० कण्ठमणि शास्त्री
'विशारद'

क० गोकुलानन्द तैलङ्ग
'साहित्यरत्न'

—सहयोगी—

गो० श्रीविट्ठलनाथ शर्मा
काँकरोली.

श्री० जवाहरलाल चतुर्वेदी
मथुरा.

श्री० द्वारकादास परीख
मथुरा.

: प्रस्तावना-लेखक :

डा० श्रीदीनदयालु गुप्त

एम. ए., एल-एल. बी., डी. लिट्.

प्रोफेसर तथा अध्यक्ष :

हिन्दी तथा अन्य आधुनिक भारतीय भाषा-विभाग

लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ.

सेठ श्रीबालाभाई दामोदरदास

[जन्म संवत् १९१४ आ० व० ३]

आभार-दर्शन

प्रस्तुत परमानंद-सागर नुं प्रकाशन ' प० भ० रुक्मणी बेन वकील चिम्मनलाल कपूरचंद नी विधवा ना मंडाण ट्रष्ट" द्वारा करवामां आव्युं छे. आ ट्रष्ट नो संक्षिप्त परिचय प० भ० बाई रुक्मणी ना संक्षिप्त जीवन मां आज ग्रंथ मां आपवा मां आव्यो छे. आ ट्रष्ट नुं संचालन हाल मां अमदावाद ना प० भ० सेठ श्री साकरलाल बाला भाई द्वारा थई रह्युं छे. सेठ श्री साकर लाल ने अष्टछाप ना साहित्य प्रति घणुं ममत्व छे. ऐमणे आ पहेलां पण 'कुंभनदास' विगेरे अष्टछाप नां कविओ नुं साहित्य कांकरौली विद्याविभाग द्वारा प्रकाशित कराव्युं छे आशा छे के हवे पछी पण तेओ अष्टछाप ना शेष रहेता कृष्णदास अने नंददास नां पदोना संग्रहो पण, जे कांकरौली विद्या विभाग मां संपादित थई ने प्रकाशन नी राह जोई रह्या छे तेमने यथा शीघ्र प्रकाशित करावी अपूर्व यश ने प्राप्त करशे. एटलुंज नहीं पण हिन्दी अने सम्प्रदाय जगत नी परमोच्च नामसेवा नाये भागीदार थशे.

अंत मां उक्त 'मंडाण ट्रष्ट', तेमज तेनो संचालक नो आभार प्रदर्शित करतां लेखनी विरमे छे।

—द्वारकादास परीख

दान एकादशी
भा० सु० ११
२०१६
मथुरा.

परमानन्द-सागर

प्रकाशक—
प. भ. रुक्मणी बेन वकील चिम्मनलाल कपूरचंद
नी विधवानु
"वैष्णव मंडाण ट्रष्ट", अहमदावाद

प० भ० रुक्मणि बेन

धर्मपत्नी श्री चिम्मनलाल कपूरचन्द वकील, अहमदाबाद.

"परमानन्द-सागर"

[सामग्री]

—त्रिवर्णिक चित्र—

१. शरण आने के समय २. श्रीनाथजी के समक्ष कीर्तन करते हुए ३. अन्तिम समय	चित्रकार श्रीदामोदरदास शर्मा काँकरोली

‘परमानन्द-सागर’

सम्पादन के सम्बन्ध में

अष्टछाप का साहित्य काव्य और भक्ति-जगत् में युग-युग से प्रेरक और उद्‌बोधक रहा है। सांसारिक ताप-दाप से झुलसे, विपन्न हृदयों को इससे आलौकिक आत्मानन्द की प्राप्ति हुई और वह उनके कल्याण में सहायक सिद्ध हुआ। अतः उस साहित्य के गवेषण, सम्पादन और प्रकाशन की आवश्यकता एक युग की माँग और राष्ट्रीय आवश्यकता का अंग है। हिन्दी साहित्य और पुष्टिमार्ग : दोनों ही अपनी इस अनमोल निधि के प्रति आत्मीय भाव के साथ समान रूप से, उसके संरक्षण और संचयन की दिशा में चिरकाल से जागरूक रहे हैं।

संयोजन

काँकरोली विद्याविभाग भी यों तो अपने स्थापना-काल से ही अष्टछाप-साहित्य की गवेषणा को अपनी साहित्यक प्रवृत्तियों का प्रमुख अंग बनाये हुए है, किन्तु आज से कोई पन्द्रह-सोलह वर्ष पूर्व "शुद्धाद्वैत एकेडमी" के उद्‌भव और उसके निर्देशन में संयोजित ‘अष्टछाप-स्मारक समिति’ के विकास के साथ उसे एक अपेक्षित बल मिला। ‘सरस्वती-भंडार’, काँकरोली-विद्याविभाग के विशाल हस्तलिखित ग्रन्थागार के कोई १५० हिन्दी-साहित्य-ग्रन्थों का मंथन करके सूरदास, परमानन्ददासादि आठों कवियों के पदों की पृथक् पृथक् बृहद् प्रतीक-सूचियाँ तैयार करायी गयीं। सूचियों के परिशोधन के अनन्तर, इस काव्य की अलग-अलग पाण्डुलिपियाँ प्रस्तुत हुईं और तब उनके क्रमशः सम्पादन एवं प्रकाशन की रूप-रेखाएँ बाँधी गयीं। अवश्य ही यह बहुत बड़ा संकल्प था, किन्तु इसके पीछे हमारे यहाँ के एक बड़े साहित्यिक परिकर की लगन और ‘एकेडमी’ की प्रारम्भिक चेतना के साथ उसकी भी नव चेतना के संयोग का सुन्दर सम्बल था। आज उसी का शुभ परिणाम है कि काँकरोली से गोविंदस्वामी, कुम्भनदास, छीतस्वामी और चतुर्भुजदास के काव्य-संग्रहों के क्रमशः प्रकाशन के अनन्तर,

परमानन्ददास के 'परमानन्द-सागर' का महत्वपूर्ण प्रकाशन लेकर हम भक्ति-काव्य-जगत् के समक्ष प्रस्तुत हैं। अष्टछाप-काव्य की स्वर्ण शृंखला में इस ग्रन्थ की एक और कड़ी जोड़ कर आज हम प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।

'परमानन्द-सागर'

'परमानन्द-सागर' का आज का संपादित रूप कितनी लम्बी साधना, अनवरत प्रयास और धीर-गम्भीर श्रम का प्रतिरूप है, वह कितनी सम्पादन-योजना और शैलियों का स्पर्श करता हुआ, विविध साँचों में ढलता-सँवरता हुआ भी एक सर्वथा अप्रत्याशित मौलिक रूप-रंग अन्ततोगत्वा पा सका है; इसके विशद् विवरण और विवेचन में हमें यहाँ नहीं जाना है। काव्य-प्रेमियों का इस 'आत्म-कथा' से कोई सम्बन्ध भी नहीं, न वह आज की स्थिति में आलोच्य विषय ही। हमारी सम्पादन शैली के मूल तत्व वा मौलिक तथ्य क्या रहे हैं, उन्हीं की ओर हमें यहाँ संकेत करना है। इसमें मुख्य वस्तु है, हमारी—

आधार सामग्री

ग्रन्थ के सम्पादन में विद्याविभाग में संरक्षित परमानन्ददास-सम्बन्धी निम्नलिखित काव्य-सामग्री का उपयोग किया गया—

(क) हिन्दी बंध ४५, पुस्तक सं० १: प्राचीनतम प्रति के नाते इसका महत्व है, इसमें विषय-वर्गीकरण भी है।

(ख) हिं. बं० ५७,४ : सुलेख और शुद्ध लिपि इसकी विशेषता है। इस दृष्टि से इसका (क) प्रति से साम्य है। प्रसंग-निर्धारण में इससे बहुत दिशा-सूचन मिला है।

(ग) हिं बं० ५७,३ : समुचित शीर्षकों के साथ अधिकाधिक संख्या में पदों के संकलन का इसमें प्रयास है, यद्यपि प्रति अधिक प्राचीन नहीं है। इसमें पद-संख्या ११२१ है, विषय ७७ हैं।

(घ) हिं. बं० ३६,४ :

(ङ) हिं. बं० १६,६ : इसमें पद-संख्या कोई १००० और विषय ६३ हैं।

(च) हिं. बं० ... : मथुरेश पुस्तकालय, काँकरोली से प्राप्त

(छ) हिं. बं० ... : कीर्तनिया छोटूलाल महाबनिया, काँकरोली से

(ज) हिं. बं० ... : जमनादास जरीवाला की प्रति

(क) से (ज) तक की प्रतियाँ परमानन्ददासजी के 'कीर्तन' 'पद' वा 'परमानन्द-सागर' के विविध कालों और लिपियों में लिखित मूल रूप हैं। इनमें भी क, ख, ग, प्रतियाँ सर्वांगीण सम्पादन में अधिक उपयोगी सिद्ध हुई हैं। शेष प्रतियाँ पाठान्तरों के मिलान में काम आयी हैं। पाठ-भेदों के समावेश के लिये इनके अतिरिक्त, अ. आ. इ, ई. से संकेतित कुछ विशिष्ट नित्य-वर्षोत्सव-कीर्तन-संग्रहों तथा अन्य भी बन्ध-पुस्तकों को आधार माना है। "सागरों" के अतिरिक्त यावत्प्राप्य परमानन्द-रचित पदों के संकलन का प्रयास सरस्वती-भंडार के समग्र कीर्तन-काव्य-बन्धों के द्वारा कर लिया है। पद, पंक्ति वा भाव-साम्य अथवा परिवर्तन वा रूपांतर का अनुसन्धान रखने के लिये अष्टछाप के अन्य कवियों के प्रकाशित-अप्रकाशित पद-संग्रह भी दृष्टि में रखे गये हैं, 'सूरसागर' (नागरी-प्रचारिणी-प्रकाशन) को विशेष रूप से उल्लिखित किया गया है।

यों तो जितना अधिक प्रयास किया जायगा, नवीन सामग्री मिलने की सम्भावना सदा ही बनी रहेगी, तथापि काँकरोली में ही एकत्र इतनी अधिक सामग्री सम्पादन के समय दृष्टि-पथ से निकल चुकी है कि यह कम सन्देह रह जाता है कि काव्य-संकलन में कोई पद रह गया होगा। १४०० के आस-पास पदों की संख्या पहुँच जाना इसका प्रमाण है।

वर्ण्य विषय

अष्टछाप के सभी कवियों का वर्ण्य विषय भगवच्चरित्र वा भागवतीय लीलाएँ रही हैं : इसमें श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर मथुरा-

गमन वा भ्रमर-गीत तक की बाल, पौगण्ड और किशोर-लीलाओं अर्थात् समग्र व्रजलीलाओं का समावेश है। आनुषंगिक रूप में मथुरा और व्रज-द्वारिका लीलाओं का भी किंचित् स्पर्श कवियों ने न्यूनाधिक रूप में किया है। किन्तु व्रज के नन्दालय, गोष्ठ और निकुंज के वातावरण में विलसित और वात्सल्य, सख्य और-शृंगार रस की परिसीमाओं में विवर्द्धित नित-नूतन रस-केलियों में ही उनका मन अधिक रमा है। पुष्टिमार्गीय अष्टकालीन सेवा वा नित्य-क्रम तथा वर्षोत्सव-त्यौहारों एवं विनय-आश्रय आदि सम्बन्धी काव्य भी उसी भगवल्लीला का प्रस्तार वा प्रेरक-पोषक अंग है। परमानन्ददास वा परमानन्दसागर भी इन्हीं रेखाओं पर पूरी तरह से अनुगत है।

परमानन्ददास के जीवन और काव्य की पृष्ठभूमि ही ऐसी है कि वे 'हरिलीला' की मर्यादा से बाहर नहीं जा सकते थे। श्रीमद्भागवत-दशम-स्कन्ध-सुबोधिनी का श्रीवल्लभाचार्य-चरणों के मुख से नित्य श्रवण और सतत अनुशीलन एवं उन्हीं भगवल्लीलाओं का प्रभु के सेवा-समयों में दैनिक और वार्षिक पुष्टिमार्गीय सेवा-संविधान में अनुचिंतन तथा भाव-विभोरता एवं रस-स्वानुभवता के मधुर क्षणों में काव्य-परिधान में सज्जित पदों का प्रभु के समक्ष अनुकीर्तन उनके 'सागर' रूप भक्ति-काव्य का प्रशस्त आधार है। वे स्वयं और उनका काव्य इसी रस-निधिता के कारण ही तो 'सागर' है। श्रीमद्भागवत स्वयं, नाम-रूप-लीला-धाम के समन्वय वा एकीकरण का प्रतीक होने के कारण साक्षात् पुरुषोत्तम-स्वरूप है। फिर उसमें भी दशमस्कन्ध हृदय-रूप होते हुए उन्हीं 'रसेश' का रस-विग्रह है। अतएव 'परमानन्द-सागर' का वर्ण्य विषय श्रीकृष्ण की रस-क्रीडाएँ ही हैं। दान, मान, आसक्ति, स्वरूप-सौन्दर्य, सुरतान्त, युगल-विलास, खण्डिता, ऋतु-विहार आदि रस-प्रसंगों के प्रस्तार तथा शृंगार-रस, नायिका-निरूपण आदि रस-साहित्य के तत्वों का सम्पुट दे कर नन्दनन्दन की व्रज-लीलाओं का और भी विशद्-गम्भीर निर्वचन किया गया है।

विषय—वर्गीकरण

'परमानन्द-सागर' के वर्ण्य विषय की मूल चेतना को दृष्टि-

पटल पर रखते हुए ही, सम्पादन के समय उसके विषय-वर्गीकरण पर विचार किया गया है। प्रस्तुत सम्पादन के पूर्व के विविध विद्वानों द्वारा सम्पादित, विवेचित 'परमानन्द-काव्य की विविध शृंखलाओं, विविध स्तरों का निकट पर्यालोचन करते हुए, जिस सर्वथा अभिनव और वास्तविक शैली से अनुप्राणित कर हमने अपने 'परमानन्द-सागर' को मूर्त रूप दिया है, वही उसका वैशिष्ट्य है, और वह वस्तुतः 'परमानन्द-काव्य' को 'सागर' रूप देने में प्रतिफलित हुआ है।

अष्टछाप के सन्दर्भ में हमें यहाँ 'सागर' की व्याख्या के प्रस्तार में नहीं उतरना है। सूत्र-रूप में 'सागर' से तात्पर्य 'भगवल्लीला-सागर' वा 'भागवतीय रसनिधि-लीलानुक्रम' है। 'परमानन्द-सागर' की मूल प्रेरणा भी यही रही है और वह श्रीमद्भागवत-दशम-वर्णित रस-स्निग्ध लीलाओं का आधार लेकर चला है। 'परमानन्द-सागर' की प्राचीनतम हस्तलिखित प्रतियों और श्रीमद्भागवत के विषयानुक्रम का समानान्तर सन्तुलन करने से यह बात स्पष्ट हो जायगी ; यहाँ हम दोनों के विशिष्ट विषयों के अनुक्रम को समानान्तर रख कर अपनी मान्यता की पुष्टि कर रहे हैं।

श्रीमद्भागवत : गीताप्रेस (दशमस्कन्ध) प्रकाशन	अध्याय	परमानंद-सागर हि. बं. ५७ पु ३ सर. भं कांकरोली
गोकुले भगवतो जातकर्मादि		जन्म-समय के पद
महोत्सवः	५	पलना के पद
पूतनावधः	६	छठी के पद
शकटभंग, तृणावर्तवधः, जृम्भ-		स्वामिनीजी के जन्मसमय के पद
माणस्य भगवतो मुखे यशोदया-		बाललीला के पद
काशादि दर्शनं च	७	उराहनौ
गर्गागमनं जातककथनपूर्वके नाम-		परस्पर हास्य-वचन
करणसंस्कारः मृद्भक्षणव्याजेन		सखन सों खेल
यशोदायै विश्वरूपप्रकटीकरणं च	८	असुर-मर्दन
श्रीकृष्णस्योलूखले बन्धनम्	९	श्रीजमुनातीर कौ मिलन

卐इस प्रति में श्रीमद्भागवत के विषयानुक्रम से इस स्थल पर थोड़ा विसम्वाद आता है, भागवतकार के अनुसार दीपमालिका, गोवर्द्धनोद्धरण प्रसंग--रास-क्रीडादि प्रसंग के पूर्व आना चाहिये,किन्तु इस संग्रहकार ने उसका विपर्यय कर दिया है। कुछ अन्य प्रतियों में भी यही व्यतिक्रम है। सम्भवतः वर्षोत्सव, नित्यक्रम की कीर्तनात्मक शैली इनके दृष्टिबिन्दु में रही हो। परन्तु हमारे सम्पादन में प्रयुक्त :क: हिं० बं० ४५, १ तथा :ख: हिं० बं० ५७, ४ प्रतियों में, जो कि प्राचीनतम होने के साथ ही शुद्ध: अथच हमारी मान्यता में प्रामाण्य रही हैं, श्रीमद्भागवत के विषयानुक्रम का पूरी तरह से अनुगमन किया गया है, उनमें रास के पूर्व ही अन्नकूट है।

सुज्ञ विचारक देखेंगे कि परमानन्ददास ने श्रीमद्भागवत का पूरा अनुगमन किया है। अवश्य ही, विषय वा तन्निष्ठ रस-प्रस्तार की दृष्टि से कवि वर्ण्य सामग्री में न्यूनाधिकता लाया है, किंतु लीला के विकास वा भागवतीय क्रम में इससे कोई विशेष व्यवधान नहीं पड़ा है। ब्रज लीला वा दशम-वर्णित लीलाओं के अतिरिक्त अन्य भागवतीय स्कंध-लीलाएँ, वर्षोत्सव-त्यौहार और विनयाश्रयादि परिशिष्ट रूप में ही ग्रहण किए गये हैं। मूल तत्व,रस-कथाओं को अविकल, अक्षुण्ण रखा गया है। यही भक्त-हृदय कवि की आत्म-निष्ठा और काव्य-कौशल है। विषयों के अधिकाधिक निरूपण और बहुसंख्यक पदों के संचयन को लेकर व्यव-स्थित और सुनियोजित प्रति होने के कारण ही उक्त हिं. बं० ५७, पु. ३ को प्रस्तुत सन्तुलन के विचार-पट पर रखा गया है, अन्यथा इस प्रयोजन के लिये किसी भी, प्राचीन प्रति को लिया जा सकता है। सभी में किंचित् अन्तर के साथ, प्रायः यही क्रम है। इतना ही नहीं, उपरि-उल्लिखित 'क' और 'ख' प्रति में तो विशुद्ध ब्रज-लीलाओं का ही समावेश है, अन्य विषयों का तो नाम-मात्र के लिये स्पर्श किया गया है।

हमने भी प्रस्तुत सम्पादन में मूलतः श्रीमद्भागवत के लीलानु-क्रम का ही आधार लिया है। प्राचीन प्रतियों का इसके साथ संवाद करते हुए और पुष्टिमार्गीय नित्य एवं वर्षोत्सवादि की सेवाओं के क्रम का इसके साथ सामंजस्य बैठाते हुए कुछ विशिष्ट मौलिक परिवर्तन भी किये हैं, जो इस प्रकार हैं--

(१) श्रीकृष्ण के जन्म-समय के साथ ही स्वामिनीजी के जन्म समय के पदों को भी सम्बद्ध कर दिया है। कीर्तन-प्रणाली में यह

जन्माष्टमी के अनन्तर राधाष्टमी—वर्षोत्सव का विषय है। किन्तु 'सागर' की सभी प्रतियों में यह जन्म-समय के साथ ही आया है। सिद्धान्ततः स्वामिनीजी, राधा श्रीकृष्ण का ही अभिन्न अंग हैं, अतः कीर्तन-काव्य में भी अभेदता रखना उचित है। श्रीमद्-भागवत में तो इस विषय का स्थूल रूप से कोई उल्लेख है ही नहीं। जब जन्म-समय के पद भी जन्माष्टमी-उत्सव के रूप में वर्षोत्सव-खण्ड में नहीं रखे जा सकते, वे तो श्रीमद्भागवतीय प्रसंग में नित्य-लीला के रूप में ही आये हैं; तब स्वामिनीजी के जन्म-सम्बन्धी पदों को राधाष्टमी के रूप में वर्षोत्सव-खण्ड में रखने का क्या औचित्य ? वर्षोत्सव में जन्माष्टमी के बाद ही राधाष्टमी आने से ऐसा भ्रम अवश्य हो जाता है।

(२) छठी ब्रज की लोक-संस्कृति का एक रूप होने से, उसे जन्म के उपरान्त ही स्थान दिया है, यद्यपि भागवत में इसका स्पष्ट नाम-निर्देश नहीं है।

(३) नाम-करण, अन्न-प्राशन, और कर्णभेद बालक की अमुक-अमुक वय की अवधि में होने वाले वैदिक संस्कार होते हुए भी उनमें मुख्यतया वात्सल्य-रस का ही अधिक चित्रण है और वे ब्रज की लोक-संस्कृति के ही विशिष्ट अंग हैं अतः उन्हें बाल-लीला के अन्तर्गत ही ले लिया गया है।

शयनोत्थित, कलेऊ, मंगल आरती, प्रातः मुख-दर्शन तथा अन्यान्य बाल-केलि के प्रसंग नन्दालय के वात्सल्य के वातावरण और पुष्टिमार्गीय सेवा-विधान विहित मंगला, शृंगार, ग्वाल-समय के मध्य-वर्ती बाल-क्रीडा-प्रधान विषय होने से ही उन्हें भी बाल लीला में ले लिया गया है। भागवत में इनका विशद् उल्लेख नहीं है।

इसी प्रकार विवाह भी बाल-कुतूहल की ही एक सरस काव्य-कल्पना और ब्रज की लोक-सांस्कृतिक योजना है। अतः उसका स्थान भी बाल-लीला में ही है। भागवतीय लीला-क्रम में तो यह कहीं आता ही नहीं।

मृत्तिका-भक्षण, दधि-मंथन, ऊखल-बन्धन आदि तो बाल-काल की भागवत वर्णित घटनाएँ स्पष्ट ही हैं, सेवा में जिनका समय ग्वाल तक है।

बाल-लीला-शीर्षक को हमने अपने ढंग से सँजोया है, 'सागरों' में ये प्रसंग प्रायः मुख्य शीर्षक लेकर आये हैं, जिनका कोई वैज्ञानिक क्रम वा आधार नहीं।

(४) उराहनौ और मिषान्तर-दर्शन बाल-लीला की नटखट. प्रवृत्तियों की सरस प्रतिक्रिया और ब्रज-जनों की उत्कट मधुर भावना का प्रतिरूप है। अतः इन्हें विशद् काव्य-चित्रण होने के नाते स्वतन्त्र स्थान देते हुए भी बाल-लीला की निकट शृङ्खला में ही रखा है, जब कि भागवत में इनका सूत्र-रूप संकेत है, विशिष्ट स्थान नहीं।

(५) ब्रज-लीला में वात्सल्य के अनन्तर सख्य-भाव को विशिष्ट स्थान है और वह भी मधुर भावना के साथ आया है। कहीं-कहीं वात्सल्य, सख्य और माधुर्य की त्रिवेणी तरलित होती दीखती है। इस दृष्टि से खेल-सम्बन्धी काव्य अपना विशिष्ट स्थान रखता है। मिली-जुली भावनाएँ होने के कारण विशुद्ध बाल-क्रीडा और खेल ही खेल में पूर्वानुराग वा रस-चेष्टाओं सम्बन्धी पद इसी के अन्तर्गत एकत्र संयोजित कर दिये गये हैं। भागवत में तो यह विषय न्यून है।

(६) ब्रज-लीला के पूतना से लेकर कंस-वध के पूर्व तक के समग्र दुष्ट दानवों के दलन-प्रसंगों को 'असुर-मर्दन' शीर्षक में बाँध दिया गया है। अवश्य ही भागवत के घटना-क्रम का इससे पूर्ण निर्वाह नहीं हुआ है। किन्तु भगवल्लीला के एक रस-धारा-प्रवाह में, जो कवि वा उसके काव्य का आत्म-धर्म है, अन्तराय न आवे, इस दृष्टि से ऐसा करना पड़ा। 'सागर'-कारों का भी यही प्रयास रहा है। इसे सभी ने ब्रज-गोष्ठ की गोचारणादि लीलाओं के मधुर वर्णन के पूर्व ही दे दिया है। वीर, भयानक, अद्भुत सरीखे ऐश्वर्य-प्रधान रसों को यह स्थिति मधुर भावों के समक्ष स्वाभाविक ही है।

(७) नित्य-लीला, गोचारण में मध्यान्ह का समय वन-भोजन वा छाक-भोजन का समय है। अतः उसे मुख्यता देते हुए भी गृह-भोजन तथा अँचवन, बीरी को उसी के साथ, अर्थात् एक व्यापक 'भोजन-समय' शीर्षक के नीचे ले लिया गया है। एक विषय होने के कारण ही ऐसा हुआ है। कलेऊ और व्यारू का समय ही अलग है, अतः उन्हें इस भोजन से पृथक् रखा है।

(८) गो-दोहन यद्यपि प्रातः और सायं दोनों कालों में होता है, किन्तु कृष्ण-काव्य में प्रायः सायंकाल ही उसके वर्णन की परम्परा पड़ गई है, अतः ब्रज-आवनी के अनुक्रम में ही उसे रखा गया है, दोनों समय का एकत्र।

(९) दिवस की लीलाओं की समाप्ति पर रात्रि अथवा अनौसर में निकुंज-लीलाओं का क्रम आता है, जिसमें मधुर-मिलन वा रस-केलियों की पृष्ठभूमि के रूप में गोपांगनाओं वा ब्रज-भक्तों की हृद्‌गत रति-भावना की अभिव्यक्ति होती है। अतः आसक्ति और उसकी पोषक वा उद्दीपक युगल प्रिया-प्रीतम की स्वरूप-शोभा वा रूप-माधुरी को, यद्यपि वह समग्र ब्रज-लीलाओं का सम्पूर्ण जीवन-व्यापी विषय है, हमने एकत्र व्यारू के अनन्तर ही स्थान दिया है। यह भी भागवत-वर्णित रास, रस-चरित्र की ही पृष्ठ-भूमि है।

(१०) व्रताचरण-प्रसंग को भागवत और सागर-कारों ने केवल कात्यायनी-व्रत के रूप में उपस्थित किया है, और कीर्तन-प्रणाली में वर्षोत्सव रूप में। किन्तु हमने उसके साथ गनगौर विषय को भी संयुक्त कर दिया है। गनगौर विशेषकर राजस्थानी-संस्कृति वा उससे सम्पृक्त लोक-जीवन का विषय है, जिसे कीर्तन-प्रणाली में वर्षोत्सव में दिखाया है। किन्तु हम इसे कात्यायनी-पूजन की भाँति सौभाग्य-कामना, वर-प्राप्ति के लक्ष्य से ग्रहीत साधना ही मानते हैं।

(११) दान-प्रसंग ब्रज की लोक-भावना का रस-विषय है, जिसे अष्टछाप में शृङ्गार के उद्दीपन वा परिपाक-सामग्री के रूप में चित्रित किया

गया है। कीर्तनकार उसे वर्षोत्सव-रूप दान-एकादशी तक ही सीमित कर गौणता दे देते हैं, हमने उसे एक प्रकार से रास-रस की पूर्व भूमिका के रूप में उसकी अनुगत शृङ्खलाओं में ही नियोजित कर दिया है, और वह भागवतीय प्रसंग के स्तर पर आ गया है, यद्यपि भागवत में उसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है।

(१२) कीर्तन-प्रणाली में दीप-मालिका, अन्नकूट एक वर्षोत्सव मात्र है, रास के अनन्तर का विषय, किन्तु भागवत एवं सागर-कार उसको रास के पूर्व की घटना वा कथा मानते हैं। हमने भी यहाँ उन्हीं का अनुसरण किया है। भागवतीय कथा और व्रज की लोक-परम्पराओं का समन्वय करते हुए, धनतेरस से लेकर प्रबोधिनी तक के त्यौहार वा पर्वों को एकत्र दिखाया गया है, क्योंकि ये सब एक ही प्रसंग वा घटना की क्रम-कोटियाँ अथच एक ही विषय है। वर्षोत्सव के क्रम में लेकर उन्हें छिन्न-भिन्न नहीं किया गया है। प्रबोधिनी तो देव-दिवारी है ही।

(१३) भक्ति और रीतिकाल के कृष्ण-काव्य के सभी कवियों ने रास को एक पुंजीभूत शृंगार-रस का रूपक देकर विशुद्ध काव्य के परिधान में अवतरित किया है। इसीलिये मान, मानापनोदन, युगल-रस-क्रीडा, सुरतान्त, खण्डिता आदि के मधुर चित्रांकन देकर नायक-नायिका-भेद और उनकी रस-चेष्टाओं के व्याज से शृङ्गार के चरम परिपाक की पूरी सामग्री उपस्थित कर दी है, और उसका पूर्ण प्रतिफलन महारास में हुआ है। भागवतकार यद्यपि सुरतान्त, खण्डिता के विशद् विवरण में नहीं गया है, किन्तु शृङ्गार-रस के स्थायी भाव 'रति' के परिपाक की सामग्री...आलम्बन, संचारी उद्दीपन, अनुभाव आदि—का सांगोपांग संयोजन तो उसने किया ही है। सूर, परमानन्दादि 'सागर'-कारों ने भी रास को पूरी सामग्री के साथ ही भाव-जगत् के समक्ष रखा है। किंतु सागर तथा कीर्तन-प्रणाली के लिपिकारों ने इस सामग्री को विधिवत् क्रमिक विकास की दृष्टि से रास के साथ नहीं बैठाया है। सम्भवतः मान, युगल-रस, सुरतान्त, खण्डिता आदि को रस-साहित्य का स्वतन्त्र

विषय मान कर वे उसे स्वतंत्र स्थान देना चाहते हों, जैसा कि कीर्तनकारों ने सुरतान्त, खण्डिता सरीखे पदों को मंगला नित्य-सेवा-क्रम में जोड़ा है। समय की दृष्टि से यह मंगलाकालीन विषय अवश्य है, किन्तु वस्तुत: वह निकुंज के रास-विलास की पूरक सामग्री है, नन्दालय के वात्सल्य के वातावरण के बीच मंगला की नहीं। अत: हम इसे 'रास' शीर्षक में ही एकत्र दिखा रहे हैं।

यह है हमारी परिष्कृत विषय-योजना, जिसे लेकर मौलिक दृष्टि से परमानन्द-काव्य को 'सागर' का रूप दिया गया है। यह तो निश्चय है कि कवि ने स्वयं तो कोई ग्रंथ रचना की नहीं। वह तो बिना किसी पूर्व निर्धारित विषय-योजना के भाव-विभोरता में जो भी काव्य-रचना करता था, उसे स्वयं गाता था और उसके निकट सम्पर्क के प्रेमी वा भक्त-जन उसका संकलन कर लेते थे। परमानन्द-सागर के विभिन्न आकार-प्रकारों में पाये जाने का यही हेतु है। तथापि विषय-योजना के पीछे कोई ठोस सिद्धान्त वा वैज्ञानिक आधार तो होना ही चाहिये, 'परमानन्द-सागर' के प्रसंग में हमने उसे यथाशक्य निभाने का प्रयास किया है।

हमारी यह निश्चित मान्यता है कि 'सागर' नामवाची काव्य को कीर्तन, सेवा वा राग के समयों के आधार पर वर्गीकृत करना सर्वथा असंगत है। 'सागर' का वास्तविक मूल्यांकन उसे 'भागवतीय नित्य-भगवल्लीलाओं' के रूप में देखने में ही है। उसी में स्वतएव नित्य-सेवा का क्रम वा भावना समाहित है।

इस तथ्य का थोड़ा तात्विक विश्लेषण कर के देखें—मनुष्य जन्म लेकर जैसे-जैसे जीवन-पथ पर आगे बढ़ता है, वय के विकास के साथ-साथ उसके हृदय और मन वा भावना और तर्क अथवा रस और चिन्तन-वृत्तियों का भी क्रमिक विकास वा परिपाक होता है। अनुदिन, अनुपल गति से वह पूर्णता की ओर अभिमुख रहता है। जीवन के विकास की परम्परा दिन के विकास की क्रम कोटि के समान है- प्रात:काल पूर्वाह्न, फिर अपराह्न, फिर सन्ध्या और फिर रात्रि : इस प्रकार वय और उसकी वृत्तियाँ सतत प्रवर्द्धमान हैं। भागवतीय लीलानुक्रम और नित्य-

सेवा वा लीलाक्रम को इसी प्रकाश में देखने से उनकी एकरूपता समझ में आ जायगी। दोनों में ये ही तत्व ओत-प्रोत है।

श्रीमद्भागवत अपने चरित-नायक श्रीकृष्ण के जीवन वा वय-विकास के घटना-क्रम को लेकर चला है, और उसी के साथ रस-पुष्टि का विकास भी क्रमशः निदर्शित करता जाता है। जन्म से लेकर रास और भ्रमर-गीत तक यही विकास-परम्परा है। उधर नित्य-सेवा-क्रम में भी यही बात है। वहाँ भी मंगला से लेकर शयन और अनौसर तक नन्दालय, व्रज-गोष्ठ और निकुंज-लीलाओं में वात्सल्य, सख्य, शृंगारादि रसों की क्रमशः विकसित उद्भावनाएँ वय-विकास की भावना के साथ ही की गई हैं। दोनों में अन्तर इतना ही है कि एक सम्पूर्ण जीवन को इकाई मान कर चल रहा है तो दूसरा अष्टयाम वा अष्टसेवा-गत दिन को। भागवत वा सागर-कार का जन्म-समय, छठी, बाल-लीला आदि का समग्र काव्य मंगला-शृङ्गार में गेय कीर्तन-काव्य ही तो है। उराहनौ मिषान्तर-दर्शन, खेल, गोचारण आदि ग्वाल के समय के सम्बद्ध पद हैं। फिर भोजन-समय के पद राजभोग का गेय काव्य है। आवनी, गो-दोहन, ब्यारू आदि विषय उत्थापन, भोग-संध्या, शयन के सेवा-समयों के अंग हैं। फिर आसक्ति, स्वरूप-शोभा, व्रताचरण, दान आदि प्रसंगों से रस-क्रीडाओं की पृष्ठभूमि देते हुए अन्त में अनौसर वा रात्रि, शयन-व्यापी काल में 'रास' की अवतारणा की गई है। वात्सल्य और सख्य की विविध भूमिकाओं में से पग बढ़ाते हुए शृङ्गार की परमावधि वा रस के चरम परिपाक को पहुँचा गया है।

इस प्रकार हमारे 'परमानन्दसागर' में वर्णित भगवल्लीलाएँ श्रीमद्भागवत पर आधारित होते हुए भी नित्य-सेवा-क्रम की रस-भावनाओं से भिन्न नहीं है। दोनों का यहाँ सुन्दर, साथ ही वैज्ञानिक समन्वय हुआ है।

शीर्षक

'सागर' के खण्ड-खण्ड नहीं किये जा सकते, वह अनन्त रस-स्रोत सहित अगाध और अखण्ड है। फिर भगवल्लीला-सागर तो जो वस्तुतः नाम और गुण में सर्वदा 'परमानन्द-सागर' है, नित्य-निरवधि

है। इसी दृष्टि से नित्य-वर्षोत्सव सरीखी अष्टछाप-गत अन्य सम्पादन-शैलियों की तरह हमने इस 'सागर' को किन्हीं एकाधिक खण्डों में उपनाम वा शीर्षक दे कर विभाजित नहीं किया है। भागवतीय दशम-लीलाओं के अतिरिक्त औपचारिक वा परम्परा-पालन रूप में, पुष्टिमार्गीय सेवा-सन्निधान में रहने के कारण प्रसंगवश, जो इतर उत्सव-त्यौहार वा आश्रय-विनय अथवा प्रकीर्ण पदों की रचना कवि ने की है, उसे 'परिशिष्ट'—उसी लीला-निधि के पूरक रूप में, दे दी गई है। कीर्तन-प्रणाली के तथाकथित कतिपय वर्षोत्सवों को जन्म-समय, छठी, व्रताचरण (कात्यायनी, गनगौर) दान, दीपमालिका, अन्नकूट (भाईदूज-प्रबोधिनी), रास आदि को—भागवतीय प्रसंग होने के कारण 'सागर' में सम्मिलित कर लिया गया है। शेष विषय स्वतन्त्र शीर्षकों के नीचे दे दिये हैं। यह सब करते हुए भी समग्र संकलित परमानन्द-काव्य को 'सागर' नाम से ही हम उद्बोधित कर रहे हैं—नित्य-वर्षोत्सव की परम्परा से, उसके स्थूल वर्गीकरण से यह 'सागर' सर्वथा असम्पृक्त रहा है।

इस 'सागर' के अन्तर्गत भी शीर्षकों का जो चुनाव किया गया है, वह सर्वांशतः प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों से ही है। प्राचीन नाम-करण की परम्परा का संरक्षण करने के लक्ष्य से हमने कोई नये शीर्षक नहीं गढ़े हैं। नूतन और पुरातन का आवश्यक अनुपात में समन्वय वा समीकरण हमारा सिद्धान्त है।

पद-संचयन

'सागर' की आधार-सामग्री के पदों का संपूर्ण समावेश तो इस प्रकाशन में है ही, तदतिरिक्त काँकरोली-विद्याविभाग के कोई १५० बन्धों के कीर्तन-काव्य से प्राप्त नवीन सामग्री भी इसमें है। 'परमानन्द', 'परमानन्ददास' 'परमानन्द प्रभु', 'परमानन्द स्वामी' वा 'दास परमानन्द' छाप से प्राप्त सभी पदों को परमानन्द-काव्य मान कर 'सागर' में स्थान दे दिया गया है। अष्टछाप के आठों कवियों की प्रामाणिक काव्य-सामग्री अभी साहित्य जगत् के समक्ष नहीं आ सकी है, अतः तुलनात्मक

समीक्षा-दृष्टि से हम इन पदों की प्रामाणिकता पर अधिक विचार नहीं कर सके हैं। अष्टछाप के साथ ही ब्रज के मध्यकालीन कृष्ण-काव्य के इतर कवियों की सामग्री का भी समालोचन इस प्रसंग में हम आवश्यक मानते हैं। ऐसा न होने तक, जो विशाल श्रम-समय-अर्थ-योजना के अभाव में सम्प्रति अशक्य ही है, इस सामग्री की प्रामाणिकता की कसौटी उसमें कवि की छाप और प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में उसकी उपलब्धि ही है। तथापि अष्टछाप के यावत्प्राप्य प्रामाणिक प्रकाशनों से इसका मिलान कर लिया गया है। इतने पर भी हो सकता है कि छाप, पद, पंक्ति, पाठ, भाव आदि के साम्य वा भेद की कोई अनवधानता रह गयी हो।

पाठ-शुद्धिः पाठान्तर और साम्य

सम्पादन के समय हमारे समक्ष कोई आठ-दस प्रतियाँ पाठ के मिलान, संशोधन, उपयुक्त पाठ के ग्रहण आदि के लिये उपस्थित थीं; जिन्हें लेकर हमारा विशाल सहयोगी-मण्डल वृत्ताकार बैठता था। उन में 'क', 'ख' सरीखी एक-दो प्रतियों को सम्पादन के लिये 'आदर्श प्रति' मानते हुए भी हम सर्वथा किसी एक प्रति पर ही आश्रित नहीं रहे। शुद्ध पाठ का चयन करते समय भाव-सौन्दर्य, पद-चमत्कार, पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त-लीला-भावना से संगति, ब्रज-लोक-परम्परा का गौरव, मन्दिरों की कीर्तन-पद्धति, ब्रजभाषा के कृष्ण-काव्य की शैली आदि हमारे विचार-पटल वा दृष्टि-बिन्दु में रहे। छन्द और लय का भी हमें ध्यान रखना था। फिर एक विशेष सीमा तक हमारे निर्णय को प्राचीन पुस्तक का समर्थन भी मिले, यह द्रष्टव्य था। किसी असंगति के निवारण के लिये जहाँ-तहाँ हमें अपने स्वतन्त्र निराकरण का भी प्रयोग करना पड़ा है, पाठान्तर देने में भी यही नीति रखी गई है। सभी प्रतियों के सभी पाठ-भेदों को दे कर अनावश्यक प्रस्तार से प्रकाशन को बचाया गया है। पद-पंक्ति, भाव वा लीला में साम्य वा पुनरावृत्ति भी अनेक स्थलों में आई है, किन्तु ये सारी बातें अपरिहार्य और सहज सम्भाव्य हैं। कवि स्वयं भावावेश में इसका अनुसन्धान नहीं रख सका है और लीला-भावना की एकरसता-एकरूपता के कारण भी कवि का

इतर कवियों से साम्य वा प्रभावित होने का भ्रम हो जाता है। जितनी जानकारी मिल सकी, उसके अनुसार पद के प्रारम्भ की तुक के साम्य का उल्लेख पाद-टिप्पणी में कर दिया गया है, साथ ही पद वा भाव-साम्य का भी। जहाँ-तहाँ किसी वस्तु का निराकरण नहीं पा सके हैं, वहाँ प्रतियों के यथा-प्राप्त को ज्यों का त्यों रख दिया गया है। एक बार सामग्री सामने तो आ जाय, परिशोधन, विवेचन तो यथासमय प्रामाणिक सामग्री की उपलब्धि के साथ होता रहेगा। पदों के साथ राग भी प्राचीन प्रतियों में जैसे मिले हैं वैसे ही दे दिये गये हैं, तथापि सेवा-समय, ऋतु-काल, संगीत-पद्धति आदि का भी मोटा सा ध्यान रखा गया है।

भाषा और शब्द-योजना

कवि अपने समय की सामान्यतः व्यवहृत लोक-भाषा को काव्य-कलेवर में सजाते समय, उसके कुछ विशिष्ट रूपों वा प्रकृतियों का संरक्षण करते हुए भी, उसका परिष्कार करता है, उसे साहित्यिक नागरिक रूप प्रदान करता है। किसी समय वह सारे अनुशासनों को पार कर अपवादों की सीमा में भी चला जाता है। तब उसे किसी भाषागत भौगोलिक परिवेष्टन में नहीं बाँधा जा सकता। परमानन्ददास के सम्बन्ध में भी यही बात है। उनके काल की ब्रजभाषा का जो भी रूप रहा हो, उनके आसपास जैसी भी बोली बोली जाती रही हो, वे उससे बाध्य नहीं। वे तो उसे मधुर, कोमल, और मौलिक-परिमार्जित रूप देकर चले हैं। उसकी आज के नागरिक उच्चरित रूप से संगति बैठा लेना हमारा काम है, और वह इस रूप में कि हम मान लें, कि आज ब्रज के प्रमुख नगरों में काव्य-साहित्य-संस्कार वाले जिस भाषा का अपने दैनिक जीवन में प्रयोग करते हैं, अनायास शब्द का उच्चारण हम जो करते हैं, वही ब्रजभाषा अथवा परमानन्द-काव्य की भाषा वा शब्दों का रूप है। जिन प्राचीन प्रतियों को हम आधार मान कर चले हैं, उनमें भी तो यही हुआ है। लिपिकारों वा भावुकों ने अपने-अपने समय की शैली, निज रुचि, ज्ञान, काव्य-भावना आदि के अनुरूप भाषा के रूप को सँवारा है।

अत: प्रस्तुत सम्पादन में भी हमने यही नीति बरतते हुए, जहाँ तक काव्य का स्वारस्य, उसका माधुर्य और रस-परिपाक आक्रान्त न हो, ब्रज के किसी सम्भाग-विशेष वा काल-विशेष के रूप को भाषा का मानदण्ड नहीं माना है। हम कवि के रस-रूप में ढली हुई, सँजोयी हुई भाषा के पक्षपाती हैं, एक-रूपता की कठोरता, तद्भव की अति संकीर्णता के नहीं। भाषा में तरलित काव्य के मधुर प्रवाह को तत्सम-तद्भव वा नागरिकता-ग्रामीणता की कठोर पाषाण-रेखाओं में मर्यादित करना हमें अभीष्ट नहीं। फिर कवि के लीला-नायक 'बालकृष्ण' की तुतली बोली को किन्हीं विशिष्ट भाषागत वैज्ञानिक अनुशासन में भी तो नहीं बाँधा जा सकता। कवि की अन्तरात्मा, उसकी सहज प्रकृति के साथ ऐसा करना अन्याय होगा।

यही दृष्टिकोण है, जिसके आधार पर हम यह मान कर चले हैं कि एक शब्द के जितने भी रूप वा प्रयोग प्राचीन प्रतियों में उपलब्ध हैं, वे सभी ब्रजभाषा के प्रयोग हैं, सभी को काव्य में साधिकार स्थान प्राप्त है। भाषा तो विविध देश-काल के विविध स्तरों पर से गतिशील एक प्रवाह है-कितने ही मोड़-तोड़ों के साथ अविछिन्न अकुंठित धारा। भाषा वा बोली की सबसे बड़ी कसौटी ही यह है कि जैसा उच्चारण, वैसी लिपि। जब एक ही शब्द को भिन्न-भिन्न रूप में उच्चरित किया जा सकता हो तो उसके विभिन्न-लिपि-रूपों को ग्रहण कर लेने में क्या आपत्ति है? इसी प्रकार ह्रस्व-दीर्घ मात्रा, अनुस्वार, संयुक्ताक्षर के रूप भी उच्चारण पर ही आधारित रखे गये हैं, साथ ही छन्द की लय से भी उनकी संगति बैठाने का ध्यान रखा गया है।

उक्त व्यापक और उदार भाषा-दृष्टिकोण रखते हुए भी, ब्रजभाषा के परम्परागत सामान्य नियमों का पूरा पालन किया गया है। काव्य-पाठ की सुविधा और सहज भाव-ग्रहण वा अर्थानुसन्धान की दृष्टि से सामासिक-पद और सम्बोधन-चिन्हों का भी प्रयोग कर आधुनिकता का समावेश किया गया है। साथ ही विराम-चिह्नों की अधिक जटिलता से भी काव्य को मुक्त रखा गया है।

सहयोगी मंडल

इस प्रकार 'परमानन्द-सागर' का प्रस्तुत रूप एक बहुत बड़े अध्यवसाय, प्रयास सहयोग, प्रेरणा और प्रोत्साहन का पुंजीभूत प्रतिफलन है। प्रकाशन के ठीक समय पर, पूर्व-नियोजित सम्पादित सामग्री को एक विशिष्ट दृष्टिबिन्दु से आमूल पुनः संगठित कर सर्वथा मौलिक रूप देने में पर्याप्त श्रम, समय और मनोयोग देना पड़ा है। अवश्य ही ग्रन्थ को विद्यमान रूप तक पहुँचाने में उन सहयोगियों के श्रम और मनोयोग को भी नहीं भुलाया जा सकता, जिन्होंने इसकी आधार-शिला के साधन जुटाने में हमारा हाथ बटाया है। यह अलग बात है कि दृष्टिकोण और शैली की विभिन्नता से सम्पादन वा उसे अन्तिम स्पर्श देने में उसके नवजीवन-निर्माण में हमीं पर भार सर्वाधिक पड़ा है। जो भी हो, सम्पादन की कृत-संकल्पता का परिणाम सुखद रहा है।

प्रस्तावना लेखक—डा० श्रीदीनदयालुजी गुप्त के प्रति हम विशेष रूप से आभारी हैं, जिन्होंने स्वास्थ्य की प्रतिकूलता और अनेक कार्य व्यस्तता के बीच भी 'परमानन्दसागर' पर एक मननशील तात्विक भूमिका लिख कर काँकरोली और उसकी साहित्यिक प्रवृत्तियों के प्रति अपने सहज स्नेह और सहयोग का परिचय दिया है। श्रीगुप्तजी के साथ अपने अविरल एकात्मभाव को दृष्टि में रखते हुए कृतज्ञता-ज्ञापन सरीखी औपचारिकता वा शिष्टाचार की रूढ़वादिता में हमें नहीं पड़ना चाहिये। किन्तु किसी सदनुष्ठान में अपनों का सर्वथा विस्मरण भी तो नहीं किया जा सकता। इसी व्याज से वे आज हमारे निकट हैं और सर्वदा रहेंगे ऐसी आशा है।

प्रकाशन के लिये एक बड़ी अर्थ-राशि का साहाय्य देकर, 'परमानन्द-सागर' सरीखे एक अलभ्य ग्रन्थ-रत्न को हिन्दी साहित्य एवं पुष्टि-जगत् के समक्ष लाने की सम्भावना जिन्होंने उपस्थित की है, वे भी कम स्मरणीय नहीं है। साहित्य की सेवा, उसमें प्रतिष्ठित सत्य-शिव-सुन्दर श्रीहरि की सेवा है। फिर अष्टछाप और उसका साहित्य तो श्रीहरि-रूप ही है।

मनुष्य पूर्ण नहीं, अतः उसकी कृति वा योजानाओं में भी अपूर्णता वा त्रुटि रह जाना बहुत सम्भव है। हमारे प्रयास में भी यदि, कहीं-कुछ ऐसा मिले तो काव्य-प्रेमी उस पर अधिक विचार न कर, जो कुछ सुन्दर बना है, उसका अनुशीलन करेंगे।

'परमानन्द-सागर' की पूरक सामग्री-रूप में साहित्य और सम्प्रदाय की दृष्टि से और भी उपादेय वस्तुएँ देने की हमारी योजना थी, किन्तु समय और सहयोग की न्यूनता से ऐसा नहीं हो सका। सम्प्रति तो, पुनः ऐसी ही अग्रिम काव्य-प्रकाशन की योजना की आशा के साथ, हम साहित्य-प्रेमियों से विदा ले रहे हैं। शम् ..

गो० श्रीब्रजभूषण शर्मा :
काँकरोली
शु. तृ. गृहाधीश्वर :
जन्माष्टमी
१६१६ वि०

क. गोकुलानन्द तैलंग
संयोजक
अष्टछाप स्मा० समिति काँकरोली

प्रस्तावना !

—डा० श्रीदीनदयालु गुप्त

एम० ए०, एल-एल० बी०, डी० लिट्०.

[प्रोफेसर तथा अध्यक्ष हिन्दी तथा अन्य आधुनिक भारतीय भाषा-विभाग]

लखनऊ विश्वविद्यालय

लखनऊ

हिन्दी में कृष्णभक्ति से सम्बन्धित काव्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। यह काव्य कृष्णभक्ति के कई पूजा सम्प्रदायों से सम्बन्ध रखता है, जैसे निम्बार्क संप्रदाय, माध्व संप्रदाय, वल्लभ सम्प्रदाय, चैतन्य सम्प्रदाय, राधावल्लभीय सम्प्रदाय, हरिदासी सम्प्रदाय, बारकरी सम्प्रदाय आदि। इन सभी सम्प्रदायों में हिन्दी के उच्च कोटि के कवि हुए हैं। विद्यापति हिन्दी कृष्णकाव्य के प्रथम कवि हैं। इनकी रचनाओं पर संस्कृत के गीतकार जयदेव की रचना गीतगोविन्द का विशेष प्रभाव है। जो सरस स्वर लहरी गीत-गोविन्द में है वही विद्यापति के पदों में भी है। इसीलिये इन्हें अभिनव जयदेव कहा जाता है। कृष्णभक्त कवियों में वल्लभ सम्प्रदाय के 'अष्टछाप' आठ भक्त कवि बहुत प्रसिद्ध हैं। वे हैं, सूरदास, परमानन्ददास, कुँभनदास, कृष्णदास अधिकारी, नन्ददास, चतुर्भुजदास, छीत स्वामी, और गोविन्द स्वामी। राधावल्लभीय सम्प्रदाय में सम्प्रदाय के संस्थापक श्री हितहरिवंशजी के अतिरिक्त व्यासदेव और ध्रुवदास विख्यात हैं और हरिदासी सम्प्रदाय में स्वामी हरिदासजी, बिहारिनीदास जी, और ललितकिशोरी जी उल्लेखनीय हैं। कृष्णभक्ता मीराबांई को कविता भी प्रेम भाव से ओत-प्रोत हैं और बहुत लोकप्रिय हैं। इन सब कृष्भभक्त कवियों में अष्टछाप की प्रतिभा अद्वितीय है। इनमें भी सूरदास और परमानन्द

दास अग्रगण्य हैं। ये परमभक्त, परम दार्शनिक, परम संगीतज्ञ तथा परम प्रतिभा सम्पन्न कवि हैं।

"चौरासी वैष्णवन की वार्ता" में भाव स्पष्ट करते हुए श्री हरिरायजी उक्त दोनों भक्तों के विषय में कहते हैं: "वैष्णव तो अनेक श्री आचार्यजी के कृपापात्र हैं परन्तु सूरदास और परमानन्ददास ये दोऊ सागर भये। इन दोउन के कीर्त्तन की संख्या नाहीं सो दोऊ सागर कहवाये।" वार्ताकार ने उक्त चौरासी वैष्णवन की वार्ता में एक स्थान पर और कहा है कि "ताते वाणी तो सब अष्टकाव्य की समान है और ये दोऊ परमानन्द स्वामी और सूरदास जी सागर भये।" इस प्रकार परमानन्ददासजी का कवि और भक्त रूप सूरदास जी के समान ही बताया गया है, और दोनों को सागर के समान भक्ति-काव्य-गुणाकर कहा गया है।

अष्टछाप के भक्त कवि परमानन्ददासजी की ख्याति उस स्थिति में भी थी जब उनका काव्य प्रकाश में भी नहीं आया था। किसी कवि अथवा लेखक को ख्याति तभी मिलती है जब उसके काव्य में लोक-रञ्जन और लोक कल्याण के गुण होते हैं। अष्टछाप भक्तों के काव्य में लोक रञ्जन का तो गुण अपनी चरम सीमा पर है ही, उसमें लोक कल्याण की भावना भी निहित है। परमानन्ददास के काव्य में भगवद् प्रेम के विविध भावों से उद्भूत भक्ति रस के साथ उच्च कोटि का काव्यानन्द भी है जो जन-मन को रस-मग्न कर देता है। उस काव्य में वात्सल्य, हास्य और माधुर्य की अविरल प्रसन्नकारिणी धारा प्रवाहित है। उसमें प्रेम की बहुरूपिणी अवस्थाओं के मनोरम चित्र अङ्कित हुए हैं। भाव विभोरता के साथ उसमें विचारात्मकता भी है जो आचार्य वल्लभ की चिन्तन प्रणाली के अनुकूल है। भक्ति-रस, काव्यानन्द और दार्शनिक ज्ञान

गरिमा, इन तीनों गुणों का समावेश सूर काव्य की तरह परमानन्द-काव्य में भी है।

भक्ति-रस के अनेक ऐसे भाव परमानन्ददासजी के पदों में व्यक्त हैं कि कवि के साथ पाठक भी उसी आनन्द रस का भ्रमर बन जाता है। आनन्द स्वरूप कृष्ण के चरण-कमलों का मकरन्द पान करते हुए परमानन्ददास जी कहते हैं :-

आनन्द की निधि नंदकुमार।
परब्रह्म नट भेष नराकृत जगमोहन लीला अवतार ॥
स्रवननि आनन्द, मन महिं आनन्द, लोचन आनंद-आनंद पूरति।
गोकुल आनंद गोपी आनंद, नंद जसोदा, आनंद पूरति ॥
सुर मुनि आनंद संतनि आनन्द, निज गुन आनंद रास-विलास।
चरण कमल मकरंद पान कों अलि आनंद परमानंददास ॥

इस प्रकार के पदों में परमानन्ददास की प्रेम-भक्ति के साथ यह मान्यता भी प्रकट है कि वे ब्रह्म के आनन्द अथवा रस-रूप के उपासक थे। एक पद में वे कहते हैं :-

रसिक सिरोमनि नंदनंदन !

× × × ×

जिहि रस मत्त फिरत मुनि मधुकर सो रस संचित ब्रज वृन्दावन।
स्याम धाम रस रसिक उपासत प्रेम प्रवाह सु परमानन्द मन ॥

परमानन्ददास ने संसार के लोक व्यवहार से विरक्त हो कर अपनी समस्त लौकिक भावनाओं को कृष्णार्पण कर दिया था और वे जीवन-मुक्त भजनानन्दी भक्त रूप में गोवर्द्धननाथजी के चरणों में रहते थे। प्रेम और सौंदर्य के स्वरूप आनन्दकंद कृष्ण की भक्ति के आनन्द के सामने भक्तों ने सायुज्यादि मुक्तियों की भी अवहेलना कर दी है। भजनानन्द ही उनके लिये मुक्ति की अवस्था है।

एक पद में परमानन्ददासजी गोपी रूप में कहते हैं कि—

"मैं न तो योगाभ्यास के आसन, प्राणायाम ध्यान आदि अष्टांग योग जानती हूं, न ज्ञानियों का संन्यास मार्ग, और न कर्म मार्गियों का धर्म संचय। भगवान् संन्यासियों को मुक्ति दें, लोक कामना करने वाले साधकों को लौकिक कामराशि दे दें, मर्यादा मार्गियों को धार्मिक सुख दे दें परन्तु मुझे तो सदैव कृष्ण के पद-पङ्कजों के रसपान में ही परमानन्द है। लोग कहते हैं कि योगाभ्यास से ज्योतिर्ब्रह्म की लयात्मक मुक्ति मिलती है तो मुझे वह मुक्ति नहीं चाहिये। मैं तो केवल श्याम रंग में रंग कर एक रस हो गई हूँ।"

मेरो मन गह्यो माई मुरली के नाद।
आसन पवन ध्यान नहिं जानों कौन करै अब वाद विवाद॥
मुक्ति देहु संन्यासिन को हरि कामिन देहु काम की रास।
धर्मिन देहु धर्म को मारग, मेरो मन रहै यह अम्बुज पास॥
जो कोउ कहै जोति यामें, सपने न छुवें तिहारो जोग।
परमानन्द स्याम रंग रातो सबै सहीं मिलि एक अङ्ग लोग॥

भगवान् के प्रेम और सौन्दर्य स्वरूप के ध्यान में भक्त अनेक मानसिक अवस्थाओं का अनुभव करता हे। स्वरूप सेवा से भक्त जब ऊपर उठ जाता है तो फिर उसे अपने मानसी जगत में ही भगवान् के बहु भावमय रूप दीखते हैं और उन्हीं के साथ सानुभव अवस्था में वह संयोग वियोग की अनुभूतियां करने लगता है। श्री गोवर्द्धननाथजी की सेवा करते करते परमानन्ददास मानसी सेवा में पहुँच गये थे। गोपी रूप परमानन्ददास संयोग वियोग की ध्यानावस्था में गाते हैं:—

हरि तेरी लीला की सुधि आवति ॥

कमल नैन की मोहनी मूरति, मन-मन चित्र बनावति ।
एक बार जाइ मिलत मया करि सो कैसे विसरावति ॥
मृदु मुसिक्यानि बंक अवलोकनि चालि मनोहर भावति ।
कबहुँक निविड़ तिमिर आलिंगति, कबहुँक पिक स्वर गावति ॥
कबहुँक नैन मूँदि अन्तरगति बनमाला पहिरावति ।
परमानन्द प्रभु स्याम ध्यान करि ऐसे विरह गंवावति ॥

"हे हरि मुझे तुम्हारी लीला की याद आती है । तुम्हारी मोहनी मूर्ति मेरे मन के भीतर अनेक चित्र बनाती है । तुम्हीं बताओ, जिस को तुम एक बार अपना संयोग दे देते हो, वह तुम्हारी बंक अवलोकनि और मृदु मुसकान को कैसे भूल सकता है । तुम्हारी याद में मैं कभी तुम्हारे प्रगाढ़ आलिंगन का सुख लाभ करती हूँ तो कभी तुम्हारे मधुर स्वर में मिल कर गाने लगती हूँ । जब तुम छिप जाते हो तो मेरी चेतना तुम्हारी याद में 'कहाँ हो ?' 'कहाँ हो ?' कह कर तुम्हें खोजती फिरती है । कभी मेरी अन्तरात्मा नेत्र मूंद कर तुम्हें सर्वस्व अर्पण करती हुई तुम्हें बनमाला पहनाती है । इसी प्रकार हे श्याम ! मैं तुम्हारे ध्यान में अपने विरह की घड़ियों को बिताती हूँ।"

उक्त पद में कितनी भाव विभोरता और कितनी भक्ति की रसात्मकता है, यह भावुक और भक्त हृदय ही जान सकता है । वार्ताकार ने कहा है कि परमानन्ददासजी से इस पद को सुन कर आचार्य वल्लभ तीन दिन मूर्छित हो भगवान् के सानुभव में रहे थे । परमानन्ददास की वाणी अनुभूति से सिक्त थी इसीलिये उसमें इतनी प्रभावात्मकता और भाव संक्रमणता है ।

परमानन्ददास की भक्ति भावना के अतिरिक्त उनकी काव्य प्रतिभा के भी अनेक ऐसे मनमोहक भाव-चित्र हैं जिनमें रसात्मकता

है और मुग्धकारी काव्य की सहज कला प्रस्फुटित है। परमानन्ददास का भाव क्षेत्र भी सूर की तरह प्रेम-भाव तक ही सीमित है जिसमें ये दोनों कवि गहरे उतरे हैं। बाल चित्रण में सूर की भांति परमानन्द स्वामी ने भी बाल स्वभाव, बाल-चेष्टा और बाल क्रीड़ाओं का मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रण किया है। इन चित्रों में सहज स्वाभाविकता के साथ सार्वजनीनता है। बाल-चेष्टाओं के साथ मातृ-हृदय की विविध मनोरम भावनाओं का भी सुन्दर चित्रण है।

"एक ग्वालिनी ने बालक कृष्ण को उठा कर अपनी स्नेह भरी छाती से लगा लिया। यशोदा डरी, कहीं उसके प्यारे बालक पर ग्वालिनि कोई जादू टोना न कर जाय। इस शंका के आते ही यशोदा ने ग्वालिनि को हटक दिया। बेचारी ग्वालिनि मन मार कर उठी और बेमन से चल दी। कृष्ण उस ग्वालिनि के गोद के लिये मचलने लगा। यशोदा ने देखा कि ग्वालिनी कोई टोटका कर गई है। बच्चे को ग्वालिनि की गोद के लिये रोते देख यशोदा गई और बड़े निहोरे और खुशामद से उस ग्वालिनि को लौटा लाई, ग्वालिनि का मलिन मन खिल उठा और अपने अञ्चल की ओट में मुसकराती हुई बालक कृष्ण के पास आई। उसे देख कर बालक चुप हो गया। वात्सल्य भाव के इस प्रकार के अनेक चित्र परमानन्ददास के काव्य में दृष्टव्य हैं। बालक और माता के भावों का यह शब्द चित्र अपने स्वाभाविक और सजीव रूप में नीचे के पद में अङ्कित है :—

रहिरी ! ग्वालि जोवन मदमाती।
मेरे छँगन मगन से लालहिं कत लै लै उछंग लगावति छाती॥
खीजत ते अब ही राख्यो है, नान्हीं उठत दूध की दांती।
खेलन दै, घरु जाय आपने, डोलति कहा इतो मदमाती॥
उठि चली ग्वालि, लाल लगे रोवन, तब जसुमति ल्याई बहु भांती।
परमानन्द ओट दै अंचर फिरि आई नैननि मुसिकाती॥

इस प्रकार देहात के अकृत्रिम और भोले भाले जीवन, वहाँ की बोलचाल, वहाँ के पशु पक्षी तथा वहां के वातावरण के अनेक आकर्षक तथा स्वाभाविक चित्र परमानन्ददास ने अपनी लेखनी से खींचे हैं।

एक दिन कोई काछिन बेर बेचने आई। वह नन्द के घर में भी बुला ली गई। काछिन की आवाज सुनते ही आँगन में सूखते हुए धानों को छोटी छोटी उंगलियों की अंजुलि में भर कर बालक कृष्ण भी उत्सुकता के साथ ठुमुक ठुमुक दौड़ा आया। उस समय उँगलियों की अंजुलि में धान देख कर माता ने तुरन्त उसे गोद में उठा कर चूम लिया। बेर पा कर बालक अत्यन्त प्रसन्न हुआ। इस दृश्य और भाव का शब्द चित्र नीचे लिखे पद में द्रष्टव्य है :-

कोउ मैया बेर बेचन आई।
सुनत ही टेरि नंद रावरि में लई भीतर बुलाई॥
सूखत धान परे आंगन में कर अंजुली बनाई।
ठुमुक ही ठुमुक चलत अपने रंग गोपी जन बलि जाई॥
लिए उठाय उछंग रीझि करि मुख चुंबत न अघाई।
परमानन्द स्वामी आनन्दे, बहुत बेर जब पाई॥

बाल स्वभाव और बाल विनोदों के क्रीड़ा-स्थल मातृ-हृदय के चित्र उतारने में सूरदास तो सिद्धहस्त हैं ही, परन्तु परमानन्ददास के काव्य में भी उपर्युक्त प्रकार के सजीव चित्र प्रचुर हैं।

बाल और सख्य भावों के चित्रण के आंतरिक शृङ्गार भाव को भी, जिसे भक्ति-शास्त्र की भाषा में 'माधुर भाव' कहा गया है, मनोरम अभिव्यंजना परमानन्ददास ने अपने पदों में की है। कृष्ण के अपार सौन्दर्य और अपार भक्ति के गुणों पर गोपीजन मुग्ध हैं। इस आकर्षण से जन्य पूर्वराग की विभिन्न अवस्थाओं का अंकन

परमानन्ददासजी ने किया है। मिलन की कामना, प्रिय का ध्यान, ध्यान में संयोग का सुख और वियोग की विकलता तथा फिर तन्मयता आदि भाव अनेक प्रकार से उन्होंने व्यक्त किये हैं। उनके इन वर्णनों में भक्त के हृदय की वेदना से मिश्रित प्रेम पुलकावलि है। इनमें प्रलाप, व्याधि, जड़ता और उद्वेग आदि काव्यशास्त्रीय प्रेम दशाएँ नहीं हैं। इनमें भाव की अनुभूति है भाव की कल्पना नहीं है। प्रेम-पीर से प्रताड़ित परमानन्ददास की एक गोपी कहती है :—

जब ते प्रीति श्याम सों कीनी।
ता दिन ते मेरे इन नैननि नेंक हूँ नींद न लीनी॥
सदा रहत चित चाक चढ़्यो सो और कछू न सुहाय।
मन में रहे उपाय मिलन को इहै विचारत जाय॥
परमानन्द पीर प्रेम की काहू सों न कहीए।
जैसे विथा मूक बालक की अपने तनमन सहीए॥

पूर्वराग, प्रेम की विभोरता और विकलता के चित्रों के बाद संयोगावस्था के भावचित्र कुछ अधिक रंगीन हैं। यहाँ संयोग प्रेम की बहुरूपा मनोदशाओं का वर्णन काव्यशास्त्र में कथित प्रेम दशाओं से मिलता जुलता है। गोपियां, वासकसज्जा अभिसारिका, खण्डिता, स्वाधीनपतिका सम्भोग-सुख-हर्षिता, मानवती आदि रूपों में चित्रित की गई है। इन अवस्थाओं के द्योतक अनेक पद परमानन्द सागर में हैं।

उक्त संयोग सुख भावों के उत्कर्षवर्द्धक, उद्दीपक विभाव और अनुभावों के वर्णन भी परमानन्द काव्य में प्रचुर हैं। अनेक आमोद प्रमोद परम्परागत होते हुए भी अपनी भावगहनता और प्रभावात्मकता में नूतन हैं। भारतवर्ष की ऋतुओं में वर्षा शरद् और बसंत

तीन ऋतुएँ सुखदायिनी होती हैं। इन तीनों ऋतुओं के उल्लास और उमंग से परे आनन्दोत्सवों का वर्णन अष्टछाप के सभी कवियों ने किया है परन्तु इस ओर भी सूर और परमानन्ददास की प्रतिभा और कला अद्वितीय है। तीनों ऋतुओं के आनन्दोत्सवों को 'रास' (रस समूह) की संज्ञा दी गई है। इस प्रकार सूर की तरह परमानन्ददास ने भी तीनों रासों का वर्णन किया है। इन रासों में रसिक मन की सहगामिनी रंगीली तीनों ऋतुओं का वर्णन भी रससिक्त है। वर्षा में हिंदोला और वर्षा विहार का रास, शरद में विमल चाँदनी, और पुष्पों से सुसज्जित छबीली राधिका की शोभा के बीच नर्तन वादन और गायन का उल्लासपूर्ण शारदीरास तथा प्रकृति की विविध मनोरम प्रफुल्लताओं के बीच होली का रंग भरा, बासन्ती रास, इन तीनों रासों का सुखद चित्रण सूर की भांति परमानन्द सागर में भी है।

अष्टछाप काव्य के सभी कवियों ने गोपी कृष्ण के संयोग सुख की विविध लीलाओं का चित्रण किया है परन्तु विरह का आत्म विषयात्मक प्रभावपूर्ण चित्रण तीन ही कवियों ने किया है, सूरदास, परमानन्ददास तथा कुम्भनदास। करुण-वियोग का भक्ति के क्षेत्र में कोई स्थान नहीं है। पूर्वराग और मान वियोग की दशाएँ वस्तुत., संयोग अवस्था की ही अंग स्वरूपा हैं। परमानन्ददास काव्य की इन दो भाव अवस्थाओं का उल्लेख पीछे हो चुका है। प्रवास वियोग की अनुभूति बहुधा भक्त लोगों ने बड़े गहन रूप में की है, और उसमें विरह की चरम वेदना की आत्मविस्मृति अवस्था में परमानन्द की अनुभूति मानी है।

परमानन्ददास ने परमानन्द सागर में कृष्ण चरित्र के कथानक भागों को बहुधा छोड़ दिया है, प्रसंगों को पकड़ कर भाव-चित्रों के सहारे कथा को इंगित किया है। गोपी परस्पर वार्तालाप रूप में

गोपी विरह तथा गोपी उद्धव संवाद रूप में 'भँवरगीत' के प्रसंग मुक्तक ढंग से परमानन्द सागर में विद्यमान हैं। इन पदों में गोपी और ब्रजजनों की विकल वेदना का प्रभावशाली वर्णन हुआ है। इन वर्णनों में काव्यशास्त्र में गिनाई हुई अनेक दशाओं के भाव चित्र हैं। परन्तु वियोग की जिन अवस्थाओं का चित्रण परमानन्ददास ने किया है वे कृत्रिम या शास्त्रीय ढंग के चित्रण नहीं हैं उनमें कवि की स्वानुभूति है। वैसे परमानन्ददास जी काव्य शास्त्रोक्त विरह दशाओं से भली प्रकार परिचित थे। एक पद में उन्होंने कहा है :—

'परमानन्द स्वामी के बिछुरे दशमी अवस्था आई।' दशमी अवस्था 'मरण' की होती है।

मथुरा गमन समय एक गोपी विवशता में हाथ मोड़ कर बिसूरती है और अपनीं आँखों को कोसती है कि ये दुष्ट लोचन, कृष्ण के जाते समय, जल मग्न हो गये, भली प्रकार से प्रिय को देख भी नहीं पाये :-

चलत न देखन पाये लाल।
नीके करि न विलोक्यो हरिमुख इतनों रह्यो जिय साल॥
लोचन मूंदि रहे जलपूरित दुष्ट भये तिहि काल।
दूरि भएं रथ ऊपर देखे मोहन मदन गोपाल॥
मीडति हाथ बिसूरति सुंदरि आतुर बिरह बिहाल।
परमानंद स्वामी फिरि चितयो अंबुज नैन बिसाल॥

अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, उद्वेग, प्रलाप आदि अनेक मानसिक विरह दशाओं के संवेदनशील वर्णन परमानन्द सागर में हैं। इनके अतिरिक्त मलिनता, कृशता, अरुचि आदि शारीरिक अवस्थाओं के

भी सजीव चित्र हैं। उसी प्रकार गोपी उद्धव संवाद के प्रसंग में भी गोपियों की विरह दशा के मार्मिक भावों की व्यंजना हुई है। नीचे के पद में कवि सदेश वाहक उद्धव के ब्रज आने पर गोपियों की विरह दशा का वर्णन करता है :—

पतियां बाँचे हू नहिं आवै।
देखत अंक नयन जल पूरे गद्गद् प्रेम जनावै॥
नन्द किशोर सुहथ अच्छर लिखि ऊधौ हाथ पठाए।
समाचार मधुवन गोकुल के मुखहीं बांचि सुनाए॥
ऐसी दसा देखि गोपिन की, भक्ति मरम तब जान्यों।
मन क्रम बचन प्रेम पद अंबुज परमानन्द मन मान्यो॥

परमानन्ददास की भाषा शैली भावानुकूल प्रभावशालिनी है। सरसता, चित्रमयता, सजीवता और प्रसाद गुणपूर्ण अलङ्कारिता है। हमने अपने ग्रन्थ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय' के अन्तर्गत परमानन्ददास की भक्ति और काव्य कुशलता पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

सूरदास का सूरसागर तो बहुत समय से उपलब्ध है यद्यपि लाख सवालाख पदों का सूरसागर तो अभी तक कल्पना जगत की वस्तु ही बना हुआ है, और परमानन्दसागर के भी अभी तक हिन्दी जगत को छपे रूप में दर्शन नहीं हुए हैं। काँकरौली विद्याविभाग ने इस अमूल्य ग्रन्थ के प्रकाशन का प्रबन्ध कर वास्तव में बहुत उपयोगी कार्य किया है। हमारी उक्त विभाग और सागर के सम्पादक के प्रति प्रशंसाधारणा है और उनको हमारी बधाई है।

श्रीहरि :

गं० स्व० बाई रुक्मणी ते स्वर्गस्थ वकील चिम्मनलाल कपूरचंद

नी विधवा ना

जीवन नुं संक्षिप्त वृत्तांत

★

स्व. रुक्मणी बेन नो जन्म उमरेठ मां दशा खडायता ज्ञातिमां साधारण कुटुम्ब मां सने १८७० नी आसपास मां थयेलो । तेमनां मातुश्री गंगाबेन चुस्त मरजाद धर्म पालतां हतां अने तेमना संस्कार नो वारसो गं० स्व० रुक्मणी बेन ने मल्यो हतो । एटले तेओ पण पुष्टिमार्गीय वैष्णव सम्प्रदाय मां सारो रस धरावतां हतां ।

तेमनी १० वर्ष नी उमरे तेमनां लग्न अमदावाद मां स्व० चिम्मनलाल कपूरचन्द वकील नी साथे थयेलां । श्री चिम्मनलाल भाई ने तेमनां प्रथम पत्नी थी कंई सन्तान न होवाथी तेमणे स्व० रुक्मणी बेन साथे लग्न करेलां । तेमने एक पुत्र तथा एक पुत्री थयां । परन्तु कमनसीबे पुत्र तुरंतज गुजरी गयेल तेमज पुत्री दस मासनी उमर नी थई गुजरी जतां स्व० चिम्मन भाई नुं नाम कायम रहे ते माटे तेमना नाना भाई रणछोडलाल ना दीकरा मगनभाई ने सन् १९५१ ना महासुदी ५ ना रोज दत्तक विधान करी दत्तक लीधेला ।

स्व० चिम्मनलाल वकील सन् १९४८ ना जेठ सुद ४ ना रोज वैकुंठ वास थया । त्यारे स्वर्गस्थ ना स्मरणार्थे सदावृत खाते रु० २००००) बीस हजार रु० नी रकम आपेली अने तेनी व्यवस्था श्री डाकोर भटजी ना मन्दिर मारफत थाय छे । ते रकम ना व्याज-मांथी श्री रणछोडरायजी ने प्रसाद धरावी साधु सन्तों ने जमाडवा मां आवे छे ।

ते उपरान्त आ रुक्मणी बेने सं० १९५७ मां अमदावाद मां

जमण आपेलु अने तेनी व्यवस्था मर्हुम सेठ श्री बालाभाई, दामोदर दास तथा मर्हुम सेठ मंगलदास गिरिधरदासे करी प्रसंग सारी रीते पार उतार्यो। तेमज दसा खडायता नी वाडी मां अने चिम्मनलाल कपूरचन्द खडायता छात्रालय,जे हाल अमदावाद गुलबाई ना टेकरा उपर चाले छे। तेमाँ पण मोटी रकम आपी छे। आ छात्रालय माटे जरूरी रकम भेगी करवा तेमना पुत्र तथा स्व० हरीलाल नाथालाल परीख तथा डा० भगते तेमज शोभाभाई, मंगलदास पचे सारो एवो साथ आप्यो हतो। अने हाल छात्रालय नुं काम सारी रीते व्यवस्था पूर्वक चाले छे।

स्व० रुक्मणी बेने पोताना जीवन दरम्यान पोतानी मिल्कत नो मोटो भाग धार्मिक तेमज सामाजिक उपयोग माटे वापरी पोतानुं जीवन धन्य बनाव्युं छे।

तेमणे एक ट्रस्ट "रुक्मणी बेन वकील चिम्मनलाल कपूरचन्द नी विधवा नुं वैष्णव मंडाण ट्रस्ट" रजिष्टर्ड कराव्युं छे। तेनो वहीवट मर्हुम सेठ श्री बालाभाई दामोदरदासे पोतानी कुशाग्र बुद्धि थी ट्रष्ट नी मूल मिल्कत रु० ६६०० थी वधारी ने रु०१२०००० सुधीनी बनावी छे। जेमांथी गुजरात यूनिवरसिटी ने रु० २५०००) ट्रष्ट ना हेतुओ मुजबं वापरवां माटे दान ना आप्या छे। तेमज वैष्णव धर्मनां पुस्तको छपावा माटे मोटी रकम रु० १००००) दशहजार आप्या छे। जेनुं संचालन हाल सेठ श्री साकरलाल, बालाभाई करी रह्या छे।

तेओ सने १९४२ मां गोलोकवासी थयां छे परन्तु तेमणे करेली सखावतो हजु चालु रही छे।

प्रभु तेमना आतमा ने शान्ति आपो ॥ इति शुभ ॥

सं० २०१५
आषाढी १५
अमदावाद

परमानंददासजी और उनका 'परमानंद-सागर'

[प्रो० कंठमणि शास्त्री, विशारद, संचालक विद्या-विभाग, कांकरोली]

जन्म-काल

परमानंददासजी का जन्मसंवत् यद्यपि नहीं मिलता, फिर भी संप्रदाय में प्रचलित वृत्तांतों के आधार पर उसका निर्णय किया जा सकता है।

श्रीवल्लभाचार्यजी जब अडेल (प्रयाग के समीप) में स्थायी निवास कर रहे थे, तब परमानंददास जी शरण आए, इसमें किसी को विसंवाद नहीं। वल्लभाचार्यजी ने सं० १५६६-६७ में अडेल में स्थायी निवास कर लिया था (कांकरोली का इतिहास, पत्र ६५), अतः इसके बाद ही परमानंददास जी का शरणागति का समय आता है। इधर यदुनाथ-दिग्विजय (पत्र ५२) में लिखा है कि श्रीवल्लभाचार्य जी ने श्रीविट्ठलनाथजी गुसाईं के जन्म (सं० १५७२) के बाद जब हरिद्वार की यात्रा की, तब वहाँ से अडेल में आने के बाद कविराज भाट और कान्यकुब्ज परमानंददास को उन्होंने शरण लिया।

अब यह देखना है कि इस हरिद्वार-यात्रा का समय क्या है। कांकरौली के इतिहास (पत्र ७४) में हरिद्वार की यात्रा का समय बैठक-चरित्र के आधार पर सं० १५७६ दिया गया है, अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सं० १५७६ के बाद परमानंददास जी शरण आए, इससे उनकी शरणा-गति का समय सं० १५७७ निकल आता है। इस समय परमानंददास जी की अवस्था २० से ३७ वर्ष के भीतर होनी चाहिए।

परमानंददास जी की वार्ता पर हरिरायजी-कृत भाव-प्रकाश देखने से यह विदित होता है कि उनके पिता ने उनका विवाह करना चाहा था, पर परमानंददास जी ने निषेध कर दिया। (अष्टछाप कांकरोली-विद्या-विभाग, पत्र ६०)

इस विवाह के समय परमानंददास जी की वय १६ वर्ष के लगभग माननी चाहिए। भाव-प्रकाश में लिखा है कि परमानंददास जी की इस प्रकार

वैराग्य-युक्त मनोवृत्ति के अनन्तर उसका पिता द्रव्य कमाने के लिये दक्षिण-देश की ओर चला गया, और परमानंददास जी ने कीर्तन का समाज एकत्र कर भजन-पूजन में अपना समय लगाना प्रारम्भ कर दिया, जिससे वह खूब प्रसिद्ध हो गए। परमानंददास जी स्वामी कहलाते थे, अतः उनके कई शिष्य भी होने लगे थे और वह सूरदास जी के समान स्वल्प समय में ही प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। इस प्रकार की ख्याति के लिये ११-१२ वर्ष का समय माना जाय, तो शरणागति के समय उनकी वय २७ वर्ष की आती है।

संप्रदाय में ऐसा प्रचलित है कि परमानंददास जी वल्लभाचार्य से १५ वर्ष छोटे थे, इसकी भी पुष्टि उक्त निर्धार से होती है। अत: शरणागति के समय परमानंददास जी की अवस्था २७ वर्ष की थी, इसमें किसी प्रकार का 'ननु-नच' नहीं रह जाता। युवावस्था के मनोयोग और उत्साह-उमंग का भी यही काल है।

अत: शरणागति के काल (सं० १५७७) में से २७ वर्ष निकाल देने पर परमानंददास जी का जन्म-संवत् १५५० निश्चित हो जाता है।

इस संवत् में मार्गशीर्ष शुक्ल ७ को परमानंददास जी का जन्म हुआ, ऐसी किंवदंती भी सम्प्रदाय में प्रचलित है। इसी दिन श्री गुसाईं जी के चतुर्थ पुत्र श्रीगोकुलनाथ जी का जन्म दिन सर्वत्र मना जाता है। इधर सम्प्रदाय में आचार्यों के जन्म-दिन के अतिरिक्त सेवकों का जन्मोत्सव नहीं माना जाता, अत: एक तो इस कारण और दूसरे विशेष जन्म-दिनोत्सव में उसके अंतर्हित हो जाने के कारण उनके इस जन्म-दिन की प्रसिद्धि नहीं हो पाई, तो कोई आश्चर्य नहीं।

इन सब प्रमाणों के आधार पर अष्टछाप के अन्यतम 'सागर' परमानद-दास जी का जन्म सं० ५५५०, मार्गशीर्ष-शुक्ला ७ को हुआ। जन्म-स्थान कन्नौज का उल्लेख भाव-प्रकाश में स्पष्ट है. अतः उसके निर्णय की यहाँ आवश्यकता नहीं।

माता-पिता

इनके माता-पिता का नामोल्लेख नहीं मिलता। भाव-प्रकाश से विदित होता है कि इनके पिता कन्नौजिया ब्राह्मण थे, और कन्नौज में रहा करते थे।

जिस दिन परमानंददास जी का जन्म हुआ, उस दिन इनके पिता को किसी सेठ द्वारा दान में खूब द्रव्य मिला, जिससे उनको परम आनंद हुआ, और इसी कारण उन्होंने अपने पुत्र का नाम परमानंददास रक्खा। नामकरण के समय ज्योतिषी ब्राह्मण ने राशि के अनुसार जब यही नाम रखने का आग्रह किया, तो परमानंददास जी के पिता ने अपना अभिप्राय बतला दिया कि मैंने पहले से ही इसका यह नाम रख दिया है।

शिक्षा

इनके बड़े हो जाने पर पिता ने इनका यज्ञोपवीत-संस्कार किया, और इन्हें साहित्य तथा संगीत की अच्छी शिक्षा दिलाई।

भाव-प्रकाश से विदित होता है कि परमानंददास जी बड़े योग्य और श्रेष्ठ कवि थे। यह पद-रचना कर उन्हें संगीत-प्रकार से गाते और सदा अपने साथ संगीत-समाज तथा गुणी होने के कारण गुणी जनों को रक्खा करते थे। यह स्वामी कहलाते थे, और अपने शिष्य-सेवक भी करते थे, यह कार्य इनकी पितृपरंपरा से होता चला आया था।

इनके ग्रंथ परमानंद-सागर के अध्ययन से विदित होता है कि यह ऊँचे विद्वान्, कवि, संगीतज्ञ, भावुक और भक्त थे। सूरदास जी के समान एक यही 'सागर' उपाधिधारी अष्टछाप के कवि थे, जिनका वल्लभाचार्य जी और उनके पुत्र विट्ठलनाथ जी बड़ा आदर करते थे। अष्टछाप-वार्ता (कांकरोली वि०-विभाग, पत्र ७८) में लिखा है, एक बार जब परमानंददास जी ने 'हरि, तेरी लीला की सुधि आवै।' यह पद गाया, तो उसे सुनकर श्रीवल्लभाचार्य आत्मानंद में ऐसे निमग्न हो गए कि उन्हें तीन दिन तक समाधि के कारण देहानुसंधान भी नहीं रहा। भला, जो ऐसे प्रसिद्ध आचार्य को इस प्रकार आनंद-विभोर कर सकता है, उसकी विद्वत्ता, कला-चातुरी और भाव-प्रवणता के साथ उसकी भक्ति में क्या कसर हो सकती है? कहने का तात्पर्य यह है कि परमानंददास जी काव्य, संगीत तथा भक्ति-भाव में अपनी उपमा आप ही थे।

स्थिति

भाव-प्रकाश से विदित होता है कि परमानंददास जी के पिता की धनिक होने के कारण अच्छी स्थिति थी। पर जब कन्नौज में एक समय

अकाल पड़ा, तो वहाँ के हाकिम ने उनका सब द्रव्य लूट लिया, इस कारण इनके पिता इनका विवाह भी नहीं कर पाये, और उन्होंने इनसे धनोपार्जन करने को कहा। परमानंददास जी गुणी गायक थे, अत; उनके पास द्रव्य तो आता ही था, जिसे एकत्र करने के लिये पिता ने आग्रह किया। पर वह तो त्यागी और असंग्रही थे, अतः पिता की बात पर उन्होंने कुछ भी ध्यान नही दिया। उन्होंने पिता से यह भी कहा – "आप बृथा द्रव्य का मोह करते हैं, जो आता है, उसी से निर्वाह किया कीजिए। अधिक लोभ में क्या रक्खा है?" इस पर इनके पिता नाराज होकर धनोपार्जन करने के लिये दक्षिण-देश की ओर चले गए, और परमानंददास जी अपने भजन-कीर्तन में मस्त रहने लगे। इससे वह कुछ ही समय में अतिशय प्रसिद्ध हो गए।

कहने का तात्पर्य यह है कि वह त्यागी और सत्संग चाहने वाले व्यक्ति थे, अतः उन्होंने विवाह नहीं किया और देशाटन कर कीर्तन का प्रसार करने लगे। उससे जो प्राप्त होता, उसी से अपना निर्वाह और साधु-सन्तों की सेवा किया करते।

शरणागति

परमानंददास जी की शरणागति का दिन सं० १५७७ ज्येष्ठ शुक्ला १२ है। इस शरणागति के पहले—जब श्रीवल्लभाचार्य का स्थायी निवास प्रयाग के पास अडेल (अलर्कपुर) में था, जो यमुना के तट पर विद्यमान है—परमानंददास जी प्रयाग में रहकर कीर्तन का प्रचार करते थे। वह सं० १५७६ में, मकर के मेला के समय, वहाँ आए और कुछ समय के लिए वहीं रह गए।

(अष्टछाप कां०-वि०-विभाग, पत्र ६१)

प्रयाग में परमानंददास जो के कीर्तन की खूब धूम थी और इनकी प्रसिद्धि चारों ओर हो रही थी। इनके प्रति रात्रि में होने वाले कीर्तन-समाज की बात अडेल में जगद्गुरु वल्लभाचार्य के परिकर में भी पहुँच चुकी थी। परमानंददास जी की ख्याति की बात जब लोगों ने आचार्यचरण से कही, तब उन्होंने कहा—"वह दैवी जीव है, अतः उसकी ख्याति होनी ही चाहिए।" इस प्रसंग को सुनकर आचार्यचरण के सेवक कपूर क्षत्रिय, जो पोरबन्दर के निवासी और आचार्य जी की जल की सेवा करने वाले, संगीत के अतिशय प्रेमी थे. ऐसा अवसर ढूँढ़ने लगे, जब उन्हें सेवा से अवकाश मिले, और रात्रि को आकर प्रयाग में कीर्तन के समाज में सम्मिलित हो सकें।

एक दिन जब परमानंददास जी प्रयाग में ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी की रात्रि में जागरण कर कीर्तन कर रहे थे, तब रात्रि में ही अडेल से कपूर क्षत्रिय ने आचार्यचरण की सेवा कर, उनके शयन करने के बाद, प्रयाग जाने की तैयारी की। ज्येष्ठ-मास के कारण यमुना का प्रवाह भी कम था। कपूर क्षत्रिय निर्भय और बलवान् थे, अतः रात्रि में ही तैरकर, प्रयाग पहुँच कर परमानंददास जी के समाज में सम्मिलित हो गए। वहाँ आचार्यश्री के अन्य सेवकों ने इन्हें पहचान कर आगे बिठलाया। अन्य कीर्तनकारों के कीर्तन हो जाने के बाद परमानंददास जी ने विरह के पद गाए। यह कीर्तन सुनकर कपूर क्षत्रिय को बड़ा आनन्द हुआ।

कीर्तन समाप्त होने पर बिदा होते समय कपूर क्षत्रिय ने परमानंददास जी से भगवत्स्मरण किया, और उसी प्रकार यमुना पार कर श्रीआचार्य जी के सेवार्थ अडेल जा पहुँचे।

इधर परमानंददास जी के जागरण के बाद सो जाने पर उन्हें रात्रि के पिछले पहर में स्वप्न दिखाई दिया, जिसमें उन्होंने रात्रि के समाज में कपूर क्षत्रिय और उनकी गोद में नवनीतप्रिय ठाकुरजी को बैठे गायन सुनते देखा।

इस स्वप्न का उन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह नवनीतप्रियजी और कपूर क्षत्रिय के दर्शन और मिलाप के लिये उतावले हो गए। प्रातःकाल होते ही वह अडेल आए और आचार्यजी के दर्शन कर अत्यधिक प्रभावित हुए। आचार्यचरण का साक्षात्कार होते ही उन्होंने परमानंददास जी को भगवल्लीला के पद गाकर सुनाने की आज्ञा की, जिस पर उन्होने विरह के पद गाए।

भाव-प्रकाश के अनुसार भगवल्लीला के वियोग का स्मरण इन्हें रहा करता था, अतः इनके पदों में विरह-भावना के पदों की अधिकता है। नवनीतप्रियजी के स्वरूप में इनकी विशेष आसक्ति होने के कारण आचार्यचरणों ने इनका निरोध बाल-लीला में किया और बाल-लीला के पद गाने की आज्ञा दी। इसी से इस विषय के पदों में इनका विशेष चमत्कार दिखाई देता है, यहाँ तक कि रहस्य-लीला के गूढ पदों में भी बाल-लीला की झलक आ जाती है, जिसका उल्लेख हरिरायजी भी अपने भाव-प्रकाश (पत्र ८६, अष्टछाप) में करते हैं।

विरह के पद सुनने के बाद आचार्यश्री ने इनसे बाल-लीला के पद गाने का आदेश किया, पर परमानंददास जी ने उससे अपनी अनभिज्ञता प्रकट की। इस पर आचार्यचरण ने इनसे स्नान कर आने को कहा। यह भी एत-त्कार्यार्थ जाकर कपूर क्षत्रिय से मिले। प्रस्तुत-विषयक वार्तालाप होने पर कपूर क्षत्रिय के कथनानुसार यह स्नान कर गुरूपसत्ति के लिए उनके साथ श्रीवल्लभा-चार्य के समीप पहुँचे। उन्होंने श्रीनवनीतप्रिय जी के सम्मुख परमानंददास जी को नाम सुनाकर ब्रह्म-सम्बन्ध की दीक्षा दी और भगवान् की बाल-लीला की स्फूर्ति के लिये श्रीमद्भागवत, दशम स्कन्ध की अनुक्रमणिका सुनाई।

इसके बाद परमानंददास जी ने गुरु-दक्षिणा के भेंट-स्वरूप "माई री, कमलनैन स्यामसुंदर झूलत है पलना।" इस पद के गाने के बाद और भी बाल-लीला के पद गाए।

इस प्रसंग के बाद परमानंददास जी आचार्यश्री के समीप अडेल में ही रहने लगे, और उनके आज्ञानुसार प्रतिदिन नवनीतप्रिय जी की कीर्तन की सेवा करने लगे।

अडेल में कुछ वर्ष आचार्यचरण के समीप रहकर परमानंददास जी ने सांप्रदायिक सिद्धांत का ज्ञान प्राप्त किया। अष्टछाप की वार्ता (पत्र ७६) में लिखा है कि वह नित्य आचार्यजी की सुबोधिनी की कथा सुना करते थे, और जो प्रसंग कथा में आता उसी के अनुसार पद बनाकर उनका भाव प्रकट करते थे। ये पद बनाकर वह श्रीवल्लभाचार्य जी को सुनाते थे।

ब्रज-यात्रा

जब श्रीवल्लभाचार्यचरण विट्ठलनाथजी को उपनयन-संस्कार के बाद श्रीनाथजी की सेवा चरण-स्पर्शादि के लिये ब्रज में ले जाने का उपक्रम करने लगे, तो परमानंददास जी ने भी ब्रज चलने की अपनी इच्छा प्रकट करने वाला 'यह माँगौं गोपीजनवल्लभ।' यह पद गाया।

यहाँ यह स्मरण रखने योग्य है कि सूरदास जी की तरह परमानंददास जी भी आचार्यचरण को भगवान् श्रीकृष्ण का स्वरूप ही मानते थे और इसी कारण उन्होंने इस पद में 'गोपीजनवल्लभ' पद से उसका निर्देश किया है।

सांप्रदायिक इतिहास से विदित होता है कि वल्लभाचार्य महाप्रभु की यह व्रज-यात्रा सं० १५८२ में हुई थी, क्योंकि श्रीविट्ठलनाथजी का यज्ञोपवीत आठवें वर्ष (१५८०-८१) में हुआ था। अपने मंतव्य के अनुसार महाप्रभु वल्लभाचार्य ने ब्राह्मणत्व-प्राप्ति के अनन्तर ही सेवा का अधिकार अपनी वंश-परंपरा में चालू किया, जो आज भी अक्षुण्ण रूप से चला आता है। इस संस्कार के बाद ही, अर्थात् सं० १५८२ के लगभग, परमानंददास जी आचार्य-श्री के साथ व्रज आए।

मार्ग में परमानंददासजी ने कन्नौज-नगर आने पर अपने घर पर श्री-महाप्रभु को पधराया, और उनका हार्दिक अभिप्राय और व्रज-दर्शन की उत्सुकता लक्ष्य कर 'हरि, तेरी लीला की सुधि आवै।' यह पद गाया, जिसे सुनकर आचार्यश्री को देहानुसन्धान नहीं रहा और तीन दिन तक वह मूर्च्छित रहे।

परमानंददास जी ने कन्नौज में अपने शिष्यों को आचार्यचरण का शिष्य बनवाया और उन्हें सम्प्रदाय में दीक्षित करवाया। इसी समय से परमा-नंददास जी अपना स्वामीपना छोड़कर सदा के लिये अनन्य दास बन गए।

ऐसा विदित होता है कि इसके बाद वह 'परमानंद स्वामी' इस नाम के स्थान पर 'परमानंददास' इस नाम से प्रख्यात हुए।

आचार्यश्री के साथ गोकुल और गोवर्द्धन जाकर परमानंददास जी ने नवनीतप्रियजी और श्रीनाथजी के दर्शन करने पर अत्यधिक आसक्त हो गए और सदा व्रज में रहने का ही आग्रह करने लगे। इस पवित्र धाम के प्रति उनका सहज अनुराग हो गया, जिसका उल्लेख वार्ता में स्थान-स्थान पर मिलता है। श्रीनाथजीद्वार (गिरिराज) जाने पर वल्लभाचार्यजी ने उन्हें वहाँ कीर्तन-सेवा का अधिकार दिया। इस प्रकार परमानंददास जी व्रज में श्रीनाथ जी की सेवा में रहकर अपने जीवन को भजन-कीर्तन द्वारा कृतार्थ करने लगे। ऐसा विदित होता है कि व्रज में जाने के बाद परमानंददास जी फिर अन्यत्र कहीं नहीं गए, और अपना समस्त जीवन वहीं व्यतीत किया।

भक्ति-भाव

भक्ति-भावना के विषय में इनके लिये क्या कहा जा सकता है। यह पहुँचे हुए भक्त और कवि थे। जहाँ इनकी दास्य-भाव की भक्ति की विशेषता

अवगत होती है, वहाँ सख्यभक्ति में भी यह कम न थे। अष्टछाप-वार्ता. प्रसंग ४ में, (पत्र ८७) जिस पर हरिरायजी का भाव-प्रकाश भी है, इस प्रकार का एक प्रसंग मिलता है—

श्रीवल्लभाचार्य के समय (लगभग १५८५) एक राजा अपनी रानी के साथ श्रीनाथजी के दर्शनार्थ गिरिराज में आया और रानी के दर्शन के लिये उसने परदे का प्रबन्ध करवा लिया। पर ब्रज के ठाकुर के आगे इस प्रकार का परदा नहीं रह सकता था, अतः जब रानी दर्शन कर रही थी, श्रीनाथजी ने प्रधान द्वार खोल दिया, और भीड़ भीतर आ गई, रानी के परदे का समस्त प्रबन्ध बिगड़ गया, रानी भीड़ में पड़ गई। परमानंददास जी वहीं खड़े कीर्तन कर रहे थे। श्रीनाथजी का इस प्रकार किवाड़ खोल देना उन्हें सह्य न हुआ। उस समय उन्होंने एक नया कीर्तन गाया—

कौन यह खेलिवे की बान,
मदनगोपाल लाल काहू की राखत नाहिंन कान।'

महाप्रभुजी उस समय वहीं पास में विद्यमान थे, उन्होंने परमानंददास जी को रोका, और कहा, इस प्रकार का पद मत बनाओ। इसे इस प्रकार कहो—

'भली यह खेलिबे की बान।'

इस प्रसंग का भाव हरिरायजी ने अपने भाव-प्रकाश में इस प्रकार लिखा है कि परमानंददासजी 'दास' हैं, अतः उन्हें प्रभु के प्रति ऐसा कहना उचित न था, इस कारण महाप्रभु जी ने उन्हें टोका।

इससे यह भी मालूम पड़ता है कि श्रीवल्लभाचार्य का ब्रज-भाषा के प्रति अनुराग ही नहीं था वह पद-रचना और उसका संशोधन भी करते थे।

परमानंददास जी अपनी भावना में बहुत ऊंचे पहुँच गए थे। वह भक्तों को भी भगवान् की श्रेणी में गिनते थे और उनकी अनुकम्पा भगवान् की अनुकम्पा मानते थे। वार्ता प्रसंग ५ से विदित होता है कि एक बार सूरदासजी, कुंभनदासजी, रामदासजी आदि वैष्णव परमानंददास जी के घर गए। परमानंददास जी ने उनका सत्कार भगवद्बुद्धि से किया, और 'आए मेरे नंदनंदन के प्यारे'-नामक पद गाकर सुनाया। और, 'हरिजन-संग छिनक जो होई'—

नामक पद गाकर उन्होंने सत्संग की महिमा प्रकट की। परमानंददास जी के इस प्रकार सौजन्य से प्रसन्न होकर सब अपने-अपने घर गए। कहने का तात्पर्य यह है कि परमानंददास जी ऐसे उच्च कोटि के भक्त थे कि सूरदास जी जैसे महानुभाव दृष्टि से विवश होने पर भी उनके संग के लिए कभी कभी उनके घर जाया करते थे।

श्रीवल्लभाचार्य के तिरोधान के अनन्तर श्रीगुसाईंजी के प्रति भी परमानंददास जी का वैसा ही पूज्य भाव रहा। वह उनके आदेश के अनुसार अपनी कीर्तन सेवा में संलग्न रहे। उन्हें अपनी भक्ति और श्रीगुसाईंजी के अनुग्रह-बल से कई भगवल्लीलाओं के दर्शन हुए, जिसका पता उनके पदों से लगता है। उनके रचित पदों के अध्ययन से स्पष्ट विदित होता है कि वह मानों लीलाओं का प्रत्यक्ष दर्शन करते हुए उनका वर्णन कर रहे हैं। इस प्रकार परमानंददास जी ने कई वर्षों तक कीर्तन की सेवा की।

ग्रंथ-रचना

परमानंददास जी इस पुष्टि-संप्रदाय में दीक्षित होने के पहले कवि-रूप में ही नहीं, कविवर-रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे। वह अपनी अवस्था सँभालने के समय से ही कीर्तन का समाज करने और उसके द्वारा अपना चरितार्थ चलाने लगे थे। इस प्रकार वह अच्छी रीति से ख्याति-लाभ कर चुके थे।

अष्टछाप-वार्ता (पत्र) में लिखा है कि परमानंददास जी नित्य नए पद बनाकर समय-समय पर श्रीनवनीतप्रियजी को सुनाया करते थे और जब उनका अनवसर होता, तो श्रीआचार्यजी के आगे व्रज-लीला के कीर्तन किया करते थे। श्रीआचार्य महाप्रभु सुबोधिनी की कथा कहा करते थे, जिसे परमानंददासजी भी सुना करते थे। इस प्रसंग में जो कथा होती, उसी के कीर्तन बनाकर परमानंददास जी आचार्यचरण को सुनाया करते थे। इस प्रकार उन्होंने सहस्रावधि कीर्तन बनाए। नित्य नए कीर्तन रचने के कारण यह कीर्तन के सागर माने जाते थे, और इसी कारण श्रीगुसाईं जी इन्हें 'सागर' शब्द से सम्बोधित किया करते थे। सूरदासजी और यह, दोनों ही समकक्ष थे, और दोनों ही 'सागर' नाम से ख्यात हुए। इनके अन्त समय का समाचार सुनकर श्रीगुसाँईं जी ने कहा था कि ये दोनों ही भगवल्लीला के अगाध 'सागर' हैं।

परमानंददासजी के पदों में 'परमानंद स्वामी', 'परमानंददास' 'परमानंद', 'परमानंद प्रभु' ये नाम मिलते हैं। मेरा अनुमान है, 'परमानंद स्वामी' की छाप वाले कुछ पद उनकी उस समय की भी रचना के होंगे, जब वह इस सम्प्रदाय के सेवक नहीं हुए थे और स्वामी कहलाते थे। सम्प्रदाय के सेवक होने के बाद 'स्वामी' कहलाना और अपने सेवक बनाना उन्होंने छोड़ दिया था, जिसका उल्लेख उनकी वार्ता में आता है। अतः यह अधिक संभव है कि वह सेवक हो जाने के बाद अपने को न तो स्वामी कहलवाना उचित समझते थे और न उन्होंने अपने सेवक होने के बाद के रचे हुए पदों में 'स्वामी' विशेषण ही रक्खा होगा। इसका ज्ञान उनके ऐसे पदों के विशेष अध्ययन से हो सकता है। इस विषय में ऐसा भी निश्चय होता है कि 'परमानंद-स्वामी' उन्होंने अपने लिये न लगाकर भगवान् के विशेषण रूप में रक्खा हो। फिर भी यह एक अन्वेषणीय विषय है। इन पृथक्-पृथक् छाप वाले पदों की संकलना करना भी एक आवश्यक कार्य है।

उक्त कथन से इनकी रचना 'परमानंदसागर' के नाम से संकलित हुई, जिसकी प्रतियों के विषय में हम आगे चलकर कहेंगे।

इनका रचित 'संस्कृत-रत्नमाला'-नामक एक संस्कृत-ग्रन्थ भी माना जाता है, जिसका उल्लेख विद्वद्वृत्त-नामक ग्रन्थ (द्वितीय खंड, पत्र ८२) में किया गया है और जो अयोध्या के संस्कृत-कार्यालय से प्रकाशित हुआ है। यह ग्रन्थ हमारे देखने में नहीं आया।

इसके अतिरिक्त परमानंददास जी कृत अन्य कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता।

यद्यपि इनकी कृति का एक ही ग्रन्थ 'परमानंदसागर' मिलता है, फिर भी वह उनकी काव्य-प्रतिभा, भक्ति-भावना और संगीत-पारंगतता का ऐसा उदाहरण है, जिसकी तुलना अन्य से नहीं की जा सकती। स्थानाभाव से हम उसके उदाहरण देने में यहाँ विवश हैं, वह एक स्वतन्त्र लेख का ही विषय होगा। यहाँ इतना ही कह देना पर्याप्त है कि यह जितना ही अध्ययन का विषय होगा, उतना ही आनन्ददायक होगा, एवं उतनी ही उसकी विशेषताएँ अवगत होंगी।

अंतिम समय

वार्ता-प्रसंग ७ (पत्र १००) में लिखा है कि परमानंददास जी के निधन का समाचार सुनकर श्रीगुसाईं जी ने कहा था कि अब दोनों 'सागर' अदृश्य हो गए।

इस कथन से यह तो सहज सिद्ध है कि सूरदास जी के अनन्तर इनका परलोक-गमन हुआ था। सूरदास जी का अन्तिम समय सं० १६४० के लगभग आता है, जिसकी समीक्षा उनके जीवन-चरित्र में की गई है। अतः इस संवत् के बाद परमानंददास जी का अन्तिम समय आता है।

परमानंददास जी ने 'प्रात समय उठि करिए श्रीलक्ष्मण-सुत-गान।' इस पद में जो उन्होंने अपने अंतिम समय में एक वैष्णव को उपदेश-रूप में सुनाया था, गुसाईंजी के सातवें पुत्र घनश्यामजी का भी स्मरण किया है।

घनश्यामजी का जन्म-संवत् १६२८ है। इस पद में परमानंददास जी ने 'श्रीघनश्याम, पूरन-काम, पोथी में ध्यान' इस प्रकार उनका उल्लेख किया है। इसके दोनों विशेषण साभिप्राय और उनकी तात्कालिक अवस्था के द्योतक हैं। 'पोथी में ध्यान' शब्द से जहाँ घनश्यामजी की अध्ययन-प्रियता और उसमें भी तल्लीनता का पता चलता है, वहाँ 'पूरन-काम' विशेषण कुछ और विशेष किशोरावस्था का परिचय कराता है। इस समय घनश्याम जी की वय कम से कम १२ या १३ वर्ष की माननी चाहिए।

श्रीगुसाईं जी का नित्य-लीला प्रवेश सं० १६४२ निश्चित है और उनके पहले परमानंददास जी के गत हो जाने का उल्लेख है। ऐसी अवस्था में संवत् १६२८ (घनश्यामजी के जन्म-काल) में १२-१३ वर्ष जोड़ने पर संवत् १६४०-४१ के बीच का समय निकल आता है। एक प्रकार से यही परमानंददास जी के अंतिम समय का संवत् है।

वार्ता-प्रसंग ७ (पत्र ९७) में लिखा है कि परमानंददासजी जन्माष्टमी के दूसरे दिन, नंदमहोत्सव के अनंतर, अपना अंतिम समय आया जानकर सुरभिकुंड के ऊपर जा रहे थे और वहाँ मध्याह्न में भगवद्-ध्यान करते हुए परमधाम को पधार गए।

इसके पहले इनका समाचार सुनकर करुणा-वरुणालय श्रीगुसाईं जी

इनके समीप पधारे थे। परमानंददास जी ने इनकी इस अकारण वत्सलता से द्रवित होकर इनके भगवत्स्वरूप में दर्शन किए और 'प्रीति तो श्रीनंदनंदन सों कीजे।' यह पद गाया। एवं एक वैष्णव के पूछने पर उपदेश-रूप में 'प्रात समै उठि करिए श्रीलक्ष्मन सुत गान।' यह पद उसे सुनाया और 'राधे बैठी तिलक सँवारति।' यह कीर्तन कर अपनी लौकिक देह का त्याग कर दिया।

इस प्रमाण सें परमानंददास जी का अन्तिम समय सं० १६४१, भाद्र-बदी ६ निश्चित हो जाता है।

अष्टछाप में अन्यतर भगवल्लीला के सागर परमानंददास जी ने इस प्रकार श्रीवल्लभाचार्यचरण एवं श्रीविट्ठलनाथ जी के उपदेश से लाभ उठाकर अपनी उस वाणी को सफल किया, जो प्रारम्भ में उनके उदर-पोषण का साधन थी। उन्होंने अपनी इस अमर ब्रजभारती की सेवा से हमारे हिन्दी साहित्य को जो गौरव प्रदान किया, वह उनके 'परमानंद-सागर' के अप्रसिद्ध होने से यद्यपि साहित्य-जगत् में अविदित था, और इसीलिये साहित्य के निर्णायक इतिहासकारों ने इनकी उच्च श्रेणी का विचार नहीं किया, फिर भी उसके प्रकाशित हो जाने पर यह अज्ञानांधकार स्वतः नष्ट हो रहा है, इसमें रंच-मात्र भी सन्देह नहीं।

अन्वेषण करने पर कांकरोली-विद्या-विभाग के सरस्वती भंडार में 'परमानंद-सागर' की प्राचीन, प्रामाणिक ५–६ शुद्ध प्रतियाँ मिली हैं, जो साहित्य-संसार के लिए चमत्कार-चिन्तामणि होंगी।

जहाँ तक ध्यान है, 'परमानंद सागर' की प्रामाणिक, प्राचीन प्रतियाँ अन्यत्र इतनी संख्या में नहीं मिलेंगी। इन पदों की अकाराद्यनुक्रमणिकाएँ विद्या-विभाग द्वारा तैयार कराई गई हैं और इस अलभ्य ग्रंथ-रत्न के प्रकाशन का आयोजन भी प्रस्तुत रूप में किया जा रहा है। अस्तु।

परमानंद-सागर

सरस्वती-भंडार, विद्या-विभाग, कांकरोली के हिंदी-साहित्य-विभाग में निम्न-लिखित नामों से परमानंददासजी के पदों का संग्रह विद्यमान हैं। इन पुस्तकों का परिचय इस प्रकार है—

प्रथम-प्रति (क)—बंध-सं० ४५, पु० १ —इसका नाम 'परमानंद-

दासजी के कीर्तन है। इसका साइज ८ × ६ इंच है। इसकी अंतिम पुष्पिका नहीं मिलती, अतः पुस्तक अपूर्ण है। इसमें विषय-क्रम से पद लिखे गए हैं। विषय-क्रम के अतिरिक्त परमानंददासजी के और भी पद इसमें हैं। इस पुस्तक के पदों की संकलना करने पर ८५० के लगभग पद इसमें लिखे हैं।

लेखन-शैली—पुस्तक के प्रारंभ में ७८ पृष्ठ तक के पदों की प्रतीक पृष्ठ-संख्या देकर लिखी गई है, जो पुस्तक की लेखन-शैली से औंधी है। ग्रंथ की लिपि सुवाच्य, सुन्दर, शुद्ध एवं प्राचीन है। राग तथा विषय के नाम पर गेरू लगाई गई है।

ग्रंथ में अधिकांशतया नवीन विषय का प्रारंभ अलग पत्र से ही हुआ है। जिस विषय के जितने पद मिले हैं, उतने ही लिखकर बाकी का स्थान खाली छोड़ दिया गया है और उसके स्थान पर बाद में परमानंददास जी के ही उसी विषय के पद लिखे गए हैं, जिनकी लिपि भिन्न है। इससे ऐसा मालूम पड़ता है कि यह किसी प्राचीन ग्रंथ की प्रतिलिपि है और उसके उतने अंश के नष्ट हो जाने पर स्थान छोड़ दिया गया है, जिसकी पूर्ति किसी अन्य ग्रन्थ से बाद में की गई है। इस प्रकार छूटे हुए स्थान में जो कीर्तन लिखे गए हैं, उनकी लिपि में गुजराती-अक्षरों का सम्मिलन है। इससे ऐसा अनुमान होता है कि किसी गुजराती लेखक ने बाद में ये पद लिखे हैं।

ग्रंथ का प्रारंभ पृष्ठ-संख्या १ से होता है और ११४ तक पद लिखे हैं। इस पुस्तक में विषय क्रम से पदों का संकलन हुआ है। विषय-क्रम पूरा होने तक पद संख्या बराबर चली गई है। दूसरा विषय प्रारंभ होने पर पुनः एक-दो से संख्या का प्रारंभ होता है, अर्थात् सभी विषयों के पदों का संकलन करने पर एकत्र पदों की संख्या निकलती है, जो पूर्व-निर्दिष्ट ८५० के लगभग होती है।

लेखन-समय—ग्रन्थ का लेखन-काल यद्यपि दिया नहीं गया है, पर उसका समय निकल आने की एक सुविधा अन्वेषण करने पर मुझे मिल गई है।

पुस्तक के प्रारम्भ में "श्रीगिरिधरलालजी विजयतु" लिखा है। यह गिरिधरलालजी गुसाईं जी के प्रथम पुत्र हैं। इनका समय सं० १५९७ से १६८० तक माना जाता है। श्रीगुसाईं जी की विद्यमानता में उनके पुत्र श्री-गिरिधरलालजी का प्राधान्य माना नहीं जा सकता। ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण

वह अपने पिता के बाद, सं० १६४२ में ही सम्प्रदाय के अधिपति हुए, अतः जब उनके साम्प्रदायिक शासन-काल का प्रारंभ सं० १६४२ से हुआ, तब से सं० १६८० अर्थात् ३८ वर्ष के भीतर की यह लिपि होनी चाहिए।

हमारे इस कथन की पुष्टि प्रस्तुत ग्रंथ में लिखे गए एक गुजराती लेख से होती है, जो उसी लेखक का अथवा उसके समसामयिक किसी अन्य का होना चाहिए। उसमें लिखा है—

"बादरायण पुष्कर ना, योखी (?) मां रहता, जेणे द्वारिका मध्ये श्रीआचार्यजी ने श्रीमुखे मास १३ तांई श्रीभागवत सांभल्यूं। तेहनो दीकरो लक्ष्मीदास, श्रीगुसाईंजी ना सेवक। लक्ष्मीदास नी माता बाई भंभी श्रीआचार्यजी नी सेवक, श्रीअक्काजी नी द्वारका मां प्रचारकी करता। ते लक्ष्मीदास नां बेटा हरिजीव तथा दामजी नग्र मां रहे छे"।

इस वाक्य पर ध्यान देने से विदित होता है कि जैसे श्रीवल्लभाचार्यजी की तीसरी पीढ़ी में उनके पौत्र श्रीगिरिधरलालजी उस समय विद्यमान थे, उसी प्रकार उनके सेवक बादरायण का पौत्र—तीसरी पीढ़ी—हरिजीव तथा दामजी लेखक के समय में जीवित विद्यमान थे, क्योंकि उसने 'नग्र मां रहे छे' इस प्रकार वर्तमानकालिक क्रिया का प्रयोग किया है।

यह ध्यान रखने की बात हैं कि सम्प्रदाय में जिस प्रकार अहमदाबाद को राजनगर नाम से कहा जाता है, उसी प्रकार जामनगर को नग्र कहा जाता है, जो नगर का अपभ्रंश है।

इस कारण अब इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं रहता कि ग्रंथ के प्रारम्भ में लिखे गए गिरधरलालजी गुसाईंजी के बड़े पुत्र ही हैं। इनके शासन समय (अर्थात् सं० १६४२ और १६८० के भीतर) में इस ग्रंथ का लेखन हुआ। अतः परमानंददास जी के बाद उनके निकट काल की यही प्रतिलिपि सिद्ध होती है। फिर भी यह उनके किसी सामयिक 'परमानंदसागर' की प्रतिलिपि होनी चाहिए। इससे प्राचीन पुस्तक मिलना भी अधिक सम्भव नहीं।

इस ग्रन्थ की लिपि बं. सं. ५७, ४ की 'परमानंद-सागर' की लिपि से बिल्कुल मिलती जुलती है। इसमें इतना साम्य है कि एक ही लेखक की होने में रंच-मात्र भी सन्देह नहीं होता, यद्यपि इसमें और उसमें पद-संख्या

में न्यूनाधिक्य है। इसका कारण यह है कि प्रस्तुत ग्रन्थ (बं.- सं. ४५, १) में पद लिखने के बाद खाली बचे हुए स्थान में, जैसा पहले कहा जा चुका है, कुछ समय बाद और भी पद लिखे गए हैं, जिनकी लिपि भी भिन्न है। परन्तु इस बंध-सं० ५७, ४ में खाली स्थान बराबर छूटा रह गया है। इसमें बाद में किसी ने पद लिखने की चेष्टा नहीं की। इसका परिचय हम आगे लिख रहे हैं। ये दोनों पुस्तकें प्रामाणिक और शुद्ध हैं।

द्वितीय-प्रति (ख)—बंध-सं० ५७, पु० ४—इसका नाम 'परमानंद-सागर' है। इसका साइज़ १० × ७ इंच है। यह ग्रन्थ पत्र.संख्या ९ से प्रारम्भ होकर पत्र १५३ तक लिखा गया है। इसके प्रारम्भ और अन्त के पत्रों में अन्य कीर्तनों का संग्रह था। यह पुस्तक जीर्ण-शीर्ण, अतिशय प्राचीन है और पानी में भीगी तथा कहीं-कहीं दीमक से खाई हुई है। फिर भी इसकी पत्र-संख्या बच गई है। प्रस्तुत ग्रंथ के ऊपर लिखे गए कीर्तन की दो पंक्तियाँ इसी कारण बिगड़ गई हैं और इसी कारण विषय तथा राग का नाम भी नहीं मिलता।

लेखन-शैली—इसका प्रारम्भ 'श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः राग सारंग' से होता है। प्रत्येक विषय नवीन पत्र से ही प्रारम्भ हुआ है और उस विषय के समाप्त हो जाने पर उतना पत्र खाली छोड़ दिया गया है। प्रारम्भ के पत्र ९ पर जन्म-समय के पदों से ग्रन्थ का प्रारम्भ हुआ है और पत्र १५३ पर राम-जयन्ती के पद तक पुस्तक मिलती है, अतः अन्य विषय के कीर्तन, जैसे नृसिंह-जयन्ती, वामन-जयन्ती आदि के पद और लिखे होने चाहिए।

सम्प्रदाय में कीर्तन-प्रणाली के लिखने का क्रम भाद्रपद-अष्टमी (जन्माष्टमी से प्रारम्भ होता है और अगले वर्ष की भाद्र-बदी सप्तमी तक समाप्त होता है, अतः कुछ और कीर्तन इसमें होने चाहिए।

पुस्तक अपूर्ण और खंडित है। इस अपूर्णता और खंडितता के साथ ही इसमें यह विशेषता है कि जहाँ विषय-क्रम की पूर्ति के बाद उतना पत्र खाली छोड़ा गया है, वहाँ बीच में कई पत्र बिलकुल खाली छोड़ दिए गए हैं, यद्यपि उनमें पत्रांक बराबर पड़े हैं। इससे यह अनुमान होता है कि यह भी किसी अन्य ग्रंथ की प्रतिलिपि है, जो अधिकांश नष्ट-भ्रष्ट हो गया हो और किसी अन्य ग्रन्थ से पूर्ति के लिये स्थान और पत्र खाली रख लिए गए हों, जिसकी पूर्ति बंध-सं० ४५, १ में तो कर ली गई, पर इसमें न की जा सकी होगी।

प्रस्तुत ग्रन्थ की लिपि सुवाच्य, सुन्दर, शुद्ध और प्रामाणिक है। स्थान स्थान पर विशेष राग और विषय के नाम पर गेरू लगाई गई हैं। ग्रन्थ लिख जाने के बाद उसी लिपि में उसका संशोधन हुआ है और कहीं-कहीं खाली स्थान में पंक्ति बढ़ाई गई है।

लेखन समय—इस लिपि का, जैसे पहले कहा जा चुका है, बं०-सं० ४५, १ की पुस्तक की लिपि से बिलकुल साम्य है, अतः इसका भी लेखन-काल वही सं० १६४२ से १६८० के बीच का विदित होता है। इस हिसाब से पुस्तक प्रामाणिक और अतिशय-प्राचीन है। इन दोनों लिपि-साम्यवाली पुस्तकों में 'रामकली' राग को 'रामग्री' लिखा मिलता है।

प्रस्तुत पुस्तक एक असुरक्षित स्थान में रखे हुए संग्रह की है, अतः जल से भीग जाने के कारण कुछ बिगड़ गई है। इसे अब सुरक्षित रूप में रक्खा गया है।

अपूर्ण होने के कारण ग्रन्थ की अन्तिम पुष्पिका नहीं मिलती। यद्यपि लेखन-समय का अनुमान किया जा चुका है, पर लेखक का नाम नहीं मिलता।

इस ग्रन्थ में अधिकांश विषयानुक्रम नष्ट हो जाने से नहीं मिलता, पर पृथक् विषयों के लिये स्थान छोड़ देने के कारण उसकी संकलना की जा सकती है। इसमें जितने पद लिखे गए हैं, उनकी सँकलना ७२५ के लगभग हो जाती है। पर यह नहीं कहा जा सकता कि इसमें कुल कितने पद रहे होंगे।

बं०-संख्या ४५, पु० १ तथा इस ग्रन्थ का लिपिसाम्य तो है, पर उसमें इस ग्रंथ का नाम 'परमानंददासजी के कीर्तन' लिखा है, जो बाद में लिखा गया प्रतीत होता है। पर इस प्रस्तुत पुस्तक में इसका नाम 'परमानंद-सागर' लिखा है, जिससे इस पर प्रकाश पड़ता है कि सं० १६४५ और ७० के मध्य-काल में लिखी गई पुस्तकों का नाम 'परमानंदसागर' प्रचलित हो गया था। जैसा परमानंददासजी के जीवन-चरित्र में कहा जा चुका है, परमानंददासजी की उपाधि 'सागर' थी, अतः उनके बाद यदि उनका ग्रंथ 'सूर-सागर' की भाँति ही 'परमानंद-सागर' कहलाने लगा, तो कोई आश्चर्य नहीं।

विद्या-विभाग, कांकरोली के सरस्वती-भंडार में इसी लिपि और आकार-प्रकार तथा इसी स्थिति की पुस्तक कुंभनदासजी के कीर्तन आदि की भी है, जो अलग कर ली गई है; पर उसके भी इसी अवस्था में उपलब्ध होने

के कारण कोई विशेष प्रकाश नहीं पड़ता। हाँ, लिपि-साम्यवाली पुस्तक के कारण इन सबका समय अवश्य निर्धारित हो जाता है।

यद्यपि लिपि-साम्यवाली ये दोनो पुस्तकें अपूर्ण है, फिर भी बड़ी ही उपयोगी है। यदि यह पूर्ण मिल जाती, तो 'सोना और सुगन्ध' वाली कहावत चरितार्थ हो जाती। संक्षेपतः शुद्ध और प्रामाणिक होने के कारण इनकी प्राचीनता अवश्यमेव उपादेय है।

तृतीय-प्रति (ग)—बंध ५७, पु० ३ इसका नाम 'परमानंददासजी के पद' है। इसका साइज़ १०×८ इंच है। पुस्तक गुटका-साइज़, सिली हुई, बड़े अक्षरों में है। इस ग्रन्थ में पत्र सं. १ से १५४ तक है, जिसमें पद लिखे है।

लेखन-शैली—इस ग्रंथ में प्रारम्भ से लेकर पद-सं० दी गई है, जो पत्र १५१ पर १, १०१ है और जिसके अन्त में इस प्रकार पुष्पिका लिखी है—

'इति श्रीपरमानंददासजी के पद सम्पूर्ण, पोथी वैष्णव हरिदान की है।'

इस समाप्ति के अनन्तर पत्र सं० १५२ से १५४ तक परमानंददासजी के और भी पद लिखे हैं, जिनकी संख्या २० होती है और इस प्रकार कुल मिलाने से १, १२१ पद परमानंददासजी के इस ग्रन्थ में लिखे मिलते हैं। इतना विशाल पदों का संग्रह अन्य प्रतिलिपियों में नहीं मिलता।

ग्रन्थ की लिपि सुवाच्य, सुन्दर और शुद्ध होने के साथ ही ग्रन्थ के आदि से अन्त तक एक सी है। इसमें न तो कहीं संशोधन किया गया है और न कहीं परिवर्द्धन। राग तथा विषय के नाम लाल स्याही में लिखे गए है। हाशिए पर लाल स्याही से रेखाएँ खींची गई हैं।

लेखन-समय—पुस्तक का प्रारम्भ इस प्रकार होता है—'अंक छठो ६ परमानंददासजी के पद की चोपड़ी। गोस्वामि श्रीब्रजनाथात्मज गोकुलनाथ स्येदं पुस्तकम्।' यह हस्ताक्षर गोकुलनाथजी के हैं, जो ब्रजनाथात्मज और श्रीगुसाईं विट्ठलनाथजी के तृतीय पुत्र बालकृष्णजी के वंशज एवं कांकरोली-निवासी थे। इन श्रीगोकुलनाथजी का समय सं० १८२१ से १८५६ तक है, अतः यह उन्हीं की पुस्तक है और सं० १८५६ के पहले लिखी गई है। यद्यपि इसमें लेखक का नाम और लेखन-काल नहीं लिखा गया, तथापि हमारे अनुमान से इसका समय १८५० के लगभग होना चाहिए।

अन्य ग्रन्थों की भाँति इसमें विषय की समाप्ति पर खाली पत्र नहीं छोड़े गए हैं, चलती कलम से ही पद लिखे गए हैं, और प्रारम्भ से लेकर अंत तक सकलित संख्या लिखी गई है। पद संख्या के साथ ही तुकों की संख्या भी प्रत्येक पद के साथ दी गई है। विषय-क्रम से पदों की संख्या इसमें नहीं मिलती। इसमें अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा विषय भी अधिक हैं, जैसा अधिक पदों के कारण होना ही चाहिए। कुल मिलाकर इसमें ७७ विषयों के पद हैं, जिनका नाम प्रारम्भ में लिखा है।

यद्यपि अन्य प्रतियों की अपेक्षा यह आर्वाचीन है, फिर भी शुद्ध और प्रामाणिक होने के साथ विशाल संग्रहात्मक है।

चतुर्थ प्रति (घ)— बं०-सं० ३६, ० ४—इसका नाम परमानंद-दास के कीर्तन' हैं। इसका साइज ८॥।×६ इंच है। इसमें परमानंददासजी के कीर्तनों के साथ ही अन्य अष्टछाप के कवियों के कीर्तन का भी संग्रह है। पत्र सं० १ से लेकर १७६ तक है।

लेखन-शैली—इसमें पदों की संख्या विषय-क्रम से चलती है, अर्थात् प्रसंग समाप्त हो जाने पर संख्या भी समाप्त हो जाती हैं। इस प्रकार एकत्र संकलन करने पर पदों की कुल संख्या ७४१ निकलती है, इसमें मंगलाचरण के ३, भगवल्लीला के ७२८ और फुटकर १० पद हैं।

लिपि सुन्दर, सुवाच्य और शुद्ध है। फिर भी अक्षर उतने अच्छे नहीं। इसकी अंतिम पुष्पिका नहीं लिखी है इससे ग्रन्थ का लेखन-काल और लेखक का नाम नहीं मिलता, अतः पुस्तक अपूर्ण है। इस ग्रंथ में अन्य कोई विशेष उल्लेखनीय बात नहीं, अतः पुस्तक साधारण है। फिर भी उपादेय है।

पंचम प्रति (ङ)— बं०-सं० १६, पु० ६—इसका नाम 'परमानंद-दासजी के कीर्तन' है। इसका साइज ४×६ इंच है। पुस्तक गुटका-साइज में है। इसके हाशिया के स्थान पर 'परमानंद०' लिखा गया है, जो 'परमानंद-दास के कीर्तन और परमानंद-सागर' दोनों का बोधन करता है।

लेखन-शैली—ग्रन्थ का प्रारम्भ पत्र १ से होता है और उसका मध्य भाग १५६ पर है। इस प्रकार इसमें कुल ३१४ पत्र हैं। प्रति पत्र में १४ पंक्तियाँ हैं।

लेखन-समय— पुस्तक की अन्तिम पुष्पिका नहीं मिलती, अतः इसका लेखक तथा लेखन-काल विदित नहीं हो सका। पुस्तक सुन्दर और सुवाच्य है।

इस ग्रंथ में प्रारम्भ से लेकर पदों की संख्या दी गई है, अर्थात् विषय क्रम के साथ वह समाप्त नहीं होती, बराबर अन्त तक चली गई है। संकलन करने से वह १,००० तक पहुँचती है। यह द्वितीय पुस्तक है, जिसमें एकत्र पदों की संख्या दी गई है और अधिक पदों का संग्रह किया गया है।

इसमें कुल ६३ विषय हैं। संग्राह्य और प्रकाशन के उपयोगी होने के अतिरिक्त इसमें और कोई विशेषता नहीं।

अन्य-प्रतियाँ— इन पुस्तको के अतिरिक्त एक-दो और भी पुस्तके परमानंददासजी के कीर्तन की है, पर वे केवल प्रकाशन में पाठ-भेद के लिये उपयोगी हैं, अतः इनका परिचय देना आवश्यक प्रतीत नहीं होता। ये सब प्रतिलिपियाँ प्रकाशन में अतिशय उपयोगी सिद्ध हो रही हैं।

विषय-क्रम

'परमानंद-सागर' में जिन विषयों का संग्रह है, उनकी नामावली इस प्रकार है। प्रायः यह क्रम सभी प्रतिलिपियों में है। हाँ, अधिकता और न्यूनता इसमें अवश्य है। यहाँ जो सूची दी जा रही है, वह बंध-सं० ५७, पुस्तक संख्या ३ की है—

अन्य प्रतिलिपियों में इससे अधिक पद नहीं मिलते।

सम्पादन-प्रकाशन

परमानंददासजी का जीवन-चरित्र विद्या-विभाग काँकरोली के अन्वेषण द्वारा प्रकाशित प्राचीन वार्ता-रहस्य, द्वितीय भाग 'अष्टछाप' (जिसमें श्रीहरिरायजी का भाव-प्रकाश भी सम्मिलित है) के आधार पर दिया गया है।

वार्ताओं की प्रामाणिकता एवं प्राचीनता का इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है कि उन वार्ताओं के रचना-काल के समसामयिक श्रीहरिरायजी ने उस पर भाव-प्रकाश-नामक टिप्पण की रचना की है। रचना-काल, उनके संस्करण और प्रामाणिकता पर हमारे यहाँ से प्रकाशित उक्त पुस्तक के दोनों भागों की भूमिका में हिंदी तथा गुजराती वक्तव्यों में लिखा जा चुका है। अतः उसकी यहाँ आवृत्ति करना लेख का कलेवर बढ़ाना होगा।

वार्ता पर लिखे गए हरिरायजी के भावप्रकाश द्वारा एक अच्छा, आवश्यक प्रकाश पड़ता है। इसमें जो मूल-वार्ताएँ दी गई हैं, वे हरिरायजी के भाव-प्रकाश वाली सं० १७५२ की लिखी वार्ता के आधार पर हैं। विद्या-विभाग के सरस्वती भंडार में सं० १६९७ की लिखी हुई 'चौरासी तथा अष्टछाप के वैष्णवों की वार्ता' की पुस्तक विद्यमान है, इससे प्राचीन वार्ता की और कोई पुस्तक अभी तक देखने में नहीं आई। अतः इन सबसे परमानंददासजी के जीवन पर जो प्रकाश पड़ता है, उसके सिवा उनका इतिवृत्त जानने के लिये अन्य कोई साधन अभी नहीं मिला।

जिस प्रकार विद्या-विभाग द्वारा इस अन्वेषण से परमानंददासजी के लौकिक शरीर से सम्बन्ध रखने वाले कथानकों पर प्रकाश पड़ा है, उसी प्रकार उनके अजर-अमर यशःशरीर-रूप विशाल कृति 'परमानंद-सागर' के सम्पादन का आयोजन भी विद्या-विभाग द्वारा ही किया जा रहा है।

विद्या-विभाग द्वा० ग्रंथमाला द्वारा अभी तक जो ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं, उनका साहित्य-जगत् ने अच्छा आदर किया है। ये प्राचीनता और प्रामाणिकता, दोनों दृष्टियों से अच्छी कसौटी पर कसे हुए हैं। इसी शुभ आयोजन में कार्यालय ने 'परमानंद-सागर' का प्रकाशन भी अपने हाथ में लिया है।

विद्या-विभाग के सरस्वती-भंडार में 'परमानंद-सागर' की जितनी प्रतियाँ मिलती हैं, उतनी प्रामाणिक और शुद्ध प्रतियाँ अन्यत्र शायद ही मिलेंगी; फिर भी उसके लिए और अन्वेषणा की जा सकती है।

सम्पादन के समय परमानंददासजी के रचित फुटकर और 'परमानंद-सागर' के पदों की अकाराद्यनुक्रमणिका तैयार की गयी थी, उसमें प्रायः पौने दो हजार पदों की प्रतीकें लिखी गईं। परमानंददासजी के कुछ कीर्तन विशाल कीर्तन-संग्रहों में भी विद्यमान हैं, जो संप्रदाय की सेवा-प्रणाली में काम आते हैं। उनसे भी उनकी प्रतीकों का मिलान किया गया। अन्ततः परमानंद-दासजी-कृत कोई १४०० पदों का प्रस्तुत संग्रह उपस्थित किया जा रहा है।

परमानंददासजी-रचित पदों के दो विभाग मिलते हैं—एक तो कृष्ण-चरित्र के अनुसार, जिसमें भागवत का क्रम आता है और दूसरा फुटकर राग के अनुसार पद-संग्रह। प्रस्तुत सम्पादित 'परमानंद-सागर' में प्रथम तो उनके कृष्ण-चरित्र का प्रासंगिक पद-लेखन हैं, और बाद में उनके फुटकर पदों का संग्रह आवश्यक विवेचन सहित प्रस्तुत किया जा रहा है।

ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि परमानंददासजी के पदों का संग्रह, जो 'परमानंद-सागर' के नाम से उपलब्ध होते हैं, बाद में किया गया है। वार्ता के अध्ययन से विदित होता है कि वल्लभाचार्यजी द्वारा जिस कथा का प्रवचन किया जाता था, परमानंददासजी उसी विषय के भगवल्लीला-पद बनाकर आचार्य चरण को सुनाया करते थे। इस हिसाब से जब जो पद उन्होने बना-कर गाए, उनका संग्रह किया गया। परमानंददासजी स्वयं विद्वान् और कवि थे। वह प्रारम्भ से ही कविता किया करते थे। अतः संभव है, वह अपने पद लिखवा लिया करते हों। उनके समय की लिखी हुई प्रतिलिपि मिलना तो बहुत असम्भव है। हाँ, जैसा पहले कहा जा चुका है, परमानंददासजी के बाद, सं० १६४२ से १६८० के भीतर, इस प्रकार के उपलब्ध 'परमानंद-सागर' का लेखन अवश्य हो चुका था और वह सौभाग्य से विद्या-विभाग कांकरोली में उपलब्ध होता है

शरण आने के समय

★ पद ★
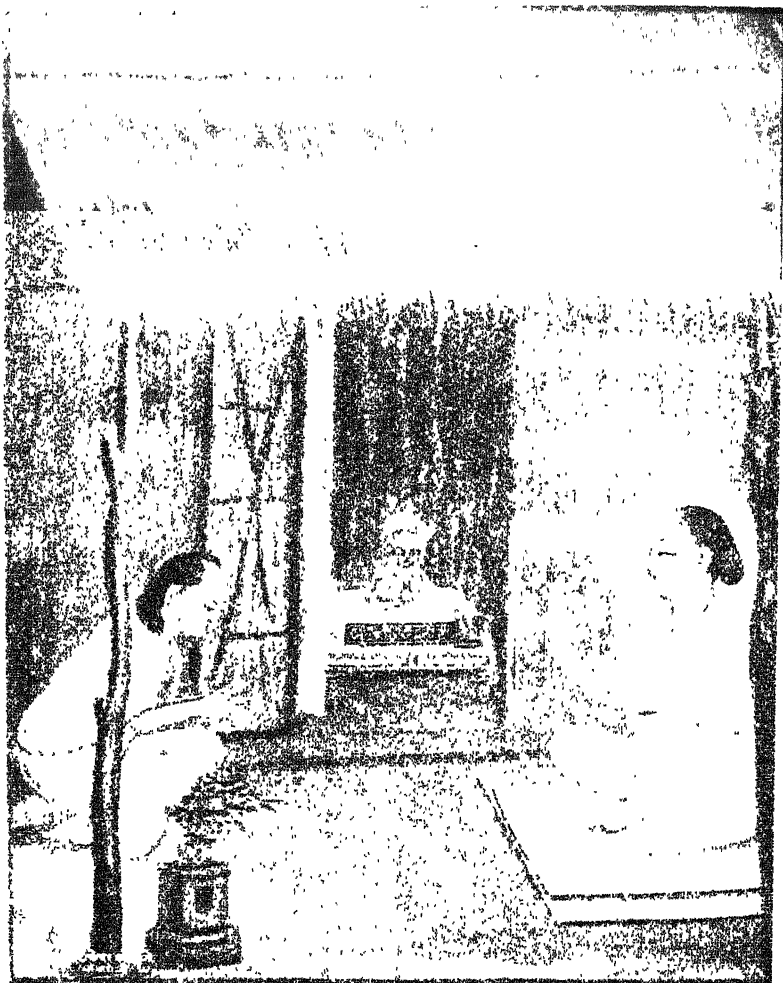
श्री वल्लभ रतन जतन करि पायो।
बह्यौ जात मोहि राखि लियो है, पिय संग हाथ गहायो ॥
दुःसंग संग सब दूरि किये हैं, चरननि सीस नँवायो।

परमानन्ददास-वार्ता

[गो० श्रीहरिरायजी प्रणीत भावप्रकाश सहित]

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के सेवक परमानंद-स्वामी कनौजिया ब्राह्मण कन्नौज में रहते, जिनके पद गाइयत हैं अष्टछाप में, तिनकी वार्ता को भाव कहत हैं—

भावप्रकाश—

सो ये परमानंददासजी लीला में अष्टसखान में 'तोक' सखा को प्राकट्य हैं। सो तोक सखा को दूसरो स्वरूप निकुंज में सखीरूप है। ता स्वरूप को नाम 'चंद्रभागा' है। सो सुरभीकुंड के पास श्रीगिरिराज के एक द्वार है ताके मुखिया हैं।

सो ये कन्नौज में कनोजिया ब्राह्मण के यहाँ जन्मे। जा दिन परमानंद-दासजी जन्मे, वा दिन उनके पिता कों एक सेठ ने बहोत द्रव्य दान दियो। तब या ब्राह्मण ने बहोत प्रसन्न होय के कह्यो जो—श्रीठाकुरजी ने मोकों पुत्र दियो और धन हू बहोत दियो। तासों यह पुत्र बडो भाग्यवान है, जाके जनमत ही मोकों परम आनंद भयो है। सो मैं या पुत्र को नाम 'परमानंददास' ही धरूंगो। पाछे जब नाम करन लागे तब वा ब्राह्मण ने कही जो—तुमने विचार्यो है सोइ नाम जन्म-पत्रिका में आयो है। तब तो वह ब्राह्मण बहोत ही प्रसन्न भयो। पाछे वा ब्राह्मण ने जातकर्म करि दान बहुत कियो। ऐसे करत परमानंददास बड़े भये। तब पिता ने बडो उत्सव कियो। और इनको यज्ञोपवीत कियो।

सो ये परमानंददास बडे कृपापात्र भगवदीय हैं, लीलामध्यपाती श्रीठाकुरजी के अत्यन्त (अंतरंग) सखा हैं। सो जब श्रीआचार्यजी आपु श्रीगोवर्द्धननाथजी की आज्ञाते दैवी जीवन के उद्धारार्थ भूतल पर प्रकट भये, तेसेही श्रीठाकुरजी सहित सगरो परिकर प्रगट भयो। सो दैवी जीव अनेक देशांतर

में प्रकट भये। सो गोपालदासजी वल्लभाख्यान में गाये हैं जो—'अनेक जीवनै कृपा करवा देशांतर प्रवेश०' सो कन्नौज में परमानंददासजी बहोत ही प्रसन्न बालपने तें रहते। पाछें ये बडे योग्य भये और कवीश्वर हू भये। वे अनेक पद बनायके गावते। सो 'स्वामी' कहावते और सेवक हू करते। सो परमानंददास के साथ समाज बहोत, अनेक गुनी-जन संग रहते। एक समय कन्नौज में अकाल परयो सो हाकिम की बुद्धि बिगरी। सो गाम में सों दंड लियो और परमानंददास के पिता को सब द्रव्य लूटि लियो। तब माता-पिता बहोत दु:ख पाय के परमानंददास सों कहे जो—हम तेरो ब्याह हू न करन पाये और सब द्रव्य योंही गयो, तासों अब तू कमायवे को उपाय कर। सो काहतें ? जो-तू गुनी और तेरे द्रव्य बहोत आवत है। सो तू वा द्रव्य कों इकठोरे करे तो हम तेरो ब्याह करें।

तब परमानंददास ने माता-पिता सों कह्यो जो—मेरे तो ब्याह करनो नाँहीं हैं और तुमने इतनो द्रव्य भेलो करिके कहा पुरुषारथ कियो ? सगरो द्रव्य योंही गयो। तासों द्रव्य आये को फल यही है जो—वैष्णव ब्राह्मण कों खवावनों। तासों मैं तो द्रव्य को संग्रह कबहू नांही करूंगो और तुम खायवे लायक मोसों नित्य अन्न लेहू और बैठे-बैठे श्रीठकुरजी को नाम लियो करो। जो अब निर्धन भये हो तासों अब तो धन को मोंह छोडो। तब पिता ने परमानंददास सों कह्यो जो—तू तो वैरागी भयो। तेरी संगति वैरागीन की है. तासों तेरी ऐसी बुद्धि भई और हम तो गृहस्थी हैं। तासों हमारे धन जोरे बिना कैसे चले ? जो कुटुंब में ज्ञाति में खरचें तब हमारी बडाई होय। पाछें पिता धन के लिये पूरब कों गयो। तहां जीविका न मिली तब दक्षिन कों गयो और तहाँ द्रव्य मिल्यो सो तहां रह्यो और परमानंददास ने अपने घर कीर्तन को समाज कियो। सो गाम-गाम में प्रसिद्ध भये और परमानंददास गान-विद्या में परम चतुर हते।

वार्ताप्रसंग:—१—सो एक समय परमानंददास कन्नौज तें मकरस्नान कों प्रयाग में आये, सो तहाँ रहे और कीर्तन को समाज नित्य करैं, सो बहोत लोग इनके कीर्तन सुनिवे कों आवते। सो पार अडेल में श्रीआचार्यजी बिराजत हते। अडेल तें लोग कछू कार्यार्थ गाम में आवते। सो परमानंददास के

कीर्तन सुनिके अडेल में जायके श्रीआचार्यजी सों कहते, जो— एक परमानंददास कन्नौज तें आयो है, सो कीर्तन बहुत आछो गावत है। तब श्रीआचार्यजी कहे जो–परमानंददास दैवी जीव है, जो इनको गुन होय सो उचित ही है। सो श्रीआचार्यजी को सेवक एक 'कपूर क्षत्री' जलघरिया हतो, वाकी राग ऊपर बहोत आसक्ति हती। सो यह बात सुनिके बाके मन में आई जो–मैं श्रीआचार्यजी न जानें ऐसे परमानंद स्वामी को गान सुनूं। काहे तें जो–श्रीआचार्यजी आपु सुनेंगे तो खीजेंगे, जो तू सेवा छोडिकें क्यों गयो? तासों प्रयाग न जाय सके। परंतु वा जलघरिया 'क्षत्री कपूर' को मन परमानंदस्वामी के कीर्तन सुनिवे कों बहोत हतो।

भावप्रकाश—सो काहेतें? जो इनको पूर्व को संबंध है। जो लीला में यह क्षत्री परमानंददास की सखी है, सो ये चंद्रभागा की सखी 'सोनजुही' याको नाम है। सो यह क्षत्री सुदामापुरी में एक क्षत्री के घर प्रकटे, इनको पिता महाविषयी हतो। सो जहाँ तहाँ पर-स्त्री को संग करतो। और द्रव्य बहोत हतो, सो सब विषय में खोयो। ता पाछें गाम के राजा ने सगरो घर लूटि लियो। सो या क्षत्री के माता-पिता पुत्र सहित बंदीखाने में दिये तब याको पिता एक सिपाही कों कछू देकें रात्रि कों स्त्री-पुरुष और या पुत्र सहित बंदीखाने में सों भाजे। सो दिन दोय तीन तांई भजे, सो तहाँ एक बन में जाय निकसे। तहाँ नाहर ने याके माता-पिता कों मार्यो और यह पुत्र बरस चौदह को बच्यो। सो वन में बैठ्यो रुदन करे, सो भूख्यो प्यासो चल्यो न जाय। सो भागिजोग तें पृथ्वीपरिक्रमा करत श्रीआचार्यजी गहवरवन (सघन वन) में आये। तब इनने दंडवत करिके अपनो सब वृत्तांत कह्यो। तब श्रीआचार्यजी आपु कृष्णदास मेघन सों कहे— जो कछू महाप्रसाद होय तो याकों खवाय के बेगि जल-पान करावो, जो याके प्राण बचें। तब कृष्णदास मेघन के पास प्रसाद हतो सो या क्षत्री कों न्हवाय के खवाय के जल पिवायो। तब या क्षत्री को मन ठिकाने आयो। तब क्षत्री नें श्रीआचार्यजी सों विनती कीनी जो–महाराज!

मोकों आप पास राखो। जो मैं जनम भरि आपको गुलाम रहूंगो। अब मेरे माता-पिता भगवान् आपु हो। तब श्रीआचार्यजी आपु श्रीमुख सों कहे जो—तू चिंता मति करे, और तू हमारे संग ही रहियो। तब यह क्षत्री श्रीआचार्यजी के संग ही रह्यो। ता पाछें दूसरे दिन श्रीआचार्यजी आपु वा क्षत्री को नाम, ब्रह्मसंबध करवायो, और जल लायवे की सेवा याकों दिये। पाछे कछुक दिन मे श्रीआचार्यजी अडेल पधारे तब, वह क्षत्री श्रीनवनीतप्रियजी के दरसन करिके अपने मन में बहुत प्रसन्न भयो। और कह्यो जो मैं अनाथ हतो, सो श्रीआचार्यजी आपु मोकों कृपा करि के सरन लेके संग लाये, सो मोकों साक्षात् श्रीयशोदोत्संगलालित श्रीनवनीतप्रियजी के दरसन भये। तब वा क्षत्री कपूर जलघरिया को मन श्रीनवनीतप्रियजी के स्वरूप में लगि गयो। सो तब या क्षत्री ने अपने मन में बिचारी जो–अब मोकों श्रीनवनीतप्रियजी की सेवा कछू मिले, तब मैं सदा सेवा करूं और दरसन करूं। सो श्रीआचार्यजी आप तो साक्षात् पुरुषोत्तम हैं, सो या क्षत्री के मन की जानि याकों पास बुलाय के कह्यो जो–तेरे मन में सेवा की आई, सो तेरे बडे भाग्य हैं। तासों अब तू श्रीनवनीतप्रियजी के जलघरा की सेवा कियो करि।

तब वा क्षत्री ने प्रसन्न होयकें श्रीआचार्यजी कों दंडवत करिकें बिनती कीनी जो–महाराज ! मेरे हू मन में ऐसें हती, सो आपु तो परम कृपालु हो, तासों मेरो सर्व मनोरथ पूरन कियो। ता पाछें अति प्रीति सों वह क्षत्री वैष्णव प्रसन्न होय के खारो तथा मीठो जल भरन लाग्यो। सो कछुक दिन में श्रीनवनीतप्रियजी आपु सानुभावता जतावन लागे। परंतु सेवा में अवकास नांही, जो ये परमानंद स्वामी के कीर्तन सुनिवे कों जाय।

सो एक दिन एकादशी को दिन हतो। ता दिन प्रयाग सों एक वैष्णव श्रीआचार्यजी के दरसन कों अडेल में आयो। तब वा क्षत्री जलघरिया ने वा वैष्णव सों परमानंदस्वामी के समाचार पूछे। तब वा वैष्णव नें कह्यो जो—नित्य तो चारि घडी तथा पहर को समाज होत है रात्रि के समै, और आज तो एकादशी है, जो सगरी रात्रि परमानंद स्वामी के यहाँ जागरन होयगो।

सो ये बचन सुनिके वह क्षत्री वैष्णव अपने मन में बहोत प्रसन्न भयो, और बिचार कियो जो आज परमानंद स्वामी के कीर्तन सुनिवे को दाव लग्यो है। तासों जब श्रीआचार्यजी आपु रात्रि कों पोढेंगे तब मैं रात्रि कों प्रयाग में जायके परमानंद स्वामी के कीर्तन सुनूंगो। ता पाछें रात्रि भई। तब वह क्षत्री कपूर जलघरिया अपनी सेवा सों पहोंचि के श्रीआचार्य जी के श्रीमुख तें कथा सुनि के रात्रि प्रहर डेढ़ गई, ताही समय अडेल सों प्रयाग कों चल्यो। तब अपने मन में बिचार्यो जो-या समय घाट ऊपर तो नाव मिलनी नांही है तासों पैरि के जाऊं।

सो वे पैरिवे में बड़े निपुन हते। पाछें घाट ऊपर आय परदनी एक छोटी सी पहरि के धोती उपरना माथे से बांधे। सो उष्णकाल गरमी के दिन हते तहाँ आये। सो इनको पहलें परमानंदस्वामी सों मिलाप तो कबहू भयो न हतो, तासों दूरि बैठि गये। वहाँ श्रीआचार्यजी के सेवक प्रयाग के वैष्णव बैठे हते सो इनकों जानत हते। सो तहाँ अपने पास ही इन क्षत्री कपूर कों बैठारि लिये। सो वे जहाँ परमानंदस्वामी बैठे हते तिनके पास जाय बैठे। तब और और गुनीन ने पद गाये पाछें परमानंदस्वामी ने गाइवे कौ आरंभ कियो। सो परमानंदस्वामी बिरह के पद गावते।

भावप्रकाश—सो काहेतें? जो ऊपर इनको स्वरूप कहि आये हैं जो-ये परमानंददास लीला में सों बिछुरे हैं, सो अब ही श्रीआचार्यजी और श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरसन भये नांहि हैं। सो जब श्रीआचार्यजी श्रीनाथजी को दरसन करावेंगे। तब परमानंददास को लीला को ज्ञान होयगो। श्रीआचार्यजी के मारग को यह सिद्धांत है जो— भगवदीय को संग होय तब श्रीठाकुरजी कृपा

करें। ताके लिये श्रीआचार्यजी परमानंदस्वामी के ऊपर कृपा करन के अर्थ अपने कृपापात्र भगवदीय क्षत्री कपूर जलघरिया कों पठाये। सो क्षत्री कपूर जलघरिया कैसे हते जो—जिनकों श्रीठाकुरजी एक क्षण हू नांही छोड़त हैं, जो सदा वैष्णव के संग ही रहत हैं।

तासों सूरदासजी गाये हैं—'जो भक्तविरहकातर करुणामय डोलत पाछें लागे०' और ऊपर जगन्नाथजोसी की वार्ता में कहि आये हैं जो—जब वा रजपूत ने तरवार काढी तब श्रीठाकुरजी आपु पाछे तें आयके तरवार सहित हाथ ऊपर ही थांमि दियो, सो हाथ चलन न दियो। तासों श्रीभागवत में सब ठौर बरनन है जो—भगवदीय वैष्णव के संग ही श्रीठाकुरजी डोलत हैं। सो परमानंददास कों अब ही वियोग है। तासों विरह के कीर्तन नित्य गावते।

बिहागरो—'ब्रज के विरही लोग बिचारे।'
'गोकुल सब गोपाल उपासी।'
कान्हरो—'कौन रसिक है इन बातन को।'
सोरठ—'माइरी! को मिलिवे नंदकिसोरै।'

इत्यादि बहोत कीर्तन परमानंददास नें गाये सगरी रात्रि। ता पाछें चार घड़ी रात्रि रही तब कीर्तन राखे। सो जो कोई जागरन में आये हते वे सब अपने-अपने घर कों गये। पाछे यह जलघरिया क्षत्री कपूर परमानन्दस्वामी सों भगवत्स्मरन करिके उठि के तहाँ ते चल्यो। सो परमानंदस्वामी को गुन सुनत हते सो तैसेई हैं।

सो या प्रकार परमानंदस्वामी की सराहना करत-करत वह क्षत्री कपूर यमुनाजी के तट पर आयके वाही प्रकार सों पैरिकें पार आय, धोवती उपरना परदनी सहित न्हाय के अपरस ही में आये। ताही समय श्रीआचार्यजी आपु पोढिके उठे हते। सो श्रीआचार्यजी के दरसन करि, दंडवत करि अपने जलघरा की सेवा में तत्पर भये।

भावप्रकाश—सो या प्रकार ये क्षत्री कपूर परमानंदस्वामी के ऊपर कृपा करिवे के अर्थ परमानंदस्वामी के पास गये। नांही तो इनकों श्रीठाकुरजी आप सानुभाव हते, सो ऐसे भगवदीय काहेकों काहू के घर जांय ? परन्तु परमानंदस्वामी के ऊपर कृपा होनहार है,तासों श्रीनवनीतप्रियजी वा क्षत्री कपूर जलघरिया को मन प्रेरिकें याके संग आपुही पधारि, याही की गोद में वैठि के परमानंदस्वामी के कीर्तन सुने।

सो या प्रकार वह क्षत्री जलघरिया परमानंदस्वामी के कीर्तन सुनि जब प्रयाग सों अडेल कों चले, सो तब परमानंद-स्वामी सगरी रात्रि के श्रमित हते, सो येहू सोये।

भावप्रकाश—सो तहाँ यह सन्देह होय जो—परमानंदस्वामी सगरी रात्रि जागरन करिके चार घड़ी पछिली रात्रि रही तब सोये। सो सोये तें जागरन को फल जात रहत है। जो परमानंदस्वामी तो सुज्ञान हैं और चतुर हैं। तासों वे क्यों सोये ? तहां कहत हैं जो—परमानंदस्वामी लीला सम्बन्धी पुष्टिजीव हैं। सो एक श्रीठाकुरजी कों चाहत है और जागरन के फल को चाहत नाहीं हैं।

सो ये परमानंदस्वामी एकादशी के जागरन को मिस मात्र लेकें भगव-न्नाम अधिक लियो जाय ताके लिये जागरन करत हते। सो इनकों विधि रीति सों जागरन करिवे के फल को कारन नाहीं है। तासों परमानंददास चारि घड़ी रात्रि पिछली रही तब सोये। सो यातें जो—जागरन को फल जायगो, परन्तु भगवन्नाम लियो, सो गुन तो कोई काल में जायगो नांही। तासों भगव-न्नाम लेयवे के अर्थ चारि घड़ी रात्रि पिछली कों सोये। सो काहेतें ? जो सोवें नांही तो द्वादसी के दिन आलस सरीर में रहे। फेरि द्वादसी की रात्रि को डेढ़ पहर रात्रि तांई कीर्तन करने हैं। तासों जागरन को आश्रय छोड़िकें भगवन्नाम को आश्रय करकें सोये।

सो नींद आवत ही परमानन्दस्वामी कों स्वप्न आयो। सो स्वप्न में देखे तो श्री आचार्यजी के सेवक क्षत्री जागरन में बैठे हैं और इनकी गोद में श्रीनवनीतप्रियजी बैठे देखे और श्रीनव-

नीतप्रियजी स्वप्न में मुसक्याय के परमानन्दस्वामी कों आज्ञा किये जो—आज मैंने तेरे कीर्तन सुने हैं। सो श्रीआचार्यजी के कृपापात्र सेवक कपूर क्षत्री जलघरिया तेरे यहाँ रात्रि कों जागरन में आये तासों इनके साथ मैं हू आयो। सो इतने दिनन मैं आजु तेरे कीर्तन सुन्यो हों।

भावप्रकाश—सो यह कहे, तहाँ यह सन्देह होय जो—श्री ठाकुरजी तो तो सदा सुनत हैं और सब ठौर व्यापक हैं। सो कहे जो 'आज मैं सुन्यो' ताको कारन कहा? तहाँ कहत हैं जो—इतने दिन सों अंगीकार में ढील हती, सो अन्तर्यामी साक्षिरूप सों सुने। तासों अब अंगीकार करनों है और कृपा करनी है, सो बेगि कृपा करनको लक्षन बताये। तासों कहे जो—आजु मैं तेरे कीर्तन सुन्यो हों। सो आज मैं तोपर पूरन कृपा करी। तासों अब बेगि मोकों पावोगे। सो यह आसय जाननों।

तब परमानंदस्वामी की नींद खुली। सो नेत्रन में श्रीनवनीतप्रियजी को स्वरूप कोटिकंदर्पलावण्य, जो स्वप्न में दरसन भयो। तासों नेत्रन में हृदय में ज्ञान भयो। तब परमानंदस्वामी के मन में बड़ी चटपटी लगी और आर्ति भई, जो अब मैं कब श्रीनवनीतप्रियजी को दरसन करों।

ता पाछें परमानन्दस्वामी ने अपने मन में विचार कियो जो—मैं इतने दिन तें जागरन कियो और कीर्तन हू गाये, परन्तु मोकों ऐसो दरसन कबहू न भयो। जो आज भयो है सो—श्रीआचार्यजी को सेवक जलघरिया क्षत्री कपूर आयो, तासों उनकी गोद में भयो। सो क्षत्री कपूर बिना श्रीनवनीतप्रियजी को दरसन न होयगो, तासों उनके पास चलिये, और उनसों मिलिये तब अपनो कार्य सिद्ध होय।

सो यह बिचार मनमें करिके परमानन्दस्वामी तत्काल उठि

के अडेल कों चले। इतनेमें प्रातःकाल भयो। सो श्रीयमुनाजी के तीर पै आये, सो प्रथम ही नाव पार चली, तामें बैठि के परमानन्दस्वामी पार आये। ता समय श्रीआचार्यजी यमुनाजी में स्नान करिके प्रातःकाल की सन्ध्या करत हते। सो परमानन्दस्वामी कों श्रीआचार्यजी के दरसन अत्यद्भुत अलौकिक साक्षात् श्रीकृष्ण के स्वरूप सों भये। सो जैसो श्रीगुसाईंजी श्रीवल्लभाष्टक में वर्णन किये हैं जो–'वस्तुतः कृष्ण एव०'

ऐसों दरसन करिके परमानन्दस्वामी चकित होय रहे। सो कछु बोल न निकस्यो। तब परमानन्दस्वामी नें अपने मन में विचार कियो जो–श्रीआचार्यजी के सेवक कपूर क्षत्री की गोद में बैठि के श्रीनवनीतप्रियजी मेरे कीर्तन क्यो न सुनें? जिनके माथे श्रीआचार्यजी आपु ऐसे धनी बिराजत हैं। तासों मैं हू इनको सेवक होऊंगो। परि मेरो सामर्थ्य नांही है, जो–मैं इनकों सेवक हौंन की बिनती करों। तासों वह क्षत्री फेरि मिले तो उनसों सगरी बात कहिके सेवक हौंन की बिनती करों। यह बिचार परमानन्दस्वामी अपने मन में करत हते, इतने में श्रीआचार्यजी आपु श्रीमुखतें परमानन्दस्वामी सों आज्ञा किये जो–परमानन्ददास! कछु भगवल्लीला गावो। तब परमानन्ददासजी ने श्रीआचार्यजी कों साष्टांग दंडवत करिके ये पद गाये:—

सारंग—'कौन बेर भई चली री! गोपालें०'
'जिय की साध जिय ही रही री०'।
'वह बात कमलदल नैन की०'।
'सुधि करत कमलदल नैन की०'।

या भाँति सों परमानन्ददास ने विरह के पद श्रीआचार्यजी के आगे गाये। सो सुनिके श्रीआचार्यजी श्रीमुख सों कहे जो

परमानंददास ! कछु बाल-लीला के पद गावो। तब परमानंद-दास ने हाथ जोरि के श्रीआचार्यजी सों बिनती कीनी जो—महाराज ! मैं बाललीला में कछु समुझत नांही हों। तब श्री-आचार्यजी आपु श्रीमुख सों परमानंददास सों आज्ञा किये जो—तुम श्रीयमुनाजी में स्नान करि आवो; जो हम तुमकों समझाय देयगें। पाछें परमानंददास ने श्रीआचार्यजी सों विनती कीनी जो—महाराज ! आपुको सेवक क्षत्री कपूर कहां है ? सो तब श्रीआचार्यजी आप कहे जो—कछु सेवा टहल में होयगो। तब परमानंददास श्रीयमुनाजी में स्नान करनकों चले और श्री-आचार्यजी तो सेवा को समय हतो सो बेगि ही उहां ते मंदिर में पधारे। और श्रीनवनीतप्रियजी कों जगाये। इतने ही में वह क्षत्री जलघरिया श्रीयमुनाजल भरिवे कों गागर लेके श्रीयमुना-जी के पार आयो। सो उनकों देखि के परमानंदस्वामी परम आनन्द सों दोऊ हाथ जोरि के भगवत् स्मरन करके कह्यो, जो रात्रि कों तुम कृपा करके जागरन में पधारे हते, सो नवनीतप्रिय जी ने तिहारी गोद में बैठि के मेरे कीर्तन सुने। सो मैं सोयो तब नवनीतप्रियजी ने दरसन दियो और कृपा करिके आज्ञा किये जो—आज मैं तेरे कीर्तन सुन्यो हूँ। तासों तुमने मेरे ऊपर बड़ी कृपा करी सो अब तिहारे दरसन कों आयो हों। तासों अब आप जा प्रकार श्री आचार्यजी आपु मोकों सरन लेंय और श्रीठाकुरजी कृपा करके मोकों नित्य दरसन देंय, सो प्रकार कृपा करिके श्रीकृष्णजी के स्वरूप को दरसन दियो है, सो यह तिहारे सत्संग को प्रताप है। तब यह बात सुनिके क्षत्री कपूर ने उनसों कह्यो जो—तिहारे ऊपर श्रीआचार्य की कृपा भई है।

तासों तुमकों ऐसो दरसन भयो है और तुमसों आपने आज्ञा करी है, सरन लेवे के लिये, सो जासों तुम बेगिही न्हाय के अपरस ही में श्रीआचार्यजी के पास चलो। सो तुमकों प्रभु कृपा करिके सरन लेंयगे, तब तिहारो सब मनोरथ सिद्ध होयगो और रात्रि कों मैं जागरन में तिहारे पास गयो, सो बात तुम श्रीआचार्यजी के आगें मति करियो। नांहि तो आपु मेरे ऊपर खीजेंगे जो-तू सेवा छोड़िके क्यों गयो हतो?

यह वचन परमानंदस्वामी सों कहिके वा क्षत्री वैष्णव ने तो श्रीयमुनाजी की गागर भरी और परमानंददास स्नान करिके अपरस ही में श्रीआचार्यजी श्रीनवनीतप्रियजी को सिंगार करके श्रीगोपीवल्लभ भोग धरिकें बिराजते हते। ता समय परमानंद-दास न्हायके आये। तब श्रीआचार्यजी आपु परमानंददास सों कहे जो–परमानंददास बैठो। तब परमानंददास श्रीआचार्यजी कों साष्टांग दंडवत करिके बैठे। पाछें श्रीआचार्यजी आपु भीतर पधारि भोग सराय के परमानंद कों बुलाय के श्रीनवनीतप्रियजी सन्निधान कृपा करिके नाम सुनायो। ता पाछे ब्रह्मसंबंध कर-वायो। पाछे श्रीभागवत दशमस्कन्ध की अनुक्रमणिका सुनाये।

भावप्रकाश––सो ताको हेतु यह है जो––प्रथम परमानन्ददास सो श्रीआचार्यजी ने कह्यो जो–कछु भगवद्लीला वर्णन करो। तब परमानंददास ने विरह के पद गाये। पाछें श्रीआचार्यजी आपु परमानंददास कों कहे जो–– बाल-लीला गावो। सो ताको हेतु यह है जो––बाल-लीला श्रीनन्दरायजी के घर की लीला है, सो संयोग-रस है। सो एक बार संयोग होय। ता पाछे विरह विरह फल रूप होय। सो काहे तें जो––रासपंचाध्यायी में व्रज-भक्तन कों बुलाय के लीला किये। ता पाछें अन्तर्धान में विरह फलरूप भयो। तासों भग-वान कहे – 'यथाऽधनो लब्ध धने विनष्टे तच्चिन्तया०' जैसे धन पाय के धन

आय, तब थन को चिंतन बहोत होय। सो पहले श्रीआचार्यजी आपु कहे जो—बाल-लीला गावो। क्यों ? जो अनुभव करके विरह को गान बेगि फले। परि परमानंददास ने विनती कीनी जो—महाराज ! मैं कछू समुझत नाहीं हों।

ताको आसय यह है जो–संयोग-रस अब ही है नाहीं। जो मूल लीला में हतो सो विस्मृत भयो है। परि लीला में तें बिछुरे हैं और दैवी जीव हैं, तासों विरह जनम ही तें गाये। सो अब नाम समर्पन कराय के अज्ञान प्रतिबंध दूर कियो, ता पाछे श्रीभागवत दशमस्कंध की अनुक्रमणिका सुनाये। सो सब साक्षात् श्रीनवनीतप्रियजी के स्वरूप को अनुभव भयो और दशम की सगरी लीला स्फुरी। परमानंददास को दशम की अनुक्रमणिका सुनाये ताको कारन

तब परमानंददासजी ने श्रीआचार्यजी के आगे बाल-लीला के पद गाये। सो पद—

यह है जो–सर्वोत्तम ग्रन्थ श्रीगुसांईजी प्रकट किये हैं। तामें श्रीआचार्यजी को नाम कहे हैं जो–'श्रीभागवत पीयूषसमुद्र–मथन क्षमः'। सो श्रीभागवत को श्रीगुसांईजी अमृत को समुद्र करिके वर्णन किये, सो श्रीआचार्यजी आपु अनुक्रमणिका द्वारा श्रीभागवत रूपी समुद्रपरमानंददास के हृदय में स्थापन कियो। सो तैसे ही प्रथम सूरदास के हृदय में अनुक्रमणिका द्वारा श्रीभागवत रूपी समुद्र स्थापन कियो हतो। तासों वैष्णव तो अनेक श्रीआचार्यजी के कृपापात्र हैं, परन्तु सूरदास और परमानंददास ये दोऊ 'सागर भये। इन दोऊन के कीर्तन की संख्या नाहीं, सो दोऊ सागर कहवाये। सो श्रीआचार्यजी ने आज्ञा करी जो बाल-लीला गावो। अब संयोग-रस को अनुभव भयो।

आसावरी—'माइरी ! कमलनैन स्यामसुंदर झूलत हैं पलना।'
बिलावल—जसोदा तेरे भाग की कही न जाइ।'
'मनिमय आंगन नंद के खेलत दोऊ भैया।'
कान्हरो—'प्यारे हरि को विमल जस गावत गोपांगना।'

सो ऐसे पद परमानंददास ने बाल-लीला के बहोत ही गाये। सो सुनिके श्रीआचार्यजी आपु बहोत ही प्रसन्न भये। ता पाछें परमानंददास अडेल में श्रीआचार्यजी के पास रहे। तब श्रीआचार्यजी परमानन्ददास सों कहें जो–अब समय समय के

पद नित्य नवनीतप्रियजी को सुनायो करो सो यह सेवा तुमकों दीनी ।

सो परमानन्ददास नित्य नये पद करिके समय समय के श्रीनवनीतिप्रियजी कों सुनावते और जब श्रीनवनीतप्रियजी कों अनोसर होय, तब परमानंददास श्रीआचार्यजी के आगे अनेक ब्रजलीला के कीर्तन करते और श्रीआचार्यजी आपु श्रीसुबोधिनी की कथा कहते । सो जा समय (जा) प्रसंग की कथा श्रीआचार्य-जी के श्रीमुख तें सुनते ताही प्रसंग के कीर्तन कथा भये पीछे परमानंददास श्रीआचार्यजी कों सुनावते।

वार्ताप्रसंग: २—एक दिन परमानन्ददास नें श्रीठाकुर जी के चरणारविंद को माहात्म्य कथा में श्रीआचार्यजी के श्रीमुखतें सुन्यो । सो ता समय परमानन्ददास ने श्रीठाकुरजी के चरणारविंद को माहात्म्य सहित कीर्तन श्रीआचार्यजी के आगे गायो । सो पद—

कान्हरो—'चरनकमल बंदों जगदीस ।'

ता पाछे श्रीआचार्यजी के आगे प्रार्थना को पद गायो । सो पद--

कान्हरो—'यह मांगों गोपीजनवल्लभ ।'

सो यह पद परमानन्ददास ने गायो । सो सुनि के श्री-आचार्यजी महाप्रभु आपु जाने, जो या पद में ब्रज के दरसन की प्रार्थना कीनी है । तासों परमानन्ददास कों व्रज के दरसन अवश्य करवावने । तब श्रीआचार्यजी आपु व्रज में पधारवे को उद्यम किये । सो तब दामोदरदास हरसानी, कृष्णदास मेघन,

परमानन्ददास और यादवेन्द्रदास आदि सब वैष्णवन कों साथ लेके श्रीआचार्यजी आप अडेल तें ब्रज कों पधारे सो ब्रज कों आवत मारग में परमानन्ददास को गाम कन्नौज आयो। तब परमानन्ददास ने श्रीआचार्यजी सों विनती करि अपने घर पधराये।

पाछे परमानन्ददास अपने भाग्य मानिके परम प्रीति सों अपने घर पधराय के सब सामग्री बजारतें लाये और वैष्णव हते सो तिनसों बहोत विनती दैन्यता करिके सबनकों सीधो सामान देके रसोई करवाई। पाछे श्रीआचार्यजी आपु सखड़ी अनसखड़ी पाक सामग्री सिद्ध करिके श्रीठाकुरजी कों भोग सराय आपु भोजन किये। ता पाछे परमानन्ददास आदि सब वैष्णवन कों महाप्रसाद देके आपु गादी तकियान के ऊपर बिराजे। पाछे परमानन्ददास महाप्रसाद ले श्रीआचार्यजी के पास आय दंडवत करिके बैठे। तब आपु आज्ञा किये जो परमानन्ददास! कछू भगवद् जस गावो। तब परमानन्ददास अपने मन में विचारे जो—या समय श्रीआचार्यजी को मन तो ब्रज-लीला में श्रीगोवर्द्धननाथजी के पास है। तासों बिरह को पद गाऊं, जामें एक क्षण कल्प समान जाय। सो पद—

सोरठ—'हरि तेरी लीला की सुधि आवे।'

यह पद परमानंददास ने गायो। सो यामें यह कहें जो—'हरि तेरी लीला की सुधि आवे।' सो ताही समय श्रीआचार्य-जी आपु लीला में मग्न होय गये।

भावप्रकाश—सो तहाँ श्रीगुसाईंजी श्रीआचार्यजी को स्वरूप श्रीवल्लभाष्टक में वरनन कियो है जो—श्रीमद्वृन्दावनेंदु प्रकटित रसिकानन्द सन्दोह-

रूर-स्फूर्जद्रासादिलीलामृत०' ऐसे रस सों भरे हैं और सर्वोत्तम में श्रीगुसांईजी श्रीआचार्यजी को नाम कहे—'रासलीलैकतात्पर्याय नमः'। सो श्रीआचार्यजी को कार्य कहियत हैं, जो जो ग्रन्थ किये सो तामें रासलीला ही तात्पर्य है और कछु काहू बात में आपु को तात्पर्य नाहीं है। सो तासों रासलीला में मगन होय गये।

सो ऊपर सरीर को देह को-अनुसन्धान हू रह्यो नाहीं। सो तीन दिनलों श्रीआचार्यजी कों मूर्छा रही। सो नेत्र मूँदि के गादी तकियान पें बिराजे हते, और दामोदरदास हरसानी आदि वैष्णव जो-श्रीमहाप्रभुजी के स्वरूप कों जानत हतें सो जाने। सो कोई वैष्णव बोले नाहीं, बैठे बैठे चुप होय के श्रीआचार्यजी को दरसन कियो करैं।

भावप्रकाश—सो काहे तें? जो जैसे श्रीआचार्यजी आप पूरन पुरुषोत्तम हैं। सो इनको सरीरधर्म बाधक नाहीं। जो मनुष्य देह धारन किये तासों मनुष्य की क्रिया जगत् में दिखावत है, परि इनकों देह को धर्म बाधक नाहीं है। तासों सब सेवक तीन दिन लों बैठे रहे।

सो पाछें चौथे दिन सावधान होयके श्रीआचार्यजी ने नेत्र खोले, तब सब वैष्णव प्रसन्न भये।

भावप्रकाश—सो तहाँ यह पूर्व पक्ष होय जो—रासादिक लीला में मगन तीन दिन तांई क्यों रहे? सो तहाँ कहत हैं जो—रासादिक लीला में तीन ही ठौर मुख्य हैं। जो श्रीगिरिराज, श्रीवृंदावन और श्रीयमुनाजी। १-श्रीगिरिराज स्वरूप होय सगरी लीला की सामग्री सिद्ध करत हैं। २-श्रीवृंदावन की लीला रसात्मक कुंजविहार में। ३ और श्रीयमुनाजी सब रास को मूल।

या प्रकार जल स्थल की लीला हैं। सो एक दिन श्रीगिरिराज संबंधी लीला को अनुभव किये, जो कन्दरा में नाना प्रकार के विलास, चतुर्भुजदासजी गाये हैं—'श्रीगोवर्द्धनगिरि सघन कंदरा।' आदि। दूसरे दिन वृंदावनलीला और तीसरे दिन श्रीयमुनाजी की पुलिन (में) रास जलविहारादि। या प्रकार

तीन दिन लों तीनों रस को अनुभव किये। ता पाछे भूमि पर भक्तिमारग प्रकट करिकें अनेक जीवन कों सरन लेकें लीलारस को अनुभव करवावनो है, सो चोथे दिन श्रीआचार्यजी आप नेत्र खोलि के सावधान भये।

तब परमानंददासजी अपने मन में डरपे, जो ऐसे पद फेरि कबहूं नाहीं गाऊंगो।

भावप्रकाश—सो परमानंदजी यासों डरपे जो—श्रीआचार्यजी आपु रस को अनुभव करके कदाचित् लीला-रस में मगन होइ जांय। सो भूमि पर पधारवे को मन न करें तो यह दैवी-जीवन कौ उद्धार कौन भाँति सों होयगो? यासों परमानंददास ने अपने मन में बिचार कियो जो—अब मैं फेरि विरह को पद श्रीआचार्यजी के आगे नाहीं गाऊंगो।

सो काहेंते? जो—श्रीआचार्यजी आपु विरहात्मक स्वरूप हैं। सर्वोत्तम में श्रीगुसांईजी आपु श्रीआचार्यजी को नाम कहे हैं। 'जो विरहानुभवैकार्थ सर्व-त्यागोपदेशक:' सो विरह-रस के अनुभव के अर्थ सर्व लौकिक में त्याग किये, सो उपदेश करत हैं। यामें विरह को स्वरूप जताये। विरह दसा में लौकिक वैदिक की कछू सुधि न रहे, सो तब विरह भयो जानिये।

ता पाछें परमानंददास ने सूधे पद गाये। सो पद—

रामकली—'माईरी! हौं आनँद मंगल गाऊं।

ता पाछे श्रीआचार्यजी आपु भोजन करिके पोढे, तब सब वैष्णव महाप्रसाद लिये। ता पाछे परमानंददास महाप्रसाद ले के श्रीआचार्यजी के आगे यह पद गायो—

गोरी—'विमल जस वृंदावन के चंद को।

ता पाछे परमानंददास ने यह पद गायो। सो पद—

सारंग—'चल सखी! नंदगाम जाय बसिये।'

यह पद सुनके श्रीआचार्यजी आपु कहे जो-अब ब्रज कों चलिये। पाछें परमानंददास ने जो सेवक किये हते, तिन सबन

कों श्रीआचार्यजी के पास लाय विनती कीनी जो—महाराज ! इन जीवन कों अंगीकार करिये । तब श्रीआचार्यजी आपु परमानंददास सों कहे जो—इनकों तुम नाम सुनाय के सेवक किये हैं, तातें अब हम पास तुम इनकों सेवक क्यों करावत हो ? तब परमानंददास कहे जो—महाराज ! यह तो पहली दसा में स्वामीपनो हतो, तासु सेवक किये हते और अब तो मैं आपको दास हों। 'स्वामीपद' तो जो स्वामी हैं तिनही कों सोहत है । दास होय स्वामी पद चाहे सो मूरख है । तासों मैं अज्ञान दसा में सेवक किये, सो अब आप इनकों सरन लेके उद्धार करिये ।

तब सबन कों श्रीआचार्यजी ने नाम सुनाय सेवक किये। ता पाछे सब वैष्णवन कों संग ले कन्नौज सों व्रज में पधारे । कछुक दिन में श्रीगोकुल पधारे । सो गोविंदघाट ऊपर स्नान करिके छोंकर के नीचे श्रीआचार्यजी आपु अपनी बैठक में आय बिराजे । सो एक भीतर बैठक श्रीद्वारिकानाथजी के मंदिर के पास है तहाँ रात्रि कों श्रीआचार्यजी के विश्राम करिवे की ठौर है। सो आपु जब श्रीगोकुल पधारते, तब आपु वहां उतरते । सो यह भीतर की बैठक । सो श्रीआचार्यजी आपु श्रीनवनीतप्रियजी कों पालने झुलाय दधिकादो जन्माष्टमी को उत्सव किये हैं । सो ऊपर गज्जनधावन की वार्ता में वरनन करि आये हैं ।

सो श्रीआचार्यजी आपु स्नान करि छोंकर के नीचे अपनी बैठक में बिराजते हते । तब सब वैष्णव परमानंददास सहित स्नान करि प्रभुन के (श्रीआचार्यजी के) पास बैठे हते । पाछें

श्रीआचार्यजी ने श्रीयमुनाष्टक को पाठ परमानंददास कों सिखाये। तब परमानन्ददास के हृदय में यमुनाजी को स्वरूप स्फुरयो। सो श्रीयमुनाजी को जस बरनन कियो। सो पद—

रामकली—'श्रीयमुनाजी यह प्रसाद हौं पाओ०।'
श्रीयमुनाजी दीन जान मोहि दीजे०।'
कालिंदी कलि कल्मष हरनी०।'

ऐसे पद परमानंददास ने श्रीआचार्यजी के आगे श्रीयमुनाजी के तट पैं गाये। तब श्रीआचार्यजी आपु प्रसन्न होय के परमानन्ददास कों श्रीगोकुल की बाललीला के दरसन करवाये। सो बाललीला विशिष्ट परमानन्ददास कों ऐसे दरसन भये जो–व्रजभक्त श्रीयमुनाजल भरत हैं और ठाकुरजी आप ब्रजभक्तन सों नाना प्रकार के ख्याल लीला करि सुख देत हैं। सो परमानंददास लीला के दरसन करि ऐसे ही पद श्रीआचार्यजी के आगे गाये। सो पद—

बिलावल—'श्रीयमुनाजल घट भरि ले चली श्रीचन्द्रावलिनारि०'
सारङ्ग—'लाल नेक टेको मेरी बहियां।'

ता पाछे परमानन्ददास ने श्रीगोकुल की बाललीला के पद बहोत किये सो जामें श्रीगोकुल को स्वरूप जान्यो परे। सो पद—

कान्हरो—'गावत गोपी मधु मृदु बानी।'
रानी जसुमति गृह आवत गोपीजन।'
हमीर—'गिरिधर सब ही अंग को बांको।'

या भाँति परमानन्ददास ने बहोत कीर्तन किये। सो श्रीगोकुल के दरसन करिके परमानन्ददास कों श्रीगोकुल पै बहोत आसक्ति भई तब श्री आचार्यजी के आगे ऐसे प्रार्थना के

पद गाये जो—मोकों श्रीगोकुल में आपके चरणारबिंद के पास राखो जासों नित्य श्रीठाकुरजी के दरसन करों और सगरी लीला को अनुभव होय। सो पद—

सारंग—'यह मांगौं जसोदानंदन०।'
कान्हरो—'यह मांगों संकर्षन वीर०।'

सो ऐसे कीर्तन परमानंददास ने प्रार्थना के गाए सो सुनि के श्रीआचार्यजी आपु परमानंददास के ऊपर बहोत प्रसन्न भये।

वार्ताप्रसंग:-२—पाछें श्रीआचार्यजी आपु परमानंददास सहित सब वैष्णव समाज लेके श्रीगोकुल तें गोवर्द्धन पधारे। सो उत्थापन के समय श्रीआचार्यजी आपु गिरिराज पधारे। तहाँ स्नान करि श्रीआचार्यजी श्रीगिरिराज ऊपर श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर पधारे। तब परमानंददास न्हाय के गिरिराज कों साष्टांग दंडवत् करिके पर्वत के ऊपर मंदिर में आय, उत्थापन के दरसन किए। सो श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरसन करत ही परमानंददास आसक्त होय रहे। तब श्रीआचार्यजी आप श्रीमुख तें परमानन्ददास सों कहे जो—परमानन्ददास! कछू भगवल्लीला के कीर्तन श्रीगोवर्द्धननाथजी कों सुनावो। तब परमानंददास अपने मन में विचार किये, जो—मैं कहा गाऊं? क्यों जो रसना तो एक है, और श्रीगोवर्द्धननाथजी को स्वरूप तो अपार है, और इनकी लीला हू अपार है। जो वस्तु स्मरन करों सो ताही में बुद्धि विक्षिप्त होय जात है। परन्तु श्रीआचार्यजी की आज्ञा है, तासों कछू गावनो तो सही। सो ऐसो पद गाऊं जामें प्रथम तो अवतार-लीला, पाछें कुंज-लीला, पाछें

चरणारविंद की वंदना, पाछें स्वरूप को वर्णन, ता पाछे माहात्म्य सहित श्रीठाकुरजीकी लीला होय। सो ऐसो पद गायो। सो पद—

बिलावल—'मोहन नंदराय कुमार०।'

सो यह प्रार्थना को पद गाय के पाछे आसक्ति के पद गाये।

आसावरी—'माई मेरो माधो सों मन मान्यों०।'
गोरी—'मैं अपुनो मन हरिसों जोरयो०।'
कान्हरो—'तिहारी बात मोहि भावत लाल०।'

ता पाछें श्री आचार्यजी श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेनआरती किये। ता समय परमानन्ददास ने यह पद गायो। सो पद—

केदारो—'पोढे रंग महल गोविंद०।'

सो ऐसे पद परमानन्ददास ने बहोत गाये सो सुनिके श्री-आचार्यजी आपु बहोत प्रसन्न भये। ता पाछें श्रीआचार्यजी श्रीगोवर्द्धननाथजी कों पोढाय के अनोंसर करि पर्वत नीचे पधारे। तब श्रीआचार्यजी ने रामदास भीतरिया सों कह्यो जो-परमानन्ददास कों प्रसादी दूध पठाय दीजो। तब रामदास ने वह प्रसादी दूध पठायो सो परमानन्ददास प्रसादी दूध लेंन लागे, सो तातो लाग्यो। तब सीरो करिके लियो।

पाछे परमानन्ददास श्रीआचार्यजी के पास आय दंडवत करिके बैठे। तब श्रीआचार्यजी आप परमानन्ददास सों पूछे जो परमानन्ददास! महाप्रसाद दूध लियो सो कैसो हतो? तब परमानंददास नें श्रीआचार्यजी सों कह्यो जो—महाराज! दूध तो तातो हो। तब श्रीआचार्यजी ने सब भीतरियान सों बुलाय के पूछ्यो, जो—दूध तातो क्यों भोग धरत हो? सो आछो सुहातो

होय तब भोग धरनो । तब सगरे भीतरियान ने कही जो–महा-राज ! अब ते सुहातो सीरो करिके भोग धरेंगे ।

भावप्रकाश—सो परमानंददास कों श्रीआचार्यजी आपु प्रसादी दूध यासों दिवायो, जो—श्रीठाकुरजी कौं दूध बहोत प्रिय है । तासों सेवक कों दूध निकुंज–लीला संबंधी रस के दान करन कों, और सामग्री बिगरी सुधरी वैष्णवन द्वारा श्रीठाकुरजी कहत हैं । जो—सामग्री वैष्णव सराहें तब जानिये जो–श्रीठाकुरजी भली भांति सों अनुभव किये । सो या भाव तें दूध पिये ।

ता पाछें परमानंददास कों दूध अधरामृत पिये तें सगरी रात्रि लीला-रस को अनुभव भयो । तब रात्रि की लीला में मगन होय के ये पद गाये । सो पद—

कान्हरो—'आनंदसिंधु बढ्यो हरि तन में० ।'
'पिय मुख देखत ही रहिये० ।'
गोरी—'कौन रस गोपिन लीनो घूंट० ।'
'यातें माई ! भवन छांड़ि बन जइये० ।'
हमीर—'अमृत निचोइ कियो इकठोर० ।'
बिहागरो—'यह तन नवलकुंवर पर वारों० ।'

सो या भांति परमानंददास ने सगरी रात्रि लीला को अनुभव कियो, सो बहोत कीर्तन गाये । ता पाछे प्रातःकाल भयो, तब श्रीआचार्यजी आपु स्नान करिके पर्वत ऊपर पधारे, सो श्रीगोवर्द्धननाथजी कों जगाये तब परमानंददास ने यह पद गायो । सो पद—

रामकली—'जागो गोपाललाल ! देखों मुख तेरो० ।'
'लाल को मुख देखन कों आई० ।'
'ग्वालिन पिछवारे व्हे बोल सुनायो० ।'

सो या प्रकार के पद परमानंददास ने बहोत गाये । ता पाछे श्रीआचार्यजी ने परमानंददास कों श्रीगोवर्द्धननाथजी के

कीर्तन की सेवा दीनी। सो नित्य नये पद करिके परमानंददास श्रीनाथजी कों सुनावते।

वार्ताप्रसंग ४:-एक दिन एक राजा अपनी रानीकों संग लेके व्रज में यात्रा करिवे आयो। वह राजा श्रीआचार्यजी कों सेवक हतो। सो श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरसन करिके डेरान में आइके वा राजा नें अपनी रानी सों कह्यो जो-श्रीगोवर्द्धन-नाथजी को दरसन बहुत सुंदर है, सो तू श्रीगिरिराज पर जायके श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरसन करि आव। तब रानी नें राजा सों कह्यो जो-जैसे हमारी रीति है, तैसे परदान में दरसन होय तो मैं करूं। तब राजा नें रानी सों कही जो-ये व्रज के ठाकुर हैं सो श्रीठाकुरजी के दरसन में परदा को कहा काम है? सों ये ठाकुर ब्रज के हैं सो काहू कों परदा राखत नांही। या प्रकार राजा ने रानी कों बहोत समझाई, पर रानी ने राजा को कह्यो मान्यो नांही।

तब राजा ने श्रीआचार्यजी सों बिनती कीनी, जो-महा-राज! मैंने रानी कों बहोत समझायो, परन्तु वह मानत नाहीं, जो वह परदा में दरसन कियो चाहत है। तब श्रीआचार्यजी आपु कहे, जो-वाको परदा में ही ले आव, जो सबतें पहले दरसन करवाय देंगे। तब रानी परदान में आई और श्रीनाथ जी के दरसन करन लागी। तब श्रीनाथजी (भक्तोद्धारक स्वरूप सों) सिंहासन सों उठि के सिंहपौरि के किवाड़ खोलि दिये, सो भीड़ वा रानी के ऊपर परी। सो वाके देह के सब वस्त्र निकसि गये। तब रानी बहोत लज्जित भई। जब राजा

सों रानी ने डेरान में आय के सब समाचार कहे। तब राजा ने रानी सों कही, जो–मैं तोसों पहले ही कह्यो हतो, जो–ये श्री-नाथजी ब्रज के ठाकुर हैं, सो इनने काहू को परदा राख्यो नाहीं है।

ता समय परमानंददास यह पद गावत हते, सो वाकी एक तुक कही हती। सो पद—

'कौन यह खेलिवे की बानि।
मदनगोपाललाल काहू की राखत नांहिन कानि०।'

सो यह सुनि के श्रीआचार्यजी परमानंददास कों बरजे, जो–ऐसे न कहिये, यासों ऐसे कहो, जो–'भली यह खेलिवे की बानि।'

भावप्रकाश—सो काहेतें ? जो अबही परमानंददास कों दास पदवी दिये हैं। सो दास भाव सों रहे, और बोले, तो प्रभु आगे कृपा करें। जब परम भाव दृढ़ होय, तब बराबरी सों वार्ता होय। तासों बिना अधिकार अधिक भाव नाहीं है। जो करे तो नीचे गिरे। सो जब श्रीठाकुरजी सरल भाव को दान करें, तब ही बने।

दूसरो आसय, श्रीआचार्यजी आपु अपनो स्नेह श्रीगोवर्द्धननाथजी में राखे सो सर्वोपरि दिखाये, जो स्नेह सों ऐसे न बोले। जो कार्य सनेही प्रीति सों न करे सो तासों हू कहिये, जो–भलो कार्य किये। ऐसी स्नेह की रीति है।

तासों श्रीआचार्यजी आपु परमानंददास कों बरजे—'कौन यह खेलिवे की बानि०।' या भाँति सों कबहू न कहिये। कहिवे, बरजिवे लायक तो ब्रज-भक्त हैं, सो तासों चाहैं तैसें बोलें। तासों तुम ऐसे कहो जो–'भली यह खेलिवे की बानि।'

तब परमानंददास ने ऐसे ही पद गायो। सो पद—

सारंग—'भली यह खेलिवे की बानि०।'

सो यह पद सुनिकें श्रीआचार्यजी आपु बहोत प्रसन्न भये।

या प्रकार सहस्रावधि कीर्तन परमानंददास ने किये । तासों परमानंददास के पदन में बाललीला भाव, (और) रहस्य हू झलकत है । सो जा लीला को अनुभव परमानंददास कों भयो, ताही लीला के पद परमानंददास गाये । परन्तु श्रीआचार्यजी आपु परमानंददास कों बाललीला रस को दान हृदय में कियो है, तासों बाललीला गूढ़ पदन में हू झलकत है ।

वार्ताप्रसंग: ५—और एक दिन सगरे भगवदीय सूरदासजी, कुंभनदासजी तथा रामदास आदि सब वैष्णव मिलिके जहाँ परमानन्ददास रहत हते तहाँ इनके घर आये । सो सब भगवदीय कों अपने घर आये देखि के परमानंददास अपने मन में बहोत प्रसन्न भये, जो–आज मेरो बड़ो भाग्य है । सो सब भगवदीय मेरे ऊपर कृपा करिके पधारे, ये भगवदीय कैसे हैं जो—साक्षात् श्रीगोवर्द्धननाथजी को स्वरूप ही हैं । तासों आज मो ऊपर श्रीगोवर्द्धननाथ नें बड़ी कृपा करी है ।

भावप्रकाश—सो काहेतें ? जो अनेक रूप होयके श्रीठाकुरजी मेरे घर पधारे हैं । सो भगवदीय के हृदय में श्रीठाकुरजी आपु बिराजत हैं तासों मेरे बड़े भाग्य हैं । अब मैं कृतकृत्य होय गयो, जो सब भगवदीय कृपा किये हैं । सो प्रथम तो इन भगवदीयन की न्योछावरि करी चाहिये । सो ऐसी कहा वस्तु है ? जासों सब भगवदीयन की न्योछावरि होय ।

पाछें परमानंददास ने भगवदीय वैष्णवन सों मिलिकें ऊँचे आसन बैठारि के यह पद गायो । सो पद—

बिहागरो—'आये मेरे नंदनंदन के प्यारे० ।'

ता पाछें दूसरो पद गायो । सो पद —

बिहागरो—'हरिजन-संग छिनक जो होई० ।'

सो ऐसे पद परमानंददास ने गाये। सो सुनिके सब भगवदीय परमानंददास के ऊपर बहोत प्रसन्न भये। तब परमानंददास ने सब वैष्णवन सों विनती कीनी, जो-आजु कृपा करके मेरे घर पधारे सो कछू आज्ञा करिये। तब रामदासजी ने पूछी, जो–परमानंददास! व्रज में सगरो प्रेम व्रजभक्तन को है, सो श्रीनंदरायजी, गोपीजन, ग्वाल, सखान को। तामें सब तें श्रेष्ठ प्रेम किन को है?

भावप्रकाश—सो काहेतें? जो-तिहारी बाललीला में लगन बहुत हैं। और तुम कृपापात्र भगवदीय हो, तासों यह संदेह है सो दूरि करो। सो या प्रकार रामजीदासजी ने परमानंददास सों यों पूछी, जो–श्रीआचार्यजी के अभिप्राय में तो गोपीजनन को प्रेम बहोत है, और परमानंददास ने नंदालय की लीला और बाललीला बहुत वर्णन किये हैं, तासों श्रीआचार्यजी के हृदय के अभिप्राय की खबरि परी कि नाहीं? तासों परमानंददास की परीक्षा लीनी।

ता समय परमानंददास ने यह पद गायो। सो पद—

नायकी—'गोपी प्रेम की ध्वजा०।'
कान्हरो—'व्रजजन सम धर पर कोउ नाहीं०।'

सो यह पद परमानंददास ने गाये। तब सगरे वैष्णव कहे, जो–परमानन्ददास तुम धन्य हो।

या प्रकार सगरे वैष्णव प्रसन्न होय के परमानंददास की सराहना करत बिदा होय अपने घर आये। ता पाछे परमानंददास ने बहोत दिन तांई श्रीगोवर्द्धननाथजी के कीर्तन की सेवा कीनी।

वार्ताप्रसंग:—६ ता पाछे एक दिन परमानंददास श्रीगुसांईजी के और श्रीनवनीतप्रियजी के दरसन कों गोपालपुर

तें श्रीगोकुल आये, सो दरसन करिके रात्रि तहां रहे। पाछे प्रातःकाल श्रीगुसांईजी स्नान करिके श्रीनवनीतप्रियजी के मंदिर में पधारे तब परमानंददास कों बुलाये। तब परमानन्ददास आगे आय दंडवत किये। सो तब गुसांईजी आपु परमानन्ददास सों कहे, जा श्रीठाकुरजी कों सगरी लीला ब्रज की बहोत प्रिय है। सो नित्य लीला ब्रज की श्रीठाकुरजी कों सुनावे, सो तो कोई काल में हू पार पावे नाहीं। सो काहेतें? जो-एक लीला को पार पैये, तो सगरी लीला कौन गावे। परन्तु मैं एक कीर्तन कर देत हों, तामें सगरी व्रज की लीला को अनुभव है। सो तुम या समय नित्य गाईयो। तब परमानन्ददास कहे जो-महाराज! वह पद कृपा करिके बताइये। सो श्रीगुसांईजी तो मारग के चलायवे वारे हैं सो भाषा के पद करे नाहीं। तासों संस्कृत में कीर्तन गायो। सो पद—

'मंगल मंगलं व्रजभुवि मंगलम्०।

सो यह पद श्रीगुसांईजी आपु गाइके परमानन्ददास कों गवाये। सो परमानन्ददास 'मंगल मंगलं० गाये। तब मंगल रूप परमानन्ददास ने और हू पद गाये। सो पद—

भैरव—'मंगल माधो नाम उचार०।'

सो यह पद परमानंददास ने गायो, ता पाछें श्रीगुसांईजी आपु मंगल भोग सराय के मंगला आरती किये। ता समय परमानंददास ने यह पद गायो। सो पद—

भैरव—'मंगल आरती करि मन मोर०।'

सो या प्रकार श्रीगुसांईजी कृत 'मंगलं मंगलं०' के अनुसार परमानंददास ने बहुत कीर्तन किये, और श्रीगुसांईजी कृत 'मंगलं मंगलं०' पद नित्य गावते।

भावप्रकाश—यामें सगरो व्रजलीला है, सो ठाकुरजी कों नित्य सुनावत हैं, और मंगल मंगलं० के पाठ तें व्रजलीला को सब पाठ होय। सो तहां मंगला को पद परमानंददास ने कियो सो तामें कहे 'मंगल तन वसुदेव कुमार०।' सो तहाँ यह संदेह होय जो-परमानंददास तो नंदनंदन के उपासक हैं। सो वसुदेव कुमार व्रजलीला में कहे, ताको कारन कहा ?

तहाँ कहत हैं, जो—वेणुगीत और युगलगीत में 'देवकीसुत' गोपिकान नें कहे, सो ये कुमारिका के भावतें। सो काहेतें ? जो—कुमारिका श्रीयशोदाजी कों माता कहते, तासों श्रीठाकुरजी में पतिभाव है। याही सों वसुदेव—सुत कहि पतिभाव दृढ़ करत हैं। जो यशोदा सुत कहें, तो भाइ बहन को भाव होय।

पाछे परमानंददास श्रीगोवर्द्धन के दरसन कों श्रीगोकुल तें श्रीगिरिराज आये। सो तहाँ मङ्गला आरती पहलैं 'मंगल मंगलं०' पद परमानंददास ने गायो। सो श्रीगोवर्द्धनधर के यहां 'मंगल मंगलं०' की रीति भई। सो वे परमानंददास ऐसे कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्तांप्रसंग: ७—और जब जन्माष्टमी आवती तब श्रीगुसांईजी आपु श्रीनवनीतप्रियजी कों पंचामृत स्नान करवाय के सिंगार करि श्रीगिरिराज पर्वत ऊपर पधारि के श्रीगोवर्द्धननाथ जी के सिंगार करते। ता पाछे राजभोग सों पहोंचि के फेरि श्रीगिरिराज तें श्रीगोकुल आवते। सो तहाँ श्रीनवनीतप्रियजी कों मध्यरात्रि कों जन्म की रीति करिके पलना झुलाय श्रीनाथजी के यहाँ नंदमहोत्सव करते। सो जब जन्माष्टमी आई, तब श्रीगुसांईजी आप परमानन्ददासजी कों संग लेय के श्रीगिरिराज जी सों श्रीगोकुल पधारे। सो जन्माष्टमी के दिन श्रीगुसांईजी आपु श्रीनवनीतप्रियजी कों अभ्यंग कराये। ता समय परमानंददास ने यह बधाई गाई। बधाई—

धनाश्री—'मिलि मंगल गावो माई० ।'

ता पाछें श्रीगुसांईजी ने श्रीनवनीतप्रियजी के सिंगार करिके तिलक कियो ता समय परमानंददास ने यह पद गायो। सो पद—

सारंग—'आज बधाई को दिन नीको० ।
'घर-घर ग्वाल देत हैं हेरी० ।'

या प्रकार परमानंददास ने बहोत पद गाये । ता पाछै अर्द्ध रात्रि के समय श्रीगुसांईजी आपु जन्म कराय के श्रीनवनीतप्रियजी कों पालने में पधराये, श्रीयसोदाजी, गोपी-ग्वाल को भेख धराये । ता समय परमानंददास ने यह पद गायो । सो पद–

धनाश्री—'सोवन फूलन फूली जसोदा० ।'

भावप्रकाश—सो या पद में परमानंददासजी यह कहे जो—'ऐसे दसक होय जो औरे तो सब कोऊ सचु पावे ।' सो भगवदीयन के वचन सत्य करिवे के लिये श्रीगुसांईजी के बालक सातों और श्रीगुसांईजी तथा श्रीआचार्यजी तथा श्रीगोवर्द्धननाथजी सो ये दस स्वरूप प्रगट होय के सबकों सुख दिये हैं । सो 'सब' माने सगरे दैवी पुष्टिमार्गीय । सो या प्रकार सों भाव सहित परमानंददास नें कीर्तन गाये ।

पाछें श्रीनंदरायजी और गोपी ग्वाल वैष्णवन के जूथ अपने लालजी सब (कों) लेके दधिकादो किये । तब परमानंददास को चित्त आनन्द में विक्षिप्त होय गयो। वा समय परमानंददास नाचन लागे और यह पद गायो । सो वा प्रेम में परमानंददास राग को हू क्रम भूलि गये । सो रात्रि को तो समय और सारंग में गाये सो पद–

सारंग—'आजु नंदराय के आनंद भयो० ।'

यह पद गाये पाछे परमानन्ददास प्रेम में मूर्छा खाय भूमि

में गिरि पड़े तब श्रीगुसांईजी आपु अपने श्रीहस्तकमल सों परमानन्ददास कों उठाय के अंजुलि में जल लेके वेद मन्त्र पढ़ि के आपु परमानन्ददास के ऊपर छिरके । सो तब उच्छलित प्रेम जो विकल करतो, सो हृदय में स्थिर भयो । सो परमानन्ददास सगरी लीला कों अनुभव किये, और गान किये ।

या प्रकार परमानन्ददास के ऊपर श्रीगुसांईजी ने कृपा करी । ता पाछे यह पद पलना को परमानंददास ने गायो । सो पद–

बिलाबल—'हालरो हुलरावत माता० ।'

भावप्रकाश—सो या भांति सों 'अखिल भुवनपति गरुडागामी' ऐसे परमानन्ददाजी ने कह्यो । सो अखिल भुवन-पति यातें जो श्रीभगवान् गरुड़ पै विराजमान सो (तो) सब जगत् के पति हैं और नंदसुवन ठाकुर, सो परमानंददास ने कही, जो—ये मेरे स्वामी हैं ।

सो यह कीर्तन सुनि के श्रीगुसांईजी आपु परमानन्ददास के ऊपर बहोत प्रसन्न भये । ता पाछे परमानन्ददास ने यह पद कान्हरो राग में करिके गायो । सो प्रेम में राग को क्रम नाहीं, लीला को क्रम । सो जैसी लीला करी, सो स्फुरी । सो तैसे परमानन्ददास गाये । सो पद—

कान्हरो—'रानी तिहारो घर सुवस बसो० ।'

सो यह असीस को पद परमानन्ददास ने गायो । तब श्रीगुसांईजी आपु अपने पुत्र श्रीगिरिधरजी कों श्रीनवनीतप्रियजी के पास राखि के दधिकादों किये । ता पाछे परमानन्ददास कों संग लेके श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोवर्द्धनाथजी के दरसन किये । सो दधिकादों देखि के परमानन्ददास लीलारस में मग्न होय गये । ता पाछें श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोवर्द्धननाथजी कों राज-

भोग धरिकें बाहिर आये। तब श्रीगुसांईजी आपु परमानन्ददास की अलौकिक दसा देखि के कहे जो—जैसे कुंभनदास को किसोर लीला में निरोध भयो, सो तैसे बाललीला में परमानन्ददास को निरोध भयो है।

पाछे परमानन्ददास श्रीगुसांईजी कों दंडवत करि, पर्वत तें नीचे उतरे सो श्रीगोवर्द्धननाथजी की ध्वजा कों दंडवत करि, सुरभीकुंड ऊपर आयके अपने ठिकाने कुटी में आय बोलिवो छोड़ि दियो। सो नंदमहोत्सव के रस में मग्न होयके परमानंद-दास अपनी देह छोड़िवे को विचार करिके सुरभीकुंड ऊपर आयके सोये और यहाँ श्रीगुसांईजी आपु श्रीनाथजी की राज-भोग आरती करिके अनोसर करवाये।

पाछे श्रीगुसांईजी आपु सेवकन सों पूछे, जो—आज राज-भोग आरती के समय परमानंददास कों नाहीं देखे, सो कह गये? तब एक वैष्णव ने श्रीगुसांईजी सों आय बिनती कीनी जो—महाराज! परमानंददासजी तो आजु विकल से दीसत हैं, और काहू सों बोलत नाहीं, और सुरभीकुंड पै जायकेसोये हैं। तब गुसांईजी आपु वा वैष्णव कों संग ले सुरभीकुंड ऊपर पधारि के परमानंददास के पास आये। परमानंददास के माथे पर श्रीहस्त फेरि के श्रीगुसांईजी आपु परमानन्ददास सों कहे जो—परमानन्ददास! हम तुम्हारे मन की जानत हैं। जो अब तिहारो दरसन दुर्लभ भयो। तब परमानन्ददास ने उठि के श्रीगुसांईजी कों साष्टांग दंडवत किये। ता समय यह पद परमा नंददास ने गायो। सो पद—

सारंग—'प्रीति तो श्रीनंदनंदन सों कीजे०।'

सो यह पद परमानंददास ने श्रीगुसांईजी कों सुनायो ।

भावप्रकाश–सो परमानंददासजी ने या पद में श्रीगुसांईजी सों प्रार्थना कीनी, जो प्रीति हू तुमसों करनो सो सदा कृपा एकरस करो । सो परम कृपालु अपने हस्त कमल की छाया तें जन कों राखत हैं । या समय हू मोकों दरसन देय मेरे मस्तक ऊपर श्रीहस्तकमल धरे । सो मेरे अन्तःकरण में जो मेरो मनोरथ हतो सो पूरन कियो । सो वेद पुरान सबही कहत हैं जो सदा भक्तन को भायो करि आनन्द दिये हैं । जैसे एक समैं इन्द्र की पदवी लायक जीव कोई न देखे तब भगवान् ही इन्द्र होय इन्द्र को कार्य चलाये । सो प्रसाद वैष्णव सुदामा भक्त कों दिये । तामें सुदामा को वैभव पाये हू मोह न भयो । सो तैसें आपु जो ब्रज में लीला करत हैं सो परमानन्ददास सों कृपा करिके मोकों दान दिये । सो आपके गुन मैं कहाँ तक कहौं । ऐसी प्रार्थना परमानन्ददासजी श्री-गुसांईजी सों किये ।

यह पद सुनिके श्रीगुसांईजी आप बहुत प्रसन्न भये । ता समय एक वैष्णव ने परमानंददास सों कह्यो, जो मोकों कछू साधन बताओ सो मैं करों । तातें श्रीठाकुरजी आपु मेरे ऊपर प्रसन्न होय के कृपा करें ।

तब परमानंददास वा वैष्णव सों प्रसन्न होय के कहे जो–तुम मन लगाय के सुनो । जो सुगम उपाय है सो मैं कहूँ या बात कों मन लगाय के सुनोगे तो फल सिद्धि होयगी । सो या प्रकार प्रीति सों समाधान करि के परमानन्ददास ने एक पद वा वैष्णव कों सुनायो । सो पद—

भैरव–'प्रात समय उठि करिये श्री लछमन सुत गान० ।'

सो या प्रकार यह कीर्तन परमानन्ददास ने गायो । यह सुनि के श्रीगुसांईजी और सगरे वैष्णव प्रसन्न भये ।

ता पाछे श्रीगुसांईजी आपु परमानंददास सों पूछे जो–

परमानंददास ! अब तिहारो मन कहाँ है ? तब परमानंददास ने यह कीर्तन सारंग राग में गायो । सो पद—

सारंग—'राधे बैठी तिलक संवारति० ।'

सो या प्रकार जुगल स्वरूप की लीला में मन लगाय के परमानंददास देह छोड़ के श्रीगोवर्द्धननाथजी की लीला में जाय के प्राप्त भये। पाछे श्रीगुसांईजी गोपालपुर में आय के स्नान करिके पर्वत के ऊपर श्रीगोवर्द्धननाथजी को उत्थापन कराये। पाछे सेन पर्यंत सेवा सों पहोंचि के अनोसर करवाय पर्वत तें उतरि अपनी बैठक में आय बिराजे। तब सब वैष्णवन नें परमानन्ददास की देह कों अग्निसंस्कार कियो और पाछे गोपालपुर में आय के श्रीगुसांईजी के आगे बहोत बड़ाई करन लगे।

सो ता समय श्रीगुसांईजी आपु उन वैष्णवन के आगे यह वचन श्रीमुख सों कहे जो-ये पुष्टिमारग में दोइ 'सागर' भये। एक तो सूरदास और दूसरे परमानन्ददास। सो तिनको हृदय अगाधरस, भगवल्लीला रूप जहाँ रत्न भरे हैं। सो या प्रकार श्रीगुसांईजी आपु श्रीमुख सों परमानन्ददास की सराहना किये। सो वे परमानन्ददासजी श्रीआचार्यजी के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हते। जिनके ऊपर श्रीगोवर्द्धननाथजी सदा प्रसन्न रहते। तातें इनकी वार्ता को पार नाहीं। सो अनिवर्चनीय है, सो कहां तांई कहिये।

———

'अष्टछाप की काव्य-परम्परा'

और

'परमानंद-सागर'

[क. गोकुलानन्द तैलङ्ग, साहित्यरत्न]

भक्ति और काव्य: दोनों एक-रस-रूप हो कर 'रसिक' जनों के अन्तस्तल को, उनके रग-रग को'''उनकी समग्र बहिः और अन्तश्चेतन वृत्ति को सन्दीपित, सम्मोहित करते हैं। दोनों आत्मधर्मी, रस-धर्मी हैं। दोनों परस्पर एक-दूसरे को अनुप्राणित करते हैं। अन्तः की बीज रूप रागात्मिका वृत्ति किसी प्रेष्ठ में रम जाने पर भक्ति का रूप पाती है और कला एवं कल्पना का उपजीवन, आधार ले कर वही काव्य-वाणी के रूप में हृदय से भावावेग के साथ भाव-जगत में प्रस्फुटित होती है। फिर यदि उसने रसिकों के मन-मानस में भवातिरेक के साथ कण्ठ-माधुरी का परिधान पा लिया, रस-गुञ्जन के रूप में वह तरलित हो उठी तो संगीत वा कीर्तन के नाम से अभिहित होती है। भगवल्लीला-रस के गायक, गीति-काव्य के कलित कलेवर में भगवच्चरित्र के विधायक, रसिक महानुभावों के व्यक्तित्व में भक्ति और काव्य की :आत्मा इसी रूप में सम्पुटित होती है। दोनों ही के मूल में रस-प्राणता है। उनकी लीला रसिकता भक्ति को और भक्ति काव्य को प्राण-स्फूर्ति देती है। इस प्रकार दोनों एकरूप हो जाते हैं। भक्त को कवि और कवि को भक्त बन जाना सहज सम्भाव्य हो जाता है। रस-गीतिकार तो वह दोनों रूप में हैं ही। इसी को यों भी कहा जा सकता है कि भक्ति और काव्य हृदय की रस-वृत्तियों का प्रतिफलन है। दोनों ही अन्तरतम में कोमल भावों की रसात्मक अभिव्यक्ति और आत्म-निष्ठा के प्रतीक हैं। भक्ति सर्वस्व आत्मसमर्पण है, काव्य उस सर्वस्व-समर्पण की दिशा में उन्मुख पुञ्जीभूत भावनाएँ। दोनों का उद्गम-स्थल बाह्यतः निर्विकार दृश्यमान् आत्मा के अन्तस्थ का एक ही रस-स्रोत है, जो मानव को एक-एक बिन्दु के अमर-दान से चिर सञ्जीवन, पोषण और चेतन प्राण-रति दे रहा है। इस दृष्टि से दोनों ही एक-रूप, अविच्छिन्न और निर्विकल्प हैं। सूत्ररूप में दोनों ही आत्म-धर्म हैं।

अष्टछाप में हमें भक्ति और काव्य की इस आत्मधर्मता के दर्शन होते हैं। उसमें कहाँ केवल भक्ति है, कहाँ विशुद्ध काव्य है, यह बताने वाली कोई विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती। ये महानुभाव भक्त और कवि साथ साथ हैं, आगे-पीछे नहीं।

भक्त, कवि और कीर्तनकार

अष्टछाप और उसकी काव्य-परम्परा के महानुभावों पर यह एकरूपता पूरी तरह चरितार्थ होती है। उनका व्यक्तित्व भक्त, कवि और कीर्तनकार : इस त्रिविध कला-साधना का समन्वय है। उनके साहित्य की सत्य, शिव, सुन्दर साधना में उनके जीवन के तीनों पार्श्वों को दृष्टि-बिन्दु में रखना पड़ेगा। ये साहित्य, संगीत और कला के विधायक, रस भावना के मर्मज्ञ और पारखी केवल एकरूप ही नहीं हैं, तीनों का एक समन्वित समग्र रूप है। उनके तीनों रूप एक दूसरे से गुथे हुए हैं। उनका वैज्ञानिक विश्लेषण किया जा सकता है, पृथक्-पृथक् भी और समग्र रूप में भी। किन्तु उनकी ओत-प्रोत त्रिविधता के बीच विभाजक रेखाएँ नहीं खींची जा सकतीं। उनका एक ही दृष्टिकोण से किया हुआ मूल्यांकन अधूरा और असमीचीन होगा।

यह सब होते हुए भी, वे पहिले भक्त हैं, फिर कवि और अन्ततः पद-कीर्तनकार। उनके तीनों रूप एक दूसरे की क्रम-कोटियाँ है। पृथक् परिलक्षित होने पर भी भक्ति, काव्य और संगीत एक ही रस-स्रोत से अनुप्राणित हैं। उनकी भक्ति वा रागात्मिका वृत्ति में काव्य की रस-प्राणता भी है और संगीत की आनन्द-माधुरी भी। इसी प्रकार काव्य की रस-प्राणता राग-वृत्ति से असंश्लिष्ट नहीं। फिर संगीत की आह्लाद-कारिणी मधुरिमा का प्रतिफलन भी प्रेम, राग और रस का ही मनोरम प्रतीक है। अलौकिक, आध्यात्मिक स्तर से देखने पर वे एक-दूसरे के कार्य-कारण, अथवा तद्रूप और एक ही मधुर-मादन-भाव से परिलुप्त, प्रेरित और अभिव्यंजित हैं।

इस प्रकार, इस मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर, अष्टछाप और उनके अनुगत भक्त-कवियों का अति संश्लिष्ट स्वरूप हमारे समक्ष आता है। फिर भी उनके विशिष्ट पार्श्व का उभार, उनके काव्य-गत

विशिष्ट व्यक्तित्व की झलक, इस संश्लिष्टता के बीच में से भी, स्पष्ट आँखों में उतरती हुई प्रतीत होती है। त्रिविधता में से किसी का कोई, किसी का कोई स्वरूप अधिक समुज्ज्वल दिखाई देता है, और इसी दृष्टि से भक्त, कवि वा कीर्तनकार रूप में उन्हें अलग-अलग पहिचाना और परखा जा सकता है।

उनकी एकरस, एकरूप संश्लिष्टता का मुख्य कारण उनका समान रूप से 'हरि-लीला-गान' है। उनकी वाणी में भगवल्लीलाओं का रस-निरूपण पूर्णतः अभिव्यक्त होता है। भक्ति, विनय, माहात्म्य, स्वरूप-सौन्दर्य, रास-विलास, नित्य दैनन्दिन और वर्षोत्सव-ऋतु-लीलाएँ उसी के विविध पार्श्व हैं। कवि अपने समय की वेगवती भक्ति-भावधारा में आकण्ठ-मग्न, निमज्जित हो कर लीलानुगायन कर रहा है। लीला-स्वानुभव ही उसके इस लीला-गान का मूल-स्रोत और प्रेरणा है।

अन्तरंग-लीला-स्वानुभव के आधार पर, इस भगवद्यश-गान की प्रमुखता के कारण ही, अष्टछाप के कवियों को 'अष्टसखा' के रूप में पुष्टिमार्ग की सेवा-प्रणाली में कीर्तनकार का गौरव प्राप्त हुआ। स्वयं भावुक हृदय, कवि-वाणी और गीत-मधुर कण्ठ पाकर वे भक्ति, काव्य, संगीत की पावन, सरस त्रिवेणी रसिक-जनों के अन्तस्तल में तरलित कर सके। तीनों धाराओं की संगति वा एक-रस-धर्म में उनके योग ने उन्हें उच्चकोटि के महाकवि के रूप में प्रतिष्ठापित किया। यह अवश्य है कि उनके भक्ति, काव्य का व्यवहृत वा कलात्मक रूप संगीत वा पद-कीर्तन के माध्यम से व्यक्त हुआ। संयोग और सुयोग ही ऐसा था कि उनकी भावात्मक लीलानुभूति काव्य-वाणी में ढल कर गेय पदों में अवतरित होती थी, जिसका विनियोग प्रभु-सेवा के नित्य-लीला-क्रम वा वर्षोत्सवों में स्वतएव कवि के द्वारा अथवा उसके समवर्ती वा परवर्ती रसिक आचार्य, भक्त, सेवा-विधान के प्रवर्तकों द्वारा होने लगा। उनकी दोनों ही स्थितियाँ थीं, प्रभु के लीला-तत्व, भावना, ऋतु-काल, रसानुभूति के अनुरूप नित्य, नवीन पद-कीर्तनों की रचना कर वे सेवा में स्वयं भी गाते थे और समय-समय पर तत्तल्लीलानुभूति-काव्य-रचनाएँ जो वे स्वतन्त्र रूप से करते थे, सेवा-भावना के अनुरूप संगत होने के कारण उनका प्रयोग दूसरों के द्वारा भी होता था। दोनों ही रूप से उनका प्रकट

व्यक्तित्व एक कीर्तनकार के रूप में आँका जाने लगा, जिसमें उनका भक्त वा कवि रूप प्रच्छन्न हो गया। अवश्य ही उनके समग्र व्यक्तित्व की परख और निखार के लिये यह दृष्टिकोण एकांगी और अवांछनीय है। इससे कवि केवल स्थूल कीर्तनकार रह जाता है, जो वस्तुतः सत्य नहीं। उसके अन्य पहलुओं को स्पष्ट उभार देने पर ही उनके 'अष्टछाप' होने का गौरव सुरक्षित रह सकता है।

अष्टछाप का साहित्य और भक्ति-परम्पराओं में इतना व्यापक गौरव उनकी भक्ति-कवि-गीतकार के रूप में त्रिविधता के कारण ही है। पुष्टिमार्ग के आदि-प्रवर्तकों के मानस में भी यही समग्रता घर किये थी, भक्ति-साधना का एक मनोरम कल्याणकारी रूप प्रतिष्ठापित करनेके लिये ही उन्होंने अपने संस्थानों के विविध क्रिया-कलापों की गति-विधियों में विविध कलाओं को समन्वित किया। 'अष्टछाप' उसी का एक प्रतीक है। किन्तु काल के गति-प्रवाह के साथ-साथ क्रमशः उनकी यह समग्र-रूपता वा समन्वयकारी नीति लोप होती गयी और मर्मज्ञता के स्थान पर उसमें स्थूल-रूपता का अभिनिवेश होने लगा।

फलतः अष्टछाप को इस समग्र रूप में देखने का साहित्य-जगत् में बहुत कम प्रयास किया गया है। उनके इस त्रिविध व्यक्तित्व को मानते सभी हैं, इस पुण्य त्रिवेणी में अवगाहन कर सभी अपने को धन्य एवं कृतकृत्य अनुभव करते हैं, फिर भी जब उनके स्वरूप का निर्देशन वा मूल्यांकन करने बैठते हैं, तो विवेचकों की दृष्टि-बिन्दु में विभिन्नता आ जाती है। भक्ति वा पुष्टिमार्ग के भावुक जन उन्हें 'अष्टसखा' मान कर ही उनके लीला वा भावनात्मक स्वरूप में रम जाते हैं। एक साहित्यिक उनके काव्य-रस का आस्वादन वा भाव और कला-पक्ष की चमत्कृतियों से चकित हो कर उन्हें हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की सगुण-धारा वा कृष्ण-शाखा के समर्थ 'कवि' मान कर मौन हो जाता है। एक संगीतकार उन्हें पुष्टिमार्गीय मन्दिरों के 'कीर्तनिया' से अधिक महत्व न दे कर उनके संगीताचार्यत्व वा संगीतकला-मर्मज्ञता को दृष्टि से ओझल कर जाता है।

किन्तु इस एकांगी अध्ययन वा अनुशीलन से ऊपर उठ कर, विचारकों के चिन्तन को व्यापक और समग्ररूपता देने की अब आवश्यकता है।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना है कि कीर्तनकार-रूप भी किसी प्रकार गौण व न्यून नहीं, यदि उसके साथ ही उसमें संश्लिष्ट कवि और भक्त-रूप का भी निदर्शन कर दिया जा सके। कीर्तन तो स्वयं एक भक्ति है—नवधा भक्ति की एक विधा। अतः कीर्तनकार होना बहुत बड़े गौरव की वस्तु है। हमारा मन्तव्य यही है कि सभी को इसी एक कसौटी पर नहीं कसा जाय। जिसमें जो विशेषता है, उसे प्रमुखता देकर उसके काव्य का मूल्यांकन हो।

इसी एकांगी दृष्टि से कुछ रूढ़िवादी स्थूल भक्तों वा साहित्यिकों ने अष्टछाप-काव्य को वर्षोत्सव, नित्य-कीर्तन और विनय-आश्रय-माहात्म्य वा प्रकीर्ण : इन खण्डों में वर्गीकृत किया है। यह वर्गीकरण विशुद्ध संगीतकारों वा कीर्तन-पद्धति की सुविधा की दृष्टि से है। किसी कवि-विशेष वा कीर्तन-संग्रहों को नित्य-वर्षोत्सवादि का निर्वाह करते हुए राग-क्रम में भी बांधा गया है। इसीलिये कीर्तन-संग्रहों में 'बसन्त-धमार' के नाम से एक अलग खंड मान लिया गया है। इस विषय वा राग के पदों की बहु-संख्या होने के कारण ही सम्भवतः इस खण्ड को विशिष्टता मिली होगी। अन्यथा वर्षोत्सव-खण्ड में ही इस विषय को स्थान देना उचित है। सेवा-समयों की राग के समयों से अवश्य संगति है। किन्तु भावना, लीला-प्रसंग, रस-विषयों आदि की दृष्टि से इस राग-क्रम का सर्वदा पूर्ण निर्वाह नहीं हो पाता।

भगवल्लीला और कीर्तन—काव्य

जो भी हो, अष्टछाप वा उसकी परम्परा पर काव्य निर्माण करने वाले किसी कवि-व्यष्टि अथवा कीर्तनकार-समष्टि को इस नित्य-वर्षोत्सव-कीर्तन-प्रणाली की कसौटी पर ही उतारना सर्वथा निरापद वा औचित्य-संगत नहीं। अष्टछाप के भी सभी कवियों ने पदों का निर्माण केवल कीर्तनों की दृष्टि से नहीं किया है, कीर्तन के उपयोगी उनका काव्य हो जाता है, यह अलग बात है। सूरदास, परमानन्ददास, कृष्णदास सरीखे कवि ऐसे हैं, जो विशुद्ध भक्त-रूप में भगवल्लीला-गान करते हैं। वे श्रीमद्भागवत की विविध लीलाओं, जिनमें दशमस्कन्ध की पूर्वार्द्ध-लीला वा ब्रज-लीलाओं की मुख्यता है, का अनुक्रम लेकर चले

हैं। रस-निधि लीलाओं की प्रधानता और स्वयं उनके हृदय में रस-सागर के अनुरणण तरंगित रहने के कारण ही वे व्यक्तिगत रूप से और उनका काव्य 'सागर' के नाम से अभिहित हुआ है। सूरसागर, परमानन्दसागर, कृष्णसागर आदि नामोल्लेख का यही मर्म है। इसे केवल पदों की बहुसंख्यकता ही नहीं समझ लेना चाहिये। हिंदी-साहित्य में भागवतीय-लीलाओं पर आधारित प्रेमसागर, सूरसागर, शुकोक्ति-सुधा-सागर आदि नामों से सागरों की भी अपनी एक परम्परा है। हाँ, जहाँ तक पुष्टिमार्ग का सम्बन्ध है, ये दशम-आधारित 'सागर' रूप लीलाएँ अवश्य ही पुष्टिमार्गीय सेवा-प्रणाली में अधिगत आठों समय की नित्य वा वर्षोत्सव की विविध लीलाओं की उद्गम-स्थली है। इसीलिये उनमें परस्पर इतनी एक रूपता है कि दशमस्कन्धीय लीलाओं और सेवा-भावना की लीलाओं में कोई भेद नहीं रह जाता और यह भ्रम सा होने लगता है कि इन भक्त-कवियों ने नित्य और वर्षोत्सव के पद ही गाये हैं। किंतु यह निश्चित है कि सागर-कारों ने नित्य-सेवा वा वर्षोत्सवों को आधार-तत्व मान कर काव्य-रचना नहीं की। दशम ही नहीं, उन्होंने तो अपने 'सागरों' को द्वादश स्कन्धात्मक प्रारूप भी किन्हीं अंशों में दिया है। सूरसागर को इस रूप में ले सकते हैं। साथ ही यह भी द्रष्टव्य है कि उन्होंने गौण रूपेण, थोड़े से अंश में वर्षोत्सव-सम्बन्धी तथा विनयाश्रयादि विषयक पद-रचना भी की है। किन्तु इतने से ही उन्हें कीर्तनात्मक रूप में नहीं व्यक्त किया जा सकता। 'सागर' कारों के अतिरिक्त शेष कुम्भनदास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, गोविंद-स्वामी, नन्ददास अथवा इन्हीं के कोटि के अन्य अष्टछाप-परम्परारत कवियों को स्थूल रूप में अवश्य कीर्तनकार-रूप में निदर्शित किया जा सकता है।

इनमें भी नन्ददास का एक स्वतन्त्र अस्तित्व है। वे कीर्तनकार की अपेक्षा कवि रूप में अधिक निखरे हैं। उनकी पंचमंजरी, नाममाला आदि तो विशुद्ध काव्य-रचनाएँ हैं। स्याम-सगाई, रुक्मिणी-मंगल आदि भागवतीय लीलाएँ वा पुष्टिमार्गीय भावनात्मक लीला-काव्य होते हुए भी खण्ड-काव्य हैं, जिनको सामान्य कीर्तन-कोटि में नहीं रखा जा सकता। वे तो रस-अलंकार शास्त्र के महापंडित, महाकवि हैं।

काव्य-वर्गीकरण

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि नित्य-क्रम, वर्षोत्सवादि के रूप में कीर्तनात्मक वर्गीकरण सभी कवियों पर समान रूप से प्रयुक्त नहीं होता। पुष्टिमार्ग में स्थूल कीर्तन-भक्ति के ग्राहक अधिक संख्या में हुए, साम्प्रदायिक परिसीमाओं से परे विविध रूपों के भक्ति-काव्य का विश्लेषण वा मूल्यांकन करने की परम्परा कम रही। इसीलिये यहाँ अष्टछाप से बहुमुखी प्रतिभावान् कवियों के विभिन्न पहलुओं पर विचार नहीं किया जा सका। इन महानुभावों का व्यक्तित्व, उनके त्रिविध रूपों के अति संश्लिष्ट होने के कारण केवल कीर्तनकार रूप में व्यक्त कर देने से, विषय-वर्गीकरण-सम्बंधी कुछ व्यावहारिक असुविधाएँ भी आती हैं। वर्षोत्सव और नित्यलीला की भावनाओं में कहीं-कहीं ऐसा साम्य आ जाता है, कि किस पद को वर्षोत्सव में रखें, किसे नित्यक्रम में, यह निर्णय करना कठिन हो जाता है। कुछ विशुद्ध शृंगार-रस और नायिका भेद-सम्बन्धी पदों का भी स्थान-निर्धारण करना कठिन हो जाता है। इसी प्रकार विशुद्ध प्रकृति-वर्णन, रस-क्रीडाओं और श्रीमद्भागवतीय प्रसंगों तथा सामान्य स्वरूप-सौन्दर्य-माधुर्य अथवा पुष्टिमार्गीय भावनाओं को बलात् वर्षोत्सव और नित्य-लीला के संकुचित विषय-वर्गीकरण की सीमाओं में बांधना असंगत वा अन्याय सा प्रतीत होने लगता है। कुछ इस प्रकार की समस्याओं पर विचार कीजिये—

(क) नित्यलीला और वर्षोत्सव—

नित्यलीला के कुछ प्रसंग ऐसे हैं, जिनमें वर्षोत्सव-विशेष की भावनाएँ भी मिली-जुली सी हैं। ऐसे पदों में यह छांटना कठिन हो जाता है कि किस पद को नित्य-क्रम में रखें, किसे वर्षोत्सव में। उदाहरणार्थ-

१. गोचारण :—इस विषय के संकलित पदों में कुछ तो ऐसे हैं, जिन्हें स्पष्ट रूप में नित्य-गोचारण में रखा जा सकता है। और कुछ को वर्षोत्सव के गोपाष्टमी प्रसंग में कुछ पदों में दोनों की मिली-जुली भावनाएँ हैं, उनका स्थान निर्धारित करना कीर्तनात्मक शैली में कठिन है, वलात् भले ही उन्हें कहीं न कहीं बैठा दिया जाय।

२. *रास और वेणुवादन* :—इस विषय के पद भी शरद्‌कालीन वर्षोत्सव, रास और नित्यलीला में समागत वन-क्रीडा वा आवनी अथवा सामान्य वेणुवादन : इन दो खंडों में बँट जायेंगे। कुछ दोनों में संगत बैठने पर उनका उचित स्थान निर्धारित करना एक समस्या बन जायगा।

३. *दान* :—कीर्तन-पद्धति में इस विषय को वर्षोत्सव में समाविष्ट करना पड़ेगा, किंतु वे ही पद निरापद रूप से इसके अन्तर्गत आ सकेंगे, जो सीधे दान-एकादशी से सम्बद्ध होंगे। किंतु अन्य सामान्य रस-दान-सम्बंधी शृंगारिक पद कहाँ जायेंगे? साहित्यिक दृष्टि से तो वह स्वतंत्र काव्य-विषय है, उसे साम्प्रदायिक 'दान' में नहीं बैठाया जा सकता, न वह स्पष्ट रूप से भागवतीय लीला का ही अंग बन सकता है। यह तो ब्रज की लोक-भावना का रस-विषय अवश्य है।

४. *गंगाजी, यमुनाजी* :—इन पदों को वर्षोत्सव, गंगा-दशहरा में नियोजित कर देना वास्तविक साहित्यिक मूल्यांकन नहीं है। फिर स्वतंत्र स्तुति वा माहात्म्य वा नैसर्गिक सुषमा के पद इसी शीर्षक में असंगत से होंगे।

५. *गुसाईंजी, महाप्रभुजी*:—इस विषय के पद क्रमशः वर्षोत्सव, पौष-कृष्ण ६ और बैशाख कृष्ण ११ : जन्मदिनः में सम्मिलित किये जा सकते हैं, किंतु वहाँ केवल जन्म वा बधाई सम्बन्धी पदों के लिये ही स्थान है, अन्य गुरु-निष्ठा, विनय, हरि-रूप लीला, माहात्म्य वा आश्रय के पदों को वहाँ देने में क्या औचित्य है। फिर ये उत्सव भी साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से हैं। सामान्य साहित्यिक दृष्टिबिंदु में तो वे आचार्य-स्वरूप हैं, अतः उनके जन्मोत्सवों की गणना इस हरि-लीला-गान में जन्माष्टमी के प्राकट्य के स्तर पर नहीं हो सकती। गुरु-गोविंद की एक-रूपता तात्विक दृष्टि से है, आचार्य-चरण वा श्रीवल्लभ तथा उनके परिवार की साक्षात्

पूर्ण पुरुषोत्तमत्व की मान्यता भी उनके अनुगत वैष्णव-सृष्टि की निष्ठा वा भावना है, सामान्य लोक वा साहित्य-जगत् की नहीं। तब यह विषय एक प्रकीर्ण-कोटि में आता है, वर्षोत्सव में इसका स्थान विचारणीय है।

(ख) नित्यलीला और रस-नायिका-भेद—

नित्यलीलाओं में कुछ प्रसंग ऐसे हैं, जिनमें केवल स्थूल घटना-क्रम वा सेवा-भावना ही नहीं, उनके ब्याज से कवियों में शृङ्गार, करुणा, सख्य, वात्सल्य, अद्भुत, शान्त, भक्ति, प्रेम आदि विविध रसों की व्यञ्जना वा भाव-निरूपण और रस-चेष्टाओं वा नायिकादि-भेदों को उपस्थित किया है। इसमें पूर्वानुराग, मान, विरह, अभिसार आदि का भी निरूपण हुआ है। ये विषय नित्यलीलाओं के ही विशदीकरण होते हुये भी, अपना स्वतन्त्र साहित्यिक वा काव्यगत मूल्य रखते हैं। केवल भगवल्लीला से कहीं अधिक उनकी अपनी रसात्मक सत्ता है। ऐसे अंशों को नित्य-सेवाक्रम में ही परिसीमित कैसे किया जा सकता है? यह रस-सम्पुटता खेल, मंथन, माखनचोरी, उराहना, गोचारण, छाक, आवनी, दोहन, पनघट, शयन, रास, दम्पति-बिहार, निकुञ्ज-केलि आदि वा ऐसे ही अनेक मिलते-जुलते प्रसंगों में विशेष रूप में प्राप्त होती है। तब इन विषयों को नित्य-क्रम की मर्यादाओं से मुक्त कर कहाँ रखा जाय?

(ग) वर्षोत्सव और रस-नायिका-प्रकृति-वर्णन—

वर्षोत्सवों में भी कुछ प्रसंग 'उत्सव'-कोटि से कहीं ऊपर उठ कर रस और नायिका वा प्रकृति वर्णन के शास्त्रीय स्तर पर, विशुद्ध रूप से काव्य-गत महनीयता अधिगत कर लेते हैं। रथ, हिंडोरा, रास आदि उत्सव और उनसे सम्बन्धित विशिष्ट वा विविध ऋतु-काल के वर्णन एवं तदनुरूप रस-नायिकादि-चेष्टा वा भाव-व्यञ्जना-सम्बन्धी पद इसी स्तर के हैं। ऐसे स्थलों की उत्कृष्टता और विशदता वा बहुलता को देख कर अष्टछाप के कुछ कवियों को रस और प्रकृतिवादी कवि कहने को मन हो जाता है। खण्डिता, सुरतान्त विषयक पद भी इसी कसौटी पर खरे उतरते हैं। तब स्थूल वर्षोत्सव के सांचे में उन्हें बैठाना अटपटा सा लगता है।

(घ) नित्य-सेवा और रस-क्रीडाएँ—

पुष्टिमार्गीय सेवा-प्रणाली के आठों समय...मंगला, शृङ्गार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, सन्ध्या और शयन तथा अनौसर की सभी लीलाओं के विविध प्रसंगों में यों तो रस-क्रीड़ाओं का सन्निवेश है, किन्तु कीर्तन-पद्धति में मंगला और शयन वा अनौसर में यह रस-व्यञ्जकता अधिक मात्रा में प्राप्त है। मंगला में खंडिता और शयन वा अनौसर में सुरतान्त के पदों का गाया जाना इसकी पुष्टि है। शयन वा सुरतान्त के अनन्तर खण्डिता का समय मंगला के समय से भलेही संगति खाता हो, किन्तु बालकृष्ण की उपासना-प्रधान अथवा सख्य और वात्सल्य की परमावधि वाली सेवा-प्रणाली में ऐसे चरम-शृङ्गार वा निगूढ रस-प्राण काव्य का समावेश अथवा उस परम गोपनीय निकुञ्ज-तत्व का नन्दालय की वात्सल्यवती परिसीमाओं में उद्घाटन कुछ अव्यावहारिक वा अटपटा सा लगता है। यह तो विशुद्ध साहित्यिक रस-विषय है, इसे मंगला, मुखदर्शन, जागरण, दधि-मन्थन, माखन-दूध के वातावरण में ले आने का क्या औचित्य है, विचारणीय है। ये 'कीर्तनीय' की अपेक्षा भावनीय वा चिन्तनीय अधिक है।

(ङ) नित्य-सेवा-क्रम और भागवतीय लीला-प्रसंग—

श्रीमद्भागवत और नित्य-सेवाओं का समालोचन करते हुए यह बात अधिकांश देखने में आयी है कि सेवा का नित्य-क्रम प्रायः भागवत-दशमस्कन्ध-पूर्वार्द्ध-वर्णित नित्य-व्रजलीलाओं का ही क्रम है। भागवतीय अष्टयाम-लीलाएँ ही पुष्टि-मार्ग की आठों समय की सेवाएँ हैं। वर्षोत्सव की भावनाएँ वा प्रासंगिक कथाएँ भी जहाँ-तहाँ स्पष्ट वा बीज रूप से भागवत-दशम वा इतर स्कन्धों का आधार लेकर चली हैं: क्योंकि ये सभी भगवल्लीलाएँ हैं। भागवत वा सेवा-स्वरूप-विनय, वैराग्य, आसक्ति, माहात्म्य, आश्रय आदि के प्रसंग भी इन्हीं भगवद्भावनाओं के प्रेरक वा पोषक तत्व हैं। अतः स्पष्ट रूप से सेवा-सम्बद्ध लीलाओं को नित्य वा वर्षोत्सव-क्रम में सन्निविष्ट किया जा सकता है। फिर भी दान, मान, सुरतान्त, खण्डिता, विरह, अभिसार, युगल-रस, नेत्र, बंशी, स्वरूप-सौन्दर्य, शृङ्गार, ब्यावलो आसक्ति, छठी और इतर ब्रज-लोक-परम्पराएँ, स्वप्न-दर्शन, चन्द्रोपालम्भ, पनघट सरीखे ऐसे विषय हैं, जिनका न तो

भागवत में ही कोई स्पष्ट उल्लेख है, न सेवा-प्रणाली से ही उसका कोई सीधा सम्बन्ध बैठाया जा सकता है। वे तो रस-भावना-विस्तार के बिषय हैं, नित्य वा वर्षोत्सव की स्थूल रेखाओं में मर्यादित करने के विषय नहीं। उनका विशुद्ध काव्य-गत मूल्य है, कीर्तन मात्र ही उनका लक्ष्य नहीं।

(च) श्रीमद्भागवतीय लीला-प्रसंग .. और नित्य-वर्षोत्सव—

भागवतीय लीला-प्रसंग और न्यूनाधिक अंशों में नित्य-वर्षोत्सवों में एकरसता वा एकरूपता होते हुए भी दोनों के लीलानुक्रम में मेल नहीं खाता। कीर्तन-प्रणाली वा पुष्टिमार्गीय सेवा-पद्धति तो दैनिक और वार्षिक काल-क्रम से चलते हैं और श्रीमद्भागवतीय लीला-वर्णन श्रीकृष्ण के वय-क्रम वा ब्रजलीलाओं के घटना-क्रम से। अतः कीर्तन-प्रणाली का लीलानुक्रम भगवल्लीला-'सागर'-कारों के योजनानुरूप नहीं है। श्रीकृष्ण-जन्म, बधाई, बाललीला आदि के पद 'सागर'-कार भगवच्चरित्र के प्रारम्भ में रखेंगे तो कीर्तनकार उन्हें दो भागों में बाँट कर नित्य और वर्षोत्सव-क्रम में संयोजित करेंगे। उनकी दृष्टि में स्पष्ट जन्माष्टमी और बधाई के पद वर्षोत्सव में रहेंगे, शेष बाल-लीला के सामान्यतः वात्सल्य वा नन्दालय की बाल-केलि-सम्बन्धी अथवा मंगला, शृङ्गार, ग्वाल-विषयक पद नित्य सेवाक्रम में। बाल, पौगण्ड, किशोर लीलाओं के असुर-मर्दनादि वा वेणु-वादन, विरह, भ्रमर-गीत आदि भागवतीय प्रसंगों का तो कीर्तन-प्रणाली में स्थान-निर्धारण करना झमेले में पड़ जायगा। रास-प्रसंग भी 'नित्य-रास' और शारदीय रास के रूप में द्विविधता पाकर निर्विवादतः उल्लिखित नहीं किया जा सकेगा। फिर 'सागर' वा भागवत-कार रास को अन्नकूट के अनन्तर स्थान देंगे, जब कि कीर्तनकार वर्षोत्सव में अन्नकूट को रास के अनन्तर निर्दिष्ट करेंगे।

ये सब और ऐसी ही और समस्याएँ हैं, जो कीर्तनकार के रूप में सभी अष्टछाप-परम्परा के कवियों के काव्य के विषय-वर्गीकरण करने की शैली को दोष-पूर्ण सिद्ध करती हैं। तब सुलझा हुआ मार्ग यही होगा कि कवि के काव्य और व्यक्तित्व को पूरी तरह तोला जाय, वह भक्त, कवि वा कीर्तनकार के किस रूप को मूलतः अधिकांश में लेकर चला है, इसे कसौटी पर कसा जाय, उसकी प्रकृति को परख कर उसका वास्तविक

मूल्यांकन किया जाय। उसी के अनुसार उसके विषयों का वर्गीकरण किया जाना उसके साथ न्याय होगा, साथ ही काव्य, भक्ति वा संगीत-रस के मर्मज्ञों का सम्यक् समाधान भी।

इन समस्त बातों को ध्यान में रखते हुए, हमारी दृष्टि में जैसा कि पूर्व में संकेत किया जा चुका है, कवि के त्रिविध व्यक्तित्वों के बलाबल पर उनके काव्य का विषय-वर्गीकरण इन तीन रूपों में किया जा सकता है...अर्थात् अष्टछाप-परम्परा के कवि तीन रूपों में हो सकते हैं :—

[१] 'सागर' रूप—'सागर' से भगवल्लीला-सागर रूप तात्पर्य है। श्रीमद्भागवत के लीलानुक्रम के समानान्तर रचित जिनका काव्य है, फिर चाहे वह दशमस्कन्धीय लीलारूप हो वा द्वादश स्कन्धात्मक, वे कवि इस कोटि में आते हैं। यह उनका भक्ति-प्रधान वा 'भक्त' रूप है। इस काव्य को इन विषयों में वर्गीकृत किया जा सकता है—

(क) श्रीमद्भागवत-दशमस्कन्धीय, पूर्वार्द्ध-प्रधान लीलानुक्रमः नित्य भगवल्लीलाएँ।

(ख) द्वादशस्कन्धात्मक लीला-प्रसंग।

(ग) वर्षोत्सव।

(घ) आश्रय-विनय-गुरु-निष्ठा।

(ङ) प्रकीर्ण।

अष्टछाप-काव्य में सख्य, शृङ्गार और वात्सल्य : ये तीन प्रकार की रस-भावनाएँ ही मुख्यतया सन्निहित हैं। कवि के इस रूप में सख्य-रस को हम अधिक पा सकते हैं, क्योंकि भागवतीय प्रसंगों में इसी भावना की अधिकता रहती है। रास-प्रसंग इस भागवतीय-लीला-रस का आत्म-रूप है, अतः निकुञ्ज-भावना इसे काव्य का मुख्य अंग है। काव्य की सत्य-शिव-सुन्दरता में 'सुन्दरम्' के दर्शन हम विशेष रूप से पाते हैं। अष्टछाप-काव्य को यदि नवधा भक्ति के प्रकाश में देखें तो भक्ति का उत्कृष्ट परिपाक इस प्रकार के काव्य में पाया जा सकता है। दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन को इसमें अधिक ढूंढा जा सकता है। साहित्य-संगीत कला की साधना में साहित्य का विशेष अंश कवियों ने इस शैली के कोव्य में दिया है।

[२] 'काव्य-रूप'—अष्टछाप के कुछ कवियों का साहित्य विशुद्ध वा अधिकांश काव्यमय है, जिसमें उनका 'कवि' रूप ही निखरा है। इसे इस रूप में वर्गीकृत कर सकते हैं।

१. *ब्रज-लीलाएँ*:—इसे नित्य और नैमित्तिक, दो रूपों में बाँधा जा, सकता है। नित्य-लीलाओं में निशांत, प्रातः, पूर्वान्ह, मध्यान्ह, अपराह्न सायं, प्रदोष, रात्रि की अष्टयाम-लीलाओं का समावेश होता है। पुष्टि-मार्गीय पारिभाषिक शब्दों में इन्हें परम्परा-प्राप्त आठों सेवा-समयों के नाम से अभिहित किया जाता रहा है। यहाँ उसमें सभी दैनन्दिन लीला वा चरित्र समाविष्ट हो जाना चाहिये। नैमित्तिक लीलाएँ वे होंगी, जो विशिष्ट अवसरों पर स्थान ग्रहण करती हैं। उदाहरणार्थ—दान, मान, रास, विवाह, गोवर्द्धन, वसंत, होरी, हिंडोरा आदि।

२. *रस-नायिका-भेद* :—इसे भी दैनिक और वार्षिक लीला-प्रसंगों में आगत विशुद्ध रस-नायिका-भेद की दृष्टि से लिखे गये पदों को पृथक्-पृथक् छाँट कर स्वतन्त्र रूप से निदर्शित किया जा सकता है।

३. *प्रकृति-वर्णन* —समय और ऋतु

४. *नित्य-सेवा*:—इसमें आठों सेवा के स्पष्ट निर्देश वाले पद हों।

५. *श्रीमद्भागवतीय लीला-प्रसंग*।

६. *वर्षोत्सव-पर्व*।

७. *भाव-सौन्दर्य-चित्रण*।

८. *आश्रय-विनय-गुरु-निष्ठा*।

९. *प्रकीर्ण*।

अष्टछापी महानुभावों के इस रूप में हम रस-लीलानुरूप शृंगार-भावना की विशद्ता अधिक पा सकते हैं। यहाँ शृंगार-रस से ही सब रस वा भावनाएँ अभिभूत हैं। यह एक प्रकार से ब्रज-गोष्ठ की लीलाओं का काव्य है। यह काव्य 'शिवम्' के अधिक समीप है, क्योंकि इससे जन-जीवन की निःश्रेयस की सिद्धि ही होगी। नवधा-भक्तियों में से पाद-सेवन-अर्चन-बन्दन की भावनाएँ इसमें अधिक समधिगत की जा सकती हैं। यह रूप स्वयं गीति-काव्य प्रधान होने से संगीत तो स्वतएव है ही।

[३] 'कीर्तन' रूप—अष्टछाप-परम्परा का सीधा सम्बन्ध प्रभु की आठौं सेवाओं से होने के कारण, कुछ कवियों का 'कीर्तनकार' रूप तो स्पष्ट है ही। इस दृष्टि से तो अधिकांश कीर्तनकार वा कीर्तन-प्रिय साहित्यिकों, भक्तों, महानुभावों आदि ने काव्य-पदों का वर्गीकरण किया ही है। अतः उसी आधार पर इसे इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है—

१. वर्षोत्सव।
२. नित्य-सेवा-क्रम।
३. आश्रय-विनय-गुरुनिष्ठा।
४. प्रकीर्ण।

इस रूप में वात्सल्य-रस की प्रधानता होगी, क्योंकि इसका पूर्ण रूप से नन्दालय की लीलाओं से सम्बंध है। जैसा जो कुछ प्रत्यक्ष ग्रहण किया गया है, वह 'सत्यं' रूप में वर्णित है। श्रवण-कीर्तन और स्मरण विषयक भक्ति ही इस शैली में मुख्य हैं। संगीत-प्रधान होने से इसे कला के परिधान में देखा जा सकता है।

इस प्रकार अष्टछाप और उसकी परम्परा के सत्य-शिव-सुन्दर, साहित्य-संगीत-कलात्मक-रागानुगा नवधा भक्ति और नव-नव-रसों से स्निग्ध, शृंगार-सख्य-वात्सल्यादि मधुर भावों से परिप्लुत, नंदालय-व्रजगोष्ठ, निकुंजलीलादि मुग्ध-भावना-भरित-भक्ति-गीत-काव्य-परक भगवल्लीला-गान रूप काव्य को त्रिविध वर्गों में संयोजित करने की यह मौलिक योजना है। हो सकता है कि प्राचीन हस्तलिखित अधिकांश साहित्य इस रूप में न मिले और कीर्तनात्मक सामग्री ही अधिक समुपलब्ध होती हो, किंतु इस से कवि का अनुचित रूप में मूल्यांकन तो नहीं किया जा सकता। 'अष्टछाप' को 'अष्टसखा' के रूप में देखने का दृष्टिकोण आज तक पुष्टिमार्ग में, जिसके संरक्षण और नियंत्रण में उसका समग्र साहित्य रहा है, अपनाया है, और उसी के निर्देशन पर हिंदी साहित्य भी चलता रहा है। आज तक जितनी गवेषणाएँ हुईं, सब के समक्ष कीर्तनात्मक सामग्री रही, क्योंकि स्वयं उसके अधिष्ठाता पुष्टिमार्ग ने उन महाकवियों, महाविभूतियों को कीर्तनकार रूप में ही

देखा, परखा और भगवत्सेवा-विधि में उनका विनियोग किया, किंतु आज के प्रकाश में, वैज्ञानिक विश्लेषण के युग में उन महानुभावों को अन्धकार में नहीं रखा जा सकता। परम त्यागी, विरागी भगवदनुरागी साधु 'गुदड़ी के लालों' को रत्न-पारखियों के हाथों में देना होगा, जो उनके वास्तविक मूल्य वा अमूल्यता का निर्धारण कर सकें।

श्रीमद्भागवत और परमानन्द-सागर

श्रीहरि-लीला-रस काव्य के विधायक, गायक और अष्टछाप ही नहीं, समग्र हिंदी-ब्रजभारती एवं ब्रज-भक्त-कवियों के समर्थ नायक 'परमानन्ददासजी' उसी सागर की परम्परा की एक सुन्दर श्रृङ्खला हैं— 'परमानंद-सागर' जिसकी एक परम निधि है। जैसा कि 'सागर' से भगवल्लीला-रस-सागर तात्पर्य माना गया है, भगवल्लीला से श्रीमद्-भागवत' अभिप्रेत है, जिसके सम्बंध में इस रूप में निवर्चन किया गया है—

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥

भा. १, १, ३:-

निगम-कल्पतरु के परिपक्व फल-स्वरूप श्रीमद्भागवत को, जो श्रीशुक-मुख-द्रव से संयुत होकर 'रसमालय' बनी है, इस भूतल के रसिक भावुक-जनों के लिये परम आस्वाद्य, परिशीलनीय और हृदय में सर्वदा स्थापनीय माना गया है। समग्र ग्रंथ में भगवल्लीला-रस अनुस्यूत है वा उस रस-प्राप्ति में उद्बोधक, प्रेरक रूप तत्व-ज्ञान ओत-प्रोत है, अतः वह भगवत् स्वरूप ही है, पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण की उसमें निरवधि स्थिति है। इसका द्वादश स्कन्धात्मक स्वरूप भगवान् के द्वादशांगों[1] के स्थानापन्न ही है। वह पूर्ण ब्रह्म श्रीकृष्ण का साक्षात

१. इतीदं द्वादशस्कन्ध पुराण हरिरेव सः, पुरुषं द्वादशत्वं हि सक्थो बाहू-शिरान्तरम् । हस्तौ पादौ स्तनौ चैव पूर्वं पादौ करौ ततः, सक्थौ हस्त-स्ततश्चैको द्वादशश्चापरः स्मृतः । उत्क्षिप्त हस्तः पुरुषो भक्तमाकारयन्त्युत, स्तनौ मध्यं शिरश्चैव द्वादशांग तनुर्हरि. निबन्धः १४, १५, १६,

श्रीविग्रह है। 'द्वादशांगो वै पुरुषः' श्रीवल्लभाचार्यादि का यही मत है। इसी प्रकार इसमें द्वादश स्कंधों में अधिकार ज्ञान सहित सर्ग, विसर्गादि लक्षणों[1] को लेकर द्वादश स्कन्धीय आश्रय रूप लक्ष्य की सिद्धि का विधान किया गया है और आश्रय, लक्ष्य भगवान् का ही स्वरूप माना गया है, जिसकी श्रीभागवत में सर्वत्र स्थिति रही है, अतः इस दृष्टि से भी यह भगवत् स्वरूप ही है।

महानुभाव, रसिक भक्तों के अन्तरतल में भी उसी भगवत् स्वरूप और तद्रूप मधुर भगवल्लीलाओं की अक्षुण्ण स्थिति रहती है और निर्मल भाव-तरंगों में तरलित एक महा-रस का सागर लहराया करता है, वही उनकी काव्य-वाणी का मंजुल परिधान पाकर जब-तब भक्ति-साहित्य-जगत् के समक्ष एक अक्षय निधि के रूप में परिलक्षित होता है। अतः वे महानुभाव और उनकी वाणी भी भगवद्विग्रह वा रस-स्वरूप होते हैं। फिर भगवान् के विविध रूपों में, निर्विशेषतः श्रीकृष्ण स्वयं रसेश हैं, रसराज शृंगार के अधिष्ठाता, रसनिधि, रस-सागर। अतः उनका लीला-गान, उनके लीला-गायकः भागवती कथा एवं भक्त उनसे अभिन्न हैं, उन्हीं की भाँति रस-निधि वा रस-सागर हैं। श्रीशुकाचार्य तथा सूरदास, परमानंददास सरीखे महाभागवत एवं उनकी श्रीमद्भागवत और सूरसागर, परमानंदसागर सरीखे रस-ग्रन्थ इसी कोटि में आते हैं। भक्ति, काव्य, संगीत की आत्मा को उसी महाभाव-निधि से प्राण-ज्योति और रस-पोषण मिल रहा है।

इस संदर्भ के प्रकाश में देखने पर श्रीमद्भागवत और परमानन्द-सागर की एकरूपता, एकरसता स्पष्ट परिलक्षित होती है। परमानंद-काव्य को परमानंदसागर, यहाँ तक कि स्वयं परमानंददास को भी 'सागर' स्वरूप मानने की यही पृष्ठभूमि है। वस्तुतः 'सागर' रस-निधिता का सूचक है, और इस दृष्टि से इससे श्रीमद्भागवत वा भागवतों अर्थात् भगवल्लीला एवं भक्तों का स्पष्ट सम्बंध है। फिर परमानन्द-

---

१. अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः। भा. द्वि. स्कं अ० १०, १.

सागर की दशमस्कंधात्मक स्थूल रूपता तो प्रत्यक्ष है ही। वह भागवत का अविकल अनुवाद भले न हो, सरस स्थलों का, विशेषतः श्रीकृष्ण-चरित्र के मधुर अंशों और समग्रतः भगवद्यश का भावानुवाद है ही।

परमानन्दसागर के अन्तः पर्यालोचन से यह विदित होता है कि कवि ने भागवत की दशमस्कन्ध की परम्परा का निर्वाह करते हुए अपने सम्पूर्ण काव्य और भाव-चमत्कार का प्रयोग श्रीकृष्ण-चरित्र में ही किया है। उसमें भी श्रीकृष्ण-जन्म से लेकर भ्रमर-गीत तक की ब्रज-लीलाओं का उसने विशद् विवेचन वा गान किया है। सागर का कैसा भी विस्तार रहा हो, कवि का मन, भक्ति और काव्य दोनों के अनुरूप, दशमस्कंध-पूर्वार्द्ध की लीलाओं में ही अधिक रमा है। अर्थात् उसने श्रीकृष्ण की बाल-लीला, माखनचोरी, गोचारण, वेणुवादन, रास-क्रीडा, दानलीला, रस-केलि, मान, खंडिता, विरह, भ्रमर-गीत आदि वात्सल्य और शृंगार के संयोग और विप्रयोगात्मक मधुर पक्ष को ही अधिक तलस्पर्शिता से ग्रहण और अभिव्यक्त किया है। अन्य लीलाओं का वर्णन वा श्रीकृष्ण-चरित्र के अन्य पार्श्वों का स्पर्श तो लीला-तत्व के मधुर पक्ष के विस्तार वा स्पष्टीकरण के लिये ही किया गया है।

भागवत का प्रधान तत्व मुक्ति और आश्रय की सिद्धि-रूप विशुद्ध प्रेम-लक्षणा भक्ति ही है, जो पूर्ण रूप से गोपी-भाव में चरितार्थ होती है और यही दशम-पूर्वार्द्ध की मुख्य कथा-वस्तु है। भगवान् स्वयं प्रेम-विवश हो कर निःसाधन जीवों पर अनुग्रह करते हैं। यही पुष्टि-भक्ति है, यही अनुग्रह-मार्ग, जिसका निर्वचन श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभु ने हमारे-सागर-कार को किया था। फिर वे तो श्रीहरि की अन्तरंग लीलाओं के अंतरंग सखा, सखाओं में शिरमौलि, अष्टछाप के भक्त कवि महानुभावों में मूर्द्धन्य हैं। भला, वे ही अपने ध्येय, गेय, आराध्य के लीला-रस में आकण्ठ मग्न न होते तो और कौन होता?

भक्ति, भाव-रस का सीधा-सम्बंध हृदय से है, वह तो आत्मधर्म है, अतः कवि ने उसी से सीधा नाता जोड़ा और वह उसके 'सागर' का भी आत्मधर्म बन गया। फिर भागवत के द्वादशांगों में दशमस्कंध को हृदय-रूप माना है, इस दृष्टि से श्रीकृष्ण की ब्रज-लीलाओं को

सर्वोपरिता एवं विशदता देना 'सागर' कार के लिये संगत ही है। हृदय, हृदयस्थ रसेश्वर, उसमें तरलित-रस-सागर, विराट् विग्रह का हृदय-रूप दशमस्कन्ध और उसकी रस-लीलाएँ: सब परस्पर सुन्दर मेल खा गयीं। एकरूपता, एकरसता का यह एक संगत उदाहरण है।

परमानन्दसागर वस्तुतः श्रीमद्भागवत का रसानुवाद है, ब्रज-लीलाओं का विशद् विवेचन। अन्य प्रसंग वा लीलाएँ गौण हैं, औपचारिक प्रक्रिया वा परम्परा-पालन मात्र। इसका सैद्धान्तिक वा ऐतिहासिक आधार[1] जैसा कि पूर्व में इङ्गित किया गया है, सूर और सूरसागर की तरह स्वयं श्रीवल्लभाचार्य ने परमानन्ददास के काव्य को और उनको स्वयं भी 'सागर' की उपाधि प्रदान की। केवल काव्य का महद् विस्तार ही इसमें कारण नहीं है। महाप्रभु ने दशमस्कंध की अनुक्रमणिका और पुरुषोत्तम-सहस्रनाम की प्रतिष्ठा कर, उनके हृदय में भागवत-तत्व का अवतरण कर उन्हें 'भागवत' स्वरूप बना दिये थे। भगवल्लीला, परमानंद वा रस-सागर के अनुक्षण तरंगित रहने के कारण ही वे परमानन्ददास और 'परमानन्दसागर' नाम से उद्बोधित हुए। जिस प्रकार श्रीव्यास महामुनि ने समाधि में दृष्ट एवं अनुभूत भगवल्लीलाओं का शुकमुनि के हृदय को अवधारण कराया, उसी प्रकार महाप्रभु ने परमानन्ददास के हृदय में रस-लीलाओं की अवतारणा की और वह भागवत की समाधि-भाषा[2] का आधार लेकर, लौकिक और परमत-भाषाओं के परिधान में प्राप्त इतिहास तथा ऋषि-मुनि-सिद्धांतों को गौणता देते हुए, दशमस्कन्ध की लीला-भूमि पर प्रतिफलित हुईं, वस्तुतः यही 'सागर' और 'सागरकार' का प्रकृत रूप है।

दशमस्कन्ध की लीलानुक्रमणिका ही सागर है, इस तथ्य को विद्यमान में प्राप्त परमानन्द सागर[3] के काव्य-विस्तार वा परिमाण और अनुपात को आँकड़ोंबार देख लेने से अधिक हृदयंगम किया जा

---

१. परमानन्ददास-वार्ता प्रसंग १. चौरासी वैष्णव-वार्ता-भावना।

२. श्रीवल्लभाचार्य ने भागवत में लौकिक, परमत, समाधिः तीन भाषाएँ मानी हैं। ये क्रमशः इतिहास, ऋषि-मत और व्यास. शुक. बचन हैं।

३. प्रस्तुत 'परमानन्दसागर' (कांकरोली-प्रकाशन)

सकता है। विषयानुसार इसमें जन्म-समय से लेकर भ्रमर-गीत-प्रसंग तक ११४३ पदों में ब्रज-लीलाएँ ही परिपूरित हैं। केवल २४ पदों में मथुरा-द्वारिका-लीलाएँ वर्णित हैं। उत्सव और त्यौहारों में भी १३१ पद ही गाये हैं। फिर आश्रय और विनय के ८९ पद हैं।

इस विवरण से विदित होता है कि केवल दशमस्कंध में समग्र सागर के १३८७ पदों में पंच-षष्ठांश से भी अधिक दशम की भगवल्लीलाओं को स्थान है। दशम के अतिरिक्त उत्सव-त्यौहार वा आश्रय-विनय की जो संख्या दृष्टिगत होती है, वह भक्ति, वैराग्य, विनय की मुख्यता के कारण ही, अथवा भगवल्लीला के अंगरूप है, जो उसी दशम की रस-लीलाओं के तत्व के वा प्रेम-लक्षणा भक्ति के पोषण रूप में है। सिद्धान्ततः भी द्वादशीय भगवल्लीलाओं में अन्य स्कन्धीय लीलाएँ दशम की निरोधरूपात्मक लीलाओं के पोषक रूप में होने के कारण गौण हैं। अतएव भक्त कवि परमानन्ददास की निष्ठा सर्वांशतः दशम-लीलाओं में ही केन्द्रित रही है। 'सागर' के स्वरूप का यही रहस्य है।

सिद्धांत और लीला-परम्परा की दृष्टि से, जो परमानन्ददास के काव्य की केवल दशमस्कन्ध वाली और नित्य-वर्षोत्सव वा कीर्तन-संग्रह वाली: दो प्रकार की प्रतियाँ मिलती हैं, उनमें प्रथम शैली की प्रतियाँ ही मूल रूपतः 'सागर' हैं, वे ही प्रामाण्य हैं, भागवत स्वरूप हैं। फिर भले ही परिशिष्ट रूप में अन्य स्कन्धों वा प्रसंगों की लीलाओं के पद उसमें समाविष्ट कर दिये जाँय।

पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त, सेवा-प्रणाली और भक्ति-परम्पराओं के अनुरूप अष्टछाप के कवियों के 'सागर' वा स्फुट पद रूप काव्य को वर्षोत्सव, नित्य-क्रम और विनती, आश्रय वा प्रकीर्ण: इन खण्डों में विभाजित करने की पद्धति व्यापक रूप से प्रचलित है। किंतु इस प्रकार का वर्गीकृत काव्य 'सागर' नहीं, उनके पदों का यावत्प्राप्य संग्रह मात्र है। यद्यपि सूरसागर के लेखन वा सम्पादनों में यह दृष्टि नहीं रखी गयी है, तथापि पुष्टिमार्ग के द्वितीय काव्य-सागर, 'परमानन्दसागर' के

लेखन और सम्पादन में कुछ लेखक या विद्वान् अवश्य भ्रम-वश प्रलोभित होते रहे हैं। इस दृष्टि से 'सागर' की वास्तविक महत्ता विकृत वा नष्ट होती है। कवि एक सामान्य कीर्तनकार रह जाता है, उसका भागवत स्वरूप रसिकों के हृदयों में नहीं उतर पाता। हाँ, सूर और परमानन्द को छोड़कर अन्य अष्टछाप के कवियों को उक्त त्रिवर्गीय रूप में सम्पादित किया जा सकता है क्योंकि उनके पद–गायन का प्रयोजन अवश्य नित्य-क्रम वा वर्षोत्सव की सेवाओं में कीर्तन करने का था, उसी रूप में, जिस रूप में उनको स्वानुभव तत्तत्समय भाव-विभोर कर देता था। परन्तु सूर और परमानंद–सरीखे सागर तो दशमस्कंध. पूर्वार्द्ध की अनुक्रमणिका का आधार लेकर ही चलेंगे, तभी वे 'सागर' हैं, 'भागवत' स्वरूप हैं।

सौभाग्य-वश, सूरसागर के प्राचीन और विद्यमान अधिकांश संस्करण इसी 'सागर' के रूप में उपलब्ध हैं। स्कन्धात्मक प्रारूप बताने के लिये दशमातिरिक्त स्कन्धों को समावेश करके थोड़ी त्रुटि अवश्य हुई है, किंतु दशम–पूर्वार्द्ध की प्रमुखता होने के कारण वे 'सागर' ही हैं। 'परमानन्दसागर' की प्राचीन प्रतियाँ भी इसी दशम की लीलानुक्रमणिका को लेकर लिखित वा सम्पादित प्राप्त हैं। श्रीमद्भागवत के लीलानुक्रम और सागरों के भगवल्लीला-गान का संतुलन करते हुए यह स्पष्टतः देखा गया है कि पुष्टिमार्गीय मन्दिरों में प्रचलित भगवत्स्वरूपों की सेवा-प्रणाली में प्रयुक्त समग्र नित्य-लीलाएँ दशम की ब्रज-लीलाओं में समाविष्ट हैं। यह कहा जा सकता है कि भागवतीय ब्रज-लीलाएँ ही पुष्टिमार्गीय सेवान्तर्गत आठों समय वा 'अनोसर' की भावात्मक लीलाएँ है। उनमें कोई भेद नहीं। दशम की ब्रज-लीलाओं में बड़े सुन्दर ढंग से सेवा का नित्य-क्रम समाया हुआ है। सैद्धांतिक और भावनात्मक दृष्टि भी यही है कि प्रभु अनुक्षण-चिरंतन रूप से ब्रज और ब्रज-भक्तों के साथ रस-लीलाओं में निमग्न हैं। यहाँ नित्य बाल-केलि, नित्य नन्दालय की लीलाएँ नित्य माखन-चोरी, नित्य गोचारण, नित्य दान-मान, रास, वेणुवादन, युगल-रस-बिहार आदि की क्रीड़ाएँ विद्यमान हैं, अन्तरंग भक्त अपने-अपने अधिकार-भेद से उन लीलाओं का नित्य रसास्वाद करते हैं। पुष्टि–

मार्गीय सेवा-प्रणाली के मंगला आदि सेवा-समयों में इन्हीं नित्य लीलाओं का तो अनुचिंतन किया जाता है। इनके अतिरिक्त स्वामिनी-जन्म, छठी, आसक्ति, दान, मान, सुरतान्त खंडिता आदि अनेक प्रसंगों को कवि ने अपनी काव्य-कला के माध्यम से रसोद्दीपन वा पोषण के रूप में उपस्थित किये हैं। हाँ, वर्ष भर में आगत पर्वोत्सव-सम्बन्धी प्रसंगों का स्पष्ट उल्लेख अवश्य ब्रज-लीलाओं में नहीं है, तथापि समस्त श्रीकृष्ण-चरित्र वा भगवल्लीलाओं में अविकसित बीज रूप से तो वह विद्यमान है ही। विनय और आश्रय तो इस समस्त लीला के साधक रूप हैं।

सार यह कि श्रीमद्भागवत और सूरसागर वा परमानन्दसागर में एक ही लीलात्मक कथावस्तु है। दोनों एकरस-रूप हैं। अतः वे समान रूप से ध्येय, गेय, आराध्य हैं, दोनों ही पुरुषोत्तम-स्वरूप हैं। दोनों ही व्यास की समाधि-भाषा हैं। दोनों ही के रचयिता श्रीशुक और सूर, परमानन्द परम-महाभागवत, रस-लीला-स्वरूप हैं। देव-वाणी संस्कृत में काव्य वा भक्ति-ग्रंथ रूप में जो भागवत का गौरव है, वही आज की राष्ट्रवाणी हिंदी-ब्रजभाषा में, रसेश श्रीकृष्ण की ब्रज-वाणी में उन्हीं के यशोगान रूप सूरसागर, परमानन्दसागर का महत्व है।

यों तो महानुभावों की अगाध रस-वाणी का पूर्ण अवगाहन कौन कर सकता है, तथापि इस भक्ति-काव्य वा गीति-काव्य की इष्ट-साधना और परिशीलन 'सारं सारं समुद्धृतम्' के रूप में यथाकथंचित किया जा सकता है।

परमानन्द--प्रशस्ति

[१]

....सूर सूर जस हृदय-प्रकास ।
'परमानँद' आनंद बढ़ात ॥
....कुंभनदास महारस-कंद ।
प्रेम-भरे निज 'परमानंद' ॥
....सर्वोपरि 'दास परमानँद' रे !
गाया गुन-निधि बालमुकुंद रे !!

—द्वारकेश.

[२]

पौगंड बाल कैसोर गोप-लीला सब गाई ।
अचरज कहा यह बात हुतौ पहिलौ जसु गाई ॥
नैननि नीर-प्रवाह रहत रोमांच रैनि-दिन ।
गद्‌गद्‌ गिरा उदार स्याम-सोभा-भीज्यौ तन ॥
सारंग छाप ताकी भई स्रवन सुनत आवेस देत ।
ब्रजबधू-रीति कलिजुग-बिषै 'परमानँद' भयो प्रेम-केत॥

—नाभादास.

[३]

'परमानँद' अरु सूर मिलि गाई सब ब्रज-रीति ।
भूलि जाति बिधि भजन की सुनि गोपिनि की प्रीति॥

— ध्रुवदास.

'परमानन्ददास'

'एक भाव. विश्लेषण'

(क. गोकुलानन्द तैलंग, साहित्यरत्न)

जीवन के सत्य, शिव, सुन्दर की अभिव्यक्ति ही कला है। जो वस्तु सीधे मन को स्पर्श कर दर्शक या श्रोता को भाव-विभोर कर दे, कला का उत्कर्ष वहीं है. किन्तु इस अभिव्यक्ति में मर्म-स्पर्शिता तब आती है, जब कलाकार स्वयं आत्म-विस्मृति और तन्मयता में अपने को खो दे, भुला दे। ऐसा भावुक हृदय ही कवि, चित्रकार, गायक आदि विविध रूपों में व्यक्त होता है। प्रेमी और भक्त भी इसी कोटि में आते हैं, वे भी जीवन के उसी सत्य, शिव, सुन्दर को अन्तरतम में अनुभूतियों के स्तर पर ला कर, उसमें अपने को तदाकार पाते हैं, और तब उनकी वाणी, उनकी कृति और गति-विधि में वही भाव-विभोरता फूट पड़ती है, जो सहज ही काव्य, चित्र संगीत सरीखी कलाओं की माधुरी ले कर शत-शत जीवन को चिरन्तन सौन्दर्य प्रदान करती है।

अष्टछाप के भावुक कवि परमानन्ददास भी ऐसे ही भक्ति-कलाकार हैं, जो श्यामसुन्दर की रूप-माधुरी और उनके अनुराग-राग में पगीं परम भाग्यवती व्रजांगनाओं के सरस हृदय के अभिव्यक्त रूप हैं, तद्रूप, प्रेम के प्रतीक हैं। उनके भावुक हृदय में नन्दनन्दन-वृषभानुनन्दिनी की प्रथम स्नेह-तन्मयता का कितना सुन्दर चित्र उतरता है, देखिये—.

प्रथम सनेह कठिन मेरी माई।
दृष्टि परी वृषभानुनंदिनी अरुझे नैन निरवारे न जाई॥
बछरा छोरि खरिक में दीनों आपुन झिमिक तिरीछी माई।
नोवत वृषभ गई चलि गैयां हंसत सखा कहा दुहत कन्हाई॥
चारों नैन मिले जब सन्मुख नंदनंदन कों रुचि उपजाई।
'परमानंददास' उहि नागरि नागर सों मनसा अरुझाई॥

(प० सं० ३८९)

प्रथम स्नेह में कितनी तल्लीनता है। वृषभानुनन्दिनी सामने दृष्टि पड़ जाती हैं। नन्दनन्दन के नेत्र उनके रूप-सौन्दर्य में जा उलझते हैं। गो-दोहन का समय है। नेत्र मिलते ही मानों सुध-बुध भूल गये, कहाँ गई दोहनी, कहाँ गये बछड़े, कहाँ गयीं गौएँ। ध्यान भी नहीं रहा, किसी की रूप-मादकता में चूर हो कर वृषभ के नीचे बैठ गये, दोहने लगे। कितना कुतूहलमय दृश्य है, सखा, ग्वाल-बाल इस तन्मयता, आत्म-विस्मृति की स्थिति को देख कर हंसने लगते हैं। आँखों के डोरे एक बार उलझ जाते हैं तो भला, सुलझ सकते हैं। 'चार नजरें' होते ही, प्रिया-प्रियतम एक दूसरे के प्रेम पाश में बंध गये, उलझ गये, एक—रूप हो गये। आखिर 'नागरी-नागर' जो ठहरे।

अब तो जितना अधिक रूप-रस का पान करते हैं, उतनी ही प्यास बढ़ती जाती है। इस प्यास का स्वाद, इस अतृप्ति में भी तृप्ति की अनुभूति वृषभानु नन्दिनी सरीखी कोई 'सुहागिल' ही कर सकती है। वह तो आज परम सौभाग्यवती है, जिसकी 'सुहाग-रात' श्यामसुन्दर के बदनाम्बुज—परिमल के अनुपम सौन्दर्य-सुधा-पान में बीत रही है। प्रेम-चकोरी राधिका अपने चन्द्रानन प्रियतम को देखती ही रह जाती है... एक पल के नेत्र-निमीलन वा पलक गिरने का व्यवधान नहीं लाती। मानों उसके मुख-विधु की समग्र सुधा को 'निचो' कर अपनी आँखों में भर लेना चाहती है। एक बूंद भी नहीं छोड़ना चाहती। उधर नन्दनन्दन भी अपनी प्रियतमा स्वामिनी के प्रति उनके अनन्य निरवधि प्रेम के लिये अपना सर्वस्व—समर्पण किये हैं। इस प्रकार 'एक प्रान बपु दोइ' की स्थिति बना रखी है। प्रेम की इस उत्कृष्ट कोटि का रहस्य स्वानुभव-प्राप्त कवि परमानन्द सरीखे कोई बिरले ही जान सकते हैं। उन्हीं के शब्दों में सुनिये—

कमल मुख देखत त्रिपति न होइ।
इहि सुख कहा सुहागिल जाने रही निसा भरि सोइ॥
ज्यों चकोर चाहत उडुराजहि चंद्र बदन रही जोइ।
नेकु अंकोर देति नहिं राधे चाहति पियौ निचोइ॥
उनि तौ अपनो सरबसु दीनौ एक प्रान वपु दोइ।
भजन भेद 'परमानँद' न्यारौ जानत बिरलौ कोइ॥

(प० सं० ५७७)

यही भजन-भेद है : प्रेम-भक्ति और भावना का निगूढतम अनिर्वचनीय रहस्य है।

मन की यह आसक्ति, रूप-सौन्दर्य की यह चुभन जब अन्तरतम को बेध जाती है, चित्त समग्र रूप से सिमिट कर अपने प्रेम-पात्र में केन्द्रित हो जाता है। श्यामसुन्दर जब गो-धूलि बेला में सायंकाल गो-धन को साथ लेकर मधुर वेणु-वादन करते हुए व्रज-गोष्ठ को लौटते हैं, उस समय में प्रियतम के वियोग में सम्पूर्ण दिवस के ताप से मुरझाई हुई विरहिणी व्रजाँगनाओं की प्रिय-दर्शन के लिये कितनी उत्कट लालसा जग जाती है, भुक्त-भोगी कवि की वाणी में ही सुनिये:—

मेरो मन उद्धाँई चाह करे।
वह मुसुकानि बंक अवलोकनि हृदौ तें न टरे॥
जब गोपाल गोधन संग आवत मुरली अधर धरे।
मुख की धूरि दूरि अंचरि करि जसोमति अंक भरे॥
संध्या समै घोष में डोलत वह सुधि क्यों बिसरे।
'परमानंद' प्रीति अंतरगत सुमिरत नैन भरे॥

(प० सं० ६०२)

मन को रोकते हैं, वह किसी संयम को, विधि-निषेध को नहीं मानता। गोपाल-कृष्ण को उस मन्द-मुस्कान को—उनकी 'बंक अवलोकनि' की चुभन को हृदय भूलता नहीं, वेणुधर गो-चारी बनमाली रह-रह कर आँखों के सामने नाच उठते हैं। गो-धूलि में

लिपटी कोमल उत्फुल्ल अलकावलियाँ'' ब्रज. रज. विलसित मधुर आनन की वह सुषमा, जिसे माता का वात्सल्य-पूर्ण अंचल आतुर हो, सहज समेट लेता है · गोपाँगनाओं के हृदय में, मन में, आँखों में समायी हुई है, छायी हुई है। यह प्रेम-विह्वलता, अन्तर्गत प्रीति की गम्भीरता उन ब्रज-ललनाओं को तो आत्म-विभोर'कर ही रही है '' भावुक कवि की आँखों में भी उसके स्मरण से प्रेमाश्रु छलछला उठते हैं, कितनी भावावेश की स्थिति है।

हृदय का हृदय के प्रति आकर्षण प्रेमी के मन को कितना रस-मग्न, आतुर और किसी भी मर्यादा में बंधे रहने में असमर्थ बना देता है, प्रियतम की एक-एक चेष्टा, उसके सौन्दर्य-शृंगार की विधि उसकी एक-एक मधुर बोली हृदय को ''अंग-अंग को बलात् उसकी ओर खींच ले जाती है। कवि ने उसका भाव. पूर्ण चित्रांकन किया है—

ता दिन तें मोहि अधिक चटपटी।
जा दिन ते देखे इनि नैननि गिरिधर बाँके माई पाग लटपटी॥
चले जात मुसिकाइ मनोहर हंसु जु कही इक बात अटपटी।
हौं सुनि स्रवन भई अति आतुर परी जु हिये मेरे मदन झटपटी॥
कहा री कहौं गुरु-जन भए बैरी बैर परे मो सों करत खटपटी।
'परमानंद' प्रभु रूप विमोही या ढोटा सों प्रीति अति जटी॥

प. सं. ४१९

श्यामसुन्दर की एक ही 'अटपटी' बात मदन की 'झटपटी' जगाने के लिये पर्याप्त है। फिर उसके साथ उनकी मोहन मुस्कान की पुट, फिर नेत्र, कान, हृदय विवश क्यों न हो जायँ। ऐसी 'चटपटी' में मर्यादा-रेखा के भीतर कैसे बंधे रहा जा सकता है। इसीलिये वे आज बैरी से प्रतीत हो रहे हैं। इष्ट वस्तु की प्राप्ति में जो अकारण बाधा दे, वही तो बैरी है।

परन्तु जब हृदय हार चुका, किसी की रूप-मदिरा के माधुर्य का आस्वाद पा कर, तन–मन–प्राण उससे आबद्ध हो गये। श्यामसुन्दर के मधुर प्रेम में, उनके अनूप रूप की मोहिनी में हृदय विवश हो गया—

कैसे छूटे स्याम सगाई।
कोऊ निंदौ कोऊ बंदौ अब तौ इहै बनि आई॥
मोहन मदन मनोहर मूरति सकल काम सुखदाई।
देखत रूप अनूप स्याम कौ नैननि परे जुडाई॥
लोक वेद की लाज तजी मैं जिन कोउ बरजहु माई।
'परमानंद' प्रभु स्वामी पै जैहौं मिलिहौं ढोल बजाई॥

प. सं ४४१

'कैसे छूटे स्याम–सगाई' एक समस्या है, उलझन है, विवशता है। किन्तु यह सब कुछ दूसरों के लिये हो, उन्हीं के लिये, जो लोक-वेद की मर्यादाओं में बंधे हुए हैं, जिन्हें निन्दा-स्तुति वा यश-अपयश की चिन्ता है। यहां तो 'कोऊ निंदौ कोऊ बंदौ', परवाह ही नहीं, जो कुछ बन पड़ा, सो बन गया। सकल कामनाओं के पूरक, समग्र सुखों के दानी मदनमोहन का पल्ला पकड लिया उनसे 'सगाई' कर बैठे, फिर 'वर्ज्य' रहा क्या ? लोक-स्तर पर ही तो सारे विधि, निषेध हैं। यह सगाई तो अलौकिक है, प्रेम-सगाई है, मर्यादाओं की जड श्रृंखलाएं उसकी गति को कैसे पंगु कर सकेंगी। यह कोई बन्धन, मर्यादा नहीं मानता। युग-युग के बन्धन टूट गये, युग-युग की पराधीनताएं नष्ट हो गयीं। अब तो निर्भय उद्घोष है "'मिलिहौं ढोल बजाई'" कोई छिपाव नहीं, कोई दुराव नहीं। सारा लोक 'स्याम सगाई' का मंगल सम्बाद जान ले। चिर वियोगिनी, रूप की प्यासी जलती आँखों ने आज यह मद-बेला कठिनाई से पायी है, जबकि "देखत रूप अनूप स्याम कौ नैननि परे जुडाई।

प्रेम की परम कोटि में प्रेमी लोक-हंसाई की भी चिन्ता नहीं

करता। मन-क्रम-बचन से नन्दनन्दन का अनुपल चिन्तन करने वाली कोई गोपिका तो स्पष्ट घोषणा कर रही है—

करनि दे लोकनि कों उपहास ।
मन क्रम वचन नंदनंदन कौ निमिष न छांडौं पास ॥
सब कुटुंब के लोग चिकनियाँ मेरे भाएं घास ।
अब तौ जिय ऐसो बनि आई क्यों मानेंगी त्रास ॥
अब क्यों रह्यौ परे सुनि सजनी एक गांउ कौ बास ।
ए बातें नीके जानतु हैं जन 'परमानंददास' ॥

प० सं० ५२३

कितनी मानस-उत्क्रान्ति है कितना भीषण विद्रोह है-खुला विद्रोह: कुटुम्बियों के प्रति, समाज की बाँधी भित्तियों के प्रति। मर गया लोकापवाद उसके लिये— वह एक निमिष मात्र के लिये भी नन्दनन्दन का वियोग सहन नहीं कर सकेगी। कुटुम्बी उसके लिये तृणवत् हैं, अपदार्थ। 'चिकनियों' के दिये त्रास को—उनके बरजने, रोकने को अब वह नहीं मानेगी। 'अब तो जिय ऐसी बनि आई'—भला. एक गांव में रह कर, आमने-सामने बस कर भी उससे बिलग रहा जा सकता है। इस 'लगन' को परमानन्ददास सरीखे कोई प्रेमी हो जान सकते हैं।

यदि कुछ पलों के लिये श्यामसुन्दर बिलग भी हो जाते हैं. तो गोपी उन्हीं की रूप-माधुरी में डूब जाती है—तन्मयता में वह उन्मत्त सी बडबडा उठती है—

आंखिनि आगे हू स्याम मूंदे हू स्याम कहनि लागी गोपी कहां गए स्याम
आदि हू स्याम अंत हू स्याम रोम रोम रम रह्यो काम ॥
मधुवन आदि सकल वन ढूँढति फिरति कुंज नव धाम ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर अंग अंग अभिराम ॥

प. सं. ४८०

भीतर-बाहर: सर्वत्र श्यामसुन्दर विद्यमान हैं। आंख खोलती है तो अपनी तल्लीनता में डूबी अणु-परिमाणु, लता, बेलि गुल्म-तृण: सब में उसी श्याम-मनोहर की रूप-छटा बिखरी निखरी दिखाई देती है। आँख मूंदती है तो भी हृदय में, रोम-रोम में श्याम रम रहे हैं। श्याम ही आज मनोज काम-रूप से रग-रग में समाया हुआ मालुम होता है। ओर-छोर, सभी श्याम-मय है। 'कहनि लगी गोपी कहाँ गए स्याम'—बन-बन कुंज-कुंज भटकती डोलती है, पर श्याम नहीं मिले। उस अंग-अंग अभिराम को वह कहाँ पायेगी, कौन जाने ? पाकर भी, खोयी हुई सी और खोकर भी, पायी हुई सी—कैसी विलक्षण गति है।

प्रियतम के विरह में उन्मादिनी सी वह फिर रही है। एक-एक क्षण युग—युग की भाँति बीत रहा है। जितना समय काट पाती है, उससे शत-गुणित वियोग के क्षण सामने पहाड़ की तरह अडिग से अड़े दिखायी देते हैं। उसके साथ ही विरह की तपन भी तीव्रतम हो कर अंग-अंग को जलाये जा रही है। वियोग की अवधि की असह्यता को कवि ने कितनी मार्मिकता से व्यक्त किया है—

> भए हैं पहार से दिनां।
> निवटत नाहिंन सुनि री, सजनी, मदनगोपाल बिनां॥
> स्याम समीप कछू नहिं जानी जुग सम जात छिनां।
> 'परमानंद' बिरहिनी हरि की तोरि चली है तिनां॥
>
> प० सं० १०१७

संयोग और वियोग की बेला में कितना महान् अन्तर है—परिमाण में भी और परिणाम में भी। संयोग में युग बीत जाते हैं, फिर भी ऐसे मालूम होते है, मानों कुछ क्षण ही तो बीते हैं। अनन्त काल के संयोग-सुख से भी मन को परितृप्ति नहीं होता। थोडा और थोडा और, प्यास बढती ही जाती है। आँखों से आँखें मिली हुई हैं—हृदय का अनुराग पलकों की प्यालियों से छलक-छलक

कर दो प्रेमियों को इतना सराबोर किये रहता है कि उन्हें बाह्य जगत् के अस्तित्व का भान भी नहीं रहता। जब अपना ही अस्तित्व खो चुके हैं तो काल की गति का अनुसन्धान किसे रहे। किन्तु प्रियतम को खोकर लुटे और ठगे से इस शून्य जगत् के बीच प्रेमी अपने को एकाकी पाते हैं, और तब एक-एक क्षण बिताना उन्हें कितना कठिन हो जाता है। आज मदनगोपाल के बिना गोपी की भी यही गति है। सूर्य की गति मानों कुंठित हो गयी… वह अस्ताचल को एक तृणभर भी आगे नहीं बढता, वह अचल पर्वत सा अचल है, अपनी गति में और विशाल है, अपनी काया में… अपने ताप-दाप में। इसीलिये वह कह रही है, कराहती सी—'भए हैं पहार से दिनां'।

किन्तु वियोग की साधना भी एक महान् साधना है, भीषण अग्नि-परीक्षा में से हो कर ही तप्त कांचन शोभा और निखार पाता हैं। वियोगावस्था ऐसी ही अग्नि-परीक्षा है, जिसमें प्रेमी झुलस कर, जल कर, तप कर निर्मल-मानस बनता है। एक लम्बी निष्ठा और तप के बाद उसे प्रेम सरीखा अमोलक तत्व प्राप्त होता है। प्रेमी वस्तुतः एक साधक है, प्रेम साध्य और विरह उसका साधन। इसीलिये कवि कहता है—

> विरह बिनु नहीं प्रीति की खोज।
> बिनु लागे कैसे आवत है इनि नैननि कों रोज॥
> स्याम मनोहर बिछुरे सखी री, बैरी भयो मनोज।
> 'परमानंद' निसूगे जे नर ते हैं राजा भोज॥

प. सं. १०१८

'जिन खोजा तिन पाइयाँ' की उक्ति यहाँ चरितार्थ होती है। विरह एक अगाध—अनन्त जल-निधि है। इसमें एक ओर आँधी और तूफान है तो दूसरी ओर प्रशान्त गम्भीरता और गहनता है। एक ओर उत्ताल तरंगित जल-धाराएं है तो दूसरी ओर तरलित मृदुल

हिलोरों का मादक विलास है--शीतल सीकरों का मधुर उच्छ्वास है। यहां आलोडन और बिलोडन भी है; गहराइयों के अन्तः स्रोतों का अस्फुट संगीत भी। ऐसे वियोग-रूपी गहन सिन्धु के किसी निभृत तल पर प्रेम के उज्ज्वल मुक्ताओं को राशियाँ सो रही हैं। इन्हें पाने के लिये वियोग-जनित सभी उथल-पुथल, उत्थान, पतन सरल-भाव से सहने पड़ते हैं। उत्तुंग तरंगों के थपेड़े सह कर ही उनके तल मे विलसित अनन्त, अनमोल निधि प्राप्त होगी।

जब तक हृदय पर विरह की चोट नहीं लगती, आघात से हृदय कराह नहीं उठता, तब तक पीडा से विगलित नेत्रों के अश्रु मुक्ताओं से प्रेमी का शृंगार नहीं हो पाता। 'बिनु लागे कैसे आवत है इनि नैननि कों रोज'··· ठीक ही तो है। पाषाण-हृदयों के कुलिश-कठोर खण्डों पर भी चोट पडती है तो उनके अन्तः स्रोतों की प्रसुप्त चेतना भी अविरल निर्मल निर्झरिणी के रूप में फूट पडती है। लगी हुई बुरी होती है —चोट भी, आग भी। प्रीति भो चोट और आग की तरह जहाँ लग जाती है, संयोग-वियोग की अनेक कोटियों में से हो कर, विविध अनुभूतियों में हृदय को रंगती-पगती हुई, हास और अश्रुओं के अनेक खेल खिलाती हुई परिपुष्ट रस की उपलब्धि कराती है, किन्तु इन सब कोटियों में वियोग की कोटि प्रेमी के लिये···बिरही के लिये ऐसी कोटि है, जिसमें प्रियतम से विलग होते ही सारा जग बैरी हो जाता है। सम्बल के टूटते ही, निर्बल पा कर उसे कोई भी आ दबाता है। यहाँ भी स्याम-मनोहर के बिछुडते ही सबसे पहिला वैरी विरहिणी व्रजांगनाओं के लिये, उनका मनोज ही हो गया, क्योंकि अब सम्पूर्ण कामनाओं के पूरक प्रिय श्यामसुन्दर का सम्बल टूट गया, अबला गोपियाँ उस प्रबल काम के आगे असहाय बन गयीं।

उस वियोगावस्था में काम के द्वारा दी हुई पीडा गोपियों के

लिये अनेक रूप में व्यापती है । दिवा-निशि, इकटक प्रियतम नन्दनन्दन के आगमन की प्रतीक्षा में, उनका वियोग-व्याकुल-हृदय उद्वेग में कराहता उद्वेलित हो रहा है । दो पलों के लिये नींद भी पलकों में नहीं सना जाती....अखण्ड रात्रि का जागरण श्याम-घन की बाट जोहते-जोहते साधा जा रहा है । बेकली को भी कोई सीमा नहीं । प्रियतम के अनुचिन्तन के बिना एक क्षण भी नहीं बीतता । आज 'चिन्तामणि' जो हाथ से छूट गयी है ...इतनी बड़ी निधि खो जाने पर चैन की साँस कौन लेगा । यह तो पपीहा की प्रीति है, इसमें 'पी-पी' की रट उसका मूल-मन्त्र है ।

कल्पना तो कीजिये, किस तरह से ये विरहिणियाँ शून्य दृष्टि से अनन्त आकाश में अपने खोये प्रियतम को ढूँढ लाने के लिये चेष्टा कर रही हैं । मानों अपनी ही कल्पना के रंगों से निरभ्र गगन की नीलिमा के निर्मल पट पर 'घनश्याम' का चित्र आँक रही है । कितनी तन्मनस्कता है, कवि स्वयं ऐसी ही विरहिणियों की अनुभूतियों से अपने हृदय का तार मिला कर कह उठता है—

नींद तौ ताहि परै जाहि लाल न भावे ।
चारि जाम निसि बैठी जाग कबहिं स्याम घन आवे ॥
जा की छूटि जाइ चिंतामनि सो कौने ढंग सोवे ॥
उपजाति प्रीति पपीहा की सी सदा गगन-तन जोवे ॥
जा कौ मन जाही सों बेधौ सो ता हाथ बिकानों ।
'परमानंद' हिलग है ऐसी कहा राँक कहा रानो ॥

प० सं० १००२

यह कैसी 'हिलग' है—मन की 'अटक' है जो रंक-राजा सभी के हृदय में उठे बिना नहीं रहती । मन-विहंगं को जिसने अपनी प्रीति के वाण से बेधा, बस, वह उसी का हो गया—बिना मोल उसी के हाथ बिक गया । जब मन पराया हो गया, परबश हो गया, तब उन्मत्त, मूक, जडवत् स्थिति हो गयी । विरह-व्यथित राधा की स्थिति का कितना सजीव अंकन कवि ने इन शब्दों में किया है—

अनमनी बैठीये रहै।
अंतरगत की बिथा मोहिनी काहू सों न कहै ॥
सूखौ बदन अधर कुम्हिलाने नैननि नीर बहै।
रजनी निंदा करत चंद्र की अलकावली दहै ॥
तुम्हारे बिरह-वियोग राधा बासर घाम सहै।
बेगि मिलहु 'परमानंद' स्वामी दूती बचन कहै ॥

(प० सं० ७५३)

आज वह अनमनी सी है, मन से बंचित और ठगी, छली हुई। हृदय की व्यथा व्यक्त करते नहीं बनती...मन की चिन्तन और तर्क की शक्ति भी जा विलुप्त हो गयी। अब हृदय की चेतना-मात्र है, जो अनुभूति तक ही सीमित है, अभिव्यक्ति में पंगु। फिर व्यथा का ढिंढोरा नहीं पीटा जाता। चुपचाप लबों पर 'उफ' लाये बिना सारी चोट सह कर रह जाते हैं। प्रीति तो परम गोपनीय तत्व ठहरा। प्रीति की व्यथा ही 'व्यथा' नहीं, जो पीडा दे, जलन दे। उच्चकोटि में पहुँचकर तो वह सारी पीडा भी रस-मय हो जाती है। सब कुछ मधुर, आस्वाद्य हो जाता है। यह भी तो अपने 'मधुर' प्रिय की ही दी हुई है, अतः वह भी मधुरतम हो गयी। इसीलिये प्रेमी 'शिकवा-शिकायत' कर प्रेम को कलंकित नहीं करना चाहते। 'काहू सों का कहै' का यही रहस्य है।

फिर भी हृदय के अनुभाव छिपाये नहीं छिपते। चित्त की उन्मनता, वाणी से मौन, अन्तः व्यथा का गोपन, मुख की शुष्कता वा विवर्णता, अधरों का कुम्हला जाना, नेत्रों से अश्रु-प्रवाह चन्द्र की सुधा-शीतल ज्योत्स्ना की भी निन्दा अथच अरुचि, अलकावलियों का दाह, दिवस के उत्ताप का सहन आदि ऐसी चेष्टा वा गति-विधियाँ हैं, जो उसके अन्तः क्षोभ और उसकी अन्तर्द्वन्द की वेदना को स्पष्ट व्यक्त करती हैं। प्रियतम के मधुर-मिलन के बिना यह सारी स्थिति ज्यों की त्यों बनी रहेगी। 'बेगि मिलहु' ही इस समग्र रोग का उपचार है।

कितना अनन्य अनुराग है, श्यामसुन्दर के प्रति। जगत् की सारी ममताओं के बन्धनों को तोड़ कर, प्रियतम में एक-निष्ठ तन्मयता बड़े भाग्य से प्राप्त होती है। जिन रस-लोभी भक्त-मधुपों को प्रभु के चरणारविन्द की गहन-भक्ति का आस्वाद प्राप्त हो गया, वे उन्हें छोड़ कर जगत् में यहाँ-वहाँ क्यों भटकेंगे? अव्यभिचारिणी प्रीति तो एक ही स्थान पर रहेगी। कवि ने इस तथ्य का निरूपण कितना सुन्दर किया है...

प्रीति तौ एकहि ठौर भली।
इहि ब कहा मति चरन-कमल तजि फिर जु चली चली ॥
ते जाने जे सब बिधि नागर सार-सार-ग्रही लोग।
पायौ स्वाद मधुप-रस-लोभी स्याम-धाम-संयोग ॥
'परमानंददास' गुन-सुंदर नारदादि मुनि-ज्ञानी।
सदा विचार-विषय-रस-त्यागी जसु गावत मधु-बानी ॥
(प० सं० ४५५)

विशुद्ध प्रेम में 'सब बिधि नागर सार-सार-ग्रही', 'मधुर-रस-लोभी' और 'नारदादि मुनि-ज्ञानी' की भाँति 'सदा विचार-विषय-रस-त्यागी' होना चाहिये, तभी 'एकहि ठौर' की 'प्रीति' का सम्यक् निर्वाह हो सकेगा।

किन्तु इस 'एकहि ठौर की प्रीति के निर्वाह में ब्रज-सीमन्तिनियों के समक्ष एक और बाधा है। उनके श्यामसुन्दर 'माखन-चोर' और 'चित-चोर' जो ठहरे, उन्हें ब्रज की गोपियों के 'घर-घर' जाकर उनके 'दधि-नवनीत' की चोरी का स्वाद लग गया है। वे तो 'मधुप रस-लोभी' हैं, स्वयं 'एक ठौर की प्रीति' के पालक नहीं। तब ऐसे 'चोर-जार-शिखामणि' को अपने स्नेहानुबन्ध में सदा के लिये एक स्थान पर कैसे रखा जाय? इसके लिये भी एक रसवती नायिका की बड़ी सरस योजना है..

चित कौ चोर अबहि जो पाऊँ ।
द्वार कपाट बनाइ जतन करि नीके माखन-दूध खवाऊँ ॥
जैसे निसंक धसत मंदिर में तिहि औसर जो अचानक आऊँ ।
गहि अपने कर सुदृढ मनोहर बहुत दिननि की रुचि उपजाऊँ॥
लै राखौं कुच-बीच निरंतर प्रतिदिन कौ तन-ताप बुझाऊँ ।
'परमानंद' नंदनंदन कौ घर-घर कौ परिभ्रमन मिटाऊँ ॥
(पद सं० ४११)

वह श्यामसुन्दर माखन-दूध के साथ ही उसके चित्त को भी चुरा कर, आँख बचा कर भाग निकलता है। उसने कितनी ही बार चोर को पकड़ना चाहा, पकड़ न सकी। इस बार हाथ लगने पर वह उसे नहीं छोड़ेगी। बड़े यत्न से द्वार को बन्द कर वह अपने हाथों ही अच्छे प्रकार से उसे दधि-नवनीत खिलायेगी...'हृदय का चिर-संचित नवनीत', मधुर-नवनीत, भी तो उसे खिलाना है। उसके भवन में निर्भय जैसे ही वह घुसेगा, अचानक पीछे से आ कर वह अपने सुदृढ़ बाहु-पाश में बाँध लेगी...उसके अन्तस्तर में छिपी हुई चिर-काल की अभिलाषा पूरी हो जायगी। किन्तु प्रश्न है कि बाहु-बंधन में कब तक बाँधे रहेगी ? उसे स्थायो बसायेगी कहाँ ? इसके लिये भी उसके पास उत्तुंग कुचों से घिरा हुआ सुदृढ़ हृदय-गढ़ सुरक्षित है, जहाँ निरन्तर, निरन्तर के लिये उसे वह बन्दी बना लेगी। युग-युगीन विरह-ताप और कामानल से जलो-झुलसी गोपी प्रियतम का मधुर-मदिर आश्लेष पा कर...अन्तस्तल में उसे चिर-मधुर वास दे कर अपने को शीतल, परितृप्त कर लेगी। श्यामसुन्दर नन्दनन्दन सदा-सर्वदा के लिये 'उसके अपने' हो जायेंगे।

सर्वस्व-आत्म-समर्पण और सर्वस्व-अधिग्रहण की उत्कट कामना ही तो प्रेमी-युगलों का चरम लक्ष्य है और जहाँ कामना में उत्कटता आयी कि उसके प्रतिफलन में भी विलम्ब कहाँ ? अन्तः भावनाओं या सूक्ष्म चेतन का बाह्य जगत् से—स्थूल चेतना गति-विधियों से

सीधा मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध है ही। देखिये—गोपी की कामना किस रूप में प्रतिफलित होती है—

अब मोकों मिलै दधि कौ चोर।
तौ राखों अपने कर अंतर जहाँ निपट साँकरी ठौर।।
चूँबों गाल अधर देउँ दंतनि ऐसी चोरी करै न बहोरि।
'परमानंद' आइ गए मोहन निरखि ग्वालि हँसी मुख मोरि।।
प. सं० ४१२

वह एक पग और आगे बढ़ गयी। अपने 'दधि के चोर के अनुशासन के लिये उसने दण्ड-विधान की कुछ सरस रेखाएँ भी बाँध ली हैं। 'हृदय की निपट साँकरी ठौर' में जहाँ केवल एक के लिये स्थान है; वह अपने 'मोहन' को बन्दी बना लेगी। फिर जो उस पर बीतेगी, उसका भी वह यहाँ संकेत दे रही है। 'मोहन' पर उसकी मोहिनी का, चित्त की चोरी का बहुत बड़ा अभियोग है और उसके लिये, उस अपराधी के सुधार के लिये दण्ड-विधान भी बड़ा विलक्षण किया गया है। अवश्य ही दण्डित और दण्ड-विधायक दोनों ही के लिये बड़ा मधुर, बड़ा मादक और सरस।

भला, ऐसे दण्ड-विधान को कौन स्वीकार नहीं करेगा। गोपी के मधुर चिन्तन के साथ ही उसका 'अपराधी' मोहन सामने आकर खड़ा हो गया। ग्वालिनी की सहज स्निग्ध व्रीड़ा में सुचिन्तित रस-क्रीड़ा की योजना सभा गयी। कौन जाने, वह किस प्रकार क्रियान्वित होगी?

'परमानन्द-सागर'

श्रीमद्भागवत-दशमस्कन्ध

पर आधारित

—: नित्य-भगवल्लीलाएँ :—

श्रीनाथजी की कीर्तन सेवा में
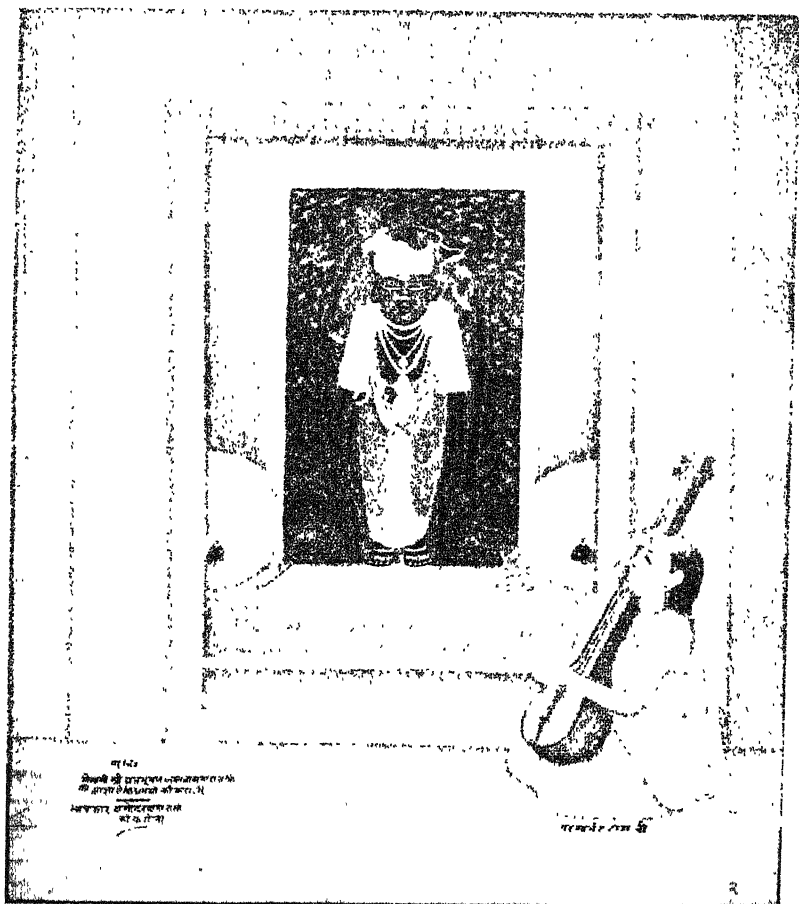
★ पद ★

पिय-मुख देखत ही पै रहिये ।
नैननि कौ सुख कहत न आवै जा कारन सब सहिये ।।
सुनहु गोपाल लाल ! पाँइ लागों भली पोच लै त्रहिये ।
हौं आसक्त भई या रूपै बड़े भाग तें लहिये ।।
तुम बहु-नायक चतुर-सिरोमनि मेरी बाँह दृढ गहिये ।

"परमानन्द-सागर"

(श्रीमद्‌भागवत-दशमस्कन्ध पर आधारित नित्य-भगवल्लीलाएँ)

प रि शि ष्ट

[क] उत्सव-त्यौहार

[ख] आश्रय और विनय

[ग] प्रकीर्ण

परमानन्द-सागर

१. जन्म-समय

जन्म-समय—

[१] सारंग

आजु नंदराय कें आनंद भयो ।
नाचति गोपी करति कुलाहल मंगलचारु ठयो ॥
राती पियरी चोली पहिरें नौतन झूमक सारी ।
चोबा चंदन अंग लगायें सेंदुर माँग सँवारी ॥
माखन दूध दह्यो भरि भाजन सकल ग्वाल लै आए ।
बाजत बेनु बिषान महुवरी गावत गीत सुहाए ॥
हरद दूब अच्छित दधि कुमकुम आँगन बाढी कीच ।
तारी[1] दै दै हँसत परस्पर लागि लागि भुज बीच ॥
कहुँब बेद-धुनि करत महामुनि पंच सबद ढमढोल ।
'परमानंद' फिरत गोकुल में आनँद हृदय कलोल ॥

[२] सारंग

आजु बधाये[2] कौ दिन नीकौ ।
नंद-घरुनि जसोमति जायो है लाल भाँवतौ जी कौ ॥

---

१. हँसत परस्पर प्रेम मुदित मन लागि (च) २. बधाई (ग.ज.)

पंच सबद बाजन बाजत हैं घर घर तें आयो टीकौ ।
मंगल कलस लियें ब्रज-सुंदरि ग्वाल बनावत छीकौ ॥
देंहिं[1] असीस गरग जु महामुनि जीवौ कोटि बरीसौ ।
'परमानंद दास' कौ ठाकुर गोप-भेष जगदीसौ ॥

[३] सारंग

नंद ! बधाई दीजै ग्वालनि ।
तुम्हारे ब स्याम मनोहर आए गोकुल के प्रतिपालनि ॥
गोपिनि[2] बहुविध भूषन दीजै विप्रनि दीजै गाइ ।
गोकुल मंगल[3] महामहोच्छौ कमलनयन ब्रजराइ ॥
नाचहिं गोपी औरु ग्वाल सब गावहिं गीत रसाल ।
'परमानंद' प्रभु तुम चिरजीवहु नंद गोप के लाल ॥

[४] सारंग

घर घर ग्वाल देत हैं हेरी ।
बाजत ताल पखावज बाँसुरी ढोल दमामाँ भेरी ॥
झोंटत लूटत खात मिठाई कहि न सकत कोउ फेरी ।
उनमद ग्वाल करत कौतूहल[4] ब्रज-बनिता सब घेरी ॥
ध्वजा पताका तोरन माला सबै सँवारत सेरी ।
जै जै कृष्ण कहत 'परमानँद' प्रगट्यो कंस कौ बैरी ॥

---

१. देत असीस सकल गोपीजन जीवौ (ग.ज.) २. जुवतिनि (आ.)
३. मंडन ४. कोलाहल

[५] सारंग

गोकुल में बाजति कहाँ[1] वधाई ।
भीर भई है नंद के द्वारें अष्ट महासिद्धि आई ॥
ब्रह्मादिक इंद्रादिक जाकी चरन-रेनु नहिं पाई ।
सोई नंद कौ पूत कहावत कौतुक सुनु मेरी माई ॥
ध्रुव अंबरीष प्रह्लाद बिभीषन नित नित महिमा गाई ।
सो हरि 'परमानँद' कौ ठाकुर ब्रजजन केलि कराई ॥

[६] धनाश्री

जसोदा सोबन फूलें फूली ।
तुम्हारें पूत भयो कुल-मंडन वासुदेव सम तूली ॥
देंहिं असीस बिरध ते ग्वालिनि गाँव गाँव तें आईं ।
लै लै भेट सबै नीकी[2] सी मंगलचारु वधाईं ॥
ऐसे दसक होंहिं जो औरें सब कोऊ सचु पावें ।
बाढौ बंस नंद बाबा कौ 'परमानँद' गुन गावें ॥

[७] सारंग

भादौं की रयनि अँधियारी* ।
गरजत गगन दामिनी कौंधति गोकुल चले मुरारी ॥
सेस सहस फन बूँद निवारत सेत छत्र सिर तान्यौं ।
वसुदेव-अंक मध्य जग-जीवन कहा करैगौ पान्यौं ॥

---

१. आज   २. सबै मिलि निकसीं ।

* 'सूरसागर' (नागरी प्र.स.) पद सं० १२९ में केवल पहिली तुक में सादृश्य-भ्रम होता है परन्तु दोनों प्रथक् प्रथक् हैं ।

जमुना थाह भई तिहिं औसर आवत जात न जान्यों ।
आनँद भयो 'दास परमानँद' देव मुनिन मन मान्यों ॥

[८] कान्हरौ

जनमत ही आनंद भयो ।
नव निधि प्रगट भई नँद द्वारें सब दुख दूरि गयो ॥
वसुदेव देवकी मतौ उपायो पलना मेलि[1] लयो ।
कमला[2]-कंत दियो हुंकारौ जमुना थाह[3] भयो ॥
नंद जसोदा के मन आनँद गरग बुलाइ लयो ।
'परमानँद' प्रभु असुर-निकंदन गोकुल प्रगट भयो ॥

[९] नायकी

जनम लियो सुभ लगुन विचार ।
कृष्णपच्छ भादौं निसि आठें नछत्र रोहिनी अरु बुधवार ॥
संख चक्र गदा पद्म पीतपट क्रीटमुकुट अरु मनि उजियार ।
मुदित भए वसुदेव देवकी 'परमानंददास' बलिहार ॥

[१०] कान्हरौ

आठें भादौं की अर्द्ध राति ।
जनम लियो जगदीस मधुपुरी जग में जादौ जाति ॥
बालक बदन देवकी देख्यो उठि धाई अकुलात ।
ऐसौ अद्भुत रूप चतुर्भुज देख्यो वसुदेव तात ॥

---

१. माँझि २, कमलनयन जब दियो ३, पार दयो (ग)

तेजोमय वपु धर्यो मनोहर चितवत चितयो न जात ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर नैननि ही मुसिक्यात ॥

[११]　　　　पूर्वी

रानी जू जायो पूत सुलच्छन ।
बिप्रनि दान देति[1] मनि भूषन बधूनि कों पट दच्छन ॥
जनमत गयो घोष कौ नसिकैं सकल संताप ततच्छन ।
'परमानँद' प्रभु प्रगट भए हैं निज भक्तनि के रच्छन ॥

[१२]　　　　कान्हरौ

यह धन धर्म ही तें पायो ।
नीकें राखि जसोदा मइया नारायन घर आयो ॥
जा धन कों मुनि जप तप साधत[2] निगमहु पार न पायो ।
सो धन धर्यो छीरसागर में ब्रह्मा जाइ जगायो ॥
जा धन तें गोकुल सुख लहिए बिगरे काज सँवारैं ।
सो धन बार बार उर अंतर 'परमानंद' बिचारैं ॥

[१३]　　　　नायकी

प्रगटे मोहन मंगल माई !
कृष्णपच्छ भादौं निसि आठें घर घर बजति बधाई ॥
बंदीजन औ भाट ब्राह्मन देस देस तैं आए ।
दिए पटंबर भूषन अंबर जो जाके मन भाए ॥

---

१. दिए मनि कंचन　　२. खोजत, वेदहु पार (छ)

तुम बिन और कौन त्रिभुवन में दियो मनहिं बढाई ।
'परमानँद' प्रभु के हित कारन औ सब जात जिबाई ॥

[१४] बिलावल

प्रगट भए हरि श्रीगोकुल में ।
नाचत गोपी गोप परस्पर, आनँद प्रेम भरे हैं मन में ॥
गृह गृह[1] तै गोपी सब निकसीं कंचन थार धरें हाथन में ।
'परमानंददास' को ठाकुर प्रगटे नंद-जसोदा-गृह में ॥

[१५] धनाश्री

नंद ! महोच्छौ हो बड कीजै ।
अपने लाल पर बारि न्योछावरि सब काहूकों दीजै ॥
विप्रनि देहु गाँइ अरु सोंनो भाटनि रूपौ दाम ।
जुवतिनि देहु पटंबर भूषन पूजैं मन के काम ॥
नाचहु गावहु करहु बधाई अजन जनम हरि लीनों ।
इह अवतार बाल-लीला-रस 'परमानंद' हिं दीनों ॥

[१६] सारंग

दधिकादौ आँगन नंद के ।
मंगलचारु भयो दसहूँ दिसि प्रगटे आनँदकंद के ॥
गाँइ गोप गोपीजन क्रीडत रहसत बालमुकुन्द के ।
मानों लाभ भयो त्रिभुवन में मिटे सकल भव-फंद के ॥

---

१. घर घर तें व्रजरानी धावति

बरषत सुमन देव मुनि हरषत गावत जस स्रुति-छंद के ।
जो सुख नंद जसोदा रानी सो सुख 'परमानंद' के ॥

[१७] धनाश्री

ब्रज[1] में बाजति आज बधाई ।
नंद महर-घर पुत्र-जनम भयो मेवा बहुत लुटाई ॥
गाँव-गाँव तें बाला आईं स्रवन सुनत उठि धाईं ।
देति असीस जियौ जसुमति-सुत हमें बहुत सचु पाई ॥
बाजत ताल मृदंग बाँसुरी मानिनि मंगल गाईं ।
चोबा चंदन और अरगजा केसरि छोरि छिटाईं ॥
भादौं मास अष्टमी के दिन रितु बरषा बरसाई ।
सुभ नछत्र सुभ बार घरी गुरु पत्री बाँचि सुनाई ॥
दान मान दीजै बंदीजन ग्वालिनि बहु पहिराई ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर कीरति जग में गाई ॥

[१८] मारू

ब्रज में होत कुलाहल भारी ।
आनँद मगन ग्वाल सब नाचत देत दिवावत[2] गारी ॥
नंदराइ के भवन जु आवति आनंदित ब्रज-नारी ।
पुत्र-जनम सुनि हरष भयो है 'परमानँद' बलिहारी ॥

---

१. ब्रजपुर बाजति २. परस्पर तारी

[१९] सारंग

नंद-गृह बाजति आज बधाई ।
जुरि आई सब भीर आँगन[1] में जनमे कुँवर कन्हाई ॥
सुनत चलीं सब ब्रज की सुंदरि कर लिएँ कंचन थाल ।
कुमकुम केसर अच्छित श्रीफल चलति ललित गति चाल ॥
आज भइया यह भली भई है नंद-घर ढोटा जायो ।
हृदै-कमल फूल्यो जु हमारो सुनत बहुत सुख पायो ॥
दान मान विप्रनि बहु दीन्हे सबकी लेत असीस ।
पुहपनि वृष्टि करत 'परमानँद' सुर जु कोटि तेतीस ॥

[२०] सारंग

चलो भइया आनंदराइ पें जैये ।
जसुमति लाल लाडिलौ जनम्यो कछुक बधाई पैये ॥
जाचकजन आवत माँगन कों सुरभि हेम पद दीन्हे ।
दुख दारिद्र नसे सबहिंन के जनम अजाची कीन्हे ॥
घुरत विमान सब्द सहनाई बाजति है जु बधाई ।
मानिनि सब मिलि मंगल गावति मोतिनि चौक पुराई ॥
कौन पुन्य तप किए नंद जू कहत न आवै पार ।
'परमानंद' प्रभु वैकुंठ जाकें ब्रज लीनो अवतार ॥

---

१. भवन

[२१] देवगंधार

ब्रज में फूले फिरत अहीर।
नंद महर घर ढोटा जायो सुख-निधि स्याम सरीर ॥
मंगल कलस दूब दधि अच्छित वेद पढत द्विज धीर।
माँगन ग्वालि बधाई आईं देहु जसोदा चीर ॥
फूले नंद ग्वाल पहिराए छिरकत कुमकुम-नीर।
'परमानंददास' कौ ठाकुर प्रगट्यो जादौ वीर ॥

[२२] देवगंधार

आजु अति बाढ्यो है अनुराग।
पूत भयो री नंद महर कें बडी वैस बड भाग ॥
दई सबच्छ लच्छ द्वै गैयाँ नंद बढायो ताग।
गुनी[1] गनक बंदीजन मागध पायो अपनौ लाग ॥
कूदें[2] ग्वाल मनौं रन जीते आनँद फूले बाग।
हरद दूब दधि माखन छिरकत मच्यो भदैया फाग ॥
गोपी गोप ओप सबके मन गावत मंगल राग।
'परमानंददास' भक्तनि कौं भयो परम सुहाग ॥

[२३] सहानौ

रावरि के गोप कहें आज ब्रज दूनी ओप
कान दै सुनौ बाजैं गोकुल में मंदिलरा।

---
१. मागध सूत बदित बंदीजन पायो (अ) २. कूके (आ.)

जसुदा कें पूत भयो वृषभान सौं जाइ कह्यौ,
जहाँ तहाँ दौरी लै दूध घृत-गगरा ॥
गो-वृन्द आगें धरें पाछें तिय मन हरें
चालि ना सकत कोऊ पावै नहिं डगरा ।
'परमानंद' गिरिधरन जनम भयो मन-हरन
फूल्यो फूल्यो फिरै जहाँ नारद सौ भँवरा ॥

[२४] सारंग

गह्यो नंद सब गोपिनि मिलिकैं दीजै हमहिं बधाई ।
अखिल भुवन की कान्ह महानिधि सो तुम्हरे घर आई॥
नाचत [1]ग्वाल गावें सब ब्रजजन आनँद उर न समाई ।
कच-लर कुच-ऊपर लटकति है यह छबि बरनी न जाई॥
मनभाए पट भूषन दीन्हे ग्वालनि सब पहिराई ।
'परमानंद' नंद-घर-आनँद गोपी महानिधि पाई ॥

[२५] सारंग

नंद तुम्हारें आयो पूत ।
खोलि भंडार अब देहु बधाई तेरौ भाग्य अद्भूत ॥
लै लै घृत दधि देहरी पखारे तोरन माल बँधाए ।
कंचन बसन अलंकृत रोरी विप्रनि धेनु दिवाए ॥

---

१. बाजत तूर होत कौतूहल मंगलचारु सुहाई (ङ)

विप्र सबै मिलि करत बेद-धुनि हरषित मंगल गाए ।
सब दुख दूरि गए 'परमानँद' आनँद उर न समाए ॥

[२६] सारंग

नंद महर कैं ढोटा जायो ।
जननी जसुमति बदन निहारति
सब गोपिनि मिलि मंगल गायो ॥
भवन चतुर्दस भई बधाई आनँद ढोल बजायो ।
गोकुल में कौतूहल माँच्यो ग्वालिनि नाच्यो गायो ॥
गुनी गंधर्व चारन बंदीजन स्रवन सुनत उठि धाए ।
'परमानँद' प्रभु परम कृपानिधि श्रीपति भूतल आए ॥

[२७] मारू

सबतें नंदराइ बडभागी ।
प्रगट्यो पुत्र मनमोहन जिनकैं कीरति जग में छाई ॥
दिए कनक मनि दान अचल द्विज देखे ऐसे त्यागी ।
'परमानंद' बसौ गोकुल में फिरि कमला पग लागी ॥

[२८] सारंग

सबै मिलि मंगल गावहु माई ।
आजु कान्ह[1] कौ जनम दिवस है बाजत रंग बधाई ॥
आँगन लीपहु[2] चौक पुरावहु विप्र पढन लागौ बेदा ।
करहु सिंगार स्यामसुंदर कौ चोबा चंदन मेदा ॥

---

१. लाल (अ. आ. ग. च.) लाल की बरस गाँठि है (ङ)
२. आँगन चंदन चौक

आनँद भरी जसोदा[1] मईया फूलन अंग समाई ।
'परमानंददास' मन[2] इच्छत बहुत न्यौछावरि पाई ॥

[२६] धनाश्री

*जसोदा आपुन मंगल गावै ।
आज लाल की[3] बरस गांठि है मोतिन चौक पुरावै ॥
गाँव-गाँव तें जाति आपुनी ग्वालिनि[4] न्यौंति बुलावै ।
अनूचान[5] मुनि गरग परासुर तिनपें बेद पढावै ॥
हरदी तेल सुगंध सुबासित लालन[6] उबटि न्हावै ।
हरि-तन ऊपर बारि न्यौछावरि जन 'परमानँद' पावै ॥

[३०] विभास

लाल की बरस-गाँठि है आज ।
बाजन बाजें सब विधि नीकें कृष्ण-न्हवावन काज ॥
फूले फिरत सबै रँग भीने पुनि पुनि देत असीस ।
'परमानँद' प्रभु अति ही मनोहर जीवौ कोटि बरीस ॥

[३१] धनाश्री

सुनि-सुनि आज सुदिन सुभ गाई ।
बरस गाँठि गिरधरनलाल की बहुरि कुसल सों आई ॥

---

१. नंद जू की रानी फूली अंग न माई (अ. आ.) आनँद उमगि नंद जू की रानी प्रेम न हृदै समाई, फूली फिरत जसोधा रानी आनँद उर न समाई । २. तिहि औसर (अ. आ. ग.) * रानी जू आपुन(ज) ऐसा भी प्रारम्भ है ३. कौ जन्म-द्योस है (ङ) ४. गोपिनि (अ. आ.) ५. अनाचार अरु गरग. ६. लालै (अ. आ.)

गोपी सब मिलि मंगल गावतिं मोतिनि चौक पुराई ।
विविध सुगंध उबटनौ करिकैं कुँवर कान्ह अन्हवाई॥
पीताम्बर आभूषन सखियन करि सिंगार बनाई ।
निरखि निरखि मुख कमलनयन कौ उर आनँद न समाई॥
तिलक करति अच्छित दै जसुमति सुत की लेत बलाई ।
'परमानँद' प्रभु सब मन भायौ नंद-सुवन सुखदाई ॥

[३२] देवगंधार

आजु गोकुल में बजत बधाई ।
नंद महर कैं पुत्र भयो है आनँद मंगल गाई ॥
गाम गाम तें जाति आपनी घर-घर तें सब आई ।
उदय भयो जादौ-कुल-दीपक आनँद की निधि छाई ॥
हरदी तेल फुलेल अच्छित दधि बंदनबार बँधाई ।
नंदीसुर नँदराई घर-घर सबहिंन देत बधाई ॥
आज लाल कौ जन्म-द्यौस है मंगलचारु सुहाई ।
'परमानंददास' की जीवनि तीन लोक सचु पाई ॥

[३३] जैतश्री

जनम-दिवस की बानिक हेली मोपें बरनी न जाई ।
निरखि कुँवरई कुँवर काह्न की क्योंहू मन न अघाई ॥
कियो है सिंगारु रोहिनी आपुन ब्रज सेनी समुदाई ।
अरी ! वह ठाढौ है सिंघद्वार चलहु किन देखिये ॥

पाग सुरंगी कुंकुमरंगी पेच रतन के झलकैं ।
ढिंग मुक्तावलि चौकी चमकैं दमकत भाल रुपलकैं ॥
लटकन कैऊ जटित जराऊ अवत सिखरि पर ललकैं ।
मयूर चंद्रिका खचित मनि में जगमग-जगमग झलकैं॥
कुसुम गुच्छ बहु बरन मंजरी उरसी है आएं बाएं ।
उठति झकोरैं खिरकि खिरकि सगबगे कच दरसाएं ॥
ढरकि रही दच्छिन दिसि हेली केस निकस रहे बाँए ।
परमानंद मधु ऐंन सुरंजित पान बहुल से खाँए ॥
अरी! रस मारग सब रोक्यो है सजनी नैननि अंजन दीने।
तउ दृग अनुचर कृपा कटाच्छ सजि भौंह बंक मधु पीने॥
अनी सनी सुख अरुन हिडोरें प्रगटत भाव नवीने ।
मृगमद तिलक पातरी रेखा सुभग सघन बन कीने ॥
अरी ! रुचिर कपोल लोल मद उन्नत मंडित अच्छत रोरी।
गंडस्थली भाव-निधि मईयाँ केसरि बंदन-खौरी ॥
द्वै द्वै लटकारी घुँघरारी बिलुलित माँझ ठगौरी ।
भृकुटी अग्र फरक सरकनि में ब्रजजन होत हैं बौरी ॥
अरी! बदन सदन रखवारौ बाँकौ ललित लिलाट डिठौंना
नील कञ्ज रस में सौरभ सखि ! लेत हैं मधुकर छौंना ॥
नग-बेसरि के नग बहु मौलिक ढरकनि माँझ ढरौंना ।
हँसत लसत दसनावलि कौंधति चिबुक सुढार सलौंना॥

अरी ! करनफूल मोतिनि के झूमक जगर-मगर मेरी माई।
सुंदर सींव मनोहर ग्रीवा ब्रज सब रह्यो लुभाई ॥
परति त्रिबली ठोढी घाटी प्रेम-सुहाई ।
चढति है ब्रज-भामिनी ध्याना बस क्योंहू चढ्यो न जाई॥
पीत है बागौ पीत काछनी प्रीति रंग सों ओपै ।
चंद्रहार बैजंती चोहरी दामा दोहरी रोपै ॥
चंपकली अरु छरा धुकधुकी कछु बाहर कछु गोपै ।
हीरा हार हमेल चमक की कहि न जात कछु मोपै ॥
कनक सूत्र कौस्तुभमनि पहुँची अरु मनि-गन की भीर ।
बनमाला बघना तिरछौंही दिपति नाभि सर-तीर ॥
गोलाकृति चौकी की पचलर माँझ मोर पिक कीर ।
ए भूषन सबु आपु गढाए धनि-धनि नंद अहीर ॥
कठुला कंठसरी पन्नानि की हँसुली हेम जराऊ ।
भुज-मूलनि कृष्णागर बादर कीने हैं बलदाऊ ॥
और अरगजा है घर के सब उर छिरको आए महल अगाऊ
है सरस अबीर निभाव................भट्ट अरु झाऊ ॥
टोडर पहुँची गजरा पहुँचिनि हाथ साँकरी सोभा ।
अँगुरी दल मुद्रिका बिराजित जनु दामिनी के गोभा॥
कनक अरुन व ग्रही केयूरनि विसद पिरोजनि ओभा ।
.... ॥

चरनकमल तल अरुन तरुन सखि ! नूपुर चूरा राजें ।
लटक मटक पद पटक हटक में मधुरें मधुरे बाजें ॥
नख ससि ब्यास प्रताप रश्मि बल द्युति दिनकर की लाजें ।
कंजाकृति दावनु फिरि आयो पुरट कौर सुभ्राजें ॥
अरी ! चौखटि सीढी अरु कोरनि पर फैलि रहे उजियारे ।
चपला छटा कौन में ऐसे आभरन न्यारे न्यारे ॥
उमड्यो है गोकुल सिगरौ देखन कहा बिरध कहा वारे ।
श्रीअङ्ग सजल नील आभा के सब पर अंबर ढारे ॥
चौंर ढरत चहुंधा तें हेली ! गाइक आगें गावें ।
भादौं की आठें कों निज जसु प्रमुदित टेरि सुनावें ॥
बीरा सोंज सुगंध संमिल करि श्रीदामाजू खवावें ।
बोलत में मकरंद माधुरी चहुँदिसि तें चलि आवें ॥
घोष नृपति जू ढिंग ठाढे हैं दान करत बहु भाई ।
हरष न माइ कंदरा उर में ऐसौ ढोटा पाई ॥
घर घर द्विज ठाढे जूथनि सों ते सब लए बुलाई ।
तिनसों राइ असीस पढावत फुनि फुनि वेद पढाई ॥
इहि औसर 'परमानँद' ढाढी बहुत न्यौछावरि लीनी ।
श्रीब्रजराज-भाग की हेली सरस प्रसंसा कीनी ॥
ब्रज-वधू हेरि रंक भिच्छुक को उनिहूँ कछु कछु दीनी ।
आगे कहा कहूँ सुनि सजनी मनसा वा रँग भीनी ॥

पलना—

[३४]　　　　आसावरी

माई ! कमलनयन स्यामसुंदर झूलत हैं पलना ।
बाल-लीला गावति सब गोकुल की ललना ॥
अरुन तरुन चरन-कमल नख मनि ससि-जोती ।
कुंचित[1] कच भँवराकृति लटकैं गज-मोती ॥
अँगुठा गहि कमल-पानि मेलत मुख माहीं ।
अपनौ प्रतिबिंब देखि फुनि-फुनि मुसिकाहीं ॥
जसुमति कें पुन्य-पुंज निरखि[2] निरखि लालै ।
'परमानंद' स्वामी गोपाल सुत सनेह पालै ॥

[३५]　　　　बिलावल

×हालरू हुलरावति माता ।
बलि बलि जाउँ घोष-सुख-दाता ॥
अति लोहित कर-चरन-सरोजें ।
जे ब्रह्मादिक मनसा खोजें ॥
जसुमति अपनौ पुन्य बिचारै ।
बार बार मुख-कमल निहारै ॥

१, कुटिल केस (घ.)
२. वारि वारि (अ. आ.)
× 'हालरौ हलरावै माता' से भी प्रारम्भ । इसी तुक से सूरसागर पद सं. ६६४ भी है.

सकल भुवन-पति गरुडागामी ।
नंद-सुवन 'परमानँद'-स्वामी ॥

[३६] आसावरी

×वारी मेरे लटकन पगु धरौ छतियाँ ।
कमल-नयन बलि जाउँ बदन की
सोहति हैं नान्ही नान्ही दूध की द्वै दतियाँ ।
इह मेरी इह तेरी इह बाबा नंद की इह बलभद्र की
इह ताकी जु झुलावै तेरौ पलना ।
इहाँ तैं चलि खरु खाति पिवति जलु
परिहरौ रुदन हँसौ मेरे ललना ॥
रुनक-झुनक पग बजति पैंजनियाँ
अलबल अलकल बोलौ मधु[1] बनिया ।
'परमानँद' प्रभु त्रिभुवन-ठाकुर
ताहि खिलावति नंद[2] जू की रनिया ॥

[३७] आसावरी

माई री ! मीठे हरिजू के बोलना ।
पाँइ पेंजनिया रुन-झुन बाजैं आँगन आँगन डोलना॥
कज्जर तिलक कंठ कठुलाबलि पीतांबर के चोलना ।
'परमानंददास' की जीवनि गोपी झुलावति झोलना॥

× हौं बलि लटकन, वारी मेरे मोहन...ऐसे भी प्रारम्भ हैं.

१. मृदु. २. नंद की घरनियाँ ।

[३८] देवगंधार

×नंद-भवन में अबही देखा लरिका एक भला।
कहा कहौं अँग अँग की सोभा कोटिक काम-कला ॥
गावति हँसति हँसावति ग्वालनि झुलवति पकरि डला।
'परमानंददास' कौ ठाकुर मोहन नंद–लला ॥

[३९] कान्हरौ

रतन-जटित कंचन मनिमै नंद-सदन[1] मधि पालनौं।
तापर गजमोतिनि लर लटकति[2]
तहाँ झूलत जसुदा जू कौ लालनौं ॥
किलकि-किलकि हुलसति[3] मन ही मन
चितवति नैन बिसालनौं।
'परमानँद' प्रभु की छबि निरखति
आवति छिनु छिनु ब्रज-बालनौं ॥

[४०] सारंग

पालना झूलत बाल गोपाल।
गादी बैठि झुलावति जसुमति अति फूलीं देखतिं ब्रजबाल
कबहुँक गोद रोहिनी लैकै बोलति मैं बलिहारी लाल।
कबहुँक कनियाँ लेति गोपिका झुँझना दै जु खिलात उताल

× अद्भुत देख्यो नंद-भवन में..., ए भई...ऐसे भी प्रारम्भ हैं.

१. भवन २. लटकति अति तहाँ ३. विलसति, विहँसति

कबहुँक नंदराइ लै पौढत ब्रजभूषन इत उत बलराम ।
इह सुख धनि-धनि'परमानँद'कों मनबांछित पूरे सब काम॥

[४१] सारंग

झूलौ पालने हो लालन लेहुँ बलैयाँ तेरी ।
गाऊँ गीत कहि जसुमति रानी चुटकी दै-दै रीझै री ॥
हरि हँसि देत करत किलकारी द्वै दतियाँ सुभ दरसै री ।
'परमानंद' बारनै कीजै तन मन धन लै सुत पै री ॥

[४२] सारंग

आजु मृदंग मेघ-धुनि गाजै ।
सुनियत मंगलचार महर कें भुवन बधाई बाजै ॥
हेरी दै–दै गाँइ खिलावौ गोप–भीर दरवाजै ।
धाइ नंद जू देत बधाई ब्रज-मंगलनि निबाजै ॥
आँगन हरदी कीच मचाई एक भरै इक भाजै ।
एक नँद जू कों गारी गावै चढी अटारी छाजै ॥
अति आनंद बढ्यो गोकुल में विप्र वेद-धुनि साजै ।
भादों मास अँधियारी आठें सुत भयो दिनन सु नाजै ॥
भक्तनि हित अवतार लियो है कंस-निकंदन काजै ।
'परमानंद' पालने झूलत बालमुकुंद बिराजै ॥

[४३] बिलावल

झुलावति पलना महरि सुत कौं कर लिएँ नवनीत ।
नैन अंजन दै गाल मसि-बिंदुका औ उढयो पटपीत ॥
बेंनी देखति मंद हँसति है कबहुँ होति भय-भीत ।
दै कर तारी[1] नाचति गोपी गावति मधुरे गीत ॥
राई-लोंन लै ऊपर बारति होत सकल अँग प्रीत ।
परब्रह्म[2] गोकुल में झूलै 'परमानंद' पुनीत ॥

[४४] मालकोस

नंद कौ लाल झूलत पलना हँसत करत किलकइया ।
पलना बाँध्यो रंगमहल में पचरँग डोरिनि मइया ॥
मोर पपैया पाट के लटकन देखि देखि हुलसइया ।
जगन्नाथ जीवन-धन माधौ 'परमानँद' बलि जइया ॥

[४५] बिलावल

जसोदा ! तेरे भागि की कही न जाइ ।
जो मूरति ब्रह्मादिक दुर्लभ सो प्रगटी है आइ ॥
सिव नारद सनकादिक महामुनि मिलबे करत उपाय ।
ते नँदलाल धूरि धूसर बपु रहति कंठ[3] लपटाइ ॥
रतन जटित पौढाइ पालनें बदन देखि मुसिक्याइ ।
झूलौ मेरे लाल ! जाउँ बलिहारी 'परमानँद' जस गाइ॥

---

१. तार नचावति २. पूरन ब्रह्म ३. गोद लै माइ

स्वामिनीजी कौ जन्म-समय—

[४६] गुर्जरी

आजु रावलि में जै-जैकार।
प्रगट भई वृषभान गोप कें श्रीराधा अवतार॥
गृह-गृह तें सब चलीं बेगिही गावति मंगलचार।
प्रगट भई सोभा त्रिभुवन की रूप-रासि सुखकार॥
नाचत गावत करत कुतूहल[1] भीर गई अति द्वार।
'परमानँद' वृषभान-किसोरी[2] जोरी नंद-दुलार॥

[४७] भैरव

श्रीराधा जू कौ जनम सुन्यो मेरी माई!
साजि[3] सिंगार चलीं ब्रज गोपी[4] घर-घर बजति बधाई॥
अति सुकुवाँरि घरी सुभ लच्छन कीरति नें है जाई।
'परमानंद' करी न्यौछावरि घर-घर बात लुटाई॥

[४८] सारंग

आजु बधाई की बिधि नीकी।
प्रगटी सुता वृषभान गोप कें परम भाँवती जी की॥
जिहिं देखत त्रिभुवन की सोभा लागति है अति फीकी।
'परमानँद' बलि बलि इहि जोरी सुंदर साँवरे पी की॥

---

१. बधाई २. नंदिनी ३. सकल सिंगारि ४. सुंदरि (ग)

[४९] सारंग

प्रगट्यो सब ब्रज कौ सिंगार ।
कीरति-कूँखि औतरी कन्या सुंदरता कौ सार ॥
नख सिख रूप कहाँ लौं बरनौं कोटि मदन बलिहार ।
'परमानँद' प्रभु के हित कारन लखि राधा औतार ॥

[५०] कान्हरौ

आठैं भादौं की उजियारी ।
प्रगट भई श्रीकुवँरि राधिका सकल-सिरोमनि प्यारी ॥
गुन औ रूप कहाँ लौं बरनौं अँग-अँग रंग सुढारी ।
सुंदर गिरिवर-धर सम जोरी बिधिना हाथ सँवारी ॥
देखि-देखि फूलति ब्रज-भामिनि न्योंछावरि करि बारी ।
'परमानँद' स्वामिनि ब्रज प्रगटी श्रीवृषभान–दुलारी ॥

[५१] सारग

नगर में बाजति कहाँ बधाई ।
श्रीवृषभान गोप कैं कन्या अद्भुत सुंदरताई ॥
जै जैकार भयो बसुधा में इंद्र निसान बजाए ।
ब्रज जुवती मिलि मंगल गावें आँगन चौक पुराए ॥
घर घर सबहिन तोरन बाँधे कंचन कलस सुहाई ।
बड़ौ भाग वृषभान गोप कौ नंद–सुवन सुखदाई ॥
घर-घर तें आई ब्रज–नारी आनँद मंगल गावें ।
एक एक कुमकुम रोरिनि सों मोतिनि चौक पुरावें ॥

हरषत लोग नगर ब्रज-वासी भेट विविध बिध लावें ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर बानी सुनत गति पावें ॥

[५२] गूजरी

प्रगटी वृषभान-गृह लली ।
घर-घर तें सब गोप बधूएँ मंगल साजि चली ॥
ता दिन तें ब्रज-मंडल फूल्यो फूली कुंज-गली ।
फूल्यो आँगन नंदराइ कौ मानों कमल-कली ॥
बरसाने में रंग बढ्यो अति छिरकत घोष-गली ।
'परमानंद' नंद-नंदन की जोरी सुघर मिली ॥

[५३] गूजरी

आजु फिरति दुहाई नंद की ।
श्रीदामा यों कहत सखनि सों बात परम आनंद की ॥
कुवँरि भई वृषभान नृपति घर जीवनि गोकुलचंद की ।
नागरि चिरजीयौ ये जोरी राधा-'परमानंद' की ॥

[५४] सारंग

रसिकिनी राधा पलना झूलै ।
देखि देखि गोपीजन फूलै ॥
रतनजटित कौ पलना सोहै ।
निरखि निरखि जननी मन मोहै ॥
सोभा की सागर सुकुमारी ।
उमा रमा रति कहा बिचारी ॥

डोरी एँचति भौंह मरोरै ।
बार बार कीरति तृन तोरै ॥
तिहि छिन की सोभा कछु न्यारी ।
अखिल भुवन–पति हाथ सँवारी ॥
मुख पर अंबर बारति मइया ।
आनँद भयो 'परमानँद' भइया ॥

[५५] रामकली

पलना झूलति लली वृषभान की ।
चंदन को पलना बर मनिमै हलरावति सखि गान की ॥
सोहैं बितान नवल पलना पर चित्र विचित्र सुबान की ।
मुक्ता-मनि- झालर चहुँ ओरें पच रँग डोरी तान की ॥
हँसति लसति मुख अति सुंदर पर वारों कोटिक काम की ।
'परमानंद दास' मन भावति करि विधिना या जाम की ॥

---

२. छठी

[५६] सारंग

आजु छठी जसुमति के सुत की चलहु बँधावन [1]माई ।
भूषन बसन साजि मंगल लै सकल सिंगार बनाई ॥
भली बात बिधि करी बैस बड सुत पायो नँदराई ।
पुन्य पुंज फूले ब्रजवासी घर घर होत बधाई ॥

---

१. सबै जुरि जाई (आ.) ।

पूरन काम भए निज जन के जीवहिंगे जसु गाई ।
'परमानंद' बात भई मन की मुद मरजाद न पाई[1] ।।

[५७] सारंग

मंगल द्यौस छठी कौ आयो ।
आनंदे ब्रजराज जसोदा मानहुँ अधन धन पायो ।।
कुँवर न्हवाइ जसोदा[2] रानी कुल देव्या के पाँइ परायो ।
बहु[3] प्रकार व्यंजन धरि आगें सब विधि भलो मनायो ।।
सब ब्रजनारि बँधावन आईं सुत[4] कौं तिलक बनायो[5] ।
जै-जैकार होत गोकुल में 'परमानँद' जसु गायो ।।

[५८] धनाश्री

मंगल आजु महा मंगल घर नंद महर कें छठी छाजै ।
तूरा ताल झाँझ झल्लरि वर मधुर मधुर मंदिलरा बाजै ।।
मंडल रचनि रचनि पुष्पनि के कमल कली कुँजनि भ्राजै ।
दीपावलि घृत-पूरि पात्र भरि कोटिक चंद-छिपा छाजै ।।
गावत गीत गोपीजन सुंदर[6] होत कुतूहल सिसु जाजै ।
नील पीत पट बसन अधिक वर जसुमति देति सबै साजै ।।
यह छबि उपमा को कवि बरनै रसना इक सकुचति लाजै ।
प्रगटे 'परमानँद' सुख-सागर जगत हेत संतन-काजै ।।

---

१. माई (ग.)
२. जसोमति (क) ३. बलि प्रकार विधि विधि के करि करि आगें धरि भलो० (क. ङ) ४. हरषित मंगल गायो (आ.) ५. करायो
६. सुस्वर (बं. ६।४)

[५६] बिहागरौ

मंगल आजु महोच्छव है ब्रज द्यौस छठी कौ है अति नीकौ।
गावति मनभावति ब्रज-सुंदरि अति ही आनँद सबै जीकौ॥
दीपक पंगति भवननि-राजति
कुमकुम[1] फल कदली अवली कौ।
बाजत तूर पखावज झालरि[2]
बोलत सत-बानी सुकवी कौ॥
पूजति छठी पुजावत द्विजवर
जागत निसि न मिलत पल की कौ।
रतन-चौक राजत चौकी पर
मंगल दीप निकट वर घी कौ॥
कनक रचित लेखिनि मसिदानी
धरी जहँ चित्र रह्यो अंबी कौ।
नर नारिनि वर[3] बीरा दीने
चंदन बंदन केसर टीकौ॥
अति आनंद होत सब ब्रज में ग्वालनि गोपी भयौ[4] मन हीकौ
'परमानँद' अति पुलक होत तन अंगनि अंग सबै परतीकौ

---

१. कुसुम माल कदली (बं. ६।४)
आवज झालरि बोलत. बानी सुक पी कौ (बं. १।२)
२. सुर विमल पल. (बं. १।२)
३. माला बीरा दिए (बं. ६।४) ४. टरचो मन विरहीकौ (बं. ६।४)

[६०] धनाश्री

आजु महरघर छठी जागति निसा गावतिंगुन ब्रजकी नारी
बाजत मंदिलरा होत कुतूहल जन सब भए हृदै सुखकारी
रोपत कदली माल कुसुम वर रचत सुजन मंडप भारी।
बंदनबार बँधी चहुँ ओरें दीपनि रचि हाटक थारी॥
रच्यौ बिचित्र चंडी कौ पूजन जसुमति रानी सुकुमारी।
करि उपचार पुजावति द्विजवर खड्ग कोसतें करि न्यारी॥
पत्र लेखिनी वर मसिदानी लेख लिखानिकी करि तैयारी।
सिव-सनकादिक मुनि-ब्रह्मादिक खोजत दिवस निसै ज्यारी
माला तिलक बसन बीरा दै दास मान करि मनुहारी।
'परमानंद' नंदलाला पै तन मन धन सरबसु बारी॥

[६१] बिहागरौ

ब्रजपुर घर-घर अति आनंद।
प्रगट्यो है जसुमति के ढोटा दूर गए दुख-दंद॥
सौंज छठी (की) लाईं ब्रज-बनिता गावति गीत सुछंद।
नंदराइ तब छठी पूजिकैं दिए दान सुख-कंद॥
भीतर जाइ महरि पैं देखैं सुंदर मुख अरविंद।
करत आरती अवलोकत तब 'परमानँद' मन-फंद॥

---

३. बाल-लीला

नामकरण—

[६२] सारंग

आजु महा मंगल महराने ।
पंच सबद सुनि बजति बधाई घर घर भेरि बखाने ॥
ग्वालि लिएँ काँवरि गो-रस की बधू सिंगार जु ठाने ।
बाजत तूर तरुनि मिलि नाचतिं दधि के माट दुराने ॥
नाम-करन जब कियो गरग मुनि नंदादिक बहु दाने ।
पावन जस गावत 'परमानँद' जाहिं परेसुर जाने ॥

[६३] धनाश्री

गोकुल में आजु कुलाहल माई !
ना जानौं ये अष्ट महासिधि कहौ कहाँ तैं आई ॥
बोले नाम-करन[१] के कारन गरग विमल जसु गायो ॥
'परमानँद' संतन-हित-कारन श्रीपति गोकुल आयो ॥

[६४] बिलावल

नंद-घर आए गरग मुनि[२] ग्यानी ।
राम-कृष्ण कौ नाम-करन हित जदु-कुल के सनमानी ॥
गजमोतिनि के चौक पुराए नामकरन-विधि ठानी ।
मंगल गीत गवावति जसुदा बोलति अमृत-बानी ॥

---

१. नाम धरन के काजे (१२८।६) २. गरग विधि जानी.

प्रथमैं सुनहु बडे ढोटा के नाम राम बलदेव ।
हलधर और नाम संकरषन कोऊ न जानत भेव ॥
अब[1] कहौं नाम तुम्हारे सुत के सुनो चित्त दै नंद ।
कृष्ण नाम नाराइन केसौ औ हरि परमानंद ॥
पदुमनाभ माधौ मधुसूदन वासुदेव भगवान ।
और अनंत नाम हैं इनके कहौं कहाँ लौं आन ॥
नंद-सुवन त्रिभुवन के ठाकुर तिनके नाम धराए ।
'परमानँद' प्रभु अखिल लोकपति गोप-भेष धरि आए ॥

अन्न-प्राशन—

[६५] सारंग

इह मेरे लाल कौ अन्नप्रासनु ।
भोजन दछिना बहुत द्विजनि कौं देहौं मनि-मै आसनु ॥
पाइस भरि कर-पल्लव लेहु सब गुरु-जन अनुसासनु ।
'परमानँद' अभिलाष जसोदा बेगि बढै षटमासनु ॥

[६६] सारंग

अन्नप्रासन-दिन नंदलाल कौ करति जसोदा माई ।
ब्राह्मन देव पूजि कुल-देवी बहुतै दच्छिना पाई ॥
कुटुँब जिंवाइ पटंबर दीन्हे भवन आपुने आए ।
मागध भाट सूत सनमाने सबहिंनि हरष बढाए ॥

---

१. अब ए नाम तिहारे सुत के

जो जिहिं जाँच्यो[1] सो तिहिं पायो नंदराय बड[2] दानी ।
भक्त हेत प्रगटे जग-जीवन 'परमानँद' गुनगानी ॥

[६७]　　　　　　　　　　सारंग

सुदिन सँवारौ सोधि कें लाल जू भोजन कीजे ।
कुलदेवता मनाइ हरष सों इहै मानि मन लीजे ॥
ब्राह्मन-भोजन बहुत दच्छिना अति आदर सों दीजे ।
आसीरबाद देत सब ही मिलि मन-इच्छित[3] फल लीजे॥
बाढौ बेलि अति लाल लडैंते लोचन-पुट अमृत-रस पीजे।
'परमानंद' कहति नँदरानी देखि देखि मुख जीजे ॥

[६८]　　　　　　　　　　सारंग

जसुमति रानी खीर खवावत प्रथम सुभग दिन मानी ।
अति आनंद बढ्यो श्रीगोकुल विप्रनि दिए बहु दानी॥
लाल जू कों गोद लै बैठे नंदराइ बडभागी ।
खीर खाँड घृत मुखै चटावत देखि जननि अनुरागी ॥
मुखै पोंछि जसुदा कर लेखे गुरुजन के पद[4] लागी ।
'परमानंद' लाल चिरजीवौ सविता सों वर माँगी ॥

[६९]　　　　　　　　　　सारंग

प्रथमै खीर खवाई गोकुल-चंदा ।
प्रात जसोमति गीत गबाए भए सबै आनंदा ॥

---

१. चाह्यो । २. बहु । ३. वांछित । ४. पग ।

हरषित सबै मनोरथ पुजए जो जनमे नँद-नंदा ।
जुवती-जन पहिरें पट-भूषन गावति छंदन-छंदा ॥
नंद जू की रानी अति हरषानी गारि सुनी अति मंदा ।
'परमानँद' तहँ द्वारें देखत जनम-जनम कौ बंदा ॥

कर्णवेध—

[७०] धनाश्री

मईया ! मोहि कर दै री पूआ ।
झूठी बानि कहा बौरावति कहतिऽब सूआ सूआ ॥
कान छिदाबन कहौ सुदिन कब ह्वै है री मईया ।
पूत बुलाइ गरग कों बूझौं तिथि अरु बार जु देइ दिखइया॥
दियो चखोडा गोरोचन सारौ विप्र-चरन लै धरइया ।
'परमानँद' आनँद ब्रजवासी देति न्योंछावरि करत बधइया[1]

[७१] सारग

गोपालै[2] बेध–करन कौ कीजै ।
गुरु बल तिथि बल नछत्र[3] बार बल सुभघरीबिचारि लीजै
गनक निपुन द्वै चार बैठिकें मतौ विचार्यो नीकौ ।
मुहूरत जामें दोस रहित होइ सुखसागर ठहै जी कौ ॥
दियो मुहूरत सब सुखदाता चीत्यो मनोरथ पाए ।
नारि श्रीमंतिनि[4] गीत गवाए दिए भूषन मन भाए ॥

१. वडैया (क.) २. गोपाल कों (अ.) ३. नखत ४. सीमंतिनि

जसुमति मात गोद लै बैठी लाल देखि मन हरषे।
सुचि माता के गोद बैठि कैं मूँदि स्रवन मन करषे॥
कनक सूची लै स्रवननि दीनी बेधत बार न लागी।
बाल[1] रुदन जब करनहिं लाग्यो रोहिनी मात लै भागी॥
चुचकारति चुंबति चापति हिय लेउँ बलैया तेरी।
देत दान नँदराय बिप्रनि कों कहें 'परमानंद' टेरी॥

[७२] सारंग

सूची पढि दीन[2] द्विज देवा।
जातें पीर न होइ करन कों हम करि हैं तब सेवा॥
कहति जसोदा द्विजवर देवा! तब मन भायो करिहें।
गोकुल के प्रतिपालन लाइक गोपनंद कें रहिहें॥
ऐसौ सुख अपने दृग देखौं सकल संपदा बाढ़ी।
यातें कहा अधिक चहियतु[3] है अष्ट महासिधि ठाढ़ी॥
चिरजीवौ यह नंद लाल तेरौ द्विजवर बोले बानी।
नंदराइ-जस जुग-जुग[4] बाढौ 'परमानंद' बखानी॥

शयनोत्थित—

[७३] विभास

❀प्रातसमै भयो राजीवलोचन। संग सखाठाढे गोमोचन
बिकसितकमलरटतअलिस्रेनी।उठहु गोपालगुहौं तेरीबेनी

१. अतिसै रुदन करन जब लागे तब रोहिनि०

२. दई द्विजवर देवा ३. कहियतु है ❀ भयो कृष्ण राजीव० (ड. ग.घ. ड. च.) । भौर भयो राजीव० (ज.च)से भी प्रारंभ हैं

खीर खाँड घृत भोजन कीजै। सद्य दूध धौरीकौ पीजै।
'परमानँद' प्रभुसब सुखदानी उठहुगोपालकहतिनँदरानी॥

[७४] विभास

भयो पाछिलौ पहर।
रामकृष्ण कहि टेरन लागे बाबा नंद महर॥
ब्रह्म मुहूरत भयो साँवरे सु रँभन लागीं धेनु।
उठु बलभद्र बछरुआ ढीलहु गोपनु[1] पूरे बेनु॥
गोप-बधू दधि मंथन लागीं विप्र पढ़न लागे बेद।
'परमानँद' स्वामी मनमोहन गोकुल के दुख-छेद॥

[७५] विलावल

❀प्रात समै भयो साँवलिया हो जागौ।
नंद जसोदा के मन आनँद गाँइ दुहन कों भाजन माँगौ॥
रवि के उदै कमल प्रकासे भ्रमर उडि चले तमचुर बासे।
गोप-बधू दधि मंथन लागी हरिजू की लीला[2] गावन लागी
बिकसितकमलरटत[3] अलिस्रेनी उठहुगोपालगुहौंतेरीबेनी॥
'परमानंददास' मनभायो[4] चरनकमल-रज देखन आयो[5]॥

[७६] विभास

माई! हौं आनँद-गुन गाऊँ।
गोकुल की चिंतामनि माधौ जो माँगों सो पाऊँ॥

---

१. ग्वालनु (छ) ❀ प्रात भयो लालन तुम जागौ (बंध ३।१) से भी प्रारम्भ है. २. लीला के रस पागी. ३. चलत. (ग. ज.)
४. भावै (इ. घ.) ५. आवै. (इ. घ.)

जब तैं कमलनयन ब्रज आए सकल संपदा बाढी।
नंदराइ के द्वारें देखौ अष्ट महा सिद्धि ठाढी॥
फूले फले सदा वृन्दावन कामधेनु दुहि लीजै।
माँगे मेघ इंद्र बरसावै कृष्ण-कृपा सुख[1] जीजै॥
कहति जसोदा सखियनु आगैं हरि-उतकरष जनावै।
'परमानंददास' कौ ठाकुर मुरली मनोहर भावै॥

[७७] भैरव

जागौ मेरे! लाल जगत-उजियारे।
कोटिमदन वारौं मुसकनि पर कमलनयन मेरे नैननितारे॥
सँग[2] लेहु ग्वालबाल अरु बछरा जमुनाकेतीरजाहु मेरेप्यारे
'परमानंद'कहति[3] नँदरानी दूर जिनिजाहु मेरे ब्रजरखवारे

[७८] विभास

ललित लाल श्रीगोपाल! सोइए न प्रातकाल
जसुदा मईया लेति बलैया भोर भयो प्यारे।
उठौ देव करौं सेव दरस[4] दीजै वासुदेव!
नंदराइ दुहत गाँइ पीजिए पय बारे॥
रवि की किरन प्रगट भई उठौ लाल निसा गई
जहाँ[5] तहाँ दधिमथन करति गात गुन तिहारे।

---

१. कृपा तें जोजै (इ. ध.) कृपा करि.(च)
२. करिकै कलेऊ लाल संग लेहु बच्छ ग्वाल. जमुना के तीर बन जइये सवारे। (ग.) ३. दास की जीवनि दूर०(ग.)
४. जागिए देवाधिदेव. ५. जहां तहाँ दुहत धेनु गावत गुन० (बं. १।१)

नंदकुमार उठे विहँसि कृपा-दृष्टि सब पै बरसि
जुगल चरन-कमलनि पर 'परमानँद' बारे ॥

कलेऊ—

[७९] भैरों

करहु कलेऊ राम-कृष्ण मिलि कहति जसोदा मैया ।
पाछें बच्छ ग्वाल सब सँग लै चलौ चरावन गैया ॥
औट्यो दूध सद्य धौरी कौ रुचि करि भोजन कीजै ।
जग-जीवन ब्रजराज लाडिले जननी कौं सुख दीजै ॥
सीस मुकुट कटि काछनी पीत बसन उर धारौ ।
कर मुरली लकुटी लै मोहन मनमथ दरप निवारौ ॥
मृगमद तिलक स्रवनकुंडल मनि-कौस्तुभ कंठ बनावौ ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर ब्रजजन मोद बढ़ावौ ॥

[८०] रामकली

री ग्वालिनि ! पिछवारे व्है बोल सुनायो ।
कमलनयन जब करत कलेऊ कौर न मुख लौं आयो ॥
अरी मईया इक बन ब्याई गईया बछरा उहाँई बिसरायो ।
अब ही घेरि खरिक में लाऊँ ता कारन उठि धायो ॥
मुरली न लीनी लकुटिया न लीनी
अरबराइ कोऊ सखा न बुलायो ।
गुप्त प्रीति मोहन-मोहिनि की जस 'परमानँद' गायो ॥

[८१]		सारंग

❀गोपाल माई ! माँगत हैं दधि-रोटी !
लौन्यों[1] सहित देहु तुम मोकों सुपक्क[2] सुमंगल मोटी ॥
आरि[3] न करौ जाउँ बलिहारी अंगन काहेकों लोटी।
जोई मांगो सोई देहुँ दामोदर[4] छाँडहु इहि मति खोटी ॥
करि मनुहारि कलेऊ दीनों हाथ[5] चुपरि मुख चोटी।
'परमानँद' प्रभु चलेऽब चरावन हाथ लकुटिया छोटी卐॥

मंगल आरती—

[८२]		भैरव

मंगल आरती करि मन मोर मंगल राधा जुगलकिसोर।
मंगल जमुनतट मंगल बंसीवट मंगल धीर समीरे तोर॥
मंगल ब्रज मंगल वृंदावन मंगल गिरि गोवर्धन गोर।
मंगल महावन मंगल मधुवन मंगल रावरि खगके रोर॥
मंगल नंदगाँव बरसानौ मंगल सरस साँकरी खोर।
मंगल नंद जसोदा मंगल 'परमानँद' गावत उठि भोर॥

❀ गोविंद माँगत हैं० (ई. ग. घ. ङ. च.), गोविंद माई० से भी प्रारंभ हैं

१. माखन सहित देहु मो जननी सुभ्र सुकोमल मोटी। २. सुभग (ख-)
३. जो कछु माँगौ सो देउं मेरे ललना काहेकों अंगना लोटी।
कर गहि उछंग लेति महतारी हाथ फिरावति चोटी ॥
४. मनमोहन बं. ३। १।३१३ ५. माखन चुपरी रोटी (वं. ३। १।३१३
卐 सूरसागर प. स. ७८१ में भी 'गोपालराइ दधि माँगत अरु रोटी' तुकसे पाठभेद के साथ प्रारंभ

[८३] भैरव

मंगल आरती करि मन मोर । ब्रह्म निसा बीती भयो भोर ।
मंगल बाजत झालर ताल मंगलरूप उठौ नंदलाल ॥
मंगल बाजत बीन मृदंग-मंगल बाँसुरि सरस उपंग
मंगल धूप-दीप कर जोरि । मंगल गावति-नवलकिसोरि।
मंगल उदयौ मंगल रास । मंगल मन'परमानँददास'॥

प्रातः मुख-दर्शन--

[८४] भैरव

आछौ नीकौ लौनौ मुख भोर ही दिखाइये ।
निसि के उनींदे नैना बैना तुतरात मीठे
भाँवते हो जी के मेरे सुखहिं बढाइये ।
सकल सुख–करन त्रिविध ताप हरन
उर कौ तिमिर बाढ्यो तुरत नसाइये ।
द्वार ठाढे ग्वालबाल करऊ कलेऊ लाल ।
मिसिरोटी मोटी छोटी माखन सों खाइये ॥
तनक सौ मेरौ कन्हाई[1] वार फेरि डारि माई[2]
बैनी तौ गुहों बनाई गहरु न लाइये ।
'परमानंद' जन जननी मुदित मन ।
फूली फूली फूली[3] अंग अंग न समाइये ॥

---

१. कन्हैया (ग० छ०) २. मैया (ग० छ०)
३. डोलै (ग० ज०)

[८५]　　　　भैरव

×उठु गोपाल ! प्रातकाल देखौं मुख तेरौ ।
पाछें गृह-काज करौं नित्य-नेम मेरौ ॥
विगत निसा अरुन दिसा उदित भयो भान ।
गुंजति अलि पंकज-बन जागहु भगवान ॥
बंदीजन द्वार ठाडे करत हैं कैवार ।
सरस[1] बैन गाबत हैं[2] लीला अवतार ॥
'परमानँद'स्वामी गोपाल[3] जगत[4] मंगल रूप ।
वेद पुरान कथत[5] ज्ञान महिमा अनूप ॥

[८६]　　　　रामग्री

लाल कौ मुख देखन हौं आई ।
कालि मुख देखि गई दधि-बेचन जातहिं गयो बिकाई॥
नितते दूनौ दाम भयो घर गाइनि[6] बछिया जाई ।
आई हौं धाइ थँमाइ साथ कौ मोहन देहु जगाई ॥
सुनि तिय बचन विहँसि उठि बैठे नागरि निकट बुलाई॥
'परमानंद' सयानी ग्वालिनि चली सँकेत बताई ॥

× जागहु गोपाल लाल मुख देखौं तेरो (इ.ग.घ.ड.च.छ.)से भी प्रारम्भ है.

१. सरस बंस प्रसंस गावत सब लीला (इ. ग. घ. ङ. च)

२. हरिलीला (ग. ङ. च. छ.)

३. दयाल. (इ. घ. ड. च. छ.)　　४. परम (अ.)

५. पढत. (घ. ङ. च. छ.), गावत हैं लीला अनूप (अ. क.)

७. काजर (अ,)

[८७] विभास

हौं परभातसमै उठिआई कमलनैन[1] देखन कौं तिहारौ मुख।
गोरस बेचन जात मधुपुरी लाभ होइ मारग पाऊँ सुख॥
करत कलेऊ स्याम मनोहर नेंकु चितै हम तन कीजै रुख।
तुम सपने मोहि मिलिकें बिछुरे कहाकहौं रजनी-जनितदुख
प्रीत जु एक नंदनंदन[2] सौं इहि बिधि कहि सब बात जनाई॥
'परमानंददास' वह नागरि नागर सौं मनसा अरुझाई॥

[८८] बिलावल

प्रात समै उठि चलहु नंद-गृह राम-कृष्ण मुख देखिये।
आनँद में दिन जाइ सखी री! जनमु सुफल करि लेखिये
प्रथम काल हरि आनँदकारी पाछें भवन-कारज कीजिये।
राम-कृष्ण पुनि बनहिं जाइँगे चरन-कमल-रज लीजिये॥
कोइक गोपिका ब्रज में सयानी स्याम महात्तम सोई जानै।
'परमानँद' प्रभु जद्दपि बालक नारायन करि सोई मानै॥

[८९] कान्हरौ

बाल-लीला–

*जसुमति तुम्हारो घर सुबसु बसौ।
सुनिरी! जसोदा! या ढोटा कौ न्हात हूँ जिनि बार खसौ

---

१. नंदनंदन (बं. १५।२।१९) २. लाल गिरधर सौं.

* रानी जू तिहारो (ग) से भी प्रारम्भ है

देहिं असीस सकल गोपीजन कोउऽब गावौ कोउ हँसौ।
देखि-देखि मुख कमलनयन कौ आनँद प्रेम हियौ हुलसौ॥
कोऊ करत बेद-मंगल-धुनि कोऊ अति आनंद लसौ।
'परमानंद' नंद-घर आनँद पुत्र-जनमु भयो जगत जसौ॥

[६०] कान्हरौ

हरि कौ बिमल जस गावति गोपंगना।
मनिमै आँगन नंदराइ कें
बाल गोपाल तहाँ करैं रिंगना॥
गिरि गिरि उठत[1] घुटुरुआनि टेकत
जानु पानि मेरौ छगन-मगना।
धूसर धूरि उठाइ गोद लैं
मात जसोदा के प्रेम कौ भजना॥
त्रिपद पुहुपि मापि तब[2] न आलस भयो
अब जु कठिन भयो देहरी कौ लंघना।
'परमानँद' प्रभु भगत-बछल हरि
रुचिर हार बर कंठ सोहै बघना❀॥

[४३] बिलावल

मनिमै आँगन नंद के खेलत दोउ भैया।
गौर स्याम जोरी बनी बल कुँवर कन्हैया॥

---

१. परत (घ. ज.) २. मापी. (ई. च. च.) नापी (ज.) मापति न.

❀ भावसाम्य सूरसागर पद सं. ७३१ में पदपरिवर्तन के साथ छपा है।

नूपुर卐 कंकन किंकिनी रुन[२] झुन झुन बाजैं।
मोहि रही ब्रज-सुंदरी मनसा-सुत लाजैं॥
संगै-संगै जसोमति रोहिनी हित जन्हैया।
चुटुकी दै दै नचावही सुत जानि नन्हैया॥
नील पीत पट ओढनी देखत मोहि भावै।
बाल-लीला[३] विनोद[४] सों 'परमानंद' गावै❁॥

[६२] आसावरी

बोलन लागे[५] मईया मईया।
बाबा[६] कहत नंदराइ[७] सों अरु हलधर सों भईया॥
खेलत[८] फिरत सकल गोकुल में घर घर होत बधइया।
'परमानंददास'[९] कौ ठाकुर ब्रजजन केलि करइया+॥

卐 'गौर स्याम'.... और 'नूपुर कंकन'... इन तुकों के मध्य में—
लटकन लटक लटूरिया मसि बिंदु गोरोचन।
हरिमुख अलबल बोलिनी, भगतनि अघ मोचन॥
('क' पत्र १२३ में अधिक पाठ)

२. रुन झुन अति ३. लीला बाल-विनोद ४. विनोद-सुख (ई.घ.)

❁ भाव साम्य—रूसकर पद सं. 'मनिमय आँगन वंद' के ये पाठभेदके साथ

५. ...लागे गिरिधर मैंया मैंया (च.) लागे मोहन मईया

६. बाबा बाबा नंदराइ सों ७. नंद—महर सों (ई. घ.),

८, सब गोकुल में आनँद उपज्यो घर.घर होत बधैया।

९. नंद.नंदन की या छबि ऊपर 'परमानँद' बलि जैया।

+'कहन लागे मोहन मैया मैया' तुक से 'सूरसागर पद सं. ७७३ में भी।

[६३] बिलावल

भावैं हरि के बाल-विनोद ।
केसौ राम निरखि मुख प्रहसित
मुदित रोहिनी जननी[1] जसोद ॥
आँगन[2] पंक-राग तन सोभित
चल नूपुर-धुनि सुनि मन-मोद ।
परम सनेह बढावत मातनि
रबकि-रबकि बैठत चढि गोद ॥
अतिसै चपल सकल-सुख-दाइक
निसि दिनि रहत केलि-रस ओद ।
'परमानँद' प्रभु अंबुज लोचन
फिरि-फिरि चितवत ब्रज[3] जन कोद॥

[६४] बिलावल

बाल-दसा गोविंद[4] की सब काहू भावै ।
जाके भवन मँहिं जात है लै गोद खिलावै ॥
स्यामसुंदर मुख निरखिकैं अबिरल[5] सचु पावै ।
लाल बाल[6] कहि गोपिका हँसि कंठ[7] लगावै ॥

---

१. मात २. अंजन नैन राग तन सोहत ३. निज ४. गोपाल. (ई. घ च)

❀ भाव-साम्य—सूरसागर प. सं. ७३७ तथा सूरदास की छाप से 'भावत हरि कौ बाल विनोद' ए सर. बं. १२८।६ में भी

५. अवला. ६. लाल लाल कहि ग्वालिनी ७. भलौ मनावै

चुटकी दै दै प्रेम–मुदित कर ताल बजावैं ।
'परमानंद' प्रभु नाचही बस[1] ताइ जनावै[2] ॥

[६५] बिलावल

नंद जू के लालन की छबि आछी ।
चरन[3] पैंजनियाँ घुम घुम बाजैं चलत पूँछ गहि बाछी ॥
अरुनअधर दधिमुखसौं[4]लपटयोअतिराजत तनछींटेछाछ।
'परमानँद' प्रभु बालक-लीला हँसि[5] हँसिकें फिरी पाछी ॥

[६६] बिलावल

हरि-लीला गावति गोपीजन आनँदहि निसिदिन जाई ।
बाल चरित्र विचित्र मनोहर कमल नयन ब्रज[6]सुखदाई ॥
दोहन मंथन[7]खंडन लेपनगृह मज्जन सुत पति सेवा ।
चारिजाम अवकास नहीं छिनु[8] सुमिरन कृष्ण कृष्ण[9]देवा
भवन भवन प्रति दीप विराजित कर कंकन नूपुर बाजैं ।
'परमानंद' घोष कौतूहल देखि भाँति[10] सुर-पति लाजैं ॥

---

१. सिसुनाइ जनावै २. नचावै (ग.)

३ पाँइ पेंजनी रुन झुन बाजत

४. दधि मुख लपटानों नौतन राजत छींटे छाछी.

५. हँसि चितवति फिरि पाछी

६. व्रजजन-सुख, ७. मंडन (ग.) मंथन खंडन गृह-लेपन मंडन सुत

८. पल. ९. देव-देवा १०. विभव (ग.) भाँति सुरपति जिय लाजै

[६७]　　　　　　　　　बिलावल

बाल-बिनोद गोपाल के देखत मोहि भावै ।
प्रेम पुलकि आनंद भारी जसोमति गुन गावै ॥
बल-समेत घन साँवरौ आँगन धावै ।
बदन चूँबि कौरा[1] लियें सुत जानि खिलावै ॥
सिब बिरंचि मुनि देवता जाकौ अंत न[2] पावै ।
सो 'परमानँद' ग्वालि कौ हँसि भलौ मनावै ॥

[६८]　　　　　　　　　बिलावल

सो गोविंद तुम्हारे ब्रज बालक ।
प्रगट भए घनस्याम चतुर्भुज धरै दनुज-कुल-कालक ॥
कमलापति त्रिभुवनपति नाइक भुवन चतुर्दस नाइक सोई।
उत्पति प्रलय पालकौ कर्त्ता जाके कियें सबै कछु होई ॥
सुनहु नंद उपनंद कथा इह ईस[3] क्षीर-समुद्र कौ बासी ।
बसुधाभार-उतारन आयो[4] परब्रह्म[5] बैकुंठ-निवासी ॥
ब्रह्मा महादेव इंद्रादिक बिनती कै इहाँ लै आए ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर बहुत पुन्य तप कै तुम पाए॥

[६९]　　　　　　　　　पंचम

हरि जू की बालक-लीला भावति[6] ।
माखन दूध दही की चोरी सोई जसोदा गावति ॥

---

१. बदन चूंमि गोदी लए.　२. पार. (च.)　३. आयो.
४. कारन प्रगट ब्रह्म... ।　५. पूरन (ई.)　६ भावै । गावै ।

सकट-विभंग[1] पूतना-सोषन तृनावर्त बध कीनौं।
ऊखल-बंधन जमल-उधारन भगतनि कौं सुख दीनौं।
बच्छ-चरावनि मुरली-बजावनि जमुना-कच्छ बिहारी।
'परमानंददास' की जीवनि बृंदावन संचारी॥

[१००] गुर्जरी

जनम-फल मानति जसोदा[2] माई।
जब नँदलाल धूरि-धूसर बपु गरें[3] रहत लपटाई॥
गोद बैठि[4] गहि चिबुक मनोहर बात कहत तुतराई।
अति आनंद प्रेम पुलकित तन मुख चुंबति न अघाई॥
आरत चित्त बिलोकि बदन छबि[5] फुनि-फुनि लेति बलाई
'परमानंद' मोद छिनु-छिनु कौ क्यौंहूँ[6] कह्यौ न जाई॥

[१०१] धनाश्री

हँसत गोपाल नंद के आगें नंद स्वरूप न जानें[7]।
निर्गुन ब्रह्म सगुन[8] जे लीला ताहिऽब सुत करि मानें॥
एक समैं पूजा के औसर नंद समाधि लगाई।
सालिग्राम मेलि मुख महियाँ बैठि रहे अरगाई॥

---

१. बिभंजन. २. जसुमति. ३. रहत कंठ लपटाई। ४. बैठारि।
५. बिधु.। ६. मोपै कह्यो. क्यों हू न बरनौ जाई।
७, जान्यो
८. सगुन लीला धरि सोई सुत करि मान्यो।

जब नँद ध्यान बिसर्जन कीनों मूरति आगें नाहीं।
कहौ[1] मेरे कान्ह! देवता कहा भए य है विस्मय चितमाँहीं ॥
मुख तें काढि लिए जग-जीवन[2] दिये नंद जू के हाथ।
'परमानँद' स्वामी मनमोहन खेल रच्यो ब्रजनाथ ॥

[१०२] धनाश्री

पाँडे भोग लगाइ न पावै।
करि-करि पाक जबहिं अरपत है तबहि छुई छुइ आवै ॥
मैं आदर करि ब्राह्मन न्योंत्यो तू गोपाल! खिझावै।
वे अपुने ठाकुरै जिवावत तू वैसोई होई आवै ॥
तू इहि बात न जानें री मईया कत मोहि दोस लगावै।
'परमानँद' इह नैन मूँदिकें मोहीकों जु बुलावै ॥

[१०३] आसावरी

पुरोहित आयो नृप[3] के द्वारे।
जसुमति अति आनँद मुदित मन आसन पै बैठारे ॥
पिता-सदन कुल-प्रोहित मानति दोउ कर चरन पखारे।
तेल लगाइ दंतधावन करि न्हाइ बसन तन धारे ॥
कर्यो पाक प्रोहित अपनी रुचि विंजन विविध नियारे।
करि सामग्री भोग समरप्यो बात करत हरि वारे ॥

---

१. कह्यो गोपाल देवता का भयो ये विस्मय मन।

२. नँदनंदन (ग), तबै जदुनंदम दियो नंद।

३. घर (बं० ५।६)

नैन खोलि प्रोहित जब देख्यो जेंमत स्याम भोग ब्बै डारे ।
पुनि पकवान बनाइ स्वच्छ करि भोग धरयो लै सरस सँभारे
तीन वार याही विधि कीन्हों प्रोहित मनहिं विचारे ।
यह अवतार प्रगट पुरुषोत्तम भक्तनि हित वपु धारे ॥
बहु अपराध किए प्रभु मेरे छमहु नाथ ! जु हमारे ।
पुनि पुनि जूँठन कौ पय पीवत 'परमानंद' समूह जहाँ रे ॥

[१०४] धनाश्री

बाल-बिनोद खरे जिय भावत ।
मुख-प्रतिबिंब पकरिवे कौं हरि हुलसि घुटरुअन धावत ॥
कमलनयन माखन माँगत[1] है ग्वालिनि[2] सैन बतावत ।
सबद जोरि बोल्यो चाहत है[3] प्रगट बचन नहिं आवत ॥
कोटि ब्रह्मांड खंड की सोभा[4] सिसुता माँहि दिखावत[5] ।
'परमानँद' स्वामी जग-मंगल[6] जसुमति-प्रीति बढावत*॥

[१०५] सारंग

आँगन खेलहु झनक मनक ।
लरिका जूथ संग[7] लियें बालक तनक-तनक ॥

---

१. के कारन (ग) । २. करि करि सैन. (अ) । ३. है हरि. (अ)मुख ।
४. महिमा (अ) ५. दुरावत (अ) । ६. मनमोहन ।
* भाव-साम्य-सूरसागर प० सं० ७२० में "बाल विनोद खरौ जिय भावत" तुक से पाठ भेद के साथ। ७. सकल गोकुल के बालक ।

अहो लाल! पैयाँ[1] लागौं पर-घर जैबौ छाँडहु खनक खनक।
'परमानंद' कहति नँदरानी अंग-अंग बनक[2] बनक ॥

[१०६] सारंग

एक समै जसुमति अपनी सखी सौं बात[3] कहति मुसिकाँइ।
मो देखत कब धौं मेरौ ललना भूमि धरहिंगे पाँइ ॥
फिरि[4] मोसौं मईया कब कहिहैं कुँवर कछुक तुतराइ[5]।
अरिहैं कबहुँ दूध दधि-कारन तन गोरज लपटाइ ॥
खरिक दुहावन जात मोहि कब आनि मिलहिंगे धाइ ।
वह धौं द्यौस होइगौ कबहूँ ललन दुहेंगे गाइ ॥
सौंपि[6] देहुँगी सुतहि चरावन गैयाँ घर बनराइ ।
इहि अभिलाष करति जसुमति जिय 'परमानँद' बलि जाइ॥

[१०७] सारंग

तुम जु मनावति सोइ दिन आयो ।
अपनौं[7] बोलु करहु किनि जसुमति कान्ह घुटरुअनि धायो
अब पाइँनि चलिहैं ठाडे ह्वै महरि ऽब जाइ बधायो ।
ब्रज[8] में आनँद भयो सबनिकें दिन-दिन होत सवायो॥

---

१. तो पैयां। २. बानक। ३. बातें कहति बनाइ (ई. घ.)
४. पुनि. ५. हँसि आइ।
६. सौंपे सुतहिं चरावनि गैयाँ सुनि सजनी नँदराइ। ७. साँचौ... ।
८. घर में मंगल होत सबनिकें. (अ.)

इतनौ बोल[1] सुनत नँदरानी मोतिनि[2] चौक पुरायो ।
बाजत तूर तरुनि मिलि गावति लाल पटा बैठायो ॥
'परमानँद' रानी धन खरचति जिहि बिधि बेद बतायो ।
या दिन कों तरसति मेरी सजनी दई अँगुरियाँ लायो॥

[१०८] सारंग

❀मेरें गोपाल लडाइतौ ।
अपनों काहू छुवनि न दैहौं काहे कों लोगु बडाइतौ ॥
काहू के[3] धन गोरस बहुतेरौ लैन उधार न जाइबौ ।
राखौंगी कंठ लाइ[4] स्याम कों पलना घालि[5] झुलाइबौ॥
परम विचित्र पाँइ पैंजनियाँ अरु[6] घूँघरू बनाइबौ ।
'परमानंद' नंद[7] के आगै लै लै नाम बुलाइबौ ॥卐

[१०९] सारंग

सुनु सुत ! एक कथा कहौं प्यारी ।
कमल[8]नयन-मन आनँद उपज्यो रसिकसिरोमनिदेतहुँकारी

---

१. बचन. (अ.) २. लालन उबटि न्हवायो ।
❀ मेरौ (अ. ङ. च.) माई ! मेरौ.
मेरें गुपाल लडैतौ अपनों...याही तें लोग बडैतौ. इस प्रकार से भी प्रारंभ है। ३. मेरें ई (ग.) अपने. ४. लगाइ लाल कों पलना ।
५. माँझि (ई. घ.) मेलि (ग.) ६. कटि (ग) चलन घुटुरुवन धाइबौ ।
७. नंदरायजू के आँगन लै लै० (ग.) नंद के आँगन ।
卐 सरस्वती भंडार काँकरोली बंध १७।३ में किंचित् पाठान्तरों के साथ
८. नंद-नंदन-मन ।

दसरथ नृपति[1] हुते रघुबंसी तिनके प्रगट भए सुत चारी।
तिनमें एक राम ब्रत-धारी जनकसुता ताकी वर नारी॥
तात-वचन मानि राज तज्यो है भ्राता सहित चले बनचारी
धावत कनक-मृगा के पाछें राजीव-लोचन केलि-बिहारी॥
रावन हरन कियो सीता कौ सुनि नँद-नंदन नींद निवारी[2]।
'परमानँद'प्रभु चापरटतकर लछमन देहु[3]जननि-भ्रमभारी

[११०]   गौरी

निमल जस वृंदावन के चंद कौ।
कहाँ प्रकास सोम सूरज कौ सो[4] मेरे गोविंद कौ॥
कहति जसोधा औरनि[5] आगें बैभव आनँदकंद कौ।
खेलत[6] फिरत गोप-बालक[7]-सँग ठाकुर 'परमानंद'कौ॥

[१११]   धनाश्री

बदन[8] निहारति है नँदरानी।
कोटिकाम कोटिक चंद्रमा कोटिक रबि बारति जिय जानी॥
सिव बिरंचि जाकौ पार न पावत सेस सहस गावत रसना री।
गोद खिलावति महरि[9] जसोदा'परमानंद'कियो बलिहारी

---

१. नृप जो हैं। २. बिसारी.। उघारी। ३. दै जननी।

❀ भाव साम्य—सूरसागर प. सं. ८१६ में पाठभेद के साथ।

४. जो. (घ. ज.) ५. सखियनि. (ग. च.)

६. ग्वाल मंडली संग लिएँ खेलत ठाकुर. (११३.६) खेलत फिरत सकल गोकुल में ठाकुर (१३०।१) ७. ग्वालनि (ड)

८. बदन छबि (इ.) ९. मात. (च.)

[११२] गुर्जरी

मैया भूषन अपने लै री !
मोर के चंद काच के मनियाँ गुहि गुंजाफल दै री ॥
दुरी-दुरा कौ खेल सखनि में खेलन हौं जु न पाउँ ।
मुख ससि प्रवाह[1] बाँह तर राखौं या छबि कहाँ दुराउँ ॥
आजु सदन वृषभान गोप कें खेलन हौं जु गयो ।
सगरे सखा अरग[2] से भागे हौं ही चोर भयो ॥
तब[3] महरि वृषभान गोप की गहि अँचरा मोहि रोक्यो ।
चूँबि[4] बदन मिष्टान्न हाथ दै अंग अंग अवलोक्यौ ॥
तब वृषभान सभा तें आए नंदकुमार न होई ।
'परमानंद' कुँवरि कौ दूलह कहत हुते वर सोई ॥

[११३] गौरी

❀तेरी लाल ! लागहु मोहि बलाइ ।
बाल गोपाल छगनवाँ मेरे चलहु न आँगन[5] धाइ ॥
लट[6] लटकनु मटकनु कर पहुँची नूपुर बाजहिं पाइ ।
चुटकी दै दै नचावति[7] हरि कौं हँसति[8] जसोदा माइ ॥

---

१. प्रभा २. अरगटे ३. तब वृषभान गोप की घरनी अँचरा गहि०
४ मुख चुंबन नवनीत हाथ (च)
❀लाल तेरी लागौ··· से भी प्रारंभ है ।
५. अँगना (घ. ङ,) चलौ अंगना धाइ ।
६. लालजू के लटकन० । लर लटकन लटकत कर०
७. ग्वालि नचावति हँसति. (ज. ८. मुदित.(ङ. घ.) बलि गई जसुधा.

आनँद भरी नंद जू की नारी निरखि[1] अनूपम भाइ ।
'परमानंद' लाल[2] गिरिधर कों हरषि लिये उर लाइ ॥

[११४]　　　　गौरी

कमल-दल नैननि रीझी री ! माई ।
मधुर हास लीला अवलोकनि हरि मनु[3] लियो है चुराई ॥
सुंदर बदन नासिका सुंदर भौंह कामधनु टेढी ।
मृगमद तिलक अलक घुँघरारे गुही है जसोदा मेढी ॥
जानु पाँति रेंगत आँगन में राम-कृष्ण की जोरी ।
'परमानंद' नंदनंदन सों प्रीति न[4] बाढी थोरी ॥

[११५]　　　　केदारौ

तुम्हारे लाल ! रूप पर हौं बारी ।
मृगमद-तिलक कंठ कठुलामनि[5] मुख मुसकावनि प्यारी ॥
घूँघर वारे बार स्याम के लट लटकत गजमोती ।
देखि सरूप नंदनंदन कौ प्रान बारतिं सब जुवती[6] ॥
कर पोहोंची हँसली मेरे[7] मोहन पीत झँगुलिया सोहै ।
'परमानँद' स्वामी ब्रजनाइकु[8] देखि ब्रह्म हर मोहै ॥

---

१. अंग अंग निरखति भाइ० । फूलो अंग न माइ ।

२. मदनमोहन कों (ख. ङ.) नंदनंदन कों राखौं उर लपटाइ ।

३. चित ।　४. निरंतर थोरी ।

५. कठुलावलि ।

६. जोती ।　७. प्यारे । ८. बहु नाइक. (च.) दास कौ ठाकुर.

[११६] केदारौ

*चितै धौं हरि के बदन की ओर ।
चंद्र कोटि बारौं या ऊपर इह[1] धौं साहु कि चोर ॥
असित अरुन उज्वल दीसत हैं दोउ नैन के डोर ।
मानहुँ रस्मि-पान के कारन बैठे निकट चकोर ॥
सुनहु जसोदा ! एही[2] न बूझिये कवन ज्ञान है तोर ।
'परमानँद' स्वामी बालक[3] है नाहिंन तरुन किसोर†॥

[११७] रामश्री

इह तन बारि डारौं कमलनयन पर साँवलियौ मोहि भावै रे
चरन-कमल की रेनु जसोदा लै लै सिरहि चढावै रे ॥
लै उछंग मुख निरखनि[4] लागी रहि[5] रहि लोंन उतारै रे।
कौन[6] निरासी दृष्टि लगाई लै लै अंचर झारै[7] रे ॥
तू मेरौ बालक[8] हौ जदु-नंदन तोहि बिसंभरु राखै रे ।
'परमानँद' स्वामी[9] चिरजीवहु बार बार यों भाखै रे ॥

---

* चितबौं (इ) ऐसा भी प्रारंभ है । १. यहै साहु० (ग० ङ० छ.)
२. ऐसी. (ग) । ३. लरिका ।
† भावसाम्य—सूरसागर पद सं० ९७७ 'चितै धौं कमलनैन की ओर" पाठ भेद के साथ । ४. चुंबन. (च) चुंबन दै दै ५. राई लोंन. (ग. ज.) ।
६. काहू निगोडी नें दृष्टि लगाई फिरि फिरि अंचल. (च.)
७. डारै. (ड) ढारै. (ई.) । ८. जीवन तू मेरौ बालक तोहि० (च.); बाल होइ जदुनंदन० (क.) । दाता तू मेरो जीवन तोहि. ।
९. जसोदा रानी बार बार मुख भाखै रे. (च.) कहति नंदरानी बार ।

[११८]		सारंग

रहे री ! ग्वालि जोबन मदमाती ।
मेरे छगन मगन से लालहिं कत लै उछंग लगावति छाती
खीजत तें अबही राखे हैं नान्ही[1] नान्हीउठतिद्वै दूधकी दाँती
खेलनि दै घर जाइ[2] आपनें डोलति[3] कहा इतौ इतराती ॥
उठि चली ग्वालि लाल लागे रोवन
तब जसुमति लाई[4] बहु भाँती ।
'परमानँद' वे[5] ओट दै अंचर
फिरि आई नैननि मुसकाती ॥

[११९]		बिलावल

ए बसुदेव के दोउ ढोटा ।
गौर स्याम तन नील पीत पट कल हंसनि के जोटा ॥
कुंडल एक वाम स्रुति जाकें सो रोहिनी कौ अंसु ।
उर बनमाल देवकी-नंदन जाहि डरत है कंसु ॥
लै राखे ब्रज-सखा नंद गृह बालक-त्रास दुराइ ।
द्वै समान विराट के से लोचन उदित भए हैं आइ ॥
काली-दवन पूतना-सोषन लीला-गुननि अगाध ।
'परमानँद' प्रभु प्रगट दमन-खलु अभय-करन सुर साधु ॥

---

१. सोहत न्हानी न्हानी दूध की दाँती. (अ) । २. जाउ. (ग) ३. काहे कों एतौ । ४. फेरी । ५. ओट दै. (ग.) । प्रीति अंतरगत फिरि.

[१२०] विभास

‡सुनिरी ! जसोदा आजु कहूँ तै गोकुल में एक पंडित आयो
अपने सुतकौ हाथ दिखावहुसोई कहि है जोई विधि निर्मायो
सुनतहिं¹पठयो जन देखनिकों आनि बुलाइदियो अरघासन
पाँइपखारि पूछि अंजलिलै तब द्विजपै माँग्यो अनुसासन
मुखपखारि काजर टिकुलीदै झगुली हरि-नख कंठबनायो
सुंदर तात मात कनियाँ लै विप्र-चरन बंदन करवायो ॥
दैअसीस कर धरिकरि देख्यो सुनि विसाल नैनी सुतके गुन
लोचन चिह्न होइ इह श्रीपति उदर दाम पावन सुभ बंदन
हस्त सूत पग दूत बहुत गुन भूमंडल या सम नहिं कोऊ ।
'परमानंद' करी न्योंछावरि हरषे नंद जसोदा दोऊ ॥

[१२१] विलावल

कब री ! कन्हैया मोसों मैया कहि बोलैगो ।
नंद जू सों बाबा हलधर सों भैया भैया
रुनक झुनक आँगन में खेलैगो ॥
आनँद को दिन तबहिं गिनौंगी माई
खरिक वछरुआ हँसि हँसि खोलैगो ॥
'परमानँद' प्रभु नवल कुँवर मेरो
गाँइनि के संग ब्रज में कलोलैगो ॥

---

‡ सुनो हो जसोदा ''' से भी प्रारम्भ है, १. तुरतहिं ।

[१२२]　　　　राग कान्हरौ

जसुमति-गृह आवति गोपीजन।
वासर-ताप निवारन कारन
बारंबार कमल मुख निरखन ॥
चाहत पकरि देहरी लाँघन[1]
किलकि किलकि हुलसत मन ही मन।
राई लौंन उतारि दुहौं कर
वारि फेरि डारत तन मन धन ॥
गहि उछंग चाँपति हियौ भरि
प्रेम-बिबस लागे दृग ढरकन।
लै[3] चली पलना पौढावनि कों
अरकसाय पौढे सुंदर घन ॥
देति[4] असीस सकल गोपीजन
चिरजियो जो लौं जल गंग जमुन।
'परमानंददास' कौ ठाकुर,
भक्त-बछल भक्तनि[5] मन-रंजन ॥

---

१. उलंघन. (ग.) लंघन. (घ.) २. उत्संग (घ) लालै लेति उछंग चाँपि हिय प्रेम. ३. चली लै पलना सोआवनि कों. (क. घ.) लै जु चली पलना पौढामन अरकसात दृग सुंदर धन, ४. सबै असीस देत तेरौ सुत जीयो जो लौं गंग जमुन ॥ (क. घ.) ५. भक्त प्रतिपालन (क. घ.)

[१२३] रामकली

करवट प्रथम लई नंद-नंदन ।
ताकौ महरि महोच्छव मानत भवन लिपायो चंदन ॥
बोलीं सकल घोष की नारीं तिनकौ कियो बंदन ।
मंगल गीत गवावति हरषति हँसति कछू मुख मंदन ॥
या विधि भई घरी द्वै चारिक तबै कुँवर उठि जागे ।
भूलि गई संभ्रम में सुत कों कछु इक रोवन लागे ॥
दई लात गिरि गयो सकट धसि तबै सबै उठि दौरे ।
विसमै भए बिलोकत नैननि भूले से कछु बौरे ॥
लिए उठाइ कुँवर ब्रजरानी रहसि कंठ लपटाई ।
प्रेम-बिवस आपुनि न सँभारति 'परमानँद' बलि जाई ॥

[१२४] नट

दोऊ कर चोंखनी मुख चोंखत ।
नितप्रति मुदित जसोदा रानी बल मोहन तन पोषत॥
नंदराइ बड भाग तुम्हारौ बाबा कहि मुख घोषत ।
'परनंददास' कौ ठाकुर प्रान पूतना पल में सोषत ॥

[१२५] कान्हरौ

मेरे छगन मगन वारे कन्हैया बन में खेलन जात ।
नेंक उरै धौं आइ लाल ह्वै रहे मलिन गात ॥
संग के लरिका बनि-बनि आये यों कहेंगे कैसी है तेरी मात
जसोदा गहत बहियाँ मोहन करत नहियाँ
'परमानंददास' बलि जात ॥

[१२६] सोरठी

नाहिंन गोकुल वास हमारौ ।
बैरी कंस बसै सिर ऊपर नित उठि करै खगारौ ॥
गाँउ-गाँउ प्रति देस-देस प्रति लोक-लोक प्रति जानी ।
इह गोपाल कहाँ लै[1] राखौं कहति नंद की रानी ॥
सकट पूतना तृनावर्त्त तैं तेहि[2] विधाता राख्यो ।
कैसे मिटै कह्यो हो संतनि गरग बचन तब भाख्यो ॥
जद्यपि परब्रह्म अविनासी महतारी उर[3] मानैं ।
'परमानंद' प्रीति है ऐसी फुनि फुनि व्यास बखानैं ॥

[१२७] ईमन

अब हठ छाँडि देहु रे मेरे बारे कन्हैया ।
जो माँगौ सो देहौं लला रे ! माखन दूध मलैया ॥
चकई भौंरा पाट के लटकन और मँगाइ देहौं फेर कन्हैया ।
सब लरिकनि के सँग मिलि खेलौ अरु बलदाऊ भैया ॥
दोऊ मैया निरखि निरखि कै फुनि फुनि लेति बलैया ।
'परमानँद' प्रभु बालरूप धरि क्रीडत नँद-अँगनैया ॥

[१२८] बिहाग

अब मोहि सोवन दे री माइ ।
गाँइनि के सँग फिरयो हौं बन-बन दूखत मेरे पाँइ ॥

---

१. लौं. (च.) २. इहै. (इ. ग. घ. ङ. च.) ताहि, याहि ३. इरु

साँझहि तैं घुरि आइ नींद मेरे नैननि पैठी आइ।
खुलत नाहिनें पलकहू मेरे खायो कछुअ न जाइ॥
प्रात जागौं फिरि करौं कलेऊ फिर ही चरावौं गाँइ।
'परमानँद' सुत जननी जसोदा लीने कंठ लगाइ॥

[१२९]　　　धनाश्री

सब विधि मंगल नंद कौ लाल।
कमलनयनबलिजाइ जसोदा न्हातहु नेंक खसौ जिनि बाल
मंगल नाचौ[1] मंगल गावौ मंगल मुरली सबद रसाल।
मंगल ब्रजवासिनि के घर-घर नाचौ गावौ दै कर ताल॥
मंगल बृंदावन सुख-सागर मंगल लीला ललित गोपाल
'परमानंददास'[2] कौ ठाकुर सखा मंडली मधि नँदलाल

[१३०]　　　बिलावल

*बालविनोद भावती लीला सुर नर मुनि सब गावें(हो)
किलकत कान्ह घुटुरुअनि टेकत नख प्रतिबिंब जनावें(हो)
पीत झँगुली तन कुलह सुरंग सिर
भूषन अँग अँग सोहें (हो)।
बच्छ पूंछ गहि लीनों मोहन देखत ब्रजजन मोहें (हो)
कटिकिंकिनी और हाथखुनखुना नूपुरधुनि सुनि धावें (हो)
'परमानंददास'कौ ठाकुर सब मन मोद बढावें (हो)॥

---

१. गावत मंगल मूरत २. मंगल जस गावै परमानँद मंडली मध्य गुपाल
*इसी तुक से सूरसागर में पद सं० ६२२।

मृत्तिका-भक्षण—

[१३१] सारंग

देखि गोपाल की लीला ठाटी।
ब्रह्मा महादेव विस्मित भए जसोमति हाथ लियें रजु साटी
ए सब बालक प्रगट कहत हैं स्याम मनोहर खाई माटी।
बदन उघारि आभ्यंतर देख्यो त्रिभुवन[१] रूप वैराटी॥
केसव के गुन वेद बखानत सेस सहस मुख लाई लाटी।
लख्यो न जाइ अंत अंतरगति बुधि न प्रवेस कठिन घाटी
जनमुकरमुगुनग्राम बखानत समुझि न परतगूढ़परिपाटी
ताके[२] सरन गयें भय नाहीं निसंदेह[३] 'परमानँद' डाटी॥

दधि-मन्थन—

[१३२] आसावरी

❀ दधि-मथन करैं नंद-रानी हो।
बारे कन्हैया आरि न कीजै छाँडि न[४] देहु मथानी हो॥
वारी मेरे मोहन कर पिरायँगे कौन चित्त में ठानी[५] हो।
हँसिमुसिकाइ जननि-तनचितयो[६] बुधिसागर कीआनीहो
जे गुन सरसुति छंदनि गाए नेति नेति मधु[७] बानी हो।
'परमानंद' जसोदा रानी सुत सनेह लपटानी हो॥

१, चतुर्दस भुवन रूप० (क.) २. जाके ३. सो जसुमति।
❀ नंदरानो हो दधि.मथन करै. (क. ख.) अहो दधि—ऐसे भी प्रारंभ हैं
४. छाँडि अब देहु ५. मति ठानी हो ६. चितए सुधि ७. मृदु

[१३३] बिलावल

प्रात-समै गावति नँदरानी।
मिस्रित धुनि उपजति तिहि अवसर
दधि-मंथन कर[1] माँट मथानी ॥
तीखन लोल कपोल बिराजित
कंकन नूपुर कुनित एक रस।
रज्वाकरषत भुज लागति छबि
गावति मुदित स्यामसुंदर-जस ॥
चंचल अंचल कुच हाराबलि
बेंनी चपल खसित कुसुमाकर।
मनि प्रकास नहिं दीप अपेक्षा
सहज भाव राजित ग्वालिनि घर ॥
चढि विमान देवता देखत[2]
गोकुल अमरावती बिसेखी।
'परमानँद' प्रभु घोष कुतूहल
जहाँ तहाँ अद्भुत छबि पेखी ॥

[१३४] बिलावल

प्रात समै उठि जसुमति दधि-मंथन कीनों।
प्रेम सहित नवनीत लै सुत के कर दीनों ॥

---

१. अरु. (ई. घ. ङ. च.) २. बिलोकत.

औंट्यो दूध घैया कियो हरि हित सों पीनों।
मधु मेवा पकवान मिठाई लै मुख में दीनों॥
इहि विधि नित क्रीडा करें जसुमति जिय भावें।
बाल-विनोद प्रमोद सों नित 'परमानंद' गावें॥

[१३५] जैतश्री

❀ मात जसोदा दह्यौ विलोवै
प्रमुदित बाल गोपाल-जस गावैं।
मंद मंद अंबर घनघोरैं रई घमर कै लावै॥
नूपुर कंकन छुद्रघंटिका रजु आकर्षित बाजै।
मिस्त्रित धुनि उपजति तिहि औसर देखि सची-पतिलाजै
मंगल घोष सदा कौतूहल अजन-जनम हरि लीनों।
नंद[1] जसोदा के सुकृत फल बपु दिखाइ सुख दीनों॥
सिव बिरंचि जाके पद बंदित सो गोकुल में वासी।
'परमानंददास' कौ ठाकुर पलना झूलै सुखरासी॥

[१३६] विभास

गोविंद दधि न बिलोवनि देहि।
बार बार पाँइ परति जसोदा कान्ह[2] कलेऊ लेहि॥
बाँधें कटिपट छुद्रघंटिका मुदित नंद जू की रानी।
कंचन[3] चीर हार उर मनि-गन बलय घोष मृदु बानी॥

❀ गोरी गुजरिया दह्यौ बिलोबै (क.) ऐसा भी प्रारंभ है।

१. ब्रजमंडल में आनि नंद कें सब भक्तनि सुख दीनों (क) २. लाल (छ)

३. कनक (च. छ.)

एककैत होइ देव दैत्य सब कमठ मंदराचल जानी ।
देखत देव लच्छमी काँपी जबै गही गोपाल मथानी ॥
कृष्णचन्द्र ब्रजराज रमापति भूतल-भार उतारे ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर ब्रज बसि जगत उधारे[1] ॥

[१३७] सारंग

दुरि दुरि देखत मईया हात ।
बडी वार की दह्यौ बिलोवति खैवे कों लौनी अकुलात ॥
राति जु मोसों कहि सोई ही माखन रोटी दैहौं प्रात ।
'परमानँद'स्वामी की लीला अकथ कथा जानी नहिं जात

[१३८] सारंग

मोहन उठतहिं रार मचाई ।
छाँडिदै झूठो काम धाम सब माखन रोटी दै मेरी माई !
कबहुँक झटकि गहत नीवीकर[2] कबहुँक कंठरहत लपटाई
मुखचुंबति जननी समुझावति सद लौनी दैहौं कुँवर कन्हाई
उठि कर गही आपु ही नेती माखन बडी बार क्यों लाई
'परमानंद'देखि यह लीला सुधि सागर मथिवे की आई॥

[१३९] धनाश्री

❀दधि मथत ग्वालि गरबीली ।
रुनक[3] झुनक कर कंकन बाजें बाँह डुलावति ढीली ॥

---

१. ब्रजवासी सु उधारे (च) २. लाल
❀ अहो दधि० (बंध ३०१७) ३. रुनुन झुनुन-०(३०१७)

कृष्ण देव माखन माँगत हैं नाहिंन देति हठीली।
भरे[1] गुमान बिलोकति ठाढी अपने रंग रँगीली॥
हँसि बोले नँदलाल लाडिले तू तो है रसिक रसीली॥
'परमानँद' ग्वालिनि[2] रस बाँधी सरवसु दियो है छबीली+

ऊखल-बंधन—

[१४०] सोरठी

❀गोविंद बार-बार मुख जोवै।
कमलनयन हरि हलकनि रोवै बंधन छोरि जसोवै॥
जो तेरौ सुत खरौ[3] अनेरौ अपनी कूखि कौ जायो।
कहा भयो जो घरि के लरिका चोरी माखन खायो॥
नई[4] मटुकिया दह्यौ जमायो जाखुन[5] पूजि न पायो।
तिहिं घर पितर देव काहे कौं जिहिं घर कान्हरु आयो॥
जाकौ नाँउ कुठार-धार है जम की फाँसी काटै।
सो[6] हरि बांधे प्रेम-जेवरी लकुट[7] लियें कर डाटै॥

---

१. भलें (क.) २. नंदनंदन कों सरबस (बं १०१।२)
+ सूरसागर प. सं. ९१७ में भी 'दधि लै मथति ग्वालि गरबीली' तुक से।
❀ सूरसागर प. सं. ९६४ में भी 'जसुदा तेरौ मुख हरि जोवै' तुक से प्रारंभ
३. खरोई अचगरो। ४. कोरी (इ. ग. घ. ड. च.) ५. देवनि पूजि न।
६. सो हरि बांधे० तुक के साथ ही इस प्रकार का भी पाठ उपलब्ध है:—
'ब्रह्मादिक सनकादिक दुर्लभ ताहि जसोदा डाटै'
७. जननि साँट लै डाटै।

'परमानंददास' कौ ठाकुर करत आपनौं[1] भायौ ।
देखि दुखी दोउ सुत कुबेर के ता[2] लगि आपु बँधायौ ।।

[१४१] सारंग

*मेरे ललना ! तुम ऊपर वारी ।
कंठ लगाइ दियो मुख चुंबन सुंदर स्याम मुरारी ।।
काहे कौं दाम उलूखल बाँधे अहो कैसी महितारी ।
अति उत्तंग बयारि न लागी क्यों टूटे द्रुम भारी ।।
बारंबार बिचारि जसोदा को लीला-अवतारी ।
'परमानँद' प्रभु कारज-साधक माया देव पसारी ।।

फल-विक्रय—

[१४२] सारंग

ब्रज में काछनि बेचन आई ।
नंद-द्वार[3] भरि आइ उतारी ओडी फलनि सुहाई ।।
लै दौरे हरि पेट अँजुलिया सुभ कन[4] कुँवर कन्हाई ।
रारत[5] ही मुगताफल ह्वै गए जसुमति मन[6] मुसिकाई ।।
ए हरि चारि फलनि के दाता फल भच्छत न अघाई ।
'परमानँद' वा कौ भाग बडौं है बिधि सौं कछु[7] न बसाई ।

---

१. भगत कौ (ख.) भक्त मन भाए । २. लालन आपु बँधाए (इ.)
*सूरसागर पद सं० १००६ में भी 'मोहन हौं तुम ऊपर वारी, तुक से प्रारंभ
३. आनि उतारि धरी नँद आँगन । ४. कर । ५. डारत ही ।
६. देखि सिहाई । ७. कहा ।

[१४३] सारंग

कोउ मईया बेर बेचन आई ।
सुनतहि टेर नंद-रावरि में लई भीतर भवन बुलाई ॥
सूकत धान परे आँगन में कर अंजुली बनाई ।
ठुमकि ठुमकि चलत अपने रसु गोपीजन[1] बलि जाई ॥
लिए उठाइ भारि[2] गोद करि मुख चुंबति मुसिकाई ।
'परमानँद' स्वामी आनंदे बहुत बेर जब पाई ॥

[१४४] सारंग

कोऊ मईया आम बेचन आई ।
टेरि सुनत मोहन उठि धाए[3] भीतर भवन बुलाई ॥
मईया ! मोहि आम लै दै री संग सखा बल-भाई ।
'परमानँद' जसोमति लै दिए खाए कुँवर कन्हाई ॥

विवाह—

[१४५] सारंग

पूजहु साध नंद मेरे मन की ।
करहु ब्याहु देखौं आँखियनि भरि दुलहनि अपनें ललनकी
ब्रजपुर माँझ विचारहु कन्या काहू गोप सधन[4] की ।
रूप अनूप सकल गुन सुंदरि जोरी साँवल तन की ॥
कब देखौंगी मौरु धरें सिर पुर[5] रबि ढाँपि वदन की ।

---

१. जसुमति लेति बलाई । २. हियौ भरि आयो ।
३. दौरे । ४. सदन (ग.) ५. पुनरथ बदन ढुरन की ।

अति उतंग नीली घोडी चढि अरु छबि चौंर ढरन की ॥
राई लोंन उतारि दुहूँ दिसि लगै न डीठि दुर्जन की ।
'परमानँद' न्योंछावरि कीजै सोभा रूप सदन की ॥

[१४६] सारंग

अपने लाल कौ ब्याह करौंगी बडे गोप की बेटी ।
जासों हमसों[1] जतियाचारौ भोजन भेटा-भेटी ॥
मात जसोदा लाड लडावै अंग सिंगार करावै ।
कस्तूरी कौ तिलकु बनावै चंदन सेत चढावै ॥
कहि री[2]! मईया कब लावैंगी मोकों दुलहिया नीकी ।
परोसि[3] परोसि मोहि खीर जिवावै रोटी चुपरी घी की ॥
ए सब सखा बरात चलहिंगे हौंऽब[4] चढौंगो डोली ।
जन 'परमानँद' पान खवावै बीरा घालै[5] ओली ॥

[१४७] सारंग

ब्याह की बात चलावन आए ।
अपने-अपने गाँव तैं ग्वालनि
अति[6] आतुर भए दूत पठाए ॥
नंद महर मिलि समाधान कियो
देखि जसोदा आनँद भायो[7] ।

---

१. अपनौ । २. धौं. (क. ग. ड. छ.) ३. अरसि परसि कै मोहि खवावै.
४. हौं अब चढिहौं घोरी । ५. राखै झोरी, भरि-भरि झोरी (बं. १३०।१)
६. कहि कहि दूत. ७. पाए.

कब देखौंगी दुलहन[1] की दुलही
अपनौ कुल-देवता मनायो ॥
इह[2] सुनि निरखि हँसे संकरषनु
प्रभु प्रतापु कछु हृदै जनायो ।
'परमानँद' मईया श्रीपति की
तिहि छिनु भूषन वसन बनायो[3] ॥

[१४८] गौरी

छाँडहु मेरे ललन ! अजहुँ लरिकाई ।
इहै समै[4] देखिकैं तोकों बाबा ब्याह की बात चलाई॥
डरिहै सासु ससुर चोरी सुनि हँसिहै नई दुलहिया सुहाई।
उबटौ नहाउ गुहौ चुटिया बलि देखि भलौ बरु करिहैं बडाई
मात बचन सुनि बिहँसि बोल दै भई बडी बेर कालि तौ नाई
जब सोइबौ कालि तब ह्वै है नैन मूँदि तब पौढे कन्हाई॥
उठि कह्यो भोर भयो झगुली दै
मुदित महरि लखी आतुरताई ।
बिहँसि गोपाल जानि 'परमानँद'
सकुचि लगे जननी उर धाई ॥

---

१. दूलह दुलहिन अपने कुल के देव मनाए ।

२. ये सुनिकै हरषे संकरषन प्रभु कछुक प्रभुता जु जनाए । ३. बनाए ।

४. काल्हि (ग. ज.)

[१४९] सारंग

ब्याह की बात चलावति मईया ।
बरसाने वृषभान गोप कें लला की भई सगईया ॥
ग्वाल बाल सब बरात चलेंगे और चलैं बल भईया ।
'परमानंद' नंद के आनँद हँसि-हँसि देति बधईया ॥

[१५०] बिलावल

लाल ! तेरी चलत ब्याह की बातें ।
मेरौ कह्यो मानि मनमोहन तजि चोरी की घातें ॥
लरिका टेब बडे भये हौ तातें सजन सकातें ।
दूध दही अपनों बहुतेरौ काहे कों घर-घर जातें ॥
सुंदरि नारि सुलच्छन कन्या चंपक बरनी गातें ।
'परमानंद' लगन लियें आवत घरी साँझ कै प्रातें ॥

[१५१] बिलावल

मैया मोहि ऐसी दुलहिन भावै ।
जैसी यह काहू की टटोंनिया रुनुक झुनक घर आवै ॥
करि करि पाक रसाल अपने कर मोहि परोसि जिमावै।
करि अंचल पट ओट बाबा सों ठाढी बाँह दुरावै ॥
मोहि उठाइ गोद बैठारै करि मनुहारि मनावै ।
अहो मेरे लाल ! कहौ बाबा सों तेरौ कह्यो करावै ॥
नंदराइ नंदरानी हिलिमिलि सुख—समूह बढावै ।
'परमानँद' प्रभु की बातें सुनि आनँद उर न समावै ॥

[१५२] बिलावल

आजु लाल की होत सगाई ।
आवौ री गोपीजन मिलिकैं गावौ मंगलचार बधाई ॥
चोटी चुपरि गुहौं तेरी बैंनी छाँडौ चंचलताई ।
वृषभान गोप टीकौ दीयो सुंदर जानि कन्हाई ॥
जो तुमकौं या भाँति देखिहैं करिहैं कहा बड़ाई ।
पहरि बसन आभूषन सुंदर उनकौं देहुँ दिखाई ॥
नखसिख अंग सिंगार महरि मनिमोतिनिकी मालापहिराई
बैठे आइ रतन चौकी पर नर-नारिनि की भीर सुहाई ॥
विप्र प्रवीन तिलक करि दियो
मस्तक अछित लियो अपनाई ।
बाजत ढोल भेरी अरु महुबरि
नौबत धुनि घनघोर बजाई ॥
फूली फिरति जसोदा रानी वारि कुँवर पर बसन लुटाई
'परमानंद' नंद के आँगन अमर गन पुहुपनि झर लाई

[१५३] बिहागरौ

बरसाने वृषभान कुँवरि कौं तेल चढावैं गोरी ।
नव तरुनी वैसन्धि बाल रूप अनूपम भोरी ॥
साल तानि वितान बनायो कर गहें कुँवरि किसोरी ।
ताके मधि पकवान विविध धरि कर कंकन बिबि जोरी ॥

सप्त सुहागिनी तेल चढावें गावें सुहागिनी जोरी ।
राधा जू तब उबटि न्हवाई छबि की उठति झकोरी ॥
भूषन बसन पहिराइ कुँवरि कौं मरुवटि करि मुख रोरी ।
स्यामा कर पकवान दिवायो सबकौं भरि भरि झोरी ॥
ललिता आइ करी तब आरति छबि न बढी कछु थोरी ।
अरघ बढाइ लई घर भीतर सखि डारति तृन तोरी ॥
.... ।
'परमानँद' सँग कृष्णावति कर टहल महल में दौरी ॥

[१५४] विहागरौ

जैंबौ दूलहे लाल दुलहैया ।
वहु विधि साक सुधारे बिंजन औरु बनायो घैया ॥
कंचन थार कंचन की चौकी परोसत मोद बढैया ।
ठाढी पवन करति है रोहिनि आनँद उमगि न समैया ॥
करि अँचवन मुख बीरी दीन्ही लेत वारनें मैया ।
लाल लाडिली की छबि ऊपर 'परमानँद' बलि जैया ॥

[१५५] विलावल

माँगै सुवासिनी द्वार-रुकाई ।
झगरति अरति करति कौतूहल चिरजीवौतेरौ कुँवरकन्हाई
चिरजीवौ वृषभाननंदिनी रूप सील गुन-सागर माई !
निरखि-निरखि मुखजीवहिसजनी यही नेग बड संपतिपाई

दीनी धूमरि धौरी पियरी औ तियनि कों सारी पहिराई
फिरि सबहिनि की महरि जसोदा मेवा गोद भराई ॥
आरती कर लियें रतन-चौक में बैठारे सुखदाई ।
'परमानँद' आनंदकंद कें भाग बडे घर नवनिधि आई ॥

[१५६]   बिलावल

चलहु तौ ब्रज में जईये । जहाँ राधाकृष्ण रिझईये ॥
ब्रषभानराइ घर आए । तहाँ अति रस न्यौंति जिवाँए ॥
तहाँ ब्रजवासिनि जुरि आईं । तहाँ बैठे कुँवर कन्हाई ॥
तोहि गारी कहाकहि दीजै । यहजसु अपनौ सुनिलीजै ॥
द्वै बाप सबै जग जानै । ताहि बेद पुरान बखानै ॥
तेरी मैया अति अनजानी । तुम बैठौ हिलिमिलि पाँती ॥
तेरी फूफी पंच भरतारी । सो तौ अर्जुन की महतारी ॥
तेरी बहिन सुभद्रा वारी । सो तौ अर्जुनसंग सिधारी ॥
यहजसु सुनि-सुनि कुँवरिकिसोरी । तबप्रीति हँसीमुख मोरी
जो यह गारी गावै । सो प्रेम पदारथ पावै ॥
यह जसु 'परमानँद' गावै । कछु रहसि बधाई पावै ॥

[१५७]   षट्

सोहै सीस सुहावनौं दिन दूलह तेरे ।
मनि–मोतिनि कौ सेहरा बसियो मन मोरे ॥
मुख पून्यों कौ चन्द है मुक्ताहल तारे ।
उनके नैन चकोर हैं ये सब देखनिहारे ॥

पाग बने वारी बनि आई ।
परम अंगु री रूप नागरी रास सब देखनि आई ॥
दुलहिनि रैन सुहाग की दूलह वर पायो ।
नंदलाल कौ सेहरौ 'परमानँद' प्रभु गायो ॥

[१५८] नट

सजनी री ! गावौ मंगलचार ।
चिरजीयो वृषभाननंदिनी दूलह नंदकुमार ॥
मोहन के सिर मुकुट बिराजत राधा के उर हार ।
नीलांबर पीतांबर की छबि सोभा अमृत अपार ॥
मंडप छायो देखि बरसाने बैठे नंदकुमार ।
भाँवरि लेत पिया और प्यारी प्रीतम तनमन दीजै वार ॥
यह जोरी अविचल वृंदावन क्रीडत करत बिहार ।
'परमानंद' मनोरथ पूरन भक्तनि प्रान-अधार ॥

[१५९] बिहागरौ

कुंज-भवन में मंगलचार ।
नव दुलहिनि वृषभानकिसोरी नव दूलह ब्रजराजकुमार ॥
नये-नये पुहुप कंज के तोरन नव पल्लव के बंदनवार ।
चौरी कदंब खंड बंसीबट सघन लता मंडप विस्तार ॥
करत वेद धुनि विप्र मधुपगन कोकिल तिय गावतगुनसार
.... दीनी भूरि 'परमानंददास' ॥

४. उराहनौ

गोपिका-बचन, जसोदा जू सों—

[१६०]   धनाश्री

जसोदा ! चंचल तेरौ पूत ।
आनंद्यौ ब्रज[1] भीतर डोलै करत अटपटौ सूत ॥
दह्यौ दूध घृत लै आगें करि[2] जहाँ तहाँ धरौं दुराइ ।
अँधियारे घर कोउ न[3] जानें तहाँ पहिलें ही जाइ ॥
गोरस के सब भाजन फोरे माखन खायो चुराइ ।
लरिकन के कर कान मरोरे तहाँ तें चले रुवाइ[4] ॥
बाँटि देत बनचरन्ह कौतुकी करै बिनोद बिचारि ।
'परमानँद' प्रभु गोपीवल्लभ भावै मदन मुरारि ॥

[१६१]   जैतश्री

ऐसे माई ! लरिकन सों आदेस कीजै ।
दूरहि तें भए दरसन देखिये पाँइ लागि माँगि[5] कछु लीजै॥
अबहीं हरि ढँढोरि माँट[6] सब माखन खाइ मौन[7] गहि बैठे
हौं पचिहारी मेरौ कह्यौ न मानत बिनती करत जात हैं ऐंठे

---

१. घर. (ङ. छ.)   २. धरि (ग.)

३. नहिं पावत यह पहिलें लै जाइ. (छ.)

४. पलाइ (इ. घ.)   ५. माँगि माँगि. (क)

६. सबनि के माखन (इ. घ.), अबहीं ढोरि ढँढोरि माट.

७. मुनी व्है बैठे. (ज.) मौन धरि० (इ. घ.)

सुनहु जसोदा करतब सुत के चोरी करि[1] करि साधु कहावै
जद्दपि इह गुन कमलनयन के 'परमानंददास' जिय भावै ॥

[१६२] आसावरी

जसोदा बरजति काहे न माई !
भाजन भानि दही सब खायो बातें कहिय न जाई ॥
हौं जु गई री[2] खरिक आपनें मैं जैसें आँगन आई ।
दूध दही की कीच मची है सु दुरतहि[3] देख्यो कन्हाई ॥
तब अपने कर सु गह गही[4] हौं तुम ही पें आई ।
'परमानंद' भाग्य गोपी को सु प्रगट प्रेम-फल पाई ॥

[१६३] सारंग

नेंकु गोपाल कों बरजि ।
आपनें घर बैठी तौ बादर ज्यों गरजि ॥
हमरे घर दुंद कीनों माखन सब चोर्यो ।
जब हौं नेंक हटकनि लागी भाजन गहि सब फोर्यो ॥
गोपिनि के वचन सुनत कोपी नँदरानी ।
कृष्ण-कथा जानि जननि मन में मुसिकानी ॥
स्यामसुंदर देखनि कों उरहन मिस आईं ।
'परमानंददास' समुझि[5] इनकी चतुराई ॥

---

१. कै कै (ङ. छ.) २. ही. (ग. च. ज.)
३. दुरतहि लख्यो ४. गहे (अ. इ. ग. घ, ङ, च. छ. ज)
गहि हरि कों तुम हो पै लै आई । ५. निरखि (इ. घ.)

[१६४] सारंग

तेरौ[1] कान्ह कौनैं ऽब ढंग लाग्यौ ।
मेरी पीठि पर मेलि करूरा वहै देखि जात भागौ ॥
पाँच बरस कौ चपल हठीलौ ब्रज में डोलत नागौ ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर काँध पर्यौ नहिं तागौ ॥

[१६५] सारंग

जसोदा ! तेरौ री बाल गोपाल कह्यौ तौ न मानैं ।
ए बुधि याकी कबहुँ न नासी अपनौं परायौ न जानैं ॥
इह ब्रज वास नंद कौ गोकुल कोउ न बसत बटाऊ ।
लरिका बहुत भए हैं पाछैं ऐसी भई न काहू ॥
सुनि कै कथा विचित्र कान्ह की हँसी नंद की रानी ।
'परमानँद' स्वामी की चोरी जानि दुराउ सयानी ॥

[१६६] सारंग

अपनें रंग लाड वावरौ ।
राजकुमार कह्यौ नहिं मानत चंचल ढोटा रावरौ ॥
माखन दूध दही घृत मेवा जहाँ धरौं तहाँ लेई ।
ऐसौ चतुर चोर-चिंतामनि लै बनचरनि कौं देइ ॥
सुनहु नंद उपनंद महामति याकी अकथ कहानी ।
बालक[2] रूप अनूप करम सब गति कछु जात न जानी ॥

---

१. तेरौ ऽब कान्ह. (ग. घ. ङ.)

२. खाइ पीइ कै भाजि जात है भाजन नावै पानी (ङ. छ.)

जाके घर में कछुव न पावै मेहन तहाँ करावै ।
'परमानंददास' सँग लीनें उलटी आँखि दिखावै ॥

[१६७] सारंग

जसोदा ! इह कौनें ढँग लायौ ।
जहाँ दुराइ धरौं नेह लै घर[1] लै सब गोरस खायौ ॥
काहू की संका नहिं मानत करत आपनों भायो ।
बनचर सों अब कहाँ कौ नातौ भाजन फोरि लुटायो ॥
मेहन करै घरौंची ढारै[2] भलौ[3] पूतु पढायो ।
'परमानंददास' सँग लीनें खेलनि ठाट बनायो ॥

[१६८] सारंग

लियो मेरे हाथ तै छिडाइ ।
लावति ही तावनि कौं माखनु डारयौ कुँवर खिडाइ ॥
बूझत मोहि कौन की बेटी कहा पाहुनी नाँउ ।
देखियत कछू भली सी मानिस कहा है तेरौ गाँउ ॥
निरखि रही हौं मोहन मूरति आनन रूप निकाई ।
'परमानंद' स्वामी मनमोहन मुसकि ठगौरी लाई ॥

[१६९] सारंग

सुनहु सुनहु जसोदा माई ।
आन समै बछरा सब ढीलत तारी देत बिडारत गाइ ॥

---

१. तहाँ सब २. ढोरै. (ग.) ३. नीकौ

कबहुक आइब लेतचिहुँटिया सोवतलरिकनुचलत जगाइ
जो बरजौं तौ मोहि डरावत¹ठाडे होत है फिरि मुसिकाइ
दूध दही सब डारि अजिर में भाजन फोरत चलतपराइ।
ठाढीहँसति गोकुलकी गोपी कबहुक चलत अँगूठा दिखाइ
औरहु भाँति करत बहुतेरी मोपें कछुवे कही न जाइ।
'परमानंद' साखि इह जानत तातें तुमसों कहति हौं आइ

[१७०] गौरी

※बरजति काहे तें नहीं।
ह्याँ तौ दिन-दिन प्रति की बातें कौलों परति सही॥
माखन न खाइ दूध गहि ढोरे लेपत आँग दही।
ता पाछें जो घर के लरिकनु भाजत छिरकि मही॥
जो कछु दुराइ धरौं दूरि कै जानत तहीं-तहीं।
कहा बसाइ तुम्हारे सुत सों सब पचिहारि रही॥
चंचल चपल चोर—चिंतामनि कथा न परति कही।
'परमानँद' स्वामी²के मिलनि कों ढूँढति गली रही॥

[१७१] कल्यान

ए भरी दोहनी दूध हाथ तै बरबट ही लै जात छिडाइ।
पूत लाडिलौ जानें नाहीं तैं कियो ढीठ जसोदा माइ॥

१. आहासत(क.)※अपने गोपाल कों बरजति. (ग. ज.), ऐसा भी प्रारम्भ है। २. प्रभु था लरिका कों ढूँढत फिरति वही. (ग. ज.)

बाँटि देत सब और ग्वाल कों
सुनि री महरि आपु नहिं खाइ ।
आन समैं बछरा छोरत है तारीऽब ठोकि बिडारत गाइ
एक जु ढोटा नंद महर कें तापें मेरौ कछु न बसाइ ।
'परमानँद' प्रभु मोहन मूरति बदन सरूप देखि मुसकाइ ॥

[१७२] कानरौ

तेरे लाल मेरौ माखनु खायो ।
द्यौस दुपहरु[1] देखि घरुसूनौ ढोरिढँढोरि अबहि घरु आयो
खोलिकपाट पैठिमंदिरमें सब दधि अपने सखनि खवायो
छीके हौ ते चढि ऊखल पर अनभावत धरनी[2] ढरकायो
दिन दिन हानि कहाँलौं सहिये ए ढोटा जु भले ढँग लायो
'परमानँद' प्रभु बहुत बचति हौं पूत अनोखोतैंही जायो ॥

[१७३] कानरौ

आवति ही माई ! साँकरी खोरि ।
दोऊ हाथ पसारि रहे हरि हौं बलि जाइ रही मुख मोरि॥
बालक सौं कहा कहौं सखी लईऽब दोहनीहाथ मरोरि।
ऐसौ चपल हठीलौ ढोटा भाज्यो बहुरि मटुकिया फोरि॥

---

१. भरी दुपहरी सखि सूनौ घर० । टोक दुपहरी लखि सूनो घर० । द्यौस दुपहरी (ग. ज.) २. भोयनि. (क.)

‡भावसाम्य—सूरसागर पद सं० ९४९ तथा स. भं. बंध १।१ भी पाठभेद के साथ ।

का पर कीरति अटपटी बरनौं ग्रीवा तैं हार लियो मेरौतोरि
ताकी साखि दास 'परमानँद' इक इक लाल रहे लखिकोरि

[१७४]   बिलावल

ऐसे लरिका कतहुँ न देखे बाउ सु चालि गाँव की माई।
माखन चोरैं भाजन फोरैं उलटि गारि दैं फिरि मुसुकाई॥
तब हौं दैनि उराहन आई कहा करौं जो नाकहिं[1] आई।
अहो[2] जसोदा तुम ठकुराइन तुमसौं कहत मेरी बौराई[3]॥
पाछैं ठाढे मोहन चितवत धीरी हो तें चोरी[4] लाई।
'परमानँददास' कौ ठाकुर पचयो चाहत चोरी खाई॥

[१७५]   बिलावल

बहुत उपजति है या ढोटा पैं[5] कैसी धौं लै लै आवत।
हरि हरि हरि देखहु री माई! जानि जु आप[6] दुरावत॥
विद्यमान दधि दूध चुरायो फिरि फिरि मोहि बौरावत।
चतुर छैल[7] विद्या सब जानत[8] गढि गढि छोलि बनावत॥
जो न पत्याइ सौंह लै मोपैं[9] साँची सौंह[10] करावत।
तेरे बच्च जात ह्वै सिव से तिन पर हाथ धरावत[11]॥

---

१. अंतहि. (इ. घ.) २. सुनहु. (ग.) ३. बसवाई. (च. छ.) कहत मो मति बौराई। ४. चारयौ. (ग. ज.) ५. सों. (इ. घ.) ६. बात. (क.) ७. चोर. (ग. ज.) ८. पूरन (ग. ज.) ९. सों. (ग. ज.) १०. सपथ. (ग. ज.) ११. दिवावत (ग. ज.)

बदन मोरि मुसिकाइ चली फिरि उरहन के मिस आवत।
'परमानँददास' कौ ठाकुर स्याम मनोहर भावत ॥

[१७६] गौरी

भाजि गयो मेरौ भाजन फोरि।
कहा करौं[1] सुनि माई[2] जसोदा
अरु सब माखन खायो चोरि ॥
या ढोटा की समुझि न परई रोके रहत गाँव की खोरि।
को उत मारग चलन न पावत दूध हाथ तें लेत मरोरि॥
लरिका एक[3] सहस सँग लीनें रात दिवस गोरखधंधोरि[4]
आनँद रूप फागु सौ खेलै तारी दै दै हँसै मुख मोरि॥
को[5] इह कुँवर कवन कौ ढोटा सब ब्रज बँध्यौ[6] प्रेम की डोरि।
'परमानँद' प्रभु[7] मोहन मूरति लेति बलैया अंचर छोरि†॥

[१७७] देवगंधार

❀भली इहि खेलिबे की बानि।
मदनगोपाल लाल काहू की राखत नाहिंन कानि॥

---

१. कहौं. (ग. ज.) २. मात. (इ. ग. ज.) ३. सत पचास. (ग. ज.)
४. ढंढोरि. (ग. ज.) ५. सुंदर स्याम रँगीलौ ढोटा।
६. बाँध्यौ. (इ.क.ग.घ.ज.) ७. दास कौ ठाकुर. (ग.ज.) सयानी ग्वालिनि
† भावसाम्य—सूरसागर पद सं० ९४५ में भी पाठ-भेद और तुक परिवर्त्तन के साथ।
❀ 'कौन यह०' ऐसा प्रारंभिक पाठ था। चौरासी वार्ता के अनुसार महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा संशोधित।

सुनहु जसोदा करतब सुत के इहे लै माटु मथानि ।
ढारि[1] फोरि दधि डारि अजिर में कौन सहै नित हानि॥
अपने हाथ लै देत बनचरनि दूध भात घृत सानि ।
जो बरजौं तौ आँखि दिखावत पर घर कूदन दानि ॥
ठाढी हँसति नंद जू की रानी मूँदि कमल–मुख पानि ।
'परमानंददास' इह जानै बोलि बूझि धौं आनि ॥

[१७८] धनाश्री

❀ जसुमति ठाढी यों जु कहै ।
या ब्रज के सब लोग लाल के गोहन लागि रहैं ॥
काहुके[2] भवन जाइ नहिं कबहू झूठें आनि गहैं ।
एक गाँउ कौ बास सखी री[3] कैसें कै निबहै ॥
तुम जिनि खीझौ जसुमति[4] रानी सबकी जीवनि यहै ।
'परमानंद' आँखि जरौ ताकी[5] टेढी भौंह[6] चहै ॥

---

१. ढोरि. (क.)

❀ ठाढो जसुदा० (क.) ऐसा भी प्रारंभ है ।

२. जाके भवन जात (ग. ज.) काहू के भवन जाइ चले नहिं झूठी साँची आनि कहै. (क.) ।

३. बसैवौ कैसें० (ग. ज.) एक गाँउ इक ठाँउ सखी री ऐसें क्यों निब्रहै (क.) एक गाँउ एक बास बैसिवौ कैसें कहु निबहै ।

४. मात जसोदा. (ग. ज.) सुनि जसुदा तुहि यह बूझिये सबको० (क.)

५. जाकी. (ग. ज.) 'परमानंद' दृष्टि जरौ ताको जो बाँकी दृष्टि चहै (क.)

६. दृष्टि (ग. ज.)

[१७६] बिलावल

सुनि जसुमति ! तेरौ कुँवर कन्हाई ।
चोरी मिस नित-प्रति आवत है
बाँह पकरि कै तुम ढिंग लाई ॥
इतनौ को नित नुकसान सहैगौ
बसें बास बरसाने जाई ।
अपने लाल कौ गुन नहिं जानति
मेरी तनक न करति सुनाई ॥
'परमानँद' सुनि बचन ग्वालिनी
स्यामसुंदर मन में मुसिकाई ।
मोकौं संग लै जाति कुंजनि में
चोरी करन की चाल सिखाई ॥

[१८०] गौरी

जसोदा ! बडौ घरानौ तेरौ ।
तेरौ पूत स्यामघन सुंदर चंचल चपल तरेरौ ॥
तेरौ आयो बाट घाट औघट वरबट करत झँझेरौ ।
तेरौ लाल लग्यौ सँग डोलै गहै अबलनि को छेरौ ॥
छेरौ बाँधि चलै गुरुजन मगु क्यों ब्रज होइ बसेरौ ।
मेरौ बचन मानि ब्रजरानी ! कीजै जतन सवेरौ ॥
.... ।
बेर भई गाँइ आवनि की ब्रज 'परमानँद' देत है फेरौ ।

[१८१] बिलावल

मैया ! याही कौन निवारै ।
ऐसो हठीलौ लाडिलौ तेरौ री ! छीके हू तें टारै ॥
तुमहीं बिचारौ हो मात जसोदा ! अति अनीतिचलावै ।
जद्यपि ऐसौ चपल विनोदी 'जन परमानँद' गावै ॥

यशोदा-वचन, गोपी-प्रति—

[१८२] सारंग

जानिऽब लावहु जिनि दोस ।
अबहि कृष्ण की बाल दसा है जियहि धरौ जिनि रोस ॥
जो हरि गयो[1] तिहारें चोरी तौ कहा घर[2] हि लै आयो ।
करम बोलि कें मोपें लीजै केतकु माखन खायो ॥
ठाढी हँसति नंद जू की रानी गाँउ बसत कहा कीजै ।
'परमानँद' स्वामी लरिका है बोलि सिखाँवन दीजै ॥

[१८३] सारंग

❀ग्वालिनि ! तोपें ऐसौ क्यों कहि आयो ।
मेरे घर-घर बात[3] स्यामघन ताहि तें दोसु लगायो ॥
घर हि कौ माखन दूध न भावै तेरौ दह्यौ[4] क्यों खायो ।
वारि डारौं तोसी कोटि त्रिया जिनि मेरौ ललनु खिझायो

१. गए. (क.) २. करहि. (च.)
❀तोपें ऐसौ क्यों··· (क), इस धौ तोसों० (ङ. छ.) ···ऐसे भी प्रारम्भ हैं । ३. जात. (इ.) ४. कैसें खायौ तेरौ क्यों करि ।

कटुक बचन सुनि ग्वालिनि डोली हरि सों नेह बढायो ।
'परमानँद' प्रभु बतरस अटकी घर कौ काज[1] बिसरायो ॥

[१८४] सारंग

ग्वालिनि ! छाँडि दै इह बाँनि ।
झूठें हि दोस देति मेरे सुत कों दई ये क्यों न डरानि ॥
तेरी कितहूँ चलनि कितहू बोलनि करै न काहूकी कानि
फिरि फिरि हमारे हि आवति निरखति सारँगपानि ॥
कौन गाँउ कौन ठाँउ स्याम सों तोहि भई पहिचानि ।
'परमानँद' स्वामी सुख दैहै तू मोसों[2] इह मानि ॥

[१८५] सारंग

क्यों इह भरों ग्वालिनि सी डोलै ।
कैसेंऽब या की गारि समुझिये मेरौ[3] बालक तोतरे बोलै
क्यों इतने ऊँचे पहुँचै सिसु क्यों तेरौ छीकौ खोलै ।
सोवत तोहि भयो कछु संभ्रम[4] भूलि परी इहि जो लै ॥
मन[5] औरै मुख औरै कहति कछु सूचति लोचन लोलै
'परमानँद' प्रभु सों कछु अ न कहिये गोरस चाहति सो लै

[१८६] सारंग

जबतै ग्वालिनि तू ब्रज आई ।
तबही तै दिन देति उराहनौ उलटी चालि चलाई ॥

---

१. काज सबै(इ), २. मोपें (इ. घ.) ३. लाल तोतरे० (इ. घ. ड. छ.)
४. सपनौ । ५ . तेरे मन औरै० (क.)

राते नयन रोष[1] में भामिनि लख्यो न जाई सूतु ।
बार बार क्यों नाँउ लेति है कान्ह परायो पूतु ॥
'परमानँद' जसोदा खीझै बार बार यों बोलै ।
पाँइ लागौं घर जाहि आपुने काहेकों आँगन डोलै ॥

[१८७] सारंग

❀झूठौ दोस गोपालहिं लावति ।
जहँ जहँ खेलनि जात मनोहर तहाँ तहाँ उठि धावति ॥
कब तेरें दधि माखन खायो ऐसें हि हाथ नचावति ।
'परमानंद' मदनमोहन कों ब्रज की लीला भावति ॥

[१८८] सारंग

ग्वालिनी ! गोविंद ढौरी लायो ।
प्रातकाल उठि तेरें हि आवत ढोटा तैं बौरायो ॥
पाँच बरस कौ स्याम मनोहर बतियनि ही विरमायो ।
दूरि हि तें करपल्लव मिलवति नैननि सूतु[2] बतायो[3] ॥
समुझि परै नहिं या ढोटा की उलटी चाल चलायो ।
स्रवननि सुन्यो नयन नहिं देख्यो निगम न[4] भेद बतायो
जानति बूझति पूत परायौ अपने भवन बसायो ।
'परमानंद' जसोदा[5] खीझति इह कैसौ जगु[6] आयो ॥

---

१. बदन मुसकाती लख्यो० (क.), बेन मुसिकाते ।

❀ झूठें हि दोस गुपालै, ऐसा प्रारम्भ है ।

२. सूत्र (क.) ३. बनायो. (ग. ज.) ४. नेति कहि गायो (इ. घ.)
५. जसोमति ६. जुग

[१८९] सारंग

❀ मूँगि रहे छाँडि अटपटी रारि ।
कहा भयो जो इतनक ढोटा बारक कीनी आरि ॥
कहाँ तू भर जोबन[1] कहाँ सिसु बीतत वत्सर चारि ।
ऐसी बात कहत क्यों आवै हँसि हैं सब ब्रज-नारि ॥
कहाँ नखनि के घाउ परे हैं कहा लागि रही गारि ।
'परमानँद' कहति नंदरानी मैं तो[2]सों मानी हारि ॥

[१९०] सारंग

गोरस कहा दिखावनि आई ।
इतनौ लै खायो नंद जू के ढोटा बदलि लेहि मेरी माई ॥
ऐसी कीनी तुम्ह ढीठ कन्हैया मंदिर तें उठि धाई ।
पाँच सखी मिलि देति उरहनौ ए तेरी कौन बडाई ॥
सुंदर कान्ह[3]छबीलौ नागर इहि[4] मिस देखनि आई ।
'परमानँद' स्वामी सों हिलि-मिलि हँसति चलति मुसिकाई

[१९१] कान्हरौ

देखौ या ब्रज कौ चलनु ।
तू ग्वालि[4] जोबन मदमाती संग लायो ललनु ॥
खेलत हुतौ गोपबालक सँग तैं दै सैन बुलायो ।
बे ही काज चिहुँरिया लीनी रोवत मोपहँ आयो ॥

❀ मूक रहि. (ग. ज.) ऐसा भी प्रारंभ है १. यौवन (क.)
२. तोतें (इ. घ.) ३. स्याम. (ग) ४. ग्वालिनि [ग. ज.)

चितवति अनत कहति कछु औरें ऊँची नीची डीठि ।
तैं कत दूध चुरू भरि मार्‌यौ कान्ह उघारी पीठि ॥
लोक वेद की कानि न मानति तेरे जिय ऐसी भावति ।
'परमानंद' जसोदा खीजति ठाढी सीस डुलावति ॥

[१९२] कान्हरौ

मोपर नैन घुरावति आवति ।
कहा धौं[1] गोपाल कियो है तेरौ ऊँची आँखि दिखावति ॥
राखिऽब राखि अपनी चतुराई नाहिंन भेद जनावति ।
कपट उराहनु[2] लै लै पैठति गढि गढि छोलि बनावति ॥
तेरौ मरमु मैं नीकें जान्यों इनि बातनि सचु पावति ।
'परमानँद' स्वामी रस अटकी हरि-सँग मनहिं खिलावति

[१९३] गूजरी

मेरो माई ! कौन को दधि चोरैं ।
मेरे बहुत दई को दीनों खात लोग सब[3] औरैं ॥
कहा भयो भूलें भवन तैं नेंक पियो जो[4] भोरैं ।
ता[5] ऊपर कहा गाजति बाजति मानों चढि आई घोरैं ॥

---

१. जु (इ.घ.) २. उराहनौ. (इ. ग. ड. च. छ. ज.) उराहने (घ.)
३. हैं (छ.) ४. दधि (ग. ज.)
५. इन बातनि पै कहा गर्जति है मानों (ङ. छ.)

माखन खायो दही सब ढोरयो गही[1] मटुकिया फोरै ।
'परमानंद' सयानौ ढोटा नेह नवल सों जोरै❀ ॥

[१६४] गूजरी

ढोटा रंचकु माखन खायो ।
काहे कों हरुई होति री ग्वालिनि! सब ब्रज गाजि हलायो
जाकौ जितनों तुम जानति हौ दूनौ मोपें लेहु ।
मेरौ कान्हर है इकलौतौ सबै असीस मिलि देहु ॥
कमलनयन मेरी अँखियनि तारौ कुलदीपक ब्रजगेह ।
'परमानंद कहति नँदरानी सुत प्रति अधिक सनेह ॥

[१६५] सारग

गोपाल निपट हैं भोरे ।
काहे कों तू झूठि लगावति कब कंचुकि बंद तोरे ॥
पाँच बरस कौ स्याम मनोहर अति ढोटा[2] सुकुमार ।
खेलत फिरत गोप बालक सँग घूँघर वारे बार ॥
इहि तेरी बातें सुनि ग्वालिनि मोहि आवति है लाज ।
ठाढी खीझति[3] नंद जू की रानी तेरेई सब काज ॥
उठि घर जाहि ढीठ मति ईतर बहुतें राखति कानि ।
'परमानंददास' इह जानें तोहि परी इहि बानि ॥

---

१. मही (इ.) ❀ सूरसागर प. सं० ६३६ में भी पाठभेद के साथ ।
२. छोटौ. (ग. ज.) ३. हँसति (इ. घ.)

[१६६]　　　　　　　सारंग

ग्वालिनी घर की बाढी ।
राति[1] दिवस उराहन के मिस मेरे हि आँगन ठाढो ॥
कबहि गोपाल[2] कंचुकी फारी कबहि भए अस[3] जोगु ।
अबहि राम सँग घुटरनु डोलत जानत हैं सब लोगु ॥
सुनि री ! ग्वालिनि हौं नहिं बूझति तेरे मन कौ गूझ ।
साँचु कहे कौ तोहि डरु नाहिंन झूठि कहे कौ बूझ ॥
सुंदर स्याम[4] कमल-दल-लोचन रूप देखि रस बीधी ।
'परमानंद' अटक नहिं मानत कनक चोर ज्यों[5] गीधी‡॥

[१६७]　　　　　　　सारंग

❀मेरे कान्ह कौं कछुअ न लागै गंगा कौ सौ पान्यों ।
पाँच बरस कौ सूधो साँवरो तैं क्यों निरवई जान्यों ॥
नित[6] उठि आवतिं हाथ नचावतिं कौन सहै नक बान्यों ।
चूरी फोरत बाँहि मरोरत माँट दही कौ भान्यों ॥

---

१. रात द्यौस (ग.)　नित उठि देति उराहनौ आवति मेरे० (छ.)
२. लाल. (इ. घ.) ३. ऐसै (क.) ४. कान्ह. (ग. ज.) ५. यों. (क)
‡ भावसाम्य-सूरसागर पद सं० १३९२ में भी 'ग्वालिनि है घर की बाढी' तुक-परिवर्तन तथा साधारण पाठभेद से ।
❀मेरौं गंगा लाल कौ सौ पान्यों (क) से भी प्रारम्भ है ।
६. दिन प्रति देन उराहनौ आवति (ग. ज.)

ठाढी हँसति नंद जू की रानी गोपी[1] बचन न मान्यों ।
'परमानँद' मुसकाइ चलीं जब निरखे[2] नंद-गृह रान्यों ॥

[१६८] देवगंधार

इतनक-सौ गोपाल कहा करि जानैं दधि की चोरी ।
काहे कों आवति हाथ नचावत जीभ न करही थोरी ॥
कब छींके तें माखन खायो कब दधि मटुकी फोरी ।
अंगुरिनि कर कबहुँ नहिं चाखत घरही धर्यो बहुतेरोरी ॥
इतनी बात सुनी जब ग्वालिनि बिहँसि चलीमुख मोरी ।
'परमानँद' नँद नँदरानी के सुत सों जोकछु कहै सो थोरी❀

[१६६] बिलावल

स्यामसुंदर मोहि लागत प्यारौ ।
मीठे बोल मधुरमुख बोलत समुझत नाहीं कान्हमेरौ वारौ
नित प्रति दैंन उराहनौ आवति
ग्वालिनी नंदगाम कौ पैंडोई न्यारौ ॥
दूधदही घरमें बहुतेरौ खेलतखात हँसत मेरौ जगतउज्यारौ
सुनति उराहने कों महतारी चोरी के लच्छन तुम टारौ ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर ब्रजजन-अँखियनि तारौ ॥

---

१. ग्वारिनी । (ग. ज.) २. देखे महर घर रान्यों । (ग. ज.)

❀सूरसागर पद सं० ६११ में भी 'मेरौ गोपाल तनक सौ कहा करि जानै दधि की चोरी' ।

जसोदा-बचन, प्रभु-प्रति—

[२००] धनाश्री

ठाढी बूझति नैन बिसालै ।
ताहिं जसोदा सिखवनि लागी त्रिभुवन-गुरु गोपालै ॥
बलाइ लेउँ कत तुम जात पराए भवननि दूधदही की चोरी
ए सब ग्वालि कहति हैं मोपें[1] माँट दोहनी फोरी ॥
माता! जिनि पतिआइ तूँ इनिकी बातें जुवतिसुभाव न जाई
जो हम पोच करें काहू कौ तौ बाबा नंद–दुहाई ॥
खेलत हुते[2] जहाँ रँग अपने झूठे दोसु लगावैं ।
'परमानंददास' इह[3] बूझै कौन बात जिय भावै ॥

[२०१] आसावरी

❀ काहे न कीजतु कह्यौ ।
कत हरि जात परायें चोरी घर है दूधु दह्यौ ॥
खेलत हुते जहाँ अपने रस जसुमति धाइ[4] गह्यौ ।
अब कहाँ भाजि जाहुगे मोहन! चुप करि कान्ह रह्यौ ॥
तेरी चालि चली मथुरा में जो लौ गई मह्यौ ।
'परमानँद' स्वामी सुनि बालक तऊ न फिरत बह्यौ ॥

---

१. मोसों. (ग. ज.) मोतें २. हुतौ. (इ- घ. च.) खेलौं जहाँ तहां रंग चपने ३. कौं बूझौ कौन.

❀ मौहन काहे, मोहन कीजतु नेंक । ऐसे भी प्रारम्भ हैं । ४. आनि ।

[२०२] सारंग

सयाने कब लगि होइहौ लाल !
नाहिंन समुझि परति तुम्हारी गति मोहन मदनगोपाल
दिन प्रति[1] घरहि उराहनु आवै अंबुज नैन बिसाल।
नवलछ[2] गोधन नंदराइ कें अजहुँ न छाँडहु चाल॥
कहति जसोदा सुनु मेरे मोहन ! चूँबौं सुंदर गाल।
'परमानँद'प्रभु तजि न सकति छिनु बँधी प्रेम के जाल॥

[२०३] सारंग

कहा चाहत हौ बाल गोपाल !
कहति जसोदा सोई लीजै नंद[3]गोप के लाल॥
मधु मेवा पकवान मिठाई फल पुनि पक्क रसाल।
खाउ प्रीति करि जाउ रोग बलि चूँबौं सुंदर गाल॥
देखें जीवति कमलमुख तुम्हरो प्रगट पूतना काल।
'परमानंददास' की जीवनि चंचल बाहु बिसाल॥

[२०४] सारंग

मैं हरि ! तुम तें कहा दुरायो।
सब घर-बार समर्पनु कीनों चरनकमल चितु लायो॥
काहे कों तात ! जात काहू कें घर हि उराहनु आयो।
ताकौंऽब कहा देउँ भाजन भरि जेतकु गोरसु[4] खायो॥

---

१. देंन उराहनौ आवै ग्वालिनी नैन०। २. नौ लख धेनु नंदबाबा कें।
३. बडे। नंदभूप के ४: माखन (इ. ग. ज.)। जितनौ गोरस।

कहति जसोदा औरनि आगें भवन काज बिसरायो ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर करत आपुनों भायो ॥

[२०५] सारंग

अरी ! मेरे सों कौन लरी ?
ताकौ[1] नाँउ लेहि किनि मोसों वारि डारौं सगरी ॥
चलि री[2] ! मैया तोहि बताऊँ सबहिनि तें अगरी ।
नीलांबर पहिरें तन[3] गोरी चंचल चपल खरी ॥
हौं[4] बालक बे षोड बरस की निकसी आइ गरी ।
मोहि[5] धकाइ आगें ह्वै निकसी तोहू तें न डरी ॥
बेगि ल्याउ मेरे मोंहों आगें काढौं सब दुख री ।
'परमानँद' प्यारी मुख निखरत बिसरि गई रिस री卐 ॥

[२०६] सारंग

तेरी लाल ! लेऊँगी बलैया ।
काहे बिराने बास जात हो सिख सिखवति है मैया ॥
जोवन अरु[6] गोरस की माती ग्वालि पुकारति आवें ।
भई निसंक ढीठ ए गोपी वृथा दोषु तुम्है लावें ॥

---

१. या गिरिधर के चरनकमल पर० (३०१५ बं.)
२. चलि मईया हौं तोहि बताऊँ सब सखियनि० (३०१५ बं.)
३. नवनागरि. (च०) नीलांबर पीतांबर ओढ़ें० (३०१५ बंध)
४. कब ढोटा मैं गारी दीनीं कब मैं तोसौं लरी (३०१५ बंध)
५. झूठी साँची जाइ लगाबै सो तौ लागै बुरी ।
卐 बंध ३०१५ में सूरदास की छाप से है । ६. रूप. (च.)

जो कोई[1] आनि ग्रहै तुम बालक कंस पहँ कहा कहिये ।
परम विपच्छ सोई है हमारौ समुझि न काहे रहिये ॥
'परमानँद' स्वामी की महिमा[2] अलख लखी न[3] जाई ।
जासु निमित्त जन्म हरि लीनौ ता पहँ[4] मात डराई[5] ॥

[२०७ [सारंग

लालन ! छाँडि दै इहि बानि ।
झूँठे ही दोष देति मेरे सुत कौं दही ऽडरानि ॥
तेरी चितहूँ चलन कितहूँ बोलत करै नहीं काहू की कानि ।
फेरि-फेरि भवन हमारे आवति निरखति सारंग-पानि ॥
कौन गाँउ कौन ठाँउ कान्ह सौं तौ तोहि भई है पहिचानि
'परमानंद' स्वामी सुख दैहें मोसौं यह मानि ॥

[२०८] बिलावल

औगुन छाँडि मानि कह्यो मेरौ ।
चपल चोर घर-घर डोलत हौ कौन विवाह करैगो तेरौ॥
सील गहौ तौ सब ब्रज कैहें जायो जसुमति पूत भलेरौ ।
कीरतिसुता माँगनौं करिहौं श्रीवृषभान बसत हैं नेरौ॥
मधु मेवा पकवान मिठाई माँगि लेहु मोपें साँझ सबेरौ ।
'परमानँद' धौरी धूमरि कौ अपने गृह है दूध घनेरौ ॥

---

१. कोउ (ग.) २. लीला (इ- घ.) ३. नहिं जावै (ग.)
४. कहँ (इ. ग. घ. ङ. च.) ५. डरावै (स.)

गोपिका-वचन, प्रभु प्रति—

[२०९] सारंग

कमलनयन ! तुम बाढे घरके ।
काहूकी पीर न जानत मोहन[1] बात करत बोलत ईतरके ॥
मांखन दूध चुरावत नीके सब रखु लेत गहत हो करकें ।
ऊपर पांइ दिखावत आँखिनि पाँ लागों अति ढीठ निढरके[2]
गोपी बकति झुकति दुख अपनों पै इह लरिका नाहींडरके
'परमानंददास' सँग लीने करत फागु-सी तोरत फरके ॥

[२१०] बिलावल

❀ जानी है क्यों छिपि है चोरी ।
सूने भवन कछु[3] तुम दधि खाई अरु मटुकिया फोरी ॥
कबहुक बांयें कबहुक दाहिनें कबहुक ऊँचे कबहुक नीचे ।
चितवत कान्ह कमलदल-लोचन
मोहि देखत ही अखियाँ मीचे ॥
गोपिन के मन प्रीति निरंतर
स्याम मनोहर देख्योई भावै ।
बाल[4]-विनोद नंद-नंदन के
इह लीला 'परमानँद' गावै ॥

---

१. लालन. (क.) २. निठुर के. (च. छ.)
❀ क्यों छिपि है ये चोरी से भी प्रारंभ है.
३. कछुक दधि खायो नई मटु०
४. परमानंद स्वामी इह लीला ब्रह्मादिक नित गावें (ड. छ.)

[२११] सारंग

लाल प्यारे तुम ऊपर हौं वारी ।
चले जाहु चपल ढोटा तुम छाँड़ि देहु कर तें सारी ॥
झुकत कौन पै साँट उठावत देत कौन कौं गारी ।
चंचल छैल छबीले मोहन हँसति सबै ब्रज-नारी ॥
लै जै हौं महरि जसोदा आगें[1] बोहोत सह्यो सुकुमारी ।
'परमानंद' प्रभु ऐसे न खेलिए लाल गोवरधनधारी ॥

[२१२] बिलावल

अटपटी दीबौ छाँडहु लाल !
नंदराइ की कानि करति हौं मोहन मदनगोपाल ॥
पाँच बरस के स्याम मनोहर अबहि कहा इह बानि ।
इनि बातनि तें निपट घटति है बड़े लोग[2] की कानि ॥
हँसि गोपाल कह्यो तू साँची मोहि खेलिबौ भावै ।
'परमानंद' धन्य सोई[3] गोपी हरि कौ भलौ मनावै ॥

[२१३] बिलावल

अटपटी बहुतें ही हो देत ।
प्रातहि तें उठि मारग रोकत जानति नहिं किहि हेत ॥
लंपट लोल जसोदा-नंदन ! रहो[4] धरम की सेत ।
देखि कनक कुच कठिन मनोहर,लाल कहा जिय लेत[5]॥
जो इह सुनि है सो कहा कहि है, चतुर नंद के पूत !
'परमानंद' प्रभु लखै न कोऊ चलिये तेही सूत ॥

---

१. पें (ग. ज.) । २ गोप, बडे लोगन की, (इ. घ.)
३. इहि, (इ.)४. गहो, ५. देत,

[२१४] बिलावल

तुम पें ऐसी कौन करावत।
मेरी गाइनि कौ दूध दुहौ दुहि सबहि ग्वाल पिबावत ॥
छिनु एक बृंदावन में जाते माखन घरहिं लुटाबत।
गोद बिछाइ करों बीनती दूरि हि गारि दिवावत ॥
राव[2] करौं जसोदा के आगें लोचन मो[3] पें डुलावत।
'परमानंददास' कौ ठाकुर बिरह मेरे[4] जिय भावत ॥

[२१५] सारंग

जमुना तुम्हारे[5] बाँट परी।
या ब्रज में नव[6] नंद महा धन तेउ न कहत हमरी ॥
बाहिर हू कौ पानी रोक्यौ घर गो-रस नहिं बाचै।
उराहनौ देति तुम्हारी मईया हाथनि भौंहनि नाचै ॥
चलहु जाइ दिखरैये जसोदा हैं रीती सब गगरी।
पान्यो भरन न देत मनोहर कौन टेव यह[7] पकरी ॥
जब सब चलीं रिसाइ घोष कों मुरली अधर धरी।
सुनि कें फिरि आईं 'परमानंद' लोचन सजल करी ॥

[२१६] बिलावल

❀हौं तकि लागि रही (री माई)।
जब गृह में ते दधि लै निकसे तब मैं बाँह गही ॥

---

१. दह्यौ, २. करों पुकार जसोदा० (छ.) न्याइ धरों जसुदा.।
३. कहा. ४. भरों, ये मेरे मन०। ५. तेरे (ङ. छ.)
६. तौ (छ.) ७. इनि (ग. ङ. छ. ञ.)
❀ माई हों तकि. (ग. ज.) री माई हों तकि लागि रहीं, ऐसे भी प्रारंभ हैं।
हों तकि लागि रहीं री माई (ख.)

हँसि दीनो मेरौ मुख चितयो मीठी सी बात कही[1] ।
ठगि जु रही चेटकु सौ लाग्यो परि गई प्रीति सही ॥
बैठहु नेंक[2] जाउँ बलिहारी ल्याउँ और दही ।
'परमानंद' सयानी ग्वालिनि सरबसु दै निबही+ ॥

[२१७] धनाश्री

आजु गही है माखन चोरी ।
बहुत दिवस तुम खाइ गए हो अब पकरे हो बांह मरोरी॥
कहुधों कौन काम कों आए सखा संग श्रीदामा जोरी ।
बहुभांतिनि मनुहारि करतिहों बंक बिलोकनिही मुखमोरी
सुनि ग्वालिनि तेरौ कछु न बिगारचौ
भवननि भीतर देखि टटोरी ।
'परमानंद'ठगी इनि बातनि देखो कहा कछु पढी ठगौरी॥

[२१८]

माखन चोर री ! मैं पायो ।
जैयतु कहाँ जानि कैसें पावत बहुत दिननहिं खायो ॥
श्रीमुख तें उघरी द्वै दतियाँ तब हँसि कंठ लगायो ।
'परमानँद' प्रभु प्रानजीवनधन वेद विमल जस गायो ॥

---

१. कही री । मही री । दही री ।+निबही री । (क.)२. लाल (ई.घ.)
+ भावसाम्य—सूरसागर प० सं० ८९९ में भी 'माई हौं तकि लागि रही' तुक से पाठ-भेद के साथ ।

[२१९] केदारौ

काहे कौं दुराव करतहो माधौ, मैं देखे तुम अपनी आंखि।
जौ न पत्याउ बचन नहिं मानौं, और सखीएक बोलै[1] साखि
जब हम मथन करन दधि लागौं,
तब तुम चितयो कौरैउ झांखि।
पियो सबदूध घरोंची ढाह्यो[2], उपर चलेहो दोहनी ढांकि ॥
करत सोंह जसोमतिके आगें, हम बलिरामु हुते दोउ साथ।
'परमानंद' ग्वालिनी झूठी, बेही[3] काज नचावति हाथ ॥

[२२०] सारंग

❀ गोपालहि माँखनु खान दै।
बाँह पकरि तहां[4] लौं जैहों मोहि जसोमति पहियां जान दै ॥
रहिरी[5]! बावरी मौन ह्वै रहिये बदन दह्यो लपटान दै।
उनपैं जाय चौगनौं लैहोंगी नैननि तृषा बुझान दै ॥
तूजु कहति है कछुव[6] न जानत सुनत मनोहर कान दै।
'परमानँद' प्रभु कबहुन छांडों राखोंगी तनमन प्रान दै+॥

प्रभु-बचन जसोदा-प्रति—

[२२१] आसावरी

मैया! अबहि उराहनें आई।
काम नहीं वाकौं काज नहीं झूठे करत लराई ॥

---

१. बोलौं। (ग. ज.) २. ढारचो। (ग.) ३. बिना।
❀ गोपालै माखन...... से भी प्राप्त है। ४. उहां (क.)
५. सुनि री सखी मौन ह्वै रहिरी। ६. ज्यों-ज्यों कहति हरि लरिका है। (मु.) + सूरसागर सं० ८९२ में भी परिवर्तन के साथ।

हौं[1] जु हुतो सखा संगनि में बल करि बांह गहाई ।
चांपि कपोल लपटिया लाई तहाँ श्रीदामउ गहाई ॥
गद्गद कंठ नीर नैननि में जसुमति उरसों लाई ।
'परमानंद' बाल-लीला[2] कों सुक मुनि परत न गाई ॥

[२२२] ईमन

❀अबहिं उराहनो दै गई अरी ! बहुरयों फिर आई ।
मईया याको टेव लरन की तू सूधी करि पाई ॥
या ब्रज में लरिका बहुतेरे कछु हौं ही लरिकाई ।
मूंड चढाऐं चढि जाति अहीरी सकुचि बेचि सी खाई ॥
सुनि सुत की सब बात जसोदा मन-ही-मन मुसकाई ।
'परमानँद' प्रभु द्वारि ग्वालिनी कान्ह ठगौरी लाई ॥

५. मिषान्तर-दर्शन

[२२३] सारंग

† आई हौं इनहीं पाँइनु दौरी ।
घर के काज सबै बिसराए नंदनँदन रस-बौरी ॥
गई री गिराइ करहु[3] तें कंकन द्वारें जाइ सँभारयौ ।
ढीली कील निसरि[4] गई क्यों ही जसोमति द्वारें डारयौ ॥

---

१. खेलत हुतो । (ग.ज.)२. रस । (ग.ज.) हरि ।
❀ 'मईया अबहि उराहने आई' से भी प्राप्त है ।
† दौरी, अब दौरी री ग्वालिनि इनहीं पाइनु दौरी (वं. ३६/११) से भी प्राप्त है । ३. हाथ तें कंगना घरही जाइ०(वं. ३६/११) ४. निकरि(ग.घ.छ)

ठाढी[1] हँसति नंदजू की रानी ह्याँ तै कछुअ न जाई।
'परमानँद' अस्तुति करै गोपी इह घर इहै बडाई ॥

[२२४] सारंग

ग्वालिनि ! हँसति-हँसति घरु आई।
कहाँ गयो महरि तिहारौ री ढोटा मेरी मोतिनि लर पाई॥
वे[2] उहिघाट पियावत गईयां हौं औझिल ह्वे न्हाई।
कंचुकि चीर लपेटि[3] लियो कर अरबरांई उठि धाई ॥
नाहिन[4] गयो तिहारैं री चोरी दै कछु मोहि बधाई।
जसुमति विद्यमान[5] दोउ झगरत 'परमानंद' बलि जाई ॥

[२२५] गौरी

नेंकु पठै गिरिधर[6] कों मैया।
रहि भिलसाइ पत्याइ न और[7] इनके हाथ लगी मेरी गैया॥
ग्वालबाल सब सखा सयाने पचि हारे बलदाऊ भैया।
हूंकि-हूंकि इनहीतन चितवति चाटति नाहिन अपनी[8] लैया
सुनि पिया[9] बचन हाथ कोरै रह्यौ
दुहुँ दिसि चितवत कुंवरकन्हैया।
'परमानंद' जसोदा मुसिकानी संग[10] दीने गोकुलके रैया ॥

---

१. हम नहिं गए तिहारें चोरी अब कछु देहु बधाई। जसुमति विद्यमान दोंउ झगरत परमानंद बलि जाई ॥ (वं. ३६/११) २, आयो री बाट अचावन गईया। ३. पलेटि। (क.) ४. हम कब गए तिहारें चोरी अब कछु० (वं. १३०।१) ५. निकट झगरत दोऊ जन 'परमा०। ६. गिरिधर जु कौं (छ.) ७. काहू (छ.) ८. अपने (ग.ज.ङ.छ.) अपनो (इ.) ९. प्रिया (च.) पिय। १०. संग दिये (इ.ग.घ.ज.)

[२२६] गौरी

जसोदा मांखन देहु उधारौ ।
परोस[1] बास हमारौ तेरो चल्यौ जाइ[2] व्यौहारौ ॥
कबहुक लैन मथनियाँ आवति बहुतें मिस बुधि चारौ ।
देखें[3] जियें स्यामसुंदर मुख मोहन नंदकुमारौ[4] ॥
प्रीति[5] जु एक लाल गिरिधर सों बिसरयो भवन विचारयो
'परमानंद' धन्य गोपीजन कान्ह कंठ मनि हारौ ॥

[२२७] गौरी

ग्वालिनी दूरें बेच मह्यौ ।
तेरी टेर सुनत मन मोहन हाथहि[6] कौर रह्यौ ॥
सुनत गोपाल बाहिर उठि आए जसुमति धाइ[7] गह्यौ ।‡
'परमानंददास'[8] कौ ठाकुर अब ही आवन कह्यौ ॥‡

६. खेल

सखीन संग—

[२२८] सारग

राधे इह नीकौ है खेलु ।
अपने माट कौ दह्यौ जमायो मेरी अंजुरिया मेलु ॥

१. पास परोस हमारो २. जात (ग.)
३. देखों जाइ स्याम सन्मुख मुख । ४. दुलारौ (ग.)
५. प्रीती एक स्यामसुन्दर सों (इ.) ६. हाथ कौ (इ. घ.)
७. हाथ (इ. घ.) ८. नंद नंदन अब० (बं. २८)
‡इन दोनों चरणों के स्थान पर ज्यों ज्यों उर अंचर सों ढाँपति ।

इहै बात नीकी जो लागै एक गाँउ कौ बासु ।
जिनि दुराइ[1] मेरे सनमुख ह्वै लोगनि के उपहासु ॥
इह गोबिंद कह्यो राधा प्रति जो माँगों सो देहु ।
जो इह गोरसु मोहि समर्पै अति बहुते करि लेहुँ ॥
जो आज्ञा सो माथे ऊपर, सदा तुम्हारी दासी ।
'परमानंद' ग्वालिनी मोही बँधी प्रेम की पासी ॥

[२२९] सारंग

को खेलै ढोटा रहो नहीं ।
नंदराय के कुँवर अचगरे अब मैं बहुत सही ॥
कबहुँ गहत लट कबहुँ गहत पट, कबहुक तोरत टीक ।
कबहुक हँसि मुसिकाइ धरत भुज,कबहुक मेलत पीक ॥
कहि हौं धाइ जसोदा आगे जे जे कर्म तुम्हारे ।
बरजौ काहे न, पूत आपुनो इह देखो हाल हमारे ॥
जब गोपाल चले घर अपने, धाइ चरन लपटानी ।
'परमानँद' प्रभु बात हमारी तुम जु साँचु करि मानी ॥

[२३०] सारंग

तुम संग खेलत लर गई टूटि ।
रहु ढोटा तुम खरेइ अचगरे मेरो हारु लियो कर लूटि ॥
जो रिसाइ कहति हों तुम सों बचन रहत हो घूँटि ।
अबही नई पहेरि आई ही चुरिया गई सब फूटि ॥

---

१. डराय, (ग, ज,)

इह विनोद नीको करि पायो मानों पसरी है लूटि ।
'परमानँद' प्रभु जौ बीनोंगी तो[1]ऽब करहुगे कूटि ॥

[२३१] सारंग

तुम मेरी मोतिनि लर क्यों तोरी ।
रहे ढोटा, तोसों नंदमहर कहा करन कही है जोरी ।
मैं जान्यों मेरी गेंद चुराई लै कंचुकि बिच होरी ॥
'परमानँद' मुसिकाइ चली तब पूरन चंद चकोरी ॥

[२३२] गौरी

रहे गहि भामिनी की बांह[2] ।
मदनगोपाल चतुर चिंतामनि जानत हो सब[3]मांह ॥
ठाडे बात कहत राधा सों तहां जसोदा आई ।
झूठे मिसु करि रोवन लागे इन मेरी गेंद चुराई ॥
ए कौन टेव तेरे ढोटा की बरजति काहे न माई ।
या गोकुल में स्याम मनोहर उलटी चाल चलाई ॥
सुनि मृदु बचन स्याम-स्यामा के महरि चली मुसकाई ।
'परमानंद' अटपटी हरि की सबै बात मन[4]भाई ॥

सखान-संग— [२३३] सारंग

खेलत में को काकौ गुसईंयां ।
श्रीदामा जीत्यो तुम हारे बरवटहीं कहा करत बडईयां ॥

---

१. तबै । (क. ङ. छ.) २. बांहि । (क. च.) ३. जानत हैं जिय मांहि । (च.) सब मांहि । (क.) ४. बनि आई । (ङ. घ.)

जातिपाँति कुलबड़े न[1] हमतें अरुहम बसत[2] तुम्हारी छहियां
याही तें ऽब देत अधिकायो हम तें बहुत तुम्हारे गईयां॥
रूठ करै तासों को खेलै रहहु सखा सब ठांके ठईयां।
'परमानँद' प्रभु खेल्यो चाहो तो पोतदेहु कर नंद दुहईयां +

[२३४] सारंग

गोपाल माई खेलत हैं चकडोरि।
लरिका सत पचास सँग लीने निपट साँकरी खोरि॥
चढि धरहरा झरोखा चितयो सखी लियो मन चोरि।
उहँ[3]ई भयें बलईया लीनी अपनो अंचर छोरि॥
चारयों नैन मिले जब सनमुख रसिक हँसी मुख मोरि।
'परमानंद[4] दास' रति नागर[5] चितै लई रति जोरि॥

[२३५] सारंग

गोपाल माई खेलत हैं चौगान।
ब्रजकुमार बालक संग लीने वृन्दावन मैदान॥
चंचल बाजि नचावत आवत होड लगावत पान।
सव्य इतर[6] हस्त गोइ चलावत करत[7] बबा की आन॥

---

१. नहिं हम तें। (क.) २. रहत। (इ.)
+ सूरसागर पद सं० ८६३ में भी मिलता है।
३. उहँई रहें। (इ.) ४. स्वामी। (इ.) ५. नाइक। (इ. घ.)
६. हाथ तें गेंद चलावत। बाम हाथ तें।
. हरत नृपति-कुल मान। (ङ. छ.)

करत न संक निसंक महाबल हरत[1] नृपति-कुल-मान ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर गुन[2] आनंद-निधान ॥

[२३६] सारंग

गोपाल फिरावत हैं बंगी ।
भीतर भवन भरे सब बालक नानाबिधि बहुरंगी ॥
सहज सुभाइ डोरि खेंचतही लेत उठाइ करहि कर संगी ।
कबहुक डारिदेत हैं भों में कबहुक मुखहि बजावत जंगी॥
कबहुक कर लै स्रवन सुनावत नानाभांतिनि अधिक सुरंगी।
'परमानँद' स्वामी मनमोहन खेलसरचो अरुचले सब संगी॥

[२३७] अडानो

कान्ह अटा चढि चंग उडावत मैं उततें इत आँगन हेरौरी।
नैंन भए बिबचारी नराइन भाजत लाज किधौं भट मेरौरी॥
मोहितो इहजक लगी रहति है क्योंउँ-क्योंउँ फिरतन फेरौरी।
'परमानँद' प्रभु य है अचंभो ऐंचत डोरी किधौं मन मेरौरी॥

[२३८] सारंग

संग लरिकवन[3] की जोटी ।
खेलत फिरत गोपाल घोख में
धावत सिसु-अंग छोटी ॥

---

१. करत बवा की आन । (ङ. छ.) २. आनंद रूप निधान । (च.)
३. लरिकन. (ग. ङ. च.)

खोरि–खोरि प्रति, भवन–भवन प्रति,
सैनें[1] दै दै बतावैं[2] ।
जाके घर गोरस बहुतेरौ
अंगुरि[3]नि कैं कैं दिखावैं ॥
इह कुमार–लीला हरि केरी[4]
गोपीजन–मन भावैं ।
चोरी करत, हरत दधि मांखन
कछु 'परमानंद' पावैं ।

[२३६] गौरी

इह जिय बात परस्पर भावैं ।
खेलत लाल सखा संग लीने खटकोरी मिस कछुक कहावैं॥
हट करि हरिजू के हरत खिलौना
गेंदनि उरजनि बीच छुपावैं ।
रह्यो न परत नंद-नंदन बिनु
याही मिस करि पर मुसक्यावैं ॥
चोली चीर आप पे फारत
मुदित जसोमति ताहि दिखावैं ।

---

१. सैननि. (इ. घ.) दै दै सैन बतावै । २. बुलावै (इ. घ.)
३. अंगुरिन कै कै चखावै. (इ. घ.) अंखियन माहि दिखावैं ।
४. जू की (इ. घ.) मोहन की ।

'परमानँद' ग्वालिनि मुसिक्याई

चलो ललन ! नंद-नारि बुलावै ॥

[२४०] सारंग

लाल आजु खेलत सुरँग खिलौना ।
काम सब्द उघटत है पपैया बंगी मधुरे मिलौना ॥
प्रेम घुमडि लेत हैं फिरकी झुंझना मानो हुलसौना ।
चट्टा बट्टा चोंकि परत हैं, चकई भोंरा इतनो करौना ॥
झूमर झुकि बाट देखत हथ बंगी मन तो फिरौना ।
'परमानंद' ध्यान भक्तन को सब ब्रजको जु तरौना ॥

[२४१] धनाश्री

मोहन मानु मनायो मेरौ ।
हों बलिहारी कमलनयन की नैंकु चितै मुख फेरौ ॥
माखन खाहु लेहु कर मुरली ग्वालनु बालनु टेरौ ।
न्यारि ये करि करि जोटि आपुनी न्यारि ये गांइ बहो[1]रो॥
कारौ कहि कहि मोहि खिजावत बरजत अधिक अनेरौ ।
इंद्र नीलमनि सो तन सुंदर, कहा कहे[2] बल चेरौ ॥
मेरौ सुत सिरताज सबनि में सब ते कान्ह बड़ेरौ ।
'परमानंद' द्वारे भयो गावै बिसद बिमल जसु तेरौ ॥❀

---

१. गायन घेरौ. (ग. घ.) २. जानै, (इ. घ.)

❀ सूरसागर सं. ८३४ में पाठान्तर के साथ छपा है ।

[२४२] कानरौ

रहु[1] बलि माधौ[2] झगरौ न कीजै।
चुंबनु दै-दै कंठ लगावति
मो पहिं[3] औरु खिलबनौं[4] लीजै ॥
कनिया लियें जसोदा ठाढी
आँगुरिनु[5] कै कै चंद दिखावै।
कमल नयन खेलन कह[6] मांगै
वह अकासु इहां क्यों आवै ॥
जाके उदर विस्व सचराचर,
सो हरि बालक दसा जतावै[7]।
'परमानंद' स्वामी मन मोहनु
जसोमति 'कान्ह-कान्ह' करि[8] गावै ॥

[२४३] धनाश्री

देखिरी रोहिनी मईया ! ऐसे हैं बल[9] भईया।
जमना के तीर मोकों जु जु आ बुलायो ॥
सुबल श्रीदामा साथ हँसि-हँसि मिलवत[10] हाथ।
आप डरप्यो अरु हौं[11]ही डरपायो ॥

---

१. रहो. (इ.ग.घ.ङ.च.) २. माधव. (क.) ३. मो पें. (इ.ग.घ.च.) ४. खिलोनो। ५. अंगुरिनि. (क.) करि-करि. ६. कों ७. जनावै.(क.) ८. कहि. (ग.) ९. बलदाऊ भैया (ङ.) १०. मिलवै (ग.)। सब बूझत बात ११. मोहिं (ग.)। आपु डरपे और मोहू डरपायो

जहाँ-जहाँ बोलैं मोर, चितवैं तिनकी ओर।
भाजो रे भाजो रे! भईया ओ[1] है देखि आयो॥
आपु चढे तरु[2] मोहि छाँडि धरु[3]।
धर-धर छाती किये[4] घरहुँ कों धायो॥
लपकि[5] लियो उठाइ, उरसों रही लगाइ।
मेरो री! मेरो कहि हियो भरि आयो॥
'परमानंद' बोल[6] द्विज वेद मंत्र पढि-पढि।
बछिया की पूछसों हाथ दिवायो॥

---

७. यमुना-तीर-मिलन

[४४४] सारंग

घाट पर ठाढे[7] मदन गोपाल।
कौन जुगति करि भरोंरी! जमुनाजल परे[8] हैं हमारे ख्याल
द्यौस बढ्यो घर सास रिसै है चलि न सकति एक चाल
'परमानंद' स्वामी चित चोरयौ बेन बजाइ रसाल॥

---

१. ओइहे (क.)। वो देखो आयो (नं० ४५/३)
२. तरुवर, (छ.) आप चढिगए तरु। मोहि छाँड्यो बाही घर (नं४५/३)
३. छाँडे घर पर, (ङ.) ४. करै, (ग.) करत दोरचो घर आयो।
५. बोंले, (क.) द्विज बुलाइ रानीजू मंत्र पढाइ।
६. लिएरी उछंगलाइ राखेरी कंठ लगाइ नं० ४५/३)
७. ठाढो (नं १२।३) ८. परचो है (न० १३।३)

[२४५] सारंग

नेंकु गोपाल[1] टेकहु मेरी बहियां ।
औघट घाट चढ्यौ नहिं जाई रपटति हौं कालिंदी महियां ॥
सुंदरस्याम कमलदल लोचन देखि सरूप[2] ग्वालि अरुझानी
उपजी प्रीति काम अंतरगति तब नागर[3] नागरि पहिचानी ॥
हँसि ब्रजनाथ गह्यौ कर पल्लव जैसें[4] गगरी गिरन न पावै ।
'परमानँद' ग्वालिनी[5] सयानी कमलनयन तन परस्यौ भावै ॥

[२४६] सारंग

जमुनां नदिया के तट[6] ।
पान्यो भरति अकेली औघट गहिजु स्याम मेरी लट ॥
सिर धरि गगरी मारग डगरी पहरि लिए[7] पीरे पट ।
देखत देह अधिक छबि लागी[8] कछुक बने[9] कंचुकी-कट ॥
फूल जु एक ग्वालिनिके जिय जनु रन जीते कोऊ भट ।
'परमानंद' गोपाल आलिंगी सफल किए कंचन घट ॥

[२४७] सारंग

ललन ! उठाइ देहु मेरी गगरी ।
बलि-बलिजाउँ छबीले ढोटा[10] ढीव्यो[11] देत अचगरी ॥

---

१. लाल । (क.) २. स्वरूप । (इ. क. घ. ङ. ज.)
३. नागरि नागर पतियानी । (इ.) ४. भरी गगरिया गिरन न (इ.घ.) जैसे गागरि । ५. ग्वालि सयानी (ख.) ६. टट (ख.) ७. लियौ पीरौ (मु.) ८. बाढी (इ. घ.) ९. बने जो कनक घट ।(मु.)
१०. मोंहन । (च.) ११. ढोप्यो (इ.) ठाडे देत ।

जमुना-तीर अकेली ठाढी दूसरौ नाहिन कोऊ।
जाकों[1] ऽब कहों स्यामघन सुंदर संग ऽब नाहिन सोऊ॥
नंद-कुमार कहे नेक ठाढी ह्वै कछुक बात करि[2] लीजै।
'परमानंद' प्रभु संग[3] मिलि चलि बातनि कें रस जीजै॥

[२४८] सारंग

ठाढोई[4] देखौं जमुनां[5]-घाट।
कहारी[6]! भयो घर गो-रस बाढ्यौ अरु गांइनि के ठाट॥
जाति पांति कुल कौन[7] बडे हो चले जाउ किनि बाट।
'परमानंद' प्रभु रूप ठगौरी लगत न पलक कपाट॥

[२४९] सारंग

जमुना-जल घट भरि चली चंद्राबलि नारि।
मारग में खेलत मिले घनस्याम मुरारि॥
नैननि सों नना जुरे मनु रह्यौ लुभाई।
मोहन मूरति जिय बसी पगु धरयौ न जाई॥
तब की प्रीति अधिक[8] भई इह पहिली भेंट।
'परमानंद' ऐसे मिले[9] जैसें गुर[10] चेंट॥

---

१. जासों (इ. ग. घ. ङ. च.) २. कहि (इ. घ.
३, संग में लै चलि बातनि के रंग भीजें। (मु.)
४. ठाढेई (घ.) ठाढे ही ५. श्री जमुना (क)
६. कहा भयो (क) ७. कुल के न (ग. ज.)
८, प्रगट भई यह पहिली (मु.)
९. मिली (घ) १०. गुरु (क.)

[२५०]　　　　　　　　सारंग

नंद-ढिठौना पर हौं वारी।
काहू की कान्ह मरोरत बहियां काहू की फारत सारी॥
जमुना कौ जल भरन जात ही बीच मिले गिरि-धारी।
मटुकी फोरत नौसरि तोरत बहुरि देत है गारी॥
बहुरि स्याम मोहिं बूझन लागे कौन गोप की नारी?
'परमानंद' प्रभु हौं बस कीन्ही नैन-बान भरि मारी॥

[२५१]　　　　　　　　कान्हरौ

तू राधे! नट[1] नवल नागरी।
गज-गति गवन करति मधु व्यासनि[2]
　　　　　　चली जमुना-जल भरन गागरी॥
उर पर हार सिंगार बन्यो है कटि मेखला चरन झांझरी।
अंबु लैन कहँ चली अकेली संग लाडिलौ करत लागरी॥
देखि बदन मोहे गन गंधर्व गयो निसापति गगन भागरी!
'परमानंद' प्रभु सब सुखदाइक लालन जूके कंठ लागरी॥

[२५२]　　　　　　　　गौरी

❀ब्रज की बीथी निपट साँकरी।
इह भली रीति गाँउ गोकुल की
　　　　　　जितही[3] चलिए तितही बांकरी॥

१.नव　　२. वासनि (ग. च. ज)

❀ ख' प्रति में नहीं है । (क) में मध्य में लिखा गया है ।

३. जित चलो सु तितहि (मु.

जहिं जहिं बाट घाट बन उपबन
तहिं तहिं गिरिधर रहत ताकरी ।
तहाँ ब्रज-बधू निकसि न पावत
इत उत डालत रारत[1] कांकरी ॥
छिरकत[2] पीक, पट मुख दिए मुसकत
छाजें[3] बैठि झरोखें झाँकरी ।
'परमानंद' डगमगत सीस घट
कैसे कें जैये बदन ढांक री ॥

[२५३] सारंग

काँकरी कान्ह मोहि मारै ।
टेढी चितबनि मो तन चितवत लोट पोट करि डारै ॥
हौं गुरुजन की लाज सखीरी ! निकसी निपट सवारै ।
बरज्या न मानै तऊ नंद-सुत जो कोऊ कहि पचिहारै ॥
कहा करौं कहां जाऊं पुकारौं को इह न्याउ बिचारै ।
'परमानंद' प्रीतमु की बातैं एती कौन सँम्हारै ॥

---

१. परत (मु.) २. निरखि पीत पट मुख (मु.)
३. झाँक झरोखनि बैठ झाँकरी (मु.)

८, असुर-मर्दन

[२५४] सारंग

मोहन ब्रज कौ रतनु।
सुनि री ! जसोदा या बालक कौ करि री ! जतनु ॥
एक चरित्र आजु मैं देख्यौ पूतना-पतनु।
तृनावर्त्त लै गयौ अकासै ताहू कौ हतनु ॥
जे जे दुष्ट उपद्रो ठानें[1] ताही कौ घतनु।
'परमानंददास' की जीवनि स्याम है सुतनु ॥

[२५५] सारंग

+तेरे लालन सों कहा कहों ?
जे जे करम नयन भरि देखति हों अचामि❀ रहों ॥
तोर्‌यो सकट पूतना मारी तृनावर्त्त बध कीनों।
सात दिवस[2] तेरे[3]ई बालक एक[4] हाथ गिरि लीनों ॥
जब तें दाम[5] उलूखल बांधे तरवर तोरि गिराए[6]।
कालिंदी जल निर्बिसु कीनों गो-सुत मृतकु जिवाए[7]॥
है कोउ इह बडो देवता के ब्रह्मा के सिंभु।
'परमानंददास' कौ ठाकुर तिहूँ लोक कौ खंभु ॥

---

१. ढावें (ग) + रानी जु तेरे लालन सों।
❀अचंभे. २. बरस (ङ. छ.) ३. तेरोई ढोटा. (ङ. छ.)
४. एकहि हाथ (क) ५. हाथ. ६. गिरायौ. ७. जिवायौ।

[२५६] सारंग

❀खेलत चले बजावत तारी ।
खात ताल फल करत कुलाहल देत परस्पर गारी ॥
बहुत दिवस[1] बन राख्यो[2] रासिभ अब कें मारन पायो ।
जै जै राम-कृष्ण नंद-सुत सब ग्वालनु जसु गायो ॥
अब गोधन निर्भय[3] ह्वै चरिहैं तुम्र प्रसाद गोबिंदा ।
इह सब कथा चलैगी आगे बलि-बलि 'परमानंदा' ॥

[२५७] सारंग

तेरौ गोपाल रन[4]-सूरौ ।
जहि[5] जहि फिरत पचारि सांवरौ तहीं परत है पूरौ ॥
वृषभ रूप इक दानव आयो सो छिनु में लै मारयो ।
दोऊ हाथ विषान गाढ धरि धरनी माँझ पछारयो ॥
कहत ग्वाल जसोदा के आगे भलो पूतु तैं जायो ॥
है कोऊ इह बडो देवता लहनें गोकुल आयो ।
चरन कमल-रज बंदत रहिये निसदिन सेवा कीजै ॥
बारंबार दास 'परमानँद' हरि की बलईया लीजै ॥

❀ खेलन चले......ऐसा भी प्रारम्भ है ।

१. दिनन (ग. ज.) २. राख्यो इहि रासभ. (क)

३. निरभै (इ. ग. ङ. ज.) ४. महारन सूरो । (बंध ३७।२)

५. पांच बरस को सांवरो जेइ तेइ परत है पूरो. (च)

[२५८] सारंग

अब डर कौन कौ रे भईया।
गल गरजौ गोकुल में बैठे हमरौ[1] मीत कन्हैया ॥
कहत ग्वाल सब जसोमति आगे है त्रिभुवन कौ रईया।
तोरयो सकट पूतना मारी को कहि सकै गँवैया ॥
नाचहु गावहु करहु कुलाहल चारहु धौरी गँईया।
'परमानंददास' कौ ठाकुर सब प्रकार सुख दईया ॥

[२५९] सारंग

कोलाहल जमुना के तीर।
कालीनाग कहत हैं नाथ्यो संकरषन के बीर ॥
लागी पुकार सकल ब्रजबासी नंद जसोमति-संग।
उछटत परत सीस कच छूटत रुदै बिरह के दुँद ॥
संकट जाइ भयो इक ठौरे हा हा सबद उचार।
'परमानंददास' कौ ठाकुर जीत्यो नंदकुमार ॥

[२६०] कल्यान

अद्भुत गति तेरी बारे कन्हैया।
तुम जु तनक गोवर्द्धन एतौ एकहि हाथ लियो कैसे भैया!
जमुना पैठि गह्यौ पुनि काली भूलि रहे सब लोग दिखैय॥
केसी तृनावर्त्त तैं मारयौ अरु पूतना हती जदुरैया ॥

---
१. अपनौ. (ग. ज.)

बच्छ ग्वाल अघासुर लीनों तुमहिं भये ता ठौर नन्हैया ।
'परमानंद'प्रभु बहुतें ऐसी अपनौ मरमु कहौ नंद दुहैया॥

[२६१] सारंग

हमरें गोकुल आनँद चानु[1] ।
दुहियत गांइ दूध परिपूरन कीनों कछू पसानु ॥
कहै ग्वाल सब आनंद माते आंनि बन्यो है दानु ।
कहा करैगो कंस हमारौ जो मथुरा कौ रानु ॥
केसी आदि सकल रिपु मारे मेट्यो तृन कौ घानु ।
आनंद भयो दास 'परमानंद' गोपी मंगल गानु ॥

[२६२] सारंग

लाल विनोद है[2] एक ठान्यो ।
आपुन बैठि मध्य ग्वालनि में यहै भेद करि बान्यो ॥
जो जिय भायो सो तिहिं दियो सबही के मन मान्यौ ।
संकरषन कों[3] साथ लेहु जू आगें चलैं कहान्यो ॥
चलहु भैया हो जइये तालबन पी[4] जमुना कौ पान्यो ।
कान्ह भैया तैं भले उबारे रासभ कौ बल भान्यो ॥
हँसिके गँवन किया गोकुल कों सब गोधूलिक जान्यो ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर सेत छत्र सिर तान्यो ॥

---

१. चानु । पसाउ. दाउ. राउ. घाउ. गाउ. २. एक है ठान्यो. है इक ।
३. संग लेहु जू. ४. पीजै जमुना पान्यो.

६. गो-चारण

[२६३] सारंग

मैया गाँइ चरावन जैहौं।
तू कहे नंद महर बाबा सौं बडौ भयो न डरैं हौं ॥
श्रीदामा आदि सखा सब अपने अरु दाऊ संग लैहौं।
दह्यो भात कावरि भरि लैहौं भूखें लागें खैहौं ॥
बंसीवट की सीतल छहियां खेलत अति सुख पैहौं।
'परमानंद' तब साथ खेलहु जौ जमुना-जल नैहौं[1] ॥

[२६४] सारंग

गांइ चरावन कौ दिनु आयो।
फूली फिरति जसोदा अँग[2] अँग लालन उबटि न्हवायो ॥
भूषन बसन विविध पहिराए कज्जर तिलकु बनायो।
विप्र बुलाइ वेद-धुनि कीनी मोतिनि चौक पुरायौ ॥
देति[3] असीस सकल-ब्रज सुंदरि हरखित मंगल गायो।
लटकत चल्यौ भाँवतौ बन कौं 'परमानँद' जिय भायो॥

[२६५] सारंग

प्रथम गो-चारन चले कन्हाई।
कुंडल स्रवन कपोल बिराजित सुंदरता चलि आई ॥

---

१. जब जमुना जल न्हैहो। २. आंगन
३. सब जुवतिनि परस्पर मिलिकैं हरखित० (नं० ६२।६)

माथें तिलकु पीताम्बर की छबि उर माला पहिराई ।
गृह-गृह ते दधि छाक लेत हैं संग सखा सुखदाई ॥
गो-धन हांकि आगें सब कीने पाछें मुरलि बजाई ।
'परमानँद' प्रभु मदनमोहन ब्रजबासिनि सुरति कराई ॥

[२६६] सारंग

कवन बन जैबौ भैया ! आजु ।
कहत गोविंद सुनौ रे गोपौ करहु गवन कौ साजु ॥
ऐसौ कौन चतुर नँद-नंदन ! जो जाने रस-रीति ।
तहाँ चलहु जहां हरखि खेलिये अरु उपजै मन-प्रीति ॥
पूरे बेनु विखान महुवरि छीके कंध चढाइ ।
रोटी भात दह्यौ भरि भाजन अरु आगे दै गाँइ ॥
ठौर-ठौर कूक देत हैं प्रहसित आए जमना-तीर ।
'परमानँद प्रभु आनँद रूपी राम-कृष्ण दोउ बीर ॥

[२६७] सारग

चले ब्रज तें गो-चारन गोप ।
प्रात समै सर कमल-खंड ते जनु हंसनि के ओप ॥
स्याम पीत पट राम नील, नट जनु काछे सिसु-पुंज ।
महुवरि बेनु बिखान बाँसुरी मनु साजें अलि-गुंज ॥
तिन मँह नंद-नँदन की सोभा ज्यों उडगन में चंद ।
'परमानंद' जसोदा के घर प्रगटे आनँद-कंद ॥

[२६८] गौरी

काँध लकुट धरि नंद चले बन दोउ बालक दीने आगे।

राम-कृष्ण सों प्रीति निरंतर सुख पायो बिनु मागे ॥
पूरब संचित सुकृत-रासि-फल अपनी आँखिनि देख्यो ।
मो-समान अब कोऊ नांहिन जनम सुफल करि लेख्यो ॥
खेलत, हँसत, पंथ-मँह धावत लरिकाई की बानि ।
'परमानंद' भगत बस माधौ चारि पदारथ-दानि ॥

[२६९] सारंग

गोबिंद[1] चलत देखियत नीके ।
मध्य गोपाल मंडली मोहन काँधनि धरि लिए छीके ॥
बछरा-वृंद घेरि आगें दै जन--जन सृंग बजाए ।
मानहु कमल सरोवर तजि कें मधुप उनींदे आए ॥
वृंदावन-प्रवेस अघ-मर्दन बालक-लीला भावै ।
प्रेम[४] समुद्र लोक त्रै-पावन जन 'परमानँद' गावै❀ ॥

[२७०] सारंग

आनंदी चरावत गईयाँ ।
प्रेम सुहाई बातें कहि-कहि मेरो मन हर्‍यौ कुंवर कन्हैया॥
चेटकु घालि सबै ब्रज राख्यो चलहुरे संकरषन के भईया ।
कछु न सुहाइ तलाबेलि लागी
चित चलि गयो चपल की ठईयाँ ॥

---

१. गोपाल माई चलत (वं० ६।४)

❀ सूरसागर सं. १०५० पर भी अन्तिम पदो में पार्थक्य के साथ है पर 'ख' प्रति में होने से परमानंददास कृत ही हैं ।

मुरली-नाद सुन्यो जब काननि
बिसरि गयो घर हू कौ सईंयां ।
'परमानंददास' रति बाढी
सब तजि जाइ परी है पईंयां ॥

[२७१] मालश्री

गाँइ चराबनि कौ बिसनु ।
राधा मुख लाइ राख्यो नैननि कौ रसनु ॥
कबहुँक घर कबहुँक बन खेलनि कौ जसनु ।
'परमानंद' प्रभुहि भावै तेरैं ए मुख हँसनु ॥

[२७२] सारंग

गोपाल माई कानन चले सकारे ।
छीके काँध बाँधि दधि—ओदन गोधन के रखवारे ॥
प्रातकाल गो-रंभन सुनि करि गोपनि पूरे शृंग ।
बिकसे कमल-पत्र संपुट ते निकसि चले जनु भृंग ॥
बेनु बेति लीला कर सेली मोर-पंख सिर सोहै
नटबर भेखु धरयौ[1] ब्रज-नाइक देखत सुर नर मोहै ॥
खग मृग तरु सबहिन सुख मान्यो गोप-बधु बिलखानी ।
बिछुरत कृष्ण-प्रेम की बेदन 'जन परमानँद' जानी ॥

[२७३] गौरी

मैया कैसी मैं गांइ चराई ।
बूझि देखि बलभद्र ददा सों जो[2] तू मो न पत्याई ॥

१. बन्यो नंदनंदन २. कैसी में टेरि बुलाई (११५।६ १२८।६)

बिडरि चलीं सघन बन महियां हेरी दै ठहराई ।
ग्वालनि के लरिका पछिहारे वे सब मेरी दाई ॥
भलो भलो करि[1] मोहि सराहत फूले अंग न माई ।
'परमानँद' प्रभु बीर[2]-बचन सुनि जसुमति देत बधाई ॥

[२७४] सारंग

ब्रज ते बनकों चलत कन्हैया ।
सखा मंडली-मध्य बिराजित प्रथम चरावन गैया ॥
नंद सुनंद गोप गोपीजन जसुमति रोहिनी मईया ।
बड़े ग्वाल कों सुत कों सोंपति प्रमुदित लेति बलैया ॥
दधि-ओदन भोजन भरि भाजन एकनि कांधे लैया ।
इक नाचत इक करत कुतूहल हरि हलधर दोउ भैया ॥
बैठे जाइ सघन बन-अंतर दुहि-दुहि लावत घईयां ।
आपुन खात खवावत औरनि जन'परमानँद'लेत बलईयां

[२७५] आसावरी

सोभित[3] लाल लकुट कर रातीं ।
सूथन कटि चोलना अरुन पट[4] पीतांबर की गाती ॥
ऐसे[5] ही गोप-तनय सब बनि-बनि आए स्याम सँगाती ।
प्रथम गोपाल चले बछरु चरावनि
आसिस पढत द्विज जाती ॥

---

१. कहि महरि हँसति है फूली अँग न० (११५।६)

२. धीर (११५।६) ३. सोहत (ग. ज.) ४. रंग अरु (क.)

५ ऐसे गोप सबै बन आए जो हैं स्याम संघाती ।

निकट न[1] तजति रोहिनी जसुमति आनंद उमगी छाती ।
'परमानंद' नंद आनंदित दान देत बहु भाँती ॥

[२७६] सारंग

आजु अति आनंदे ब्रजराइ ।
धन्य द्यौस बन चलत प्रथम ही कान्ह चरावन गांइ ॥
नव पीतांबर लकुट मुरलिका अरु सिर खोरि बनाए ।
प्रीति सहित अबलोकि गहत हैं मात पिता के पाँइ ॥
गोरोचन अरु दूब दधि माथें रोरी अच्छत लाइ ।
निरखति मुख, पावति सब सुख गोपीजन लेति बलाइ ॥
ग्वाल विमल भए मिलत परस्पर घर-घर तें सब आई ।
हेरी देत बजावत महुबरि उर आनँद न समाई ॥
ब्रज जन सब मिलि धेनुहि सोंपत नैन निरखि सचुपाइ ।
'परमानँद' प्रभु बानिक ऊपर बारि-बारि बलि जाइ ॥

[२७७] सूहो

गोधन चारत मदनगोपाल ।
जूथ-जूथ मिलि ग्वाल मंडली कमलनैन कौ ख्याल ॥
धौरी, धूमरि, भूहारि, चमरी, नंद-नँदन की गाँइ ।
बाजत बेनु रहत सब ठाढी सुनत स्रवन कों भांइ ॥
'परमानँद' स्वामी नट-नागर लीला-मानुस रूप ।
सिव, विरंचि जाकौ जसु गावत अब उह भेष अनूप ॥

---

१. निहारति रोहिनी जसुदा आनंद उमगी

[२७८] आसावरी

चले हरि बच्छ-चरावन माई।
रेंता पेंता तोक, श्रीदामा लीने संग लगाई ॥
कहत गोपाल सुनहु रे गोपो वृंदावन अनुसरिए।
मधु मेवा पकवान मिठाई भूखें[1] लागे खइए ॥
खेलत, हँसत, करत कौतूहल आए जमुना-तीर।
'परमानंददास' कौ ठाकुर राम-कृष्ण दोउ वीर ॥

[२७९] सारंग

वे देखो बन धेनु चरावत दोऊ जादौवीर।
कान्ह कान्ह कहि टेरत डोलत फिरत अहीर ॥
एक जु शृंगी पत्र बजावत एक धावत एक धीर।
एक जु नित करत कोलाहल कालिंदी के तीर ॥
यह मंडली कहा बनि आवै पीवत पिवावत छीर।
'परमानँद' सुर कौतुक भूले नैननि आनँद नीर ॥

[२८०] सारंग

कहि-कहि बोलत धौरी कारी।
देखहु भाग्य इनि गांइन कौ प्रीति करी बनवारी ॥

१. भूख लागै तब खइए।

मोटी भई चलत वृंदावन नंद-सुवन की पाली।
काहे न दूध देहि ब्रज पोखी हस्त-कमल की लाली ॥
बेनु स्रवन सुनि तृन दंतनु धरि गोवर्धन ते चाली।
पवन-बेग आईं 'परमानंद' ते क्यों कहिए टाली❀ ॥

[२८१] सारंग

मोहन चढि कदंब पर टेरत ।
बिडरी गांइ ग्वाल सब ठाढे तिनके न्यइ[1] निवेरत ॥
धौरी धूमरि गाँग-बुलाईं काजर पियरी हेरत।
'परमानंद' दौरि सब आईं पीतांबर के फेरत ॥

[१८२] सारंग

कन्हैया हेरी दै गावै ।
नाना बरन नाम गांइनि के बेनु बजाइ बुलावै ॥
सींग आवरी आँख काजरी मोटे जिनके पाठे ।
तिनके डरनि सिंघ थर काँपै ब्रज में बिजाहर बाठे ॥
जाँघनि पर रोटी धरै दधि सों ओदन सान्यौ।
'परमानँद' स्वामी के संगी दूध पतौअनि आन्यौ।

❀ सूरसागर पद सं० १२३१ पर भी 'कहि कहि टेरत' से प्रारंभ है।
१, न्याउ (क)

१०. भोजन-समय

छाक—

[२८३] सारंग

छाक लै जाहु री मेरी माई जहाँ री मिलै मेरौ कुँवर कन्हाई
इह[1]मोदक पकवान मिठाई खीर सँजावलि अधिक बनाई
आनिहु खिचरी बहुत सँधाने पापर सेकि धरयो गुन[2]लाई।
पूप सस्कुली पूरी दधि ओदन बहुत[3]जु रुचि करि खाई॥
दूरहि तें देखे बलदाऊ देखि कन्हैया छाक है आई।
'परमानँद'मन की सब जानी ऐसी मैया की हौं लेउँ बलाई॥

[२८४] सारंग

हरि कों टेरति फिरति ग्वाली।
आइ लेहु तुम छाक आपुनी बालक बल बनमाली॥
आजु कलेऊ प्रातहि कीनो बछरा लै बन आए।
मेवा मोदक मात जसोदा मेरे हाथ पठाए॥
जब इहि बानी सुनी[4] मनोहर चलि आए ता पास।
कीनी भली भूख है लागी बलि 'परमानँददास'❀॥

[२८५] सारंग

सिला पखारहु भोजन कीजै।
नीके बिंजन बने कौन के चाखि चाखि सबही कों दीजै॥

---

१. घृत (छ.) २. गुर (ग) ३. लालन बहुत जु रुचि (बं १३०।२)
४. सुनि मनमोहन चलि (इ. ग. घ. ज.)
❀ सूरसागर प० सं० १०७९ पर भी परिवर्तन के साथ.

अहो अहो सुबल अहो श्रीदामा अर्जुन भोज बिसाल।
अपने अपने ओदन लावहु आज्ञा दई है गोपाल ॥
फर अँगुरिनि अँगुरिनि बिच राखे
बाँटि बाँटि सबहिनि कों देत ।
'परमानँद' स्वामी-सँग[1] क्रीडत प्रेम-पुंज कौ बाँध्यो सेत॥

[२८६] सारंग

हँसत परस्पर करत कलोल ।
बिंजन सबै[2] सराहे माधौ[3] मीठे कमलनयन के बोल ॥
तोरि पलास-पत्र बहुतेरे पनवारौ जोरयो बिस्तार ।
चहुँ दिसि बैठी ग्वाल मंडली जेंवन लागे नंदकुमार ॥
कौतुक देखहिं सबै[4] देवता जज्ञपुरुस हैं नीके रंग ।
सेस प्रसाद अबहि[5] हम पायो 'परमानंददास' हौ संग॥

[२८७] सारंग

बाँटि बाँटि बन[6] चरन्ह कों देत ।
ऐसे ग्वाल हठीले[7] भावतु हैं सेस रहत सो आपुन लेत॥
आछौ दूध गाँइ धौरी कौ अहोटि जमायौ अपने हाथ ।
हँडिया मूँदि जसोदा माता तुम्हकों दै पठई ब्रजनाथ ॥

१. रस रीझे, २. सकल (ग. ज.) ३. मोहन (च. छ.)
४. सकल (ग. ज.) ५. रह्यो सो पायो (बं. १०१९।५)
६. सबहिन कों (ग.) ७. हरिहिं भावत (ग.)

आनँद मगन फिरत अपने रँग बृंदाबन कालिंदी तीर।
'परमानंददास' झूठौ लै बाँह पसारि दियो बलवीर ॥

[२८८] गौरी

आजु दधि मीठौ मदनगोपाल !
भावै मोहि तुम्हारौ झूठौ सुंदर[1] नैंन बिसाल ॥
बहुत दिवस हम रहे कुमुद-वन कृष्ण तुम्हारे साथ।
ऐसौ स्वाद हम कबहुँ न देख्यो सुनु गोकुल के नाथ ॥
आने पत्र लगाए[2] दौनाँ दीए सबहिनि बाँटि।
जिनि नहिं पायो सुनु रे भैया! मेरी हथेली चाटि ॥
आपुनि हँसत हँसावत औरन्ह मानोंऽब लीला[3]-रूप।
'परमानँद' प्रभु[4] इह जानति हों तुम त्रिभुवन के भूप ॥

[२८६] आसावरी

भावति है बन-बन की डोलनि।
मदनगोपाल मनोहर मूरति है है धौरी धेनु की बोलनि॥
कहाँ बैभव बैकुंठ-लोक कौ भुवन चतुरदस की ठकुराई।
सिव बिरंचि रमा[5] पदबंदित बेद उपनिसद कीरति गाई॥
कर-तल पात भात ता ऊपर बीच-बीच बिंजन धरि राखे।
बालक-केलि सुँदर ब्रजनाइक ग्वालनि दै-दै आपुनि चाखे

---

१. चंचल. २. बनाए (च.) अपने हाथ लगाए दौना (बं २६।१)
३. मानुष (ग. ज.) ४. नीकें जानति (च) ५. नारद.

जज्ञपुरुस लीला अवतारी आदि मध्य अवसान एक रस।
'परमानँद' स्वामी 'करुनामय गोकुल-मंडन भगत-प्रेमबस॥

[२६०] विभास

खेलन बनहि चले जदुराई।
कर-तल बेनु लकुटिया काँधे कटि मेखला बनाई॥
द्वार-द्वार प्रति सखा बुलाए बछरा ढीलहु भाई!
भोर भएँ तुम अब कहा सोबहु जागहु नंद-दुहाई॥
अपनी-अपनी छाक लेहु तुम बहुत भाँति घृत-सानी।
'परमानँद' स्वामी की लीला इहि बिधि किनहु न जानी॥

[२६१] सारंग

सुबल पठाइ दियो सुधि लैन अजहुँ छाक किनि आई।
स्रमित भई बिरमी नेकु छहियाँ ग्वारि कदम-तर पाई॥
क्यों री! कब के मधु चाहत हैं जसुमति-कुँवर कन्हाई।
जीभ दाबि द्रिग भरि लीने हैं उनिहीं पाँइनि धाई॥
सखा-बृंद अंचलु फेरत हैं आगे गई बधाई।
'परमानँद' बलि-बलि पूछनि पर कहि कहा व्यंजन लाई॥

[२६२] सारंग

दान-घाटी छाक आई गोकुल तें
कावरि भरि रावरे की राखी सब घेरि।

१. प्रभु त्रिभुवननायक (बं ११५।९) दास की जीवनि (११६।१)

जानि तौ तबै दैहौं नंद जू की आनि खैहौं
भोजन की रही कछू चाखौ एक बेरि ॥
कनक[1]-बेला कर में लिएँ राजत गिरिराजधरन
बाँटत मेवा हँसि-हँसि हेरत चहुँ फेरि।
'परमानँद' रूप ऊपर बलि-बलि परमानँद है
परमानँद टोक करत सुबल टेरि ॥

[२६३] सारंग

भोजन कीनौ री गिरवर-धर !
कहा[2] कहौं मंडल की सोभा मधुवन ताल कदम-तर ॥
पहिलें लिए मनोहर विंजन जन जे किए ब्रज घर-घर।
पाछें डला दियो श्रीदामा मोहन-लाल सुघर वर ॥
हँसत सयानौ सुबल सैन दै जब लीनौं दौना कर ।
'परमानँद' प्रभु मुख अवलोकत सुरभी भीर परी पर ॥

[२६४] सारंग

स्यामलाल आओ हो आई छाक सलौनी।
डला लाल के घर तें आयो मारग में द्वै दौनी ॥

---

१. अति प्रवीन जानि राय कनक-बेला कर में लिए बाँटत मेवा मन प्रसन्न
सकल पाक 'परमानंद' आरोगत परमानंद
टोके करत सुबल टेरि-टेरि । (अ. २६२)

२. का बरनौं मंडल०

सियरे भए स्वाद नहीं पैयतु रस के गएँ रसाइनि नहीं हौनी
'परमानँद' छककहारी बाँकी टेरति टेर सलौनी ॥

[२६५] धनाश्री

गिरि पर चढि गिरिवर-धर टेरें ।
अहो भैया सुबल अहो श्रीदामा !
लावहु गाँइ खिरक के नेरें ॥
खाएँ छाक अब बार भई है कछु करि घैंया पिबहि सबेरें।
'परमानँद' प्रभु बैठि सिलनि पर
भोजन करत चहूँ दिसि फेरें* ॥

[२६६] धनाश्री

अकेली वन-वन डोलि रही ।
गाँइ चरावत कहाँ रहे हरि काहूनें न कही ॥
बडे सवारे निकसे घर तें पठयो माइ दही ।
भूख लगी ह्वै है लालन कों दुपहर जाम सही ॥
इतनौ वचन सुनत मनमोहन नागरि-बिथा लही ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर गोकुल रति निबही ॥

[२६७] सारंग

तुमकों टेरि-टेरि हौं हारो ।
कहाँ जु रहे अबलौं मनमोहन लेहु न छाक तुम्हारो ॥

---

* सूरसागर प० सं० १०८१ पर भी साधारण अन्तर से ।

भूलि परी आवति मारग में क्योंहूँ न पैंडौ पायो ।
बूझति-बूझति इहाँ लौं आई तब तुम बेनु बजायो ।।
देखौ मेरे अँग कौ पसीना उर कौ अंचलु भीनौ ।
'परमानँद' प्रभु प्रीति जानिकै धाइ आलिंगन कीनौ।।

[२६८]   सारंग

छकहारी री चार-पाँचक आवति मधि ब्रजराजलला की।
बहु प्रकार बिंजन परिपूरन पठवनि बडे डला की ।।
ठटकि ठटकि टेरति गोपालहि चहुँ धाँ दृष्टि करै ।।
बेनु मधुर सुनि चली री चपल त्रिय परासोली तें परै ।
'परमानँद' प्रभु प्रेम मुदित मन टेरि लई लाँबी करि बाँहि
हँसि हरि कसि-कसि फैंट कटिन सों
बाँटत छाक बनढाँक माँहि ।।

[२६६]   सारंग

कुमुदबन भली पहुँची आइ ।
सुफल भई इहि छाक तिहारी लाल कदम-तर पाइ ।।
ह्याँ तें चले जो मानसरोवर सखा संग सब लाइ ।
बैठे ताकि ठौर गिरि ऊपर चरत चहूँ दिसि गाँइ ।।
खेलत सखा हँसत परस्पर बातें करत बनाइ ।
'परमानँद'बलि-बलि बूझनि की कहा-कहा बिंजन लाइ।।

[३००] सारंग

रंग रँगीली डलिया पठईं छाक इक ठौर तें।
विविध भाँति साजि चंद्रावलि पठई अपनी ओर तें ॥
कनक-थार बेला परिपूरन झलकत केऊ ठौर तें।
दधि सिखरन टपकत चहुँ दिसि तें
छकहारिनि की दौर तें ॥
ढाँपे पीत बसन जतननि सों सौरभ पवन झकझोर तें।
'परमानंद' पत्र औ बीरा छोरि लिए पिय-छोर तें ॥

[३०१] सारंग

मोहन जेंवत छाक सलौनी।
सखनि सहित हुलसे दोऊ भइया झपटत कर लै दोहनी॥
आछे बिंजन बने कौन के चाहत हरि की कोहनी।
'परमानँद'प्रभु कहत सखनि सों पहिलें करि लैं बोहनी॥

[३०२] सारंग

बिहारीलाल आओ आई है छाक।
गैयाँ बिडरि गई हैं मोहन! बगदावौ दै हाँक ॥
अरजुन भोज सुबल श्रीदामा मधुमंगल एक ताक।
अपनी-अपनी पातर लै-लै देवें फैल फराक ॥
षटरस खीर खाँड घृत भोजन बहु पकवान पिराक।
'परमानँद' प्रभु जेंवत रुचिकर प्रेम प्रीति के पाक* ॥

---

* सूरसागर प० सं० १०८२ पर भी साधारण शब्द-तुक-भेद से

[३०३] सारंग

डला भारी कैसेकै उठाऊँ छाक घर-घर की सब पठवन आवै
गिनि देखौ गाँठि न हौं जानत कौन-कौन मेवा
बसन सुरंग हा-हा री पाँइनि परिकें पठावै ॥
आप ब्रजनाथ चित राखै मेरे चित पर
बिंजन ओदन थार बेलनि समावै ।
'परमानंद' प्रभु स्याम परस्पर कहि
बात तिहि काल कावर भरि-भरि लावै ॥

[३०४] सारंग

कावरि द्वै भरिकै छाक पठई नंदरानी
आप मोहि मिले मारग में मधुबन के कूल ।
सुबल तोक तरुन बैस आवत कछु भोजन
लिएँ चंचल गति चपल दोऊ दरसन फूल ॥
कनक-थार जगमगात बेलनि की भाँति
कांति भरे हैं नंदरानी आप दोऊ समतूल ।
पचरंग पीरे पाट की डोरी चौसर चहुँओर खचित
पवन गवन विकसि जात रेसम के भूल ॥
छोटी-छोटी द्वै गाँठि तामें पठवत सब
ब्रज-जन की आसपास लटकि रहे फौंदा मखतूल ।
सकल पाक 'परमानँद' अरोगत परमानँद
परमानँद जानत सब बातनि कौ मूल ॥

[३०५] सारंग

छाक खात गोवर्द्धन ऊपर ।
वह बापै वो वा ऊपर झपटत गिरनि न देत भूपर ॥
आछे मीठे कहि-कहि नाचत लै-लै कर तें भाजत ।
सुबल सुबाहु तोक श्रीदामा ग्वाल-मंडली राजत ॥
विविध केलि करत मन-भाई 'परमानंद'हि दीनी ।
रहसि मन मीनी ॥

[३०६] मल्हार

कदम-तर भली भाँति भयो भोजन ।
हलधर कहत करौ अब अचबन गैयाँ भूली जोजन ॥
जो भावै सो और कछु लैहौ करत सखा सब नाहीं ।
चलि गाँइनि देखौ 'परमानँद' घटा चहूँ दिसि छाहीं ॥

[३०७] मल्हार

स्याम ! सुनि हरित भूमि सुखकारी ।
बिंजन बाँटि सबनिकौं दीजै बिनती लाल ! हमारी ॥
बरसि उघर घन नीकौ लागत पवन चलत सुखकारी ।
भोजन कौं बैठे 'परमानँद' नवल लाल गिरिधारी ॥

[३०८] मल्हार

चहुँदिसि हरित भूमि बन माँहि ।
जोरि मंडली जेंवन लागे बैठि कदम की छाँहि ॥

घुमडी घटा छटा दामिनि की बरनत बरनी न जाँहि ।
यह सुख स्याम ! तिहारे सँग बिनु और अनत कहुँ नाँहि
धनि-धनि ग्वाल-बाल जिनके हरि कौरहि लै-लै खाँहि।
'परमानंद'ब्रह्म सिव विस्मित सिर धुनि-धुनि पछिताँहि।।

[३०६] सारंग

दुहि-दुहि ल्यावति धौरी गैया ।
कमल-नयन कों अति भावतु है मथि-मथि प्यावति घैया।।
हँसि-हँसि ग्वाल कहत सब बातें सुनु गोकुल के रैया !
ऐसौ स्वाद कबहुँ[1] न चखायो अपनी सौंह कन्हैया !
मोहन! भूख अधिक जो लागी छाक बाँटि लेहु भैया !
'परमानंददास' कौं दीजै फुनि-फुनि लेत बलैया ।।

[३१०] सारंग

भोजन—

बलि गई स्याम मनोहर गात ।
तुम्हरौ बदन-सुधाकर सीतल अचवत द्रिग न अघात।।
नैन[2] ओट जिनि होहु साँवरे कहति जसोदा मात ।
छिनु एक खेलनि जात घोष में पल जुग कलप बिहात।।

---

१. हम कबहुँ न चाख्यो (ग. घ. ङ. च. छ. ज)
२. पलक ओट जिन कबहूँ करिहों कुँवर लाडिले तात
पलक ओट जिनि जाउ पियारे (बं. १२६।१)

भोजन आइ करहु दोउ भईया कुँवर लाडिले तात ।
'परमानंद' कहति नँद-रानी प्रेम लपेटी बात ॥

[३११] सारंग

आजु[1] सवारे के भूखे हो
मोहन! खाउ कछू मोहि लागौ बलैया ।
मेरौ[2] कह्यौ नाहिंन करहुगे तौ[3] हौं अपने बलभद्र की मैया॥
दौरि[4] कें कंठ लगे मनमोहन मेरी सौं मेरी सौं मेरौ कन्हैया ।
'परमानंद' कहति नँदरानी
अपने आँगन खेलहु दोउ भैया ॥

[३१२] सारंग

नेंकु गोपालहिं[6] दीजहु टेरि ।
आजु सवारे कियो न कलेऊ दुचित[7] भई बडी बेरि ॥

१. बडी वार के भूखे० (बं. ३४।७)
बहोत वार के.........जैवौं तौ लैवो बलैया (बं. ३७।१)
२. मेरौ कह्यौ तुम जो नहिं मानौ तौ अपने (बं. ३७।१)
" " लाल नहिं मानत हौं अपने (बं. ३२।१९)
३. तौ अपने बलदाउ की मैया (बं. ३७।१)
४. दौरि आइ हरि कंठ लपटाने (बं. ३७।१)
५. गोद बैठि हरि जेंवन लागे 'परमानँद' बलि जैया (बं ३७।१)
'परमानंद' स्वामी की जीवनि अपने.........(बं.११६।१)
६. गुपालै ७. सुरति (ग.)

ढूँढति फिरति जसोदा माता कान्ह[1] कहाँ धौं डोलत ।
यह कहियहु घर आउ साँवरे बाबा नंद तोहि बोलत ॥
इतनी बात सुनत ही आए प्रीति जु मन मँहि जानी ।
'परमानँद' स्वामी की जननी देखि बदन मुसिकानी ॥

[३१३] सारंग

❀गोपालहिं प्रेम उमगि बोलति नँदरानी ।
अहो श्रीदामा ! लै आवहु किंनि टेरि-टेरि मधु[2] बानी॥
भोजन बार अवार आनि जिय सुरति भई आतुर अकुलानी
ढूँढति घर[3] घर आँगन द्वारे लौं तन की दसा हिरानी ।
जसुमति प्रीति जानि उठि दौरे सोभित मुख कच रज लपटानी
'परमानंद' नंद-नंदन कों अँखियाँ निरखि[4] सिरानी ॥

[३१४] सारंग

×जसोदा पैंडे पैंडे डोलै ।
इत गृह कारज[5] उत सुत कौ डरु दुहूँ भाँति मन तोलै॥
आवहु कुँवर[6] ! तुम करहु कलेऊ जननि रोहिनी बोलै ।
'परमानँद' स्वामी[7] फिरि चितयो आनँद हृदय कलोलै ॥

---

१. कहाँ-कहाँ (क. ग. च. ङ.)
❀ प्रेम उमगि बोलति (क. ग.), प्रेम मगन बोलति
प्रेम भरी बोलति......से भी प्रारंभ हैं। २. मृदु (इ. ग.)
३. द्वार-द्वार आँगन लौं (बं. ११६।१) ४. देखि (ग.)
× रानी जू पैंडे० से भी प्रारंभ है। ५. काज उतै
६. अहो कुँवर ७. प्रभु फिरि तन चितयो (क. ग. च.)

[३१५] सारंग

❀ देखि धौं री ! कान्ह कहाँ हैं खेलत ।
कै ग्वालनि सँग गए अगाऊ[1] किधौं खरिक बछरुआ मेलत ॥
कहति जसोदा अपनी[2] सखी सों परोसि धरी है थारी ।
भोजन आनि[3] करै बल-केसौ बालक छुधित[4] मुरारी ॥
ऐसी प्रीति पिता-माता की नैन[5] ओट नहिं कीजै ।
बारंबार 'दास परमानँद' हरि की बलैया लीजै ॥

[३१६] सारंग

बोलति स्याम जसोदा मैया ।
अति आनंद प्रेम-रस उमगी हँसि-हँसि लेति बलैया ॥
उर अंचर लै स्रम-जल पोंछति फुनि-फुनि अपने हाथ ।
भोजन करहु लडैते मोहन[6] ! सब ग्वालनि के साथ ॥
सुत-मुख चंद्र विलोकि सजल ह्वै (ही) इनहीं मंत्र समाउ
'परमानँद' प्रभु परम मनोहर अति विचित्र ब्रजराउ ॥

[३१७] धनाश्री

भोजन कों बोलति महतारी ।
बल-समेत आवहु मेरे लालन ! बैठे नंद परोसें थारी ॥

❀ सखी री ! गोपाल कहाँ० (ग.) से भी प्रारंभ है ।

१. अगम-ने खिरक बछरुआ (ग.) २. सखियन आगें परसि धरी
३. आइ करौ दोउ भैया बालक (इ. घ.) ४. सहित (इ. घ.)
५. पलक (इ. घ.) ६. मेरे (ग.

खीर सिरात स्वाद नहिं आवै बेगि गसा तुम लेहु मुरारी
हितव्रत[1] चित नीकें करि जेंबहु पाछैं कीजो केलि बिहारी
अहो[2]-अहो सुबल अहो श्रीदामा ! बहुत करहु मनुहारी।
'परमानंद' जसोदारानी मुख बिंजन दै जाऊँ बलिहारी॥

[३१८] सारंग

परोसति पाहुनी त्यों नारी।
जेंवत राम-कृष्ण की[3] जोरी नंदबबा की थारी॥
मोही मोहन कौं मुख चितवति[4] बिकल भई अति भारी।
भूतल[5] भात कुरै भई ठाढी हँसति चतुर[6] ब्रजनारी॥
मानहुँ[7] काम बिरह तन-व्यापौ नवजोबन सकुँवारी।
'परमानंद' जसोमति[8] ग्वालिनि सैनानि बाहिर टारी !

[३१९] सारंग

हरिहिं ल्याउ री ! भोजन करन।
बडी बार खेलत भई मोहन गिरि गोवर्द्धन-धरन॥
बैठे नंद बाट चाहत हैं ताती खीर सिराई।
बालक सब संगहि लै आवहु कहति जसोदा माई॥

१- हित चित दै जेंवौ तुम नीकें (बं. ११६।१)
२. सुबल सुबाहु श्रीदामा संग लै बैठे कुँवर जोऊँ बलिहारी (बं. ११३।६,
३. दोउ भैया (बं. २६।५) ४. निरखति (इ. घ.) ५. भू पै भात
६. सकल ७. कै याहि आँचि हिए की लागी (बं. ११६।१)
८. सयानी (बं. २७)

रधनु कियो दूध अधिकाई सुनहु कान्ह! इहि बात।
'परमानँद' प्रभु बल-समेत तुम घरहिं आइए तात ॥

[३२०] धनाश्री

जेंवत नंद गोपाल खिझावत।
पहरि पन्हैयाँ बाबा जू[1] की निपट[2] निकट डरपावत ॥
व्रजरानी बरजति मोहन[3] कों हरुए-हरुए आवत।
'परमानँद' स्वामी सुख-दाता पूत बबा कों भावत ॥

[३२१] गौरी

हरि भोजन करत बिनोद सों।
करि-करि कौर मुखारबिंद में देति जसोदा मोद सों ॥
मधु मेवा पकवान मिठाई दूध दही घृत ओद सों।
'परमानँद' गिरिधर[4] रुचि उपजी भोग लग्यो चहुँ कोद सों

[३२२] धनाश्री

भोजन करत हैं गोपाल।
षटरस धरे बनाइ जसोदा साजे कंचन-थार ॥
करत बयारि निहारति हरि-मुख चंचल नैन बिसाल।
जो भावै सो माँगि[5] लेहु हो! मधुरे मधुर रसाल ॥

---

१. नंद की (क. ङ.) २. निकट आइ डरपावत (बं. ११६।१)
३. गोपालै हौं हरें ढिग आवत (बं ११६।१)
४. प्रभु भोजन कीन्हौ भोग लग्यो संखोद सों
,, जेंमत रुचि सों ,, ,, (बं. १३०।२)
५. लेहु सेरे मोहन! माधुरी

सो[1] सुख सनकादिक कों दुर्लभ दुरि देखतिं ब्रजबाल।
'परमानँद' प्रभु रसिक लाडिलौ चिरजियौ मदनगोपाल॥

[३२३] सारंग

तेरे पैयाँ लागूँ गिरधर ! भोजन कीजै।
उलटत-पलटत झगुलिया भींजै
खीझत खिझाने सुंदर तन छीजै॥
फेनी बाबर खुरमा खाजा गूझा मिस्री लडुआ लीजै।
बाँटि देत सब ग्वाल-बाल कों 'परमानँद' जननी-कर लीजै

[३२४] आसावरी

जेंबत राम-कृष्ण दोऊ भैया जननी जसोदा जिंवावै री।
खाटे खारे मीठे बिंजन स्वाद अधिक उपजावैं री॥
करि मनुहारि सखी सहचरी सब मधुर बचन मुख भाखै री।
'परमानंद' मात हित जानी अधिक-अधिक रस चाखै री॥

[३२५] जैतश्री

इहि तौ भाग्य पुरुष मेरी माई !
मोहन कों गोदी में लीएँ जेंवत हैं नँदराई॥
चुचकारत चूँबत अंबुज मुख आनँद उर न समाई।
लपटे कर लपटात थोंद पर दूध लार लपटाई॥

---

१. जो मुख (ग.)

चिबुक केस जब गहत मनोहर तब मैया मुसिक्याई ।
माँगत सिखरन दै री मैया ! बेला भरिकैं लाई ॥
अंग-अंग प्रति अमित माधुरी सोभा सहज निकाई ।
'परमानँद' नारद मुनि तरसत घर बैठे निधि पाई ॥

[३२६] बिलावल

जेंओ मेरे कुँवर कन्हाई !
सखा-मंडली समेत जेंइये बलि जाउँ कहति जसोदा माई॥
खीर खाँड घृत माखन मिस्री जो चाहौ सो लेहौ भाई ।
हँसि-हँसि मागि लेत मनमोहन सखा-मंडली सब पधराई॥
चिरजीयौ मेरौ छगनुवा सब गोपीजन लागति पाँई ।
'परमानंददास'कौ ठाकुर सब ब्रज-जन के अति सुखदाई ॥

[३२७] आसावरी

लाल कों मीठी खीर जु भावै ।
बेला भरि-भरि लावति जसोदा बूरौ अधिक मिलावै ॥
कनिया लियें जसोदा जू ठाढी रुचिकर कौर बनावै ।
ग्वाल-बाल बनचर के आगें भूठें ही हाथ दिखावै ॥
ब्रजरानी जु चहूँधा चितवति तन-मन मोद बढावै ।
'परमानंदास' कौ ठाकुर हँसि-हँसि कंठ लगावै ॥

[३२८] सारंग

भोजन भली भाँति हरि कीनौ ।
षटरस बिंजन मठा सलौनौ माँगि-माँगि हरि लीनौ ॥

हँसत लसत परोसति नँदरानी बाल केलि-रस-भीनौ ।
'परमानँद' ऊबरयो सो हँसिकै टेरि सुबल कौं दीनौ ॥

[३२६] देवगंधार

माखन मोहि खवाइ री मैया !
बडी बार भई है भूखे हम हलधर दोऊ भैया ॥
बडी कृपन देखी तू जननी ! देति नहीं अध घैया ।
'परमानंददास' की जीवनि ब्रज-जन केलि-करैया ॥

[३३०] धनाश्री

रानीजू ! एक बचन मोहि दीजै ।
पठवौ सदन हमारे सुत कौं कह्यौ मानि मेरौ लीजै ॥
जब कछु नीकी सौंज बनावति तब घर जिय अकुलाइ ।
अटकी रहति तिहारे सुत पर इन बिनु लियौ न जाइ॥
पठवौ मेरे संग कान्ह कौं बेगि ही फिरि लै आऊँ ।
'परमानँद' हँसि सौंपै महरि जब लै गई अपने ठाऊँ॥

[३३१] सारंग

जसोदा ! एक बोल हौं[1] पाउँ ।
राम-कृष्ण दोऊ तुम्हरे सुत सखनि समेत जिवाउँ ॥
जो तुम नंद महर[2] तै सकुचौ तौ कत तुमहिं सुनाउँ ।
जो तुम आज्ञा देहु कृपा करि भोजन जाइ[3] बनाउँ ॥

---

१. जो २. राइ सों सकुचौ तौ हौं उन्हें मनाऊँ ३. ठाट

तब[1] उनके घर गए स्यामघन अपनौ भवन बताउँ[2]।
'परमानंद' प्रेम-भरि उमगी घर बैठें पहुँचाउँ[3] ॥

[३३२] सारंग

कुंज में बैठे जुगल-किसोर।
अरस-परस दोउ खात खवावत रुचि सों दै-दै कौर ॥
ललितादिक सब सखी परोसतिं लोचन कियें चकोर।
मधु मेवा पकवान मिठाई लावति हैं चहुँओर ॥
हास बिलास बिविध रस पीवत मधुर बचन चितचोर।
तन मन धन वारति 'परमानँद' करि अंचल की छोर॥

[३३३] देवगंधार

कुंज में जेंवत स्यामास्याम।
आस-पास मालती माधवी बिबिधि कुसुम बन्यो धाम॥
पय पकवान मिठाई मेवा भरि-भरि थाल जु पाए।
रुचि सों परस्पर खात खवावत जुगल रूप मन भाए॥
सखी एक सनमुख भई अचवति जमुनाजल झारी लै हाथ
बीरी देति सम्हारि दुहुँनि मुख उर आनँद न समात ॥
बैठे जाइ कुसुम-सिज्जा पर दंपति सब सुख-रास।
बिविध बिहार किये मन भाए बलि 'परमानँददास' ॥

---

१. जब वाके घर०   २. बतायौ   ३. पहुँचायौ

अँचवन–बीरी—

[३३४] सारंग

भोजन करि उठे दोऊ भैया ।
हस्त पखारि सुद्ध अँचवन करिकै बीरी लेहु कन्हैया ॥
करति आरती मात जसोदा फुनि-फुनि लेति बलैया ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर ब्रज-जन-केलि करैया ॥

[३३५] सारंग

कृष्ण कों बीरी देति ब्रजनारी ।
पान सुपारी काथौ गुलाबी लौंग कील सँवारी ॥
ब्रजनारी जो कुंज लौं ठाढी कंचन की सी बारी ।
लै लै बीरी कर-कमलनि में ठाढी करति मनुहारी ॥
कहति लाडिले ! बीरी लीजै मोहन नंदकुमार ।
'परमानँद' प्रभु बीरी आरोगत ब्रज के प्रान-अधार ॥

[३३६] धनाश्री

बीरी आरोगत गिरिधरलाल ।
अपने कर सों देति राधिका हरि-मुख मधुर रसाल ॥
ज्यों-ज्यों रुचि उपजति उर अंतर त्यों-त्यों करति बिहार ।
कबहुँक देति दसन खंडन करि कबहुँक देति उगार ॥
सहचरि ओट भईं सब निरखति हिय में हरष अपार ।
जै-जै राधिके ! जस गावति हैं 'परमानँद' सुख-सार॥

[३३७] मल्हार

तुम जावौ लावौ बीरी कौन पै मैया ।
कब के करि अँचवन माँगत हैं हलधर कुँवर कन्हैया॥
इतनौ बोल सुनत उठि धायौ श्रीदामा भरि झोरी ।
ग्वालनि के मंडल मधि नायक हरि-हलधर की जोरी॥
दीनौ बाँटि सबनि अपने कर हँसि-हँसि पान चबावै ।
अब सब चले दानघाटी 'परमानँद' दान चुकावै ॥

[३३८] मल्हार

मुख बीरी राची हरि के रंग सुरंग ।
ऐसी कृपा सदा उर ऊपर टारहु जिनि तुम संग ॥
हरि हम तुम बिन कौन काम के परत प्रेम में भंग ।
'परमानंद' दूध में पानी ज्यों मिलि अंग सु अंग ॥

---

११. आवनी

[३३९] नट

सुबल श्रीदामा कह्यो सखनि सों अर्जुन संख बजाइए ।
घर जैबे की भई है बिरियाँ गिरिधरलाल जगाइए ॥
ठौर-ठौर मधुरी धुनि बाजै मधुर-मधुर सुर गाइए ।
कुंजनि सघन जागे नँद-नंदन मुदित जु बीरा लाइए ॥

बडी पहेरि के पूरे मनोरथ गोकुल-ताप नसाइए ।
लटकत श्रावत कमल फिरावत 'परमानंद' बढाइए ॥

[३४०] नट

लाडिले जे जल जिनहिं पियो ।
जब श्रारोगौ तब भरि लाऊँ बातौ डारि दियो ॥
उठौ मनमोहन बदन पखारौ सुंदर लोटी लयो ।
तुम जानत हम श्रब ही पौढे पहर दुपहर भयो ॥
सुनि मृदु बचन स्याम उठि बैठे मान्यो मात कह्यो ।
'परमानंद' प्रभू भए भूखे मैया मेवा दयो ॥

[३४१] धनाश्री

❀भावै मोहि माधौ-बेनु बजावनि ।
नंदकुँवार[1] देखि हम रीझीं भौंहनु की मटकावनि ॥
कुंडल लोल कपोल बोल मधु लोचन चारु चलावनि ।
कुंतल कुटिल मनोहर श्रानन मीठी धेनु-बुलावनि ॥
स्याम सुभग तन चंदन मंडित उर कर श्रंग नचावनि ।
'परमानंद' ठगी नँदनंदन दसन-कुंद-मुसिकावनि ॥

[३४२] गूजरी

मुरली-कुनित रंगे सुंदर स्याम-तमाल ।
जमुना के तीर खेलत[2] श्राए गोपाल ॥

❀ भावति मोहि............से भी प्रारंभ है ।

१. मदनगोपाल देखि (इ. घ.) २. खेलनि (इ. घ.)

बालक विनोद-संग गावत गीत रसाल ।
कबहुँक आनँद-निधि कर-तल बाजै ताल ॥
बोलत बिपुल धेनु प्रगट दनुज-काल ।
'परमानंद' स्वामी त्रिभंगी भगत[1] कौ प्रतिपाल ॥

[३४३] आसावरी

बाँसुरी बजावत[2] गोबिंद[3] नाचत गावत सुंदर गोपीनाथ।
पीतपट चोलना किंकिनीमंडित नंदनंदन बिमल कमल हाथ
ब्रह्मादि इंद्रादि रुद्रादि देवता देखि कौतकु सह-दार भूले ।
स्यामसुंदर सुभग नट-लीला-रचित
नंदनंदन तरनि-तनया-कूले ॥
बलय कंकन कुनित नूपुर मेखला
ताल पटताल झपताल अंगे ।
'दास परमानंद' नंदनंदन कुँवर
ललित गति सरस संगीत-संगे ॥

[३४४] आसावरी

गावै-गावै घनस्याम कान्ह[4] जमुना के तीरा ।
नाचत नट-भेषु धरें मंडली अभीरा ॥

---

१. भक्तनि-प्रतिपाल २. बाजत ३. सुधंग
४. तान, सुंदर (क)

लोल[1] नैन चारु बैन अधर धरें बैना।
आवर्त्त[2] कमल-नयन की छबि मंडित कच रैना ॥
जल की गति मंद भई सुरभी तृन[3] लीना।
बछरा नहिं छीर पिवत नादहिं मन दीना ॥
मोहे मृग[4] पंछी द्रुम मधुकर मुनि ज्ञानी।
'परमानँद' प्रभु गोपाल लीला बन ठानी ॥

[३४५] बिलावल

हरि-कर-पल्लव लोल बिराजत।
राग-रागिनी कैं उपजावत बेनु मधुर धुनि बाजत ॥
देव मनुज मुनि खग मृग मोहे जब गूजरी निबाजत।
नाचत मोर मौन धरि कोकिल मेघ अकासनि गाजत॥
ब्रजबनिता-मन परी चटपटी बिसु भए अंजन[5] आँजत।
'परमानंद' काम-रति बाढी भूषन बने न साजत ॥

[३४६] सारंग

हौं तौ इहि बेनुहुँ की चेरी।
नंदनँदन के अधरनि लागति स्रवन सुनत मुख केरी ॥
राति दिवस मन उहईं रहतु है बाढी प्रीति घनेरी।
'परमानंद' गोपालहिं भावै लाख बार हित मेरी ॥

---

१. नैन लोल चारु बोल   २. आवत मुख कमल छबि
३. तृन न लीना   ४. खग मृग नग मुनि मधुकर ग्यानी
५. लोचन (इ. क. ग. घ. ङ. च. छ.)

[३४७] सारंग

जब कर बेनु गहत।
पासंग ही पूजत नहिं जासोंऽब ब्रह्मानंद कहत ॥
खग मृग चित्र-लिखे से ठाढे बदनु चहत।
सुनि धुनि धेनु ठगी दंतनि त्रिनु मौन रहत ॥
रोम हरष तरुवर मधु बरषत जलु न बहत।
'परमानंद' धन्य ब्रजवासी सुखु जे लहत ॥

[३४८] मल्हार

कमल-लोचन कान्ह मधुर[1] गावै।
अधर बंसी धरी त्रिजग ग्रीवा करी
कुटिल अवलोकनी केहिं न भावै ॥
बदन अंबुज-भासि कुटिल कुंतल अली
केकि-पंखावली[2] सीस सोहै।
स्रवन गुंजा-पुंज कर्निका लंबिता
भौंह मनमथ-चाप भुवनु मोहै ॥
गंड-मंडल चारु विमल कपोल दुति
मुरलिका चुंबिता जगतु जानै।
परम निर्लज्जिता बंस कुल-संग्रही
देखि गोपी-वृंद अनखु मानै ॥

---

१. मधुरें २. पिच्छावली (इ. घ.)

तरुन[1] घनस्याम तन बसन वर दामिनी
इंद्र-धनु उदित बनमाल बानी ।
गरजिता मंद धुनि हरि गिरा सुंदरा
भक्त चातक मुदित प्रीति मानी ॥
नंदनंदन देखि बिगत मानस-बिथा
गोपिका-प्रेम जल नदी बाढी ।
'दास परमानंद' सिंधु जादवराइ
मिलन हू[2] अनुसरी रही न ठाढी ॥

[३४९]		धनाश्री

बंस सुद्ध जो मुरली पाई ततो कान्ह कर-कमल धरी ।
अधर-पीयूष-पान दै मोहन ! बन उद्धव सोहाग करी ॥
अस्पर्द्धा काहे कों कीजै जो हरि मानी सोई बडी ।
भयो प्रसाद स्यामसुंदर कौ 'परमानँद' सो सीस चढी ॥

[३५०]		गौरी

हरि की मधुरी[3] गावनि ।
सुनहु सखी ! मन मोहत मेरौ मधुरी बेनु बजावनि ॥
गोप-भेष-नट-लीला-बिग्रह वृंदावन तें आवनि ।
धातु प्रबाल कुसुम गुंजामनि देह-सिंगार बनावनि ॥

---

१. बरन (छ.)		२. कों
३. मधुरी-मधुरी (बं. ११६।१)

गावत ग्वाल गोबिंद की कीरति तीरथ ते अति पावनि।
'परमानंददास' अंतरगत अबिरल प्रीति बढावनि ॥

[३५१] गौरी

हरि की आवनी बनी।
गोप-मंडली-मध्य बिराजत है त्रैलोक-धनी[1] ॥
भेष विचित्र कियो[2] है मोहन अंगराग बन-धातु।
बरुहापीड दाम गुंजामनि सीस कमल कौ पातु ॥
नाचत गावत बेनु बजावत गोधन-सँग गोबिंद।
वासरगत सुंदर ब्रज आवत है प्रभु 'परमानंद' ॥

[३५२] गौरी

आवै-आवै गोपाल बन्यो देखौ ब्रज-नारी !
कमल-नयन रूप ऊपर तिलु-तिलु करि वारी ॥
हाथ लकुट काँख बेत मोरचंद माथै।
जठर बसन पानि बेनु गोधन के साथै ॥
धूरि-धूसर गोप- भेष ग्वालनि कौ संगी।
नंदनँदन आनँदकंद नटवर बहुरंगी ॥
विस्वमोहन भुवनपाल कमल-नाल फेरै।
स्यामसंदर बार-बार मधुबन-तन हेरै ॥
जाके चरन-कमल सेवत मुनि लोभी रस-बासा।
उनि मूरति प्रति रति बाढौ 'परमानँददासा' ॥

---

१. मनी (घ) २. कियें नँदनंदन (ङ.)

[३५३] आसावरी

भावै मोहि माधौ की आवनि ।
बरुहापीड दाम गुंजामनि बेनु मधुर धुनि गावनि ॥
स्याम सुभग तन गो-रज-मंडित भेष विचित्र बनावनि ।
बालक-वृंद-मध्य नँद नंदन आनँद-रासि बढावनि ॥
बासर अंत अनंत-संग हित नट-गति-रूप दिखावनि ।
'परमानँद' गोपी-मन आनँद बिरह-ताप बिसरावनि ॥

[३५४] आसावरी

सुंदरता की रासि साँवरौ नागरता की सेतु ।
चलत चारु गति मोहन मूरति सब के मन हरि लेतु ॥
सकल अंग पेखत ही सुंदर नंद-सुवन अभिरामु ।
रुचिर हास मुख ज्योति चंद्रमा सकल देव मुनि-धामु ॥
ता दिन तें मोहि रह्यो न भावै स्रवन सुन्यों कल बेनु ।
'परमानँद' स्वामी हौं मोही आवत चारें धेनु ॥

[३५५] सारंग

आजु बनी बृंदावन तें आवनि ।
मोर-चंद-मुगट सिर सोहै बेनु बजावनि नीकी[1] ये गावनि॥
मोहन रूप धरयो है नख-सिख
नैन-कमल-दल विमल बिसाल ।
सकल सिंगार अनूप[2] बिराजित तिन[3] ठूटत त्रिभंगो गोपाल

---

१. मीठो गावनि (बं. ३०१५) २. अनूपम राजत

३. तन जु बन्यो है त्रिभंग (बं. ३०१५)

बनमाला अरु स्रवन गुंजामनि नव मंजरी मनोहर साजु ।
'परमानँद' प्रभु बल-सहित तुम
गोकुल करहु अखिल जुग राजु ॥

[३५६] सारंग

वह मुख देख्यो ई मोहि-भावै ।
मदनगोपाल जगत कौ ठाकुर बन तें जब गृह आवै ॥
लोचन लोल नासिका सुंदर कुंडल ललित कपोल ।
दसन कुंद बिंबाधर राते मधुमिव मीठे बोल ॥
कुंचित अलक पीत रज-मंडित जनु भँवरनि की पाँति ।
कमल-कोस मँहि ते ढिंग बैठे पंडुर बरन सुजाति ॥
चंद्रिका चारु मुगट सिर सोभा[1] बीच-बीच मनि गुंजा ।
गोपी-मोहन अभिमत मूरति प्रगट प्रेम के पुंजा ॥
कंठ कंठमनि स्याम-मनोहर पीतांबर बनमाला ।
'परमानंद' स्रवन मनि मंगल कूजत बेनु रसाला ॥

[३५७]

माधौ भलौ बन्यो आवै। देखत जिय[2] भावै ॥
मोरपंख चँदवा नीके माथे बाँधि लिए ।
गुंजाफल कौ हारु बनायो[3] सब सिंगारु किए ॥

---

१. सोहै (इ. घ.) २. मोहि (इ. ग. घ. ड. च. ज.)
३. बन्यो है (इ. घ.)

कुंडल-बीच कदंब-मंजरी-चूरन कुंतल सोहै ।
मृगमद-तिलक भौंह मनमथ-धनु देखत सब जग मोहै॥
स्याम कलेवर गोरज-मंडित कंठ कमल-दल-माला ।
'परमानँद' प्रभु गोप-भेष धरि कूजत[1] बेनु रसाला ॥

[३५८] गौरी

बन्यो री ! गोपाल बाल-रस आवै ।
मदन-मूरति मनमोहन भावै ॥
कुंचित केस पीत[2] रज-मंडित बीच-बीच जल-बिंदु रहे ।
मानहुँ कमल-पत्र पर मोती खंजन-निकट सलोल गहे॥
गोपी-नैन-भृंग अति चंचल उडि-उडि परत बदन माहीं ।
'परमानंद' प्रेम-रस-लंपट अति आकुल कहाँ जाहीं ॥

[३५६] गौरी

हरि-मारग जोवत भई साँझु ।
दिनमनि अस्त भयो गोधूरक आवत बने मंडली माँझु ॥
बाजत बेनु रेनु तन-मंडित बनमाला उर लोचन चारु ।
बरुहा मुगट स्रवन गुंजामनि बनज धातु कौ तिलक सिंगारु
गोपी-नैन-भृंग-रस-लंपट सादर करत कमल-मधु-पान ।
विरह-ताप-मोचन 'परमानँद' मुरलीमनोहर रूप-निधान॥

---

१. कूजित (क.), कूजै (इ. घ. ज.)
२. सुदेस बदन पर (बं. १३२।१)

[३६०] गौरी

जसोदा-नंदनँदन आवै हरि-रूप देखि जीजै।
सादर अवलोकनि सखि नैन-पान कीजै॥
काँध लकुट हाथ बेत मोरचंद माथै।
जठर बसन पानि बेनु गोधन के साथै॥
सेत प्रस्वेत बदन माँहि रेनु-मंडित जोती।
बिकसित कमल-पत्र-ऊपर लटकै मानों मोती॥
धातु प्रबाल गुंजा-हार मोरचंद्र सोहै।
बनमाला लुब्ध मधुप उपमा कों को है॥
बेनु बजावत नाचत[1] गावत घोष-प्रबेस कीनों।
'परमानँद' स्वामी गोपाल भक्तनि सुख दीनों॥

[३६१] गौरी

माई! आवत हैं नंदनँदन गोप-भेष कीने।
मोरचंद सीस धरें धेनु-संग लीने॥
कमल-नयन मुख-सरोज बेनु-गीत गावै।
वासर-दुख दूरि करै देखत जिय[2] भावै॥
सुख-निधान घोष-ईस बृंदावनचारी।
सरबसु सब गोकुल कौ लीला-अवतारी॥
गोपी सब मिलनि चलीं आनँद-रसमाती।
'परमानँद' स्वामी-समीप दीसतिं सुख-राती॥

---

१. नृत्तत (क.) नृत्त करत २. मोहि (इ. ख.)

[३६२] कल्यान

पिछौरा खासा कौ कटि बाँधें।
वह देखि[1] आवत नंद-कुमारु नैन कुसुम-सर साधें॥
स्याम सुभग तन चंदन-लेपित[2] बाँह सखा के काँधें।
चलत चारु गति रूप मनोहर जनु नटवा गुन नाँधें॥
ए पद-कमल तबहि प्रापत हैं बहुते जनमु अराधें।
'परमानँद' प्रभु उनहीं कारन लावत मौन[3] समाधें॥

[३६३] कानरौ

आवत हैं गोकुल के लोचन!
नंदकिसोर जसोदा-नंदन मदनगोपाल बिरह-दुख-मोचन
गोप-बृंद में ऐसे देखियत[4] जनु नछित्र में पूरन चंदा।
बनज धातु गुंजा पियरौ[5] पटु भेष बन्यो है[6] आनँद-कंदा॥
बरुहा लसत कंठ बनमाला अद्भुत भेष[7] नटारँभ काछें।
कुंडल लोल कपोल बिराजत मोहन बेनु बजावत आछें॥
भक्त-भँवर पावन जसगावनु इहि विधि ब्रजप्रबेस हरि कीनौ
'परमानँद' प्रभु चलत ललित गति
जसुमति धाइ उछंगहि लीनौ॥

---

१. देखो (ङ. घ. च. छ.) २. चर्चित (ख.)
३. मुनो (ङ. घ. च. ज.) ४. सोभित (ग. ज.)
५. मनि सेली (ख. के अतिरिक्त) ६. हरि (क. ख. के अतिरिक्त)
७. रूप (ग. ङ. च. छ. ज.)

[३६४] गौरी

माई री ! असित कुंतल मधुप-माल नील कमल फूलें।
इंदु-बदन चारु हास देखत मन भूलें ॥
देखहु घनस्यामसुँदर बन तें ब्रज आवें।
नीकौ नट भेष बन्यो मोहि गोपाल भावें ॥
बरुहा अवतंस भूषन मोरचंद माथें।
कुनित बेनु संग धेनु गोप-वृंद साथें ॥
कोटि काम सकुच धरैं लीला-तनु सोहैं।
'परमानँद' प्रभु गोपाल सब कौ मनु मोहैं ॥

[३६५] गौरी

बन तें आवत हैं मेरी माई !
स्याम मनोहर देखहु नयन भरि रूप की निकाई ॥
अमल कमल-दल नयन बिसाला।
नव मंजरी बनी बनमाला ॥
करतल बेनु मधुर धुनि गावैं। नरनारिनि मन प्रीति बढावैं॥
सकल भुवनपति गरुडागामी। गोप [1]भेष'परमानँद' स्वामी

[३६६] धनाश्री

गोपाल की आवनी तुम देखहु ब्रज-नारी।
मद-गयंद लटकनि पर छिनु-छिनु बलिहारी ॥

---

१. नंदसुवन (इ. घ.)

मोरमुकुट बनमाला पीतांबर सोहैं।
कुंडल मुख जगमगात कोटि काम मोहैं॥
बेनु बजावत नैन[1] नचावत सुरभी सँग आवैं।
जुवती-चकोर-चंद 'परमानँद' गावैं॥

[३६७] गौड़ौ

देखि गोपाल की आवनी।
कमल-नयन स्यामसुँदर मूरति मन-भावनी॥
बरुह-चंद सीस मुकुट गुंजामनि लावनी।
'परमानंद' प्रभु गिरधर अँग-अंग नचावनी॥

[३६८] कल्यान

बन तें नव रँग गिरिधर आवत।
आगै री! गोधन पाछै आपुन धाइ-धाइ अहटावत॥
बरुहा मुकुट हार[2] गरें गुंजा बेनु[3] रसाल बजावत।
सप्त सुरनि बर रागु-रागिनी मेघ-गिरा मधु गावत॥
गोप सुतनि के संग बिराजत अरु कर-कमल फिरावत।
'परमानँद' स्वामी की लीला सुर नर मुनि-मन भावत॥

[३६९] कल्यान

आवत मदनगोपाल त्रिभंगी।
निर्तत गावत बेनु बजावत करत कुलाहल बालक संगी॥

---

१. बैंत भँमावत (छ.) २. दाम मनि गुंजा (बं. १३०११)
३. भेष विचित्र बनावत (बं. १३०११)

कटि पीतांबर उर बनमाला बन्यो टिपारो लाल सुरंगी ।
बचन रसाल सुरति हौं भूली सुनि बन मुरली-नाद कुरंगी ॥
बरसत कुसुम देव-मुनि[1] हरषत बाजत ढोल दमामा जंगी
'परमानँद' स्वामी नटनागर स्याम-बिनोद सुरत-रस-रंगी

[३७०] गौरी

भईया हो ! आजु बनी गोपाल-मंडली बोलत आवै धेनु ।
परम कुलाहल कमल-नयन-सँग बाजत आवै बेनु ॥
बरुहा मुगट स्रवन गुंजामनि अंगराग बन-धातु ।
किएँ सिंगारु सब गोप-मंडली ललित बजावत पातु ॥
कोऊ काहु कों गारि देत है कोउ मिलि गावें गीत ।
निरगुन ब्रह्म सगुन तन काछें इहि लीला-रस-रीत ॥
गोपी एक कहति सखियनि सों चलौ आगें ह्वै लीजै ।
'परमानँद' स्वामी के ऊपर प्रान न्यौछावरि कीजै ॥

[३७१] वसंत

हरि जू के आवनि की बलिहारी ।
वासर गत ठाढी देखति हैं प्रेम-मुदित ब्रज-नारी ॥
रितु बसंत कुसुमति बन राजत मधुप-वृंद जस गावें ।
जे मुनि आइ रहे वृंदावन स्याम मनोहर भावें ॥

---

१. गन (ङ. छ.)

भेष बिचित्र बन्यो है मोहन गुंजा मनि उर-हार।
मोर-पिच्छ सिर मुगट बिराजत नंदकुमार उदार ॥
घोष-प्रवेष कियो है इहिं बिधि गोरज-मंडित देह।
'परमानंददास' हित कारन जसुमति नंद-सनेह ॥

[३७२] सारंग

बने बन आवत मदनगोपाल।
नृत्यत[1] हँसत हँसावत कुलकत[2] संग मुदित ब्रजबाल ॥
बेनु मुरज उपंग चंग मुख चलत बिविधि सुरताल।
बाजे[3] अनेक बेनु-रव संमिलित क्कुनित किंकिनी-जाल॥
जमुना टट तट निकट बंसीबट मंद समीर सुढाल।
राका-रजनी[4] बिमल ससि क्रीडत बृंदा-बिपिन नँदलाल॥
स्याम सघन तन कनक-कपिस पट उर-लंबित बनमाल❀
'परमानँद' प्रभु रसिक-सिरोमनि चंचल नयन बिसाल ॥

[३७३] गौरी

अहो बल ! हौं जिय बहुत[5] डराति।
[6]गोधन लैऽब[6] सवारे आवहु कतव करत हौ राति ॥

---

१. नर्तत (ड. छ.) २. किलकत (इ. घ. ङ. च. छ.)
३. वाद्य (ज.) ४. रजनि पूरन ससि क्रीडत हैं नंदलाल (ङ. छ.)
❀ अति कमनीय बने ब्रजसुंदर गोपिनि के मन जाल ॥
इतना अधिक पाठ भी १–२ प्रतियों में।
५. खरी (ख), अधिक ६. किन लै आवौ भैया कित पारत हौ राति।

एकहि बार[1] करत दोऊ भोजन जसोमति करति बयारि।
देत[2] हुंकार स्याम मनोहर जननी प्रीति बिचारि॥
बालकृष्ण[3] कमल-दल-लोचन सिखवत रहियहु तात।
तुम अग्रज वसुदेव के नंदन जानत हौ सब बात॥
तब हँसिकें बोले संकरषनु धेनुक मारयो आजु।
'परमानंद' या कानन में नंद-सुवन[4] कौ राजु॥

[३७४] गौरी

देखौ माई! मदनगोपाल बने।
नख-सिख रूप बिचित्र बिराजित बाजत बेनु सुने॥
बरहापीड दाम गुंजामनि कटि पीतांबर बाँधें।
लोचन लोल बिसाल कमल-दल मानु कुसुम-सर साँधें॥
कुंचित अलक तिलक मृगमद रुचि गो-रज-मंडित देही
बोलत धेनु गोप-बालक सँग 'परमानंद' सनेही॥

[३७५] गौरी

आउ हो आउ गुसाँई नँदनंदन! लै धेनु।
साँझ परी है[5] भई अब रातें कहाँ बजावैं बेनु॥

१, थार, थार में जेंवत दोउ० २. सुंदरस्याम देत हुंकारी
३. बालक कान्ह निपट भोरे हैं सिखवत ४. नंदन कौ
५. अब भैया रातें (इ. घ. ङ छ.)।
है अब भैया रे! (ग. च. ज.)। अब होत है रजनी

सिंघ व्याघ म्रिग बहुत रहत हैं तिनिकौ डर तोहि नाहिं
वृंदावन[1] घनस्याम मनोहर चलहु दौरि घर जाहिं ॥
तरुवर चढि ग्वाल सब टेरत कह्यौ न सुनै हमारौ ।
नंद-जसोदा मारगु जोवत जिनिकौ खरौ पियारौ ॥
भुवन चतुर्दस जाहि समाने निगम पार नहिं पावैं ।
'परमानँद' प्रभु त्रिगुन-रहित हैं ताहि ग्वाल डरपावैं ॥

[३७६] मल्हार

इनि मोरनि की भाँति देखि नाचैं गोपाला ।
मिलवत गति-भेद नीके मोहन रिपुमाला[2] ॥
गरजत घन मंद-मंद दामिनि दरसावैं ।
झिमिकि-झिमिकि बूँद परैं राग[3] मलार गावैं ॥
चातक पिक सिखर[4] कुंज बार-बार कूजैं ।
वृंदावन-कुसुम-माल[5] चरन-कमल पूजैं ॥
सुर नर मुनि कामधेनु देखनि कौतुक आवैं ।
भगत उचित वारि फेरि 'परमानँद' पावैं ॥

[३७७] सारंग

स्याम-अंग सोभित है तनियाँ ।
पाग दुपेची सीस बिराजति नख-सिख लौं भूषन बनियाँ

१. कमलनयन (क.) २. नटसाला (ग.)
३. गौड (इ. क. ग. घ. ड. छ. ज.) ४. सघन ५. लता

धेनु चराइ सखनि सँग आवत-मात जसोदा लै हरि कन्हिया
'परमानंददास' कौ ठाकुर श्रीवृषभान-सुता उर-मनियाँ ॥

[३७८] गौडी

आवत मोहन धेनु लिए ।
बाजत बेनु रेनु तन-मंडित बाहु श्रीदामा-अंस दिए ॥
कटि पटपीत लाल उपरैना अरु नौतन बनमाल हिए ।
कुंडल लोल कपोल बिराजित मोरपच्छ सिर मुकुट दिए
ब्रज-जन कुमुद निरखि प्रफुलित भईं
रूप-सुधा नैननि जु पिए ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर बासर ताप कौ नास किए ॥

[३७९] गौरी

मोहन ! नेंकु सुनावहु गौरी ।
वन तें आवत कुँवर कन्हैया पुहुप-माल लै दौरी ॥
ग्वाल-बाल के मध्य बिराजित टेरत धूमरि ! धौरी !
'परमानँद' प्रभु की छबि निरखत परि गई प्रेम-ठगौरी ॥

[३८०] गौडी

आरती जुगलकिसोर की कीजै ।
तन मन धन न्यौछावर कीजै ॥
गौर-स्याम मुख देखत जीजै ।
रसिक स्वरूप नयन भरि पीजै ॥
'परमानँद' प्रभु अविचल जोरी ।
नंदनँदन वृषभानुकिसोरी ॥

१२. गो-दोहन

[३८१]　　　　　　　　　　रामश्री

तनक कनक की दोहनी दै दै री मैया !
तात दुहन[1] सिखवनि कह्यो मोहि धौरी गैयाँ ॥
हरि[2] विषमासन वैठि कें मृदु कर थन लीनों ।
धार अटपटी देखि कें ब्रजपति हँसि दीनों ॥
गृह[3]-गृह तें आँई सबै देखनि ब्रजनारी ।
सचकित मन हरि हरि लियो हँसि घोष-विहारी ॥
द्विज बुलाइ दछिना दई मंगल जसु गावैं ।
'परमानंद' प्रभु लाडिलौ सुख-सिंधु बढावैं❀ ॥

[३८२]　　　　　　　　　　बिलावल

बाबा जू ! मोहिं दोहन सिखाऊ ।
गाँइ एक सूधी सो मिलबहु हौं नीकें दुहौं कि बलदाऊ ॥
लै नोई मेली चरननि में लाडिलौ कुँवर नोवत बछराऊ।
पानि[4] पयोधर धरे धेनु के भाजन बेगि भर्यो उपटाऊ ॥

---

१. दोहन (क.) २. विषमासन हरि बैठिकें गो-अस्तन कर लीनों (बं.३११९)
३. घर-घर तें आई सबै ब्रज-गोप-कुमारी (बं. ३११९)
❀ भावसाम्य--सूरसागर प० सं० १०२७ तथा स० भ० ब. १०४।३ में 'तनक कनक की दोहनी०' पाठ-भेद के साथ　　४. पीन (क.)

तब नँदरानी नैन सिरानी[1] द्विजनि बुलाइ दच्छिना दिवाऊ
बारि फेरि पीतांबर हरि पर 'परमानँददास'[2] हि पहिराऊ

[३८३] सारंग

❀ बलि गई मेरी गाँइ दुहि दीजै ।
बार-बार कहति कुँवरि राधिका स्याम[3] निहोरौ कीजै॥
वह देखौ घटा उठी[4] बादर की बेगि स्याम घर लीजै ।
बूँद परै रँग फीकौ ह्वै है लाल चूनरी भीजै ॥
नीकौ दुह्यौ दूध धौरी कौ कछुक स्यामघन पीजै ।
'परमानँद' स्वामी मनमोहन कह्यौ हमारौ कीजै× ॥

[३८४] सारंग

×माई री ! करत हैं गोदोहनु ।
कहा करौं घर आयो[5] न जाई देखि कान्ह मनमोहनु॥
संध्या-समै खरिक तें निकसे[6] देखि[7] गोधन के ठाट ।
बीचहिं और भयो कछु संभ्रम बिसरि गई वह बाट ॥
चितवत रूप चटपटी लागी घर माँहि रह्यो न जाई ।
'परमानँद' स्वामी नँदनंदन[8] सरबसु लियो चुराई ॥

---

१. सिराए २. ग्वाल पहिराऊ
❀ हौं बलि गई गाँइ दुहि० से भी प्रारंभ है ।
३. कान्ह (ङ. छ.) ४. उमडी (इ. घ-)
× सूरसागर प० सं० १३४६ में भी 'बलि जाऊँ गैया दुहि दीजै' से साधारण परिवर्तन के साथ
× लाल माई करत० से भी प्रारंभ ५. रह्यो (इ.)
६. निकसी ७. देखे (ग. ज.) ८. मनमोहन

[३८५] सारंग

*तुम मेरी दोहनी दुराई ।
मो पें ले लीनी देखनि कों इहि धौं कौन बडाई ॥
निपट सवारे[1] हीं अति आतुर धेनु दुहावन आई ।
जानि अकेली हौं[2] इनि ढोटा बहुतैं मान खिझाई ॥
द्वारि उघारि बछरुआ[3] मेले बरबट गाँइ चोखाँई ।
हौं पचिहारी कह्यौ न मानत बरजत नाकहिं आई ॥
अब[4] मेरी सासु त्रास करैं[5] हौं क्यों उबरों घर माई ।
'परमानँद' प्रभु तब हँसि दीनों भई बात मनभाई ॥

[३८६] सारंग

कमल-दल-नैना मोहना ।
औचकाँ दृष्टि परे मैं देखे जहिं करत गो-दोहना ॥
स्याम बरन तन कटि पीरो पट हाथ पाट की नोई ।
बाम पानि दोहनी बिराजित निरखि-निरखि मुख सोई ॥
घर बिसरयो तन की गति[6] भूली प्रीति निरंतर[8] बाढी ।
'परमानँद' प्रभु जहाँ खेलत हैं निरखि[7] भई तँहि ठाढी×

---

* ढोटा मेरो०, रे ढोटा! तैं मेरी० (बं. ४६।१) से भी प्रारंभ

१. सबेरो हौं उठि आतुर खिरक दुहावन
२. या ढोटा नें बहुतें भाँति खिझाई
३. खोलि दिए बछरा
४. घर मेरी सासु त्रास बहुत दैहै
५. करिहै (ग. ज.)
६. सुधि (ग. ज. घ)
७. देखत ही भई ठाढी (इ. घ)
८. परस्पर (ङ. छ.)

× 'कमलदल-नैना मोहना' से प्रारंभ होकर कृष्णदास-कृत भी है.

[३८७] सारंग

ढोटा कौन कौ मनमोहनु !
संध्या समै खरिक में ठाढे सही[1] करत गो-दोहनु ॥
ग्वालिनि एक पाहुनी आई देखि ठगी सी ठाढी ।
चित चलि गयो मदन-मूरति[2] पें प्रीति निरंतर बाढी ॥
चलि नहिं सकति परगु इक सुंदरि चितु चोरयो ब्रजनाथ
'परमानंददास' वह जानें जिहि खेल्यो मिलि साथ ॥

[३८८] सारंग

पौंछत कान्ह[3] गाँइ की पीठि ।
कर मुख मूँदि मुदित मुसिकावनि
बार-बार राधा-तन डीठि ॥
कर[4] दोहनी दुहावन आई बछरा दियो खरिक में छोरि
गहहु-गहहु तुम्हरे पाँइ लागों
पिय-तन चितै हँसी मुख मोरि ॥
कछुक सकुच बलभद्र वीर की घरहि चली दै उलटी सैन ।
'परमानँद' स्वामी रति-नाइक दुहुँ दिसि झगरो लगायोमैन

[३८९] सारंग

प्रथम सनेह कठिन मेरी माई !
दृष्टि परी वृषभानु-नंदिनी अरुझे नयन निरवारे[5] न जाई॥

---

१. जहाँ-तहाँ करत (छ.) २. मोहन (ङ. च.)
३. स्याम (ग. ज.) लाल ४. सिर धरि माट दुहावन
५. निवारे (इ. घ.)

बछरा छोरि खरिक में दीनों
आपुन झिमिकि[1] तिरिछी माई !
नोवत वृष भगई चलि गैयाँ हँसत[2] सखा कहा दुहत कन्हाई!
चारों नैन मिले[3] जब सनमुख नंदनँदन कों रुचि उपजाई ।
'परमानंददास' उहि नागरि नागर सों मनसा अरुझाई।।

[३६०] सारग

बिनती सुनहु जसोदा रानी !
आकस्मात हमारी गैयाँ तुम्हारे सुत पतियानी ।।
आजु साँझ बन तें चरि आईं हरि बिछुरत अकुलानी
कैसें[4] हि भाँति न देत दुहाईं केतिक रैन बिहानी ।।
मैं चलि आइ जताइ[5] दियो अब दूध वृथा भयो जानी ।
कैसें कै बोलों नंदराइ सों इतनो कहत सकानी ।।
री ! तू बेगि जाइ लै मदनगोपालै नंद-घरनि सुनि[6] मानी।
'परमानँद' प्रभु चले संग उठि कापें परत बखानी ।।

[३६१] सारंग

❀साँवरे गोबिंद नैन लोला ।
ग्वालि ठाढी हँसै प्रान हरि में बसै कामकी बावरी चारुबोला।

१. झमकति रोझी आई २. हँसति सखी ३. भए (इ. घ.)
४. क्योंहू भाँति नहिं देति दुहामन । ५. जनाइ (क. ख. के अतिरिक्त)
६. सनमानी
❀ साँवरौ...गोविंद, माई साँबरौ० से भी प्रारंभ हैं

आउ री ग्वालिनी ! मेलि[1] दै बाछरू
आनि दै दोहनी हाथ मेरे ।
धेनु धौरी दुहौं प्रेम बातें कहौं मेरे मन लाग्यौ है रूप तेरे
बाल-लीला भली सैन दै कें चली
दूध दै मोहि घर आपि[2] आऊँ ।
'दास परमानंद' नंद-नँदन केलि-
चौर-चर्या रजनि मिलन पाऊँ ॥

[३६२] देवगंधार

तुम पें कौन दुहावत गैयाँ ।
गूढ भाव सूचत अंतरगत अतिसै काम की नहियाँ ॥
गुपत प्रीति तासों मिलि कीजै होइ तुम्हारी दैयाँ ।
ज्यों भावै त्यों मिलत सबनि सों इहै सिखाए मैया ॥
लै जु रहे कर कनक-दोहनी बैठे हैं[3] अध पैयाँ ।
'परमानँद' गोविंद[4] हठ ठान्यो ज्यों घर खसम गुसैयाँ ×

[३६३] कल्यान

×देखि मुख ठाढी ये[5] हँसै ।
धौरी धेनु दुहत नँदनंदन राधा[6] हृदय बसै ॥

---

१. छोरि दै (ड.) २. पेलि (ग.)

३. हरौ (ड. घ.) ४. जो हठ हरि माँड्यो

❀ सूरसागर प० सं० १३५२ पर भी साधारण परिवर्तन के साथ
× निरखि (ग.) से भी प्रारंभ है

५. व्है जु (च.) ६. लाडिली हीय

सेली हाथ बछरुआ ढीलत[1] कौन-कौन छबि लागै।
मोचत धरत दोहनी चाँपत मन उपजत अनुरागै ॥
इहि लीला ब्रह्मा सिव गाई नारदादि मुनि ज्ञानी।
'परमानंददास' सुख पायो अरु सुक व्यास बखानी ॥

[३६४] सारंग

गावति मुदित खरकि में गोपी[2] सारँग रागें मोहनी।
बार-बार हरि कौ बदन निहारति हाथ कनक की दोहनी
कनक-लतासी चंपक-बरनी स्याम तमाल गोपालकी जोरी
ठाढी निकट[3] मिली तन-मन सों नंदनँदनसों प्रीति न थोरी
उपमा काहि देउँ को लाइक उभय[4] सरूप नागरी-नागर।
प्रीति परस्पर ग्रंथि न छूटै 'परमानँद'स्वामी सुख-सागर

[३६५] सारंग

❀तुम्हारे खरिक बताई हो ! वृषभानु हमारी गैया।
बार-बार द्वार ह्वै टेरत संकरषन के भैया ॥
संध्या-समै बाग तें बिछुरी अधरातिक[5] सुधि पैया।
वा बिनु मो पें रह्यौ न परै यों[6] कहत हैं कुँवर कन्हैया॥

१. मिलवत २. गोरी ३. निरखि निकट तन-मन सों नंदनँदन को
४. उनमद रूप
❀ तिहारे ...से भी प्रारंभ ५. अरध राति (बं. १२८।६) ६. छिनु (घ.)

सुनि पिय-बचन किसोरि अटा चढि जाल-रंध्र ह्वै झाँकी।
'परमानँद' चितु[1] करषि लियो उनि चंद्र-बदनि भौं बाँकी

[३६६] सारंग

गोविंद ! तेरी गाँइ अति बाठी ।
सुनि ब्रजनाथ ! दूध के लालचि मेलि सकल नहिं लाठी
अपनी इच्छा चरैं उजागर संक न काहू की मानें ।
तुम्हें पत्याइ स्यामघन सुंदर तुम्हारौ बोलु[2] पहिचानें ॥
ऊँचे कान करैं मोहि देखत बिजुकि-बिजुकि होइ[3] ठाढी
'परमानंद' नंद के घर की बाल-दसा की बाढी ॥

[३६७] सारंग

खरिक में कौन की हैं गैयाँ ।
सोने सृंग हार मोतिनि के नूपुर बाजैं पैयाँ ॥
अद्भुत रूप धेनु धौरी कौ मेर संग दिखाऊँ ।
तहाँ ठाढे मनमोहन देखे परम मुदित सचु पाऊँ ॥
सुनि री कन्हैया ! बाबा लाए ए गैयाँ हैं मेरी ।
श्रीदामा सँग कहत कान्ह सौं ते दुरि कौन कहत है तेरी॥

[३६८] सारंग

मेरौ नेंकु न छाँडौ गोहना ।
बारंबार खरिक के द्वारें हौं लै निकसी दोहना ॥

---

१. प्रभु करषि लियो चित (बं. १२८।६) २. कर ३. ह्वै (ग.घ.ज.)

कहा कहौं इक बात लाज की तुम दै पूछौ सौंह ना।
माँगत अधर-पान लर खेंचत कंध भुजा अवरोहना ॥
करत अटपटी तुम जु रसिकवर ! हम लीनी बिनु मोलना
'परमानंददास' कौ ठाकुर सब ब्रज-जन-मन-मोहना ॥

---

१३. ब्यारू

[३९९] ईमन

लाडिले बोलति ! है तोहि मैया ।
संझा-समै गोधन सँग आवत चुंबन दै करि गोद बैठैया॥
मधु मेवा पकवान मिठाई दूध भात और दार बनैया ।
'परमानंद' प्रभु करत बियारू
जसोमति देखि बोहोत सुख पैया ॥

[४००] कल्यान

चलौ लाल ! मेरें कीजै आइ बियारी ।
दूध भात अरु दार बनाई कहति रोहिनी महतारी ॥
इतनी सुनत तुरत उठि धाए प्रीति जु मनहिं बिचारी ।
'परमानँद' प्रभु की बतियाँ सुनि जसोमति जाइ बलिहार

[४०१] कान्हरौ

बियारू करत हैं बलवीर ।
आसपास सब सखा-मंडली सुबल सखा बलबीर ॥

मधु मेवा पकवान मिठाई औटि जमायो छीर ।
हँसत परस्पर खात खवावत झपटत लै कर चीर ॥
यह सुख निरखि-निरखि नँदरानी प्रफुलित अधिक सरीर
'परमानंददास' कौ ठाकुर भक्त-हेत अवतीर ॥

[४०२] कान्हरौ

दूध पियौ मनमोहन प्यारे !
बलि-बलि जाउँ बदन देखनि कौं तरसत हैं नैननि के तारे
औट्यौ दूध पीजै सुख दीजै संग लिये बलभद्र भैया रे !
'परमानँद' मोहि गोधन की सौं प्रातहि उठत करौं धैया रे!

[४०३] मल्हार

दूध पीवत भरि कनक-कटोरा हरि-हलधर बिच होरपरी री!
अरस-परस दोऊ पीवत प्यावत जन-मन मोद भरी री !
नेंन्ही-नेंन्ही बूँदनि बरसनि लाग्यो
दामिनी चमकत होत सखी री !
ऐसौ सुख देखत 'परमानँद'
ज्यों-ज्यों मानत सुफल घरी री !

१४. आसक्ति

गोपिका जू के वचन—

[४०४] आसावरी

जा दिन तें सुंदर बदन निहारयो।
ता दिन तें मधुकर-मन सों मैं
बहुत करी निकस्यो न निकारयो॥
लोक-लाज कुल-कानि जानि जिय
दुसह बिलोकि फिरौ करि छारयो।
तात मात पति भ्रात भवन में
सबहिनि कौ कहिबौ सिर धारयो॥
होनों होइ सु होउ करम-बस
सजनी जिय कौ सोचु निबारयो।
दासी भई 'दास परमानँद'
भलौ पोच अपनों न बिचारयो॥

[४०५] धनाश्री

*कहा करों मेरी माई ! नंद-लडैते मनु[1] चोरयो।
स्याम सरीर कमल-दल-लोचन
चितवत चले कछुक मुख मोरयौ॥

---

* अब हौं कहा० से भी प्रारंभ है। १. मेरौ मनु (ग. घ. ज.)

हौं अपने आँगन ठाढी ही तबहि तें द्वार ह्वै निकसे आइ
नेंकु दृष्टि दीनी उन ऊपर कर मुख मूँदि चले मुसिकाइ।
तब तें मोहि घर की सुधि भूली जब तें मेरे नैननि लाइ
'परमानंद' काम-रति[1] बाढी कबहिं मिलैं कब देखौं जाइ॥

[४०६] आसावरी

सखि! हौं अटकी इहि ठौर।
देखि कमल-मुख स्यामसुँदर कौ नैना[2] उ भए भौंर॥
घर[3]-ब्यौहार करत नहिं आवै स्रवन सुने कल गीत।
अपनी ओर बचै हौं लीनी सुबल श्री दामा मीत॥
लोक-वेद कौ मारगु छाँड्यो मात-पिता की लाज।
सबै अंग सुधि[4] भई 'परमानँद' भए राम के राज॥

[४०७] आसावरी

माई री! नाहिंन दोस गोपालैं।
मेरौ मन अटक्यो उनि[5] मूरति अंबुज-नैन बिसालैं॥
कौन-कौन कौ मनु न चुरायो वह मुसकनि वह गावनि।
वह मुरली वह चालि मनोहर वह कल बेनु बजावनि॥
अपनौ बिगारु कौन सों कहिए आपहि काज रति जोरी
'परमानँद' स्वामी मनमोहन हौं अजान मति भोरी॥

---

१. रस (च.) २. नैना उनए भोर (इ. ग. ज.)
३. गृह (इ. क. ङ. च. छ.) ४. सुद्ध (ङ. च. छ.)
५. वा. (क. ख. के अतिरिक्त)

[४०८] असावरी

मेरें माई ! इहै जतनु ।
सुनि री सखी ! करिहौं कंठ-भूषन गोविंदे रतनु ॥
नैंन-ओट कबहूँ नहिं करिहौं काहू जानि न दैहौं ।
अधिक प्रीति करि नंद-लडैतौ घालि हृदै में लैहौं ॥
कोउऽब गारि देहु सिर मेरे कोउ करौ उपहास ।
अब तौ जिय ऐसी बनि आई सुनि 'परमानँददास' ॥

[४०९] आसावरी

※मेरें माई ! हरि नागर सौं नेह ।
एक बेर कैसें छूटत हैं पूरब बढ्यो सनेह ॥
अँग-अँग निपुन बन्यो[1] जदुनंदन स्याम बरन तन[2] देह ।
जब तें दृष्टि परे नँदनंदन तब तें बिसरयो गेह ॥
कोउ निंदौ कोउ बंदौ मन[3] कौ गयो सँदेह ।
सरिता सिंधु मिली 'परमानँद' भयो[4] एक रस नेह[5] ॥

[४१०] आसावरी

×गोपाल सौं मेरौ मन मान्यो कहा करैंगो कोई री !
अब तौ चरन-कमल लपटानी[6] जो भाव सो होइ री !

※ मेरौ०, बाढ्यौ हरि नागर० से भी प्रारंभ हैं ।

१. सकल ब्रजसुंदर २. सब ३. मो मन गयो०

४. इकटक बरस्यो मेह ५. तेह (क. ख. के अतिरिक्त)

× नंदलाल सों (क.) ए री! गोपाल (ग) से भी ६. रति बाढ़ी

माइ रिसाइ बाप घर मारै हँसै बटौआ लोग री !
अब तौ जिय[1] ऐसी बनि आई बिधिना रच्यो सँजोग री !
बरु इहलोक जाउ किनि मेरो अरु परलोक नसाइ री !
नंदनँदन हौं तउअ[2] न छाँडों मिलिहों निसान बजाइ री !
बहुरि इहि[3] तनु धरि कहाँ पैहों बल्लव-भेष मुरारि री !
'परमानँद' स्वामी के ऊपर सरबसु दैहों[4] बारि री !

[४११] आसावरी

चित कौ चोर अबहि जो पाउँ ।
द्वार-कपाट बनाइ जतन करि नीकें माखन दूध खवाउँ ॥
जैसें निसंक धसत मंदिर में
तिहि औसर जो अचानक आउँ ।
गहि अपने कर सुदृढ मनोहर
बहुत दिननि की रुचि उपजाउँ ॥
लै राखौं कुच-बीच निरंतर प्रतिदिन कौ तन-ताप बुझाउँ
'परमानंद' नंद[5]-नंदन कौं घर-घर कौ परिभ्रमन मिटाउँ ❀

[४१२] आसावरी

×अब मोकों मिलै दधि कौ चोर ।
लै राखौं अपने उर-अंतर जहाँ निपट[6] साँकरी ठौर ॥

---

१. आइ बनी है ऐसी बिधिना (क.) २. कबहुँ न (क.)
३. कहा इहि तन धरि पैहों (क.) ४. दीजै (क.)
५. लाल गिरधर कों (क.)
❀ सूरसागर प० सं० २५४७ पर भी, साधारण अन्तर से
×कोउ माई ! मिलै...से भी प्रारंभ है । ६. साँकरी खोर

चूँबों गाल[1] अधर देउँ दंतनि ऐसी चोरी करै न बहोरि।
'परमानंद'[2] आइ गए मोहन
निरखि ग्वालि हँसी मुख मोरि ॥

[४१३] आसावरी

मोही री ! इन[3] नैननि की सैन ।
स्रवन सुनत सुधि-बुधि बिसरी सब
हौं लुबधी[4] मोहन-मुख-बैन ॥
सुंदर बदन घूँघट-पट कीनौ चतुरी सखी ! प्रीतम सुख दैन
अंग-अंग प्रति सहज माधुरी तेरी सौंह चित रहत न चैन
करगहि कमल खरिकके मारग उनसों बात कही कछु मैं न
'परमानँद'प्रभु सौंह बबा की मेरी यों गाँइ कहौ दुहि दैन❀

[४१४] आसावरी

नैन की सैन चले दै कानन ।
वह चितवनि मेरे हृदै में गडि रही सुंदरहास मनोहर आनन
कहि री सखी ! अब कब आवहिंगे
जोवति पंथ अकेली ठाढी ।
नंद के लाल हरयो मेरौ मनु जासों प्रीति निरंतर बाढी

---

१. मुखै अधर दंतनि दसि जासौं चोरो

२. इतनी सुनत आइ गए मोहन 'परमानंद' हँसी ३. रतनारे नैन

४. जु बँधी मोहन (ग. छ.)

❀ सूरसागर प० सं० १३६० पर भी है, साधारण अन्तर से

द्यौस जाँउ तौ सब कोउ देखै
सकुचि रही कछु मिस न बन्यो तब ।
'परमानँद'गोविंदचंद[1] बिनु बासर कलप भयो मोकों अब

[४१५] आसावरी

❀मन हरि लै गए नंदकुमारु ।
बारक दृष्टि परी चरननि पर[2]
देखनि न पायौ माई ! बदन सुचारु ॥
हौं अपने घर सचु सों बैठी पोवति ही मोतिनि कौ[3] हार।
काँकर[4] डारि द्वार ह्वै निकसे बिसरि गयो तन करत[5] सिंगार
कहा री! करों क्यों मिलिहै मोहन[6]
किहिं मिस हौं जसोदा-गृह[7] जाउँ ।
'परमानंद' हौं ठगी री ! अचानक
मदनगोपाल भाँवते नाँउ ॥

[४१६] आसावरी

मैं तौ प्रीति स्याम सों कीनी ।
कोऊ निंदौ कोऊ बंदौ अब तौ या[8] घर दीनी ॥

---

१. नँदनंदन बिनु (ड़. घ.) ❀ मो मन लै गयो० से भी प्रारंभ
२. तन. (ग. ङ. च. छ. ज.) ३. के हार (क. ग. ङ. च. छ.)
४. काँकरि (घ. ज.) ५. करन (ड़.) ६. गिरिधर (क.)
७. घर (ग.) ८. कान्ह (बं. ५।३) ९. ये धरि लीनी

जो पतिब्रत[1] तौ या[2] ढोटा सौं इनहिं समर्प्यौ देह।
जो बिभिचार तो या ढोटा सौं बाढ्यो अधिक सनेह ॥
जो ब्रत गहौं[3] सो और निबाहौं मरजादा[4] कौ भंग।
'परमानंद' नंदनंदन[5] कौ पायौ मोटौ संग ॥

[४१७] सारंग

❀जब तें प्रीति स्याम सौं कीनी।
ता दिन तें मेरे इन नैननि नेंकहु[6] नींद न लीनी ॥
सादर[7] रहत चित चाकु चढ्यो सौ और कछू न सुहाय।
मन में रहै उपाय मिलन कौ इहैं बिचारत जाइ ॥
'परमानंद' पीर[8] प्रेम की काहू सौं नहिं कहिये।
जैसें बिथा मूक बालक की अपने तन[9] मन सहिये॥×

[४१८] सारंग

या रस-बीथी[10] दिन बन जाती।
मारग खोरि खरिक गिरि गहवर
फिरत निकुंज स्याम-रँग[11] राती ॥

---

१. पतिब्रतता या ढोटा० (ङ. छ.), पतिव्रता तौ या (इ. च.)
२. नँदनंदन सों (ग. ज.) ३. गह्यो (ग.) करों (च.)
४. नहिं मरजादा भंग ५. लाल गिरिधर कौ (क.)
❀ जा दिन प्रीति (बं. २३।११) से भी प्रारंभ है।
६. कबहूँ नींद (इ.) ७. सदा रहतु (ग. ज.)
८. मरम की बातें काहू सों ९. ही जिय सहिये (बं. १९३।६)
× सूरसागर प० सं० २४८३ पर भी साधारण अन्तर से।
१०. बँधी (इ.) ११. रसमाती (इ. घ.)

चरचित चतुर भाव अंतरगत
हिलि-मिलि नैन सों[1] नैन अरुझाती ।
चलि-चलि उलटि पलटि ठाढी ह्वै
कमल-नयन-मुख मुरि मुसिकाती ॥
अति कमनीय अंग छबि निरखत
आवत गहगहाइ भरि छाती ।
'परमानंद' किसोर नंद-सुत
मदनमोहन[2] मेरे बाल सँघाती ॥

[४१६] सारंग

ता दिन तें मोहि अधिक चटपटी ।
जा दिन तें देखे इनि[3] नैननि
गिरिधर बाँधे माई ! पाग लटपटी ॥
चले जात मुसिकाइ[4] मनोहर हँसि जु कही इक[5] बात अटपटी
हौं सुनि स्रवन भई अति आतुर परी जु हिये[6] मेरे मदनसटपटी
कहा री ! करों गुरुजन भए बैरी
बैर परें मोसों[7] करत खटपटी ।
'परमानँद' प्रभु रूप-विमोही या ढोटा सों प्रीति अति जटी

१. नैननि (क.) २. लाल गिरिधर (क.), मदनमनोहर बाल (च.)
३. नैननि भरि (इ. घ.) ४. मुसिकात (इ. घ. च.)
५. मोहि (च.) ६. हृदै (ग. ङ. च. छ. ज.)
७. नित (इ. ग. घ. ङ. च. ज.)

[४२०] सारंग

ए ढोटा हठि हरत परायौ मन ।
देखत रूप-ठगौरी सी[1] लागति
जगत-विमोहन स्याम बरन[2] तन ॥
दिन-दिन चौंप चौगुनी लागति
पावस रितु मानों नौतन घन ।
दामिनि कोटि पीतांबर की छबि
'परमानँद' राजत वृंदावन ॥

[४२१] सारंग

चित न चलै चरननि तें माई !
कैसें करि घर जाउँ सखी री !
मनु अरुभयो मेरौ कुँवर कन्हाई ॥
मुरलि कौ सबद सुन्यो जब स्रवननि
मोहन[3] कुंज-निकुंज बुलाई ।
गिरिधरलाल रसिक चित चोरयो मोहन प्रेम-ठगौरी लाई
मात-पिता मेरौ कहा करहिंगे
अब तौ जिय ऐसी बनि आई ।
'परमानँद' स्वामी सौं मिलि कें
और बात सब देहुँ बहाई ॥

---

१. लाई (इ. घ.) २. सुंदर (इ. घ. च.) ३. मो हरि (च.)

[४२२] सारंग

एक गाँउ कौ बासु कैसें करि धीरज धरों ।
लोचन लुब्ध अटक नहिं मानत जद्यपि जतन करौं ॥
वे हरि मगु गवनत गोचारनु हौं दधि लैं निकरौं ।
पुलकित रोम[1] हरष गदगद स्वर आनँद उमगि भरौं[2] ॥
पलक-ओट छिनु जात कलप भरि विरह-अनल जरों
'परमानंद' कहाँ लगु अनुदिन आरज-पथहि डरों ॥❀

[४२३] सारंग

करनि दै लोकनि[3] कों उपहास ।
मन क्रम बचन नंदनंदन कौ निमिष न छाँडों पास ॥
सब कुटुंब के लोक चिकनियाँ मेरे भाएँ घास ।
अब तौ जिय ऐसी बनि आई क्यों मानौंगी त्रास ॥
अब क्यों रह्यौ परै सुनि सजनी! एक गाँव कौ बास ।
ए बातें नीकें जानतु है[4] जन 'परमानँददास' ॥×

[४२४] सारंग

हौं नँदलाल बिना न रहों ।
मनसा बाचा सुनि[5] री सखी! हौं हित की तोसों कहौं॥

---

१. प्रेम (घ.) २. गरों (छ.)

❀ 'कुंभनदास' की छाप का भी (बं. २१।८)
और सूरसागर पद सं० २२८३ पर भी प्राप्त है

३. लोगन (इ. ग. घ. च. ज.) ४. हो (छ.)

× सूरसागर प० सं० २२८२ पर भी साधारण अन्तर से ।

५. और करमना हित (ग. ङ. छ. ज.)

जो कछु कोउ कहौ सिर ऊपर सो हौं सबै सहौं ।
सदा समीप रहौं मोहन[1] के सुंदर बदन चहौं ॥
इहि तन हरि कौं समर्पनु कीनौं वह सुख कहाँ लहौं ।
'परमानंद' नंदनंदन[2] के चरन-सरोज गहौं ॥

[४२५] सारंग

औचकाँ हरि आइ गए ।
हौं दरपनु लै माँग सँवारति चारों नैना एक भए ॥
नेंकु चितै मुसिकाइ जु मेरे प्रान चुराइ लए ।
अब तौ भई चौंप मिलिबे की बिसरे देह सिंगार ठए ॥
तब तें कछु न सुहाइ बिकल मनु ठगी नंद-सुत स्याम नए
'परमानँद' प्रभु सों रति बाढी मदनगोपाल[3] आनंदमए॥

[४२६] सारंग

❀ गिरिधर लाडिलौ लडबौरा ।
अपने रंग फिरत गोकुल में स्याम बरन जैसें भौंरा ॥
देखि स्वरूप ठगी ब्रज-बनिता ओढैं पीत-पिछौरा ।
माथैं[4] अमल-बरन कौ टिपारौ तन चंदन की खौरा ॥

---

१. गिरिधर के (क.) २. लाल गिरिधर के (क.) मदनमौहन के (ग.ज.)
३. गिरधर लाल आनंद (क. ग. ज.)
❀ गोविंद लाडिलौ (बं. १३०।२) से भी प्रारंभ है ।
४. किंकिनि-क्वनित चारु चलि कुंडल तन० (बं. १३०।२)

जब[1] मुसिकाइ चले गज की गति मेरौ मनु नहिं ठौरा।
भृकुटी कुटिल तैसिये चितवनि जिय भावै नहिं औरा॥
जाकी माया जगत भुलानों सकल देव सिरमौरा।
'परमानंददास' कौ[2] ठाकुर संग ढिठौंना गौरा॥

[४२७] सारंग

हौं तौ चरन-कमल-रज[3] अटकी।
मदनगोपालै कैसें छाँडों पाछें बहुत दिन भटकी॥
मात-पिता सज्जन- बंधव मिलि बार-बार हौं हटकी।
निंदा करत हँसत मोको मारत बरजत पहिलें उठि सटकी
ए तौ सयानु कियो मैं बुधिबल
भलौ[4] भयो समरथ सों लटकी।
'परमानँद' प्रभु जानि सिरोमनि
लागी काम-कला[5] चतुर नट की॥

[४२८] सारंग

मेरौ माई! माधौ[6] सों मन मान्यों।
अपनौ तन अरु[7] कमल-नयन कौ एक ठौर करि सान्यों॥

---

१. निरतत गावत बसन फिरावत हाथ फूलनि के झौंरा।
माथे कनक-बरन कौ टिपारौ ओढें पीत पिछौरा (बं. १३०।२)
२. की जोवनि संग (बं. १३०।२) ३. पर (ग.)
४. भले समरथ सों (इ. घ. ङ. छ.) ५. कला वा नट को (ङ. छ.)
६. कान्ह सों (बं. ५।३), माई! मेरौ मोहन सों (बं. १५।२)
सखी री! स्याम सों (बं. २७।५) ७. औ वा ढोटा कौ

लोक-वेद की[1] लाज तजी मैं न्यौंति आपनें आन्यों ।
एक गोबिंदचंद के कारन बैरु सबनि सों ठान्यों ॥
अब क्यों भिन्न[2] होहि मेरी सजनी ! दूध मिल्यौ जैसें पान्यों
'परमानँद' मिलि[3] हों मोहन कों है पहिलौ पहिचान्यों❀

[४२६] सारंग

मेरें नंद कौ लाल जिय बस्यो ।
तब तें सब[4] सुख भयो सखी री! नेंकु चितै जब[5] मुरि मुस्यो
नागरता की रासि साँवरौ इहि स्वरूप[6] मन माँहि कस्यो ।
'परमानद' स्वामी सुख-सागर जाके रस[7] सब ब्रज रस्यो॥

[४३०] सारंग

×मेरौ मन बावरौ भयो ।
लरिका एक ह्याँ हुतौ ठाढौ ताहि के संग गयो ॥
जानों नहीं कवन कौ ढोटा वेष[8] विचित्र ठयो ।
पीतांबर-छबि निरखि हर्‌यो मनु पढि कछु मोहि दयो॥

---

१. उपहास न मान्यो बं. (बं. २७।५)
२. जात निबेरि सखी री ! मिल्यो एक पै-पान्यों (बं. २७।५)
३. दास कौ ठाकुर, 'परमानँद' प्रभु मेरे जीवन (बं. २७।५)
❀सूरसागर पद सं० २२८० पर भी 'सखी री ! स्याम सों मन मान्यो
४. सरबस भयो ५. मुरि हँस्यो ६. सुरूप (इ.)
७. रस-बस सब (बं. ११६।१) ×माई री ! मेरौ० से भी प्रारंभ है
८. भेख (ग. ज.) चित्र विचित्र

ग्वालिनि एक पाँहुनी[1] आई ताहि[2] की इहि गति कीनी
'परमानँद' प्रभु हँसत सैन दै प्रेम पानि गहि लीनी ॥

[४३१] सारंग

❀ मेरौ मन कान्ह हरयो ।
गयो जु संग नंदनँदन के उहाँ तें न टरयो ॥
कहा करों फिरि बगदि न आयो स्याम-समुद्र परयो ।
अति गंभीर बुद्धि कौ आलै प्रेम-पीयूष भरयो ॥
अब तौ जिय ऐसी बनि आई भवन-काज बिसरयो ।
'परमानंद' भले ठाँ अटक्यो इहि सब रहौ धरयो ॥

[४३२] सारंग

जहँ-जहँ चरन-कमल माधौ के तहीं-तहीं मन मोर ।
जे पद-कमल फिरत वृंदावन गो-धन संग किसोर ॥
चिंतन करों जसोदानंदन मुदित साँझ अरु भोर ।
कमल-नयन घनस्याम सुभग-तन पीतांबर के छोर ॥
इष्ट देवता सब बिधि मेरे जे माखन के चोर ।
'परमानंददास' की जीवनि गोपिनि पट झकझोर ॥

[४३३] सारंग

मेरौ मन बिगरयो दुहुँ ओर ।
सुंदर बदन मुगट की सोभा स्रवननि[3] मुरली घोर ॥

---

१. पाहुँनि एक अपूरब (बं. १३२।१) २. ताहू (इ. ग. घ. ड. छ. ज.)
❀ माई ! मेरौ मन, माई री ! मेरौ मन...... से भी प्रारंभ हैं ।
३. स्रवन परी मुरली की घोर (इ. घ.)

तब हौं भाग्य[1] भवन तें निकसी हरि आए इहि ओर ।
मृदु मुसकानि बंक अवलोकनि सरबसु लीनों चोरि ॥
हौं बहुतें समुझाइ रही पै कछु बस नाहिंन मोर ।
रह्यो उपचार 'दास परमानँद' बिनु नागर नंदकिसोर ॥

[४३४] सारंग

❀मन हरयो कमल-दल-नैना ।
चितवनि चारु चतुर चिंतामनि मृदु-मधु माधौ-बैना ॥
कहा करों घर गयौ न भावै चलनि बलनि गति थाकी
स्यामसुँदर हठि दासी कीनीं लखि न परै गति ताकी
कहौ[2] उपदेस सहचरी मोसों कहाँ जाउँ कहाँ पाउँ ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर जहाँ[3] लै नैन मिलाउँ ॥

[४३५] सारंग

×केतौ सुख लागत माई री ! नैननि नैन मिलत ।
जब गोपाल मनोहर[4] मूरति मधुरी चालि चलत ॥
इहि आनंद कहत नहिं आवै देखत नंदकुमार ।
बोलत हँसत बिलोकत नीकें बलि मोहन अवतार ॥

---

१. भागि (ग. ज.) भाजि (इ. घ.)
❀मेरी माई ! मनु, माई मेरौ मन......से भी प्रारम्भ हैं ।
२. करि ३. जिहि (ङ. छ.)
× कितौ (क.) से भी प्रारंभ है । ४. मनमोहन (इ. ग. ज.)

हौं जानति हौं अपने जिय की कतहूँ जानि न दैहौं ।
'परमानँद' प्रभु इहईं राखौं लाइ[1] हिये मँहि लैहौं ॥

[४२६] सारंग

अब हौं कैसें रहौं घर[2] ।
मदनगोपाल बजाइ मुरली मधुर मनोहर सारँग के स्वर॥
स्रवन सुनत उठि चली सखी री !
दुहुँ दिसि लागे मकरध्वज-चर ।
'परमानंददास' बनि[3] आई सनमुख धाइ राति तजे घर॥

[४३७] सारंग

जकि रही सुनि मुरली की टेर ।
इत तें हौं निकसी पानी मिस तब[4] ही गाँइनि की बेर॥
मोरचंद्रिका धरें[5] स्यामघन चपल नयन की हेर ।
'परमानँद' प्रभु मिले री[6] ! डगर मोहिं[7] आवत भई है अबेर॥

[४३८] सारंग

साँवरे मनु हर्यो हमारौ कमल-नयन जदुराई[8] ॥
चित्त चुरायो माखनचोरा ।
ना जानौं कहाँ गए नंदकिसोरा ॥

---

१. घालि (इ. घ.) २. अपने घर (बं. ३७१२)
३. बन धाई सनमुख आई राति तजें० ४. जबही (इ. घ.)
५. मुकुट बिराजत, सीस बिराजत ६. खिरक में जातें भई अबेर
७. में (इ. ग. घ. ङ. छ. ज.)
८. ब्रजराई (क. ग. ज.), लाल जदुराई

बाल-विनोद कुँवर कन्हाई ।
'परमानँद' स्वामी सुखदाई ॥

[४३९] सारंग

मैं मन मोल गोपालहि[1] दीनों ।
अंबुज-बदन लालगिरिधरकौ रूप नैन निरखनि कों लीनों
इनि आकरषि लियो अपनी[2] रुचि
उनहि तुला धरि करि कस कीनों ।
वे लै चले दुराइ[3] जतन कै
इनहिं चितै पलकनि पल छीनों ॥
अब वे पलटि न देत आप तें
इनहिं कह्यो या तें कछु हीनों ।
'परमानँद' प्रभु नँदनंदन सों नौतन नेह बिधाता कीनों❀

[४४०] सारंग

×सखी री ! मिलबहु नंदकिसोर ।
एक बार मोहि नैन दिखाबहु मेरे मन कौ चोर ॥
जामिनि[4]-जाम गनत नहिं खूटत क्यों पाऊँगी भोर ।
सुनि री सखी ! अब कैसें जीजै सुनि तमचुर-खग-रोर

---

१. गोपालै (ङ. छ.) २. अपने मन (ज.) ३. चुराइ (ङ. छ.)
❀ सूरसागर प० सं० ४१४९ पर भी साधारण अन्तर से ।
× मोहि को मिलवै (बं. ३७१२) ऐसा भी प्रारंभ है ।
४. जागत गगन गनत० (बं. ३७१२)

जो पै प्रीति सत्य अंतरगति मति काहू सों निहोर ।
'परमानँद' प्रभु आनि मिलहिंगे सखी-सीस जिनि ढोर।।

[४४१] सारंग

कैसें छूटै स्याम-सगाई ।
कोऊ निंदौ कोऊ बंदौ अब तौ इहै बनि आई ।।
मोहन मदनमनोहर मूरति सकल काम-सुखदाई ।
देखत रूप अनूप स्याम कौ नैननि परै जुडाई ।।
लोक-वेद की लाज तजी मैं जिनि[1] कोउ बरजहु माई !
'परमानँद' स्वामी पै जैहों मिलिहों ढोल बजाई ।।

[४४२] सारंग

कैसें करि कीजै बेद कह्यो ।
दुख कौ मूल सनेह सखी री ! सो उर पैठि[2] रह्यो ।।
हरि-मुख निरखत विधि-निषेध कौ नाहिंन ठौर रह्यो ।
'परमानँद' प्रभु[3] केलि-समुद्र में पर्‍यौ सु लै निबह्यो।।

[४४३] बिलावल

मोहन कौ मुख देखत रही री !
चलि न सकति मन की गति थाकी
नंदकिसोर सनेह गही री !

---

१. जो कोउ (क.)
२. बैठि (इ.) ३. प्रेम-सागर में गिरह्यो सु लीन भयो

अपने भवन तें कुँवरि राधिका नील[1] पटंबर पहरि चली री!
खेलत बीच मिले मनमोहन[2] नंदगाँउ साँकरी गली री!
स्यामा विचित्र नवल नागरी कमल-नयनकी अति प्यारी री!
'परमानँद' स्वामी रति-नागर चितै बान मनसिज मारी री

[४४४] गौरी

कहा करों जो हौं मदन-जगाई।
चारि जाम निसि बैठी जागों मन उहँई जहाँ कुँवर कन्हाई
पाँच बरस के स्याम मनोहर जमुना-तीर खेलत देखि[3] आई
तनक भनक मेरे कान परी तब कहत सुनी नँदराइ[4]-दुहाई
छिनु बाहिर छिनु भीतर आऊँ प्राची दिसि जोवतिमेरीमाई!
'परमानंद' भोर कब ह्वै है उहँई[5] जाउँ उठि बिनु हि बुलाई॥

[४४५] गौरी

❀ बन्यो आली! माधौ सों सनेहरा।
जैहों तहाँ जहाँ नँदनंदन राज करौ इहि गेहरा॥
अब तौ जिय ऐसी बनि आई कियो[6] समर्पनु देहरा।
'परमानंद' चली भीजत ही बरसनि लाग्यो मेहरा॥

---

१. नीलांबर तन पहरि (इ. घ.) २. नँदनंदन (क.)
३. लखि ४. जब नंद-दुहाई (इ. घ.) ५. व्हौं हि (इ.)
❀ बन्यो है आली (क.), बढ्यो है (इ. ग. घ. ज.) से भी प्रारंभ हैं।
६. सुत-पति छाँड्यो देहरा (क.)

[४४६] गौरी

मन जु पराएँ बस परयो नैननि के घालें ।
स्याम-धाम में चुभि रह्यो परयो गरुएँ पालें ॥
निकसत कठिन कहा करों समुझायो न मानें ।
कमल-पंक[1] में गडि रह्यो सुखु-दुखु नहिं जानें ॥
सुख पायो श्रीमुख[2] देखें ससि[3] बदन लुभानों ।
'परमानंद' उपज्यो जहाँ फिरि ताहि समानों ॥

[४४७] गौरी

❀ पिय-मुख देखत ही पै रहिये ।
नैननि कौ सुख कहत न आवै जा कारन सब सहिये ॥
सुनहु गोपाललाल ! पाँइ लागों भली पोच लौं बहिये ।
हौं आसक्त भई या रूपै बडे भाग तें लहिये ॥
तुम बहु-नाइक चतुर-सिरोमनि मेरी बाँह दृढ गहिये ।
'परमानँद' स्वामी मनमोहन तुमही तें निरबहिये ॥

[४४८] गौरी

हरि सों एकरस प्रीति रही री !
तन-मन प्रान समर्पनु कीनों अपनों नेम ब्रत लौं निबही री

---

१. नैन में चुभि रह्यो २. आनंद भयो देखि बदन लुभ्यानों (बं. ११६।१)
३. सखि ! (क. ङ. छ.)
❀ प्रीतमु देखत (ख.), गिरिधर देखत (बं. ३७।३) से भी प्रारंभ हैं।

प्रथम भयो अनुराग दृष्टि तें
मानहुँ रंक निधि लूटि लई री !
कहत सुनत चित और[1] न कीनों
इहैं लगन जिय[2] पैंड गही री !
मरजादा औलंघि सबनि की लोक-वेद-उपहास सही री!
'परमानंददास'गोपिनि की प्रेम-कथा सुक व्यास कही री!

[४४६] गौरी

प्रेम की पीर सरीर न माई !
निसि-बासर जिय रहत चटपटी इहि धकधकी न जाई॥
प्रबल सूल रह्यो न जात सखी री ! आवैं रोइ न गाई।
कासों कहों मरम की माई ! उपजी कौन बलाई ॥
जो कोउ खोजैं खोज न पइयतु ताकौ कौन उपाई ।
हौं जानति हों मेरे मन की लागी है कछु बाई ॥
पाछें लगे सुनत 'परमानँद' हरि-मुख मृदु मुसिकाई ।
मूँदि आँखि आए पाछे तें लीनी कंठ लगाई ॥

[४५०] कल्यान

तातें माई ! भवन छाँडि बन जइयतु[3] ।
आँखि-रस कन-रस वत-रस सब-रस नंदनँदन में पइयतु॥

---

१. अनत न (इ. घ.) २. उर (इ. घ.) ३. जैये, पैये, गैये,भैये आदि

कर-पल्लव गहि[१] कंध[२] बाहु धरि संग मिलें[३] जसु गइयतु
रास-बिलास विनोद महा[४] सुख माधौ के मन भइयतु ॥
इहि[५] सुख सखी कहत नहिं आवै देखत दुख बिसरइयतु
'परमानँद' स्वामी के[६] संगम आनँद प्रेमु बढइयतु ॥

[४५१] हमीर

❀चितै-चितै चित चोरयौ री माई ! बाँके लोचन नीके ।
वह मूरति खेलति नैननि में लाल भाँवते जी के ॥
एक बार मुसिकाइ चले सब हृदय गडे गुन पी के ।
'परमानँद' प्रभु[७] आनि मिलावौ प्रौढ बरस एती के ॥

[४५२] कानरौ

मैं अपनों मन हरि सों जोर्‍यो ।
हरिसों जोरि सबनि सों तोरयो ॥
नाँच नच्यों तब घूँघट कैसो लोक-लाज-डरु फटकि[८] पछोरयो[९]
आगें पाछें सोच मिट्यो सब माँझ हाट[१०] मटुका सौं[११] फोरयो

१. धरि (ग. ज.) २. कंठ बाहु दै संग० (इ.) ३. लिएँ (ङ.छ.) मिलै गुन
४. विविध सुख (क. ख. के अतिरिक्त), अनूपम
५. देखें बनें कहत नहिं आवै मान दुःख (बं. ७०।१०)
और कहा कहौं सुनि मेरी सजनी ! दारुन दुख० (बं. ११३।६)
६. कौ संगम भाग बडे तें पइयतु,
के संगम मिलि रस-सिंधु बढइयतु (बं. ११३।६)
❀ माई री ! बाँके लोचन नीके (ख.) से भी प्रारंभ है। ७. कों (ख.)
८. पटकि (छ.) ९. पिछोरयो (इ. छ.)
१०. बाट (ग. ज.) ११. लै (ख. के अतरिक्त)

कहनौं[1] होइ सु कहौ सखी री ! कहा भयो काहू मुख मोरयो
परमानँद'प्रभु लोक हँसनि दै लोक-वेद सों तिनुका तोरयो॥❀

[४५३] आसावरी

जा दिन तें आँगन खेलत देख्यो जसोमति[2] कौ पूतु री !
तब तें गृह सों[3] नातौ टूटौ जैसें काचो सूतु री !
अति बिसाल बारिज-लोचन राजत[4] हैं काजर की रेख री !
रच्छा[5] दै मकरंद लेत मानों अलि ग्वालिनि के भेष री॥
राजत हैं दोइ[6] दूध की दँतियाँ जगमग-जगमग होति री !
मानहुँ मकरत-मंदिर में रूप-रतन की जोति री !
स्रवननि उत्कंठा रही जब बोलत तुतराइ री !
मनहुँ कुमुदिनी कामन पूजी पूरन इंदुहि[7] पाइ री !
'परमानंद' देखि सुंदर तन आनँद उर न समाइ री !
चले प्रबाह नयन-मारग ह्वै का पैं रोके जाइ री !

[४५४] गौरी

कोउ माधौ लेइ माधौ लेइ बेचति काम-रस।
दधि[8] कौ नाउँ कहि न आवै परी जु प्रेम बस ॥

---

१. कहन (इ.)

❀ सूरसागर प० सं० २२७६ पर भी साधारण अन्तर से।

२. जसोदा (च.) ३. कौ (इ.), तें (छ.)

४. रंजित (इ.), राजित (क. घ.) ५. रक्षा (क)

६. द्वै (ग. ज.) ७. चंद (ग. ज.) ८. गो-रस के हेत आवै परी०

गो-रस बेचनि चली वृंदा[1] जु वन माँझ ।
हरि के स्वरूप भूली परि जु गई साँझ ॥
बिरह-ब्याकुल भई बिसरि गयो है धामु ।
'परमानंद' प्रभु जगत-पावन सुनि नामु ॥

[४५५] गौरी

प्रीति तौ एक हि ठौर भली ।
इहऽब कहामति चरन-कमल तजि फिरै जु चली-चली॥
ते जानें जे सब बिधि नागर सार-सार-ग्रही लोग ।
पायो स्वाद[2] मधुप रस-लोभी स्याम-धाम-संजोग ॥
'परमानंददास' गुन-सुंदर नारदादि मुनि ज्ञानी ।
सदा बिचार-विषय-रस-त्यागी जसु गावत मधु बानी॥

[४५६] सारंग

❀मदनगोपाल के रंग राती[3] ।
गिरि-गिरि परति सँभार न तन की अधर-सुधा-रसमाती[4]
वृंदावन कमनीय सघन बन फूली चहुँदिसि जाती ।
मंद सुगंध बहै मलयानिल अति जुडाति मेरी छाती ॥

---

१. वृंदावन माँझ २. सार (छ.)
❀ गिरिधरलाल के......से भी प्रारंभ है
३. राची (बं· २७।४) ४. माची (बं.२७।४)

आनँद-मगन रहति प्रीतम-सँग दिवस[1] न जानति राती ।
'परमानंद' सुधाकर हरि-मुख पीवत हू न अघाती ॥

[४५७]	सारंग

❀अपने लाल के रंग राती ॥
जा दिन तें कटि-बसन पलोव्यो ता दिन तें संग जाती ।
बन झूँडे झूँडे बन-तर हरि सुरत संग ही खाती ॥
माता-पिता जनम के दाता नाहिंन करम-सँघाती ।
'परमानँद'प्रभु अँग-अँग नागर तज्यो न बाल-सँघाती॥

[४५८]	गौरी

मुरली कौऽब बजावनहारौ कहे धौं माई ! कहाँ रह्यो[2] ।
नेंसकु[3] बदन दिखाइ मुकुंदै बिरह न जातु सह्यो ॥
सबहिं गोपिनि कें प्रीति एकरस हृदै सनेह गह्यो ।
ऐसी भक्ति नंदनंदन की पुन्यनि पुंज लह्यो ॥
आजु गहर लाग्यो गो-चारन बासर तौ निबह्यो ।
रजनी अधिक गई 'परमानँद' लोचन नीर बह्यो ॥

[४५९]	सारंग

माई ! हौं अपने गोपालहि गाउँ ।
सुंदरस्याम कमल-दल-लोचन देखि-देखि सुख पाउँ ॥

---

१. द्यौस (क.)
❀ मोहनलाल, मदनगोपाल से भी प्रारंभ हैं
२. गयो ३. नेंकू न बदन (क. ग घ. ङ ज.)

जे ज्ञानी ते ज्ञान बिचारौ जे जोगी ते जोग।
कर्मठ होइ सु[1] कर्म विचारहु जे[2] भोगी ते भोग ॥
कबहुँक ध्यान धरत पद-अंबुज कबहुँ बजावत बेनु।
कबहुँक खेलत गोप-वृंद-सँग कबहुँ चरावत धेनु ॥
अपने अंस की मुगति सजी है माँगि लियो संसार।
'परमानँद' गोकुल मथुरा मँहि उपज्यो इहै बिचार ॥

[४६०] आसावरी

जद्यपि करि जानति हौं मानु।
मुरली-धुनि सुनि गए हीं बनै मोहिं उहाँ ई रहतु मेरौ[3] कानु
नेंकु परसु जिनि हरि सों कीनों ताहि रुचत क्यों आनु
सुनि री सखी! मोहि क्यों बिसरतु जिनि पायो रति-दानु
सब चतुराई मेरी बिसरि जाति है जबहि करत कल गानु
'परमानँद' स्वामी रति-नागर जाननि हू में जानु ॥

[४६१] आसावरी

साँवरौ बदन देखि लुभानी।
चले जात चितयो फिरि मो तन तब तें संग लगानी॥
वे उहि घाट पिबावत गैयाँ हौं इततें गई पानी।
कमल-नयन उपरैना फेरयो 'परमानंद' हिं जानी ॥

---

१. ते (इ. ग. घ. ज.) २. भोगी होइ सो भोग
३. मेरे (क. ख. के अतिरिक्त)

[४६२] गौडी

जाउँगी वृंदावन भेटोंगी गोपाल[1] ।
देखोंगी नयन भरि स्याम-तमाल[2] ॥
कालिंदी-तट चारत धेनु ।
संग सखा बजावै[3] मृदु बेनु ॥
मोर-मुगट गुंजा-अवतंस ।
दसन बसन कूजित[4] कल हंस ॥
'परमानँद' प्रभु गोधन[5]-पाल ।
लीला-सागर मदनगोपाल[6] ॥

[४६३] सोरठी

माई ! हौं कहा करों न भावै मोहि घर कौ आँगनु ।
कठिन ठगौरी मेली नंद के नंदनु ॥
तरनि-तनया-तीर खेलत स्याम-सरीर ।
लोचन भरि देखों[7] रोहिनी-नंदन-वीर ॥
कैसें करि भवन जाउँ मन नहिं लागै ठाउँ ।
मोहन-मूरति की हौं बलि-बलि जाउँ ॥
निंदत सकल लोक-लाज कुल-सील जाई ।
'परमानँद' स्वामी सों अति रति बनि आई ॥

---

१. गोपालै (२) तमालै ३. बजवत
४. कूजै (इ. घ.) ५. त्रिभुवन-पाल
(६) गिरिधरलाल (क) ७. देख्यो (छ. घ. च.)

[४६४] रामग्री

❀हरि जू कौ दरसन भयो सवेरौ।
बहुत लाभ पाऊँगी माई! दह्यौ बिकैहै[1] मेरौ॥
गली साँकरी एक जने की भटकि[2] भयो भटभेरौ।
अंक दै चलौ सयानी सुंदरि हरि[3] कौ बदन फिरि हेरयौ॥
प्रातहि[4] मंगल भयो सखी री! है सब काज भलेरौ।
'परमानँद' प्रभु अचिंते[5] भेटे भव-सागर कौ बेरौ॥

[४६५] बिलावल

कोट हू तें कठिन भ्रकुटि की ओट।
सर हू तें सरस सबद की चोट॥
जानें चतुर न जानें बोट।
प्रेम के फंद[6] कहा बड-छोट॥
'परमानंद' प्रीति की जोट। अब कहाँ जैवौ परे[7] बगरोट

[४६६] गौरी

❀ ह्याँ तौ हरि की-सी भाँति बजावत गौरी।
हौं इहि घाट-बाट गृह[8] तजि कें सुनत बेनु धुनि दौरी॥

❀ लाल कौ (बं. ७।४) से भी प्रारंभ है. १. बिकैगौ
२. भट्ट भयो ३. कमलनैन ४. भोरै मंगल
५. ग्वालिनि (बं. ११।६) मिले अचानक
६. बंद (च) ७. पराए बगरोट (छ)
❀ हरिजू राग अलापत गौरी (बं. १५।२) से भी प्रारंभ है
८. घर (ग. ज.)

गई हौं तहाँ जहाँ निकुंज-बन अरु बैठिक[1] सिल चौरी ।
देखी मैं पीठ डीठ द्रुम-ओझिल फरकत पीत पिछौरी॥
लीनी हौं[2] बोलि तहाँ मेरी सखी री ! देखि बदन भई बौरी
'परमानंद' नंदनंदन तोहि[3] मिलिहैं री ! भरि कौरी ॥

[४६७] बिलावल

आछे-आछे बोल गडे ।
कहा करौं[4] उर तें नहिं निकसत स्याम-मनोहर चतुर बडे॥
मेरें नेंक आउ री भामिनि ! रहसि बुलावत रूख चढे ।
'परमानँद' स्वामी रति-नागर प्रीति बढावन कुँवर लडे॥

[४६८] सारंग

मैं हरि की मुरली बन पाई ।
सुनु जसोमति ! सँग छाँडि आपुनौ
कुँवर जगाइ दैनि हौं आई ॥
सुनि पिय-बचन बिहँसि उठि बैठे अंतरजामी कुँवर कन्हाई
मुरली के सँग हुती मेरी पौंहौंची दे राधे ! वृषभानु-दुहाई॥
मैं नाहिंन चित लाइ निहारयो चलहु संग ठौर देहुँ बताई
उमगि प्रीति भई चित अंतरगत
दोउ जन पढे माई ! एक चतुराई ॥

---

१. अरुबे निकसेऽव चोरी (ब.) बैठे किसलय चोरी (ग. ज.)
२. बोलि तहाँ सब सजनी (बं. १५।२) ३. मोहि मिले प्रेम भरि (बं. १५।२)
४. कहौं (ड.)

पायो अपनौ परम मनोरथ घर बैठें जसोमति बौराई ।
'परमानंददास' इहि जानी
जिनि इहि केलि जनमु भरि गाई❀ ॥

[४६९] धनाश्री

सखी री ! जीजति हौं मुख हेरें ।
को मेरौ सगौ न हौं काहू की कहति सबनि सों टेरें ।
जहाँ मन हठयो सोई भलें करिहौं कहा भयो कहे तेरें ।
'परमानंद' हिलग[1] की बातें निबरत नाहिं निबेरें ।

[४७०] सारंग

सखी री ! लोभी मेरे नैन ।
बिनु देखें चटपटी सी लागति देखें उपजत चैन ॥
मोर-मुगट काँछे पीतांबर सुंदर मुख के बैन ।
अंग-अंग छबि कहि न परति है निरखि थकित भयो मैन॥
मुरली-धुनि ऐसी लागति है चितवें खग मृग धेन ।
'परमानँद' प्रेमी के ठाकुर वे देखौ ठाढे ऐन ॥

[४७१] गौरी

मोहन मोहिनी पढि मेली ।
देखत ही तन-दिसा भुलानी को घर जाइ सहेली !
का के मात तात अरु भ्राता को पति नेह नवेली ?
का की लोक-लाज-डरु कुल-ब्रत को बन भ्रमति अकेली?

❀ सूरसागर प० सं० १८०४ पर भी है
१. लगन (इ.)

तातें कहति मूल मति तोसौं एक संग मिलि खेली ।
'परमानँद' स्वामी मनमोहन स्रुति मरजादा पेली ॥

[४७२] सारंग

देखौं को मन राखि सकै री !
वहमुसिकनि वहचारुबिलोकनि अवलोकत दोउनैन छकैरी
जिनि कौ अनुभव कबहू नाहिंन ते घर बैठी न्यात बकैरी!
जिनि न सुनी मुरली वह काननि
ते पसु-पंछी-मृग बिथकै री !
बिनु देखें अब रह्यो न जाई सुँदर बदन कुटिल अलकै री!
'परमानँद'प्रभु इहै अवस्था जे हरि-रूप निरखि अटकै री!

[४७३] सारंग

या ब्रत[१] तें कबहूँ न टरौं री !
बंसीबट मंडप बेदी रचि कुँवर लाडिलौ लाल बरौं री !
इत जमुना उत मानसरोवर भाँवरी बीच फिरौं[२] री !
बरसानौ[३] प्यौसार हमारौ अपजस तें कबहू[४] न डरौं री !
कुंज-कुटी निज धाम हमारौ आनँद[५]-उमगि[६] भरौं री !
'परमानँद' प्रभु अँग[७]-अँग नागर
कुँवर कान्ह[८] सँग केलि करौं री ॥

---

१. ब्रज (ङ. च.) २. परौं री ! (क.)
३. वृषभान-गाँउ प्यौसार हमारौ (क.) ४. क्योंहू (क.)
५. उमगि-उमगि रस-सिंधु भरौं री ! ६. उतंग (ग.)
७. कुंवर लाडिलौ स्यामसुँदर सँग केलि० ८. स्याम (ग. ङ. छ.)

[४७४] सारंग

हौं लोभी लटकनि लाल की ।
मुरि मुसिकानि आनि उर-अंतर निकसत नहिं सरसाल की
बाँकी पाग राग मुख सारँग मधुप-लपट लट माल की ।
सखा सुबल के अंस बाहु दिएँ बलि गई दैन उगाल की
चंपक-दाम बीच उर चमकति[1] स्रक या सुमन गुलाल की
चंचल दृष्टि समर की सेना डोलनि कमल कर नाल की ॥
उनि मेरौ सरबसु चोरयो री ! अरु लई चाल मराल की
अब इहि देह दूसरौ न छुइहै 'परमानँद' गोपाल की ॥

[४७५] सारंग

ता दिन तें उहाईं मन मोर ।
जा दिन तें मेरे इन स्रवननि सरस सुनी मुरली की घोर॥
देह-दसा तन की सुधि बिसरी चितवत स्याम-मनोहर ओर
मनहुँ कछू पढि डारयो मेरे सिर
कान्ह कुँवर नागर चित-चोर ॥
एक दिवस ठाढी ब्रज-बीथिनि फरहरात पीतांबर-छोर ।
'परमानंद' चुभी अंतरगति चितवनि तिरछी लोचन-कोर॥

[४७६] बिलावल

कोउ मेरे आँगन ह्वै जु गयो ।
झलकति ज्योति बदन की माई ! सपनों सों जु भयो ॥

---

१. चमकनि (घ.)

हौं दधि मेलि माट सुनु सजनी ! लैनि गई जु मथानी ।
कमन[1] नयन की नाइँ चितयो उहि[2] मूरति मैं जानी ॥
कर[3] नहिं चलत देह-गति थाकी बहुतै दुख मैं पायो ।
'परमानंद' चरत गहि रहती कत मेरैं हुइ आयो ॥

[४७७] धनाश्री

चलि री ! नंदगाँउ जाइ बसिए ।
खरिक खेलत ब्रजचंद सों हँसिए ॥
बसत बठौना[4] सब सुख माई ।
कठिन[5] इहै जो दूरि कन्हाई ॥
माखन चोरत दुरि-दुरि देखों ।
सजनी ! जनम सुफल करि लेखों ॥
जलचर लोचन छिनु-छिनु प्यासा ।
कठिन प्रीति 'परमानँद दासा ॥

[४७८] परज

जित देखों तित कृष्ण-मनोहर दूजौ दृष्टि परै री !
चित्त-सुहावनि छबि सुँदर की रोम-रोम रस भरै री !

---

१. भाजन फोरि ढोरि दधि भाजे संक न काहू की आनी (च.)
२. गति तब ही मैं जानी
३. चलि नहिं सकति तन की गति थाकी (बं. १२४।२)
४. बठैन सबै (ग.) ५. एक कठिन दुख दूरि०

सिव बिरंचि जाहि ढूँढत फिरैं सो मन मेरे प्ररैं री !
निसि-दिन राची गुन गोविंद के और उपाय न करैं री
जा कारन हौं अटकि फिरी जग में सो पायो निज घरैं री।
'परमानंद' लह्यो सुख दरसन चित्त-कारज सब सरैं री॥

[४७६] बिलावल

जब नँदलाल नैंन भरि देखे।
इकटक रही सँभार न तन की मोहन सूरति पेखे ॥
स्याम बरन पीतांबर काँछे अरु चंदन की खौर।
कटि किंकिनी कल राव मनोहर
सकल त्रियन के चित के चोर ॥
कुंडल-झलक परति गंडनि पर आइ अचानक निकसे मोर
श्रीमुख-कमल-मंद-मृदु-मुसिकनि लेत करषि मन नंदकिसोर
मुक्त-माल राजत उर-ऊपर चितए सखी जबहिं इहिं ओर।
'परमानंद' निरखि अँग-सोभा ब्रज-बनिता डारति तृन तोर

[४८०] जैति कल्यान

आँखिन आगे हू स्याम मूँदेहू स्याम
कहनि लगी गोपी कहाँ गए स्याम।
आदि हू स्याम अंत हू स्याम रोम-रोम रमि रह्यो काम॥
मधुवन आदि सकल बन ढूँढ्यो ढूँढति फिरति कुंज नवधाम
'परमानंददास' कौ ठाकुर अंग-अंग अभिराम ॥

[४८१] गौरी

है मोहिनी कछु मोहन-पहियाँ ।
मोहन-मुख निरखति हौं ठाढो
आइ अचानक गही मेही बहियाँ ॥
जो भायो सो कियो अपनी रुचि
मैं सकुचानी[1] कीनी नहिं नहियाँ ।
'परमानँद' प्रभु स्याम गए[2] चलि
ए छबि चुभि जु रहो मन-महियाँ ॥

[४८२] मल्हार

नंद कौ लाडिलौ लला !
कब देखौं कब मिलौं अंक भरि कंदर्प-कोटि-कला ॥
सावन मास बद है बन चातक नान्हैं बूँद झला ।
ता प्रीतम बिनु गनत न खूटहिं बासर बरस पला ॥
कहा करौं मनु रहै न राख्यो बिरहा हियो जला ।
'परमानंददास' इहि औसर हरि-बिनु कौन भला ?

[४८३] सारंग

मारगु जात नेंकु फिरि चितयो तबतें मृगनि चौकरी भूली
उघरयो मुख सुभाइ घूँघट-पट सकुचे कमल-कुमुदिनी फूली

१. सकुचनि   २. मनोहर (क.)

भौंह देखि मनमथ-मन काँप्यो

छूटि गयो धनुष भुजा भई लूली ।

'परमानँद'प्रभु पाँइ पलोटति हुती जु गरब हिंडोरे झूली

[४८४] सारंग

ठाढौ एहि चितचोर कन्हाई !

लिए जात कत सरबसु मेरौ नेंकु चितै तोहि नंद-दुहाई॥

मृदु मुसिकाइ डारी है ठगौरी बंसी की फंसी उरझाई ।

तयौ जात है मन माखन ज्यों बिरह-अग्नि उर दंस लगाई

इतनी सुनत जसोदा-नंदन प्रेम-लपेटी बात सुनाई ।

'परमानँद'प्रभु अपनी प्यारी कों धाइ लाल हँसि कंठ लगाई

[४८५] सारंग

नैननि तें न्यारे जिनि टरौ ।

परम सुगंध मृदुल सीतलता पानि-कमल उर पर धरौ ॥

तुम तौ मेरे प्रान-जीवन-धन मिलि मोहन आरति हरौ ।

मात पिता पति लोक बिराने सहि न सकौं सो जरि मरौं

गाँइ दुहावनि के मिसु आवति प्राननाथ तुम जिनि डरौ ।

'परमानंददास' की जीवनि मेरी दोहनी दूध भरौ ॥

[४८६] सारंग

मोहि लई रतनारे नैन ।

स्रवन सुनत सब सुधि-बुधि बिसरी लुबधी मधुरे बैन ॥

कमलनयन सखि ! खरिक तें आवत
बात एक हँसिकै कही ऐन ।
'परमानँद' प्रभु नंद-दुलारे मेरी गाँइ कही दुहि दैन॥

[४८७] सारंग

अब हौं कहा करों री माई !
नंदनँदन बिनु देखे सखी री ! पल-छिनु रह्यो न जाई॥
घर में मात-पिता मोहि त्रासैं अरु कुल-लाज लजाई ।
बाहिर मुख सब मोरि हँसत हैं स्याम-सनेहनि आई ॥
दिन अरु रैनि घरी अरु पल बिनु घर अँगना न सुहाई
'परमामंद' लालगिरिधर-बिनु छिनु-छिनु कलप बिहाई॥

[४८८] बिभास

जइए वह देस जहाँ नँदनंदन भेटिए ।
निरखत मुख-कमल-कांति बिरह-ताप मेटिए ॥
सुंदर रूप-सुधा नैंननि पुट पीजिए ।
लपट लावन मिस रहति अचयें अचयें जीजिए ॥
नख-सिख मृदु अंग-अंग कोमल कर परसिए ।
अरु अनन्य भाव सों मन-क्रम-बच सरसिए ॥
रास हास भुव-विलास लीला सुख पाइए ।
भक्तनि के जूथ माँझ रस-निधि अवगाहिए ॥

❀'मोहि लई नैननि की सैन' आरम्भ से सूरसागर प० सं० १३६० पद भी

एही अभिलाष अंतरगत प्राननाथ पूरिए।
सागर-करुना उदार त्रिविध ताप चूरिए ॥
छिनु-छिनु पल कलप भरी बीतत अति भारी।
'परमानँद' कलपतरु दीननि दुखहारी ॥

[४८६] टोडी

चंद में देख्यो मोर-मुकुट कौ।
टेढी बीन न छाँडि देहु अब सिगरी यहाँ सों सटकौ ॥
देखैं लोग चवाई करिहैं इहि मेरे मन खटकौ।
जानैं सास-ननद बैरिनि सब बन में आजु न भटकौ ॥
मोकों पीय मिलेंगे कबहीं मिस जमुना-जल-घट कौ।
मिलें अपुनि कों छेड करेंगौ प्रन है नागरनट कौ ॥
घर-घर डोलत खात ललकरा नाहिं न काहू के बट कौ।
'परमानंद' लगी ना छूटै लाज कुआ में पटकौ ॥

[४६०] ईमन

जिय की बात न जानत हौ पिय! आप स्वारथ के गाहक।
मृदु मुसिकाइ आइ आँगन ढिंग हरत परायौ मन नाहक॥
कपटी कुटिल नेह नहिं समुझत
छल सों फिरत घर-घर के चाहक।
हा-हा! निर्दई बसे प्रान मेरे 'परमानँद' मन-दाहक ॥

[४६१]   सारंग

नैंकु इहाँ रहौ ढोटा देहु ।
जानि-बूझि चपरात हो कित करि-करि ताप-सनेहु ॥
कौनें हाल कियो गो-रस कौ चलौ दिखाऊँ गेहु ।
'परमानंद' प्रगट कियो चाहति ग्वालिनि गुपत सनेहु॥

[४६२]   सारंग

तो सों कहा कहों सुंदरघन !
जेइ-जेइ ब्रज उपहास चलत है
सुनि-सुनि स्रवन रहत मन ही मन ॥
ता दिन पसु आई नोई गहि मोहि देहि धेनु बंसी बन ।
उनि गही बाँहि सुभाउ आपने मैं चितई मुसिकाइ बदन तन
ता दिन तें घर-भीतर-बाहरि
करत चवाउ सकल गोपी-जन ।
'परमानँद' प्रभु साँच कहोंगी
एहि पतिब्रत सुनौ नँदनंदन ॥

[४६३]   सारंग

लाल ! यह निपट अगोचर गेहरौ ।
यहाँ ही छिनुक बिरमिये बलि गई
बासर-जनित दुख मेहरौ ॥

तौलौं सुख जौलौं मुख निरखौं
नख-सिख-रूप अनूप मनोहरौ।
'परमानँद' स्वामी में चैन चित बेंनु स्रवन सुनि हरषसों हरौ

[४६४] धनाश्री

ग्वालिनि ठाढी मथति दह्यौ।
या भेदै कोउ नाहिंन जानति[1] नीकें मरमु लह्यौ॥
उलटी रई मथनियाँ टेढी बिनहि[2] नेति कर चंचल।
निरखि चंद-मुख लोन्यौ काढति थकित नैन के अंचल॥
सबै विपरीति भए तिहिं औसर मनु मुकुंद[3] हरि लीन्हौं।
'परमानंद' सँभार न तन की इहै प्रीति कौ चीन्हौं॥

[४६५] केदारौ

गोविंद ग्वालिनि ढौरी लाई।
बन बंसीवट जमुना के तट मुरली मधुर बजाई॥
रह्यो न परै बिनु देखें मोहन अलप कलप-सम जाई।
निसि-दिन गोहन लागी डोलै लाज सबै बिसराई॥
उठत बैठत सोवत जागत जपति कन्हाई-कन्हाई।
'परमानँद' स्वामी मिलिबे कों और न कछू सुहाई॥

---

१. जानैं (छ.) २. बिना मथनि कर (छ.)
३. गिरिधर (ग. घ. च.)

[४६६] बसंत

सुंदर गावत बेनु-गीत बन-माला रची है पुनीत ।
सखा-संग बलभद्र साथ आनंद-कंद बैकुंठ-नाथ ।।
देवकी-नंदन जनम-बात माया मानुस-तन देवरात ।
'परमानँद' स्वामी दयाल भय-भंजन भव-हरन-काल ।।

आसक्ति कौ वर्णन—

[४६७] सारंग

चितैबौ छाँडि दै नेंकु राधा !
कै मिलि रसिक नंद-नंदन सौं करत काम मन[1]बाधा ।।
कै बैठि रहि भवन आपने में काहे कों बनि आवै ।
मृग-नैनी हरि कौ मन मोहै जब वे खरिक दुहावै ।।
कबहु हाथ तें गिरत दोहनी कबहु बिसरि जाति नोई ।
कबहु वृषभ नोवत घनसुंदर को जानें कहा होई ।।
तेरे नैन बिसाल काम-सर आगें-आगें धावै ।
'परमानँद' स्वामी मनमोहन उर लागै सचु पावै❀ ।।

[४६८] सारंग

तेरौ कान्ह सौं मन लाग्यो ।
कहति फिरति दामोदर माधौ लोक-बेद-डर भाग्यो ।।

---

१. रस (च.)

❀ सूरसागर प० सं० १३३६ पर भी साधारण शब्दान्तर से

हम किनि भईं घोष की ग्वालिनि एक गाँउ मिलि बसतीं।
गाढे आलिंगन दैं मिलतीं रास-केलि मिलि हँसतीं ॥
सुनि री सखी ! भाग कहा बरनौं बार-बार बलि जाउँ।
'परमानँद' स्वामी मोहन कौ निकसत है मुख नाउँ ॥

[४९९] सारंग

क्यों री ! तू दिन आवति इहिं ओर ?
गो-चारन की बाट रोकि कें ठाढी भई[1] भानु भोर ॥
कै तैं स्याम नयन भरि देखे पीतांबर के छोर ।
कै तैं सुनी अचानक बन में वा मुरली की घोर ॥
कैं तैं मोहन आपु बस कीने कान्ह कुँवर चित-चोर ।
कै 'परमानँद' मिल्यो चाहति है नागर नंद-किसोर ॥

[५००] सारंग

या तें दिन आवति इहिं ओर ।
बदन-कमल मधुकर ज्यों अटक्यो रस-लुब्धौ[2] मन मोर॥
खरिक दुहावन जाति सखिनि सँग दृष्टि परे तिहिं ठौर।
अवलोकत तन सुधि-बुधि[3] बिसरी मन करख्यो चित-चोर
पति-गृह-काज सबै बिसराए नंदनँदन के छोर ।
'परमानंद' मिल्यो चाहति हौं गिरिवरधर सिरमौर ॥

---

१. रही (क.) २. लोभी (छ.)
३. सब (इ. घ.)

[५०१] सारंग

मैं तूँ कै बिरियाँ समुझाई ।
उठि-उठि उझकि-उझकि हरि हेरति चंचल टेव न जाई॥
छिनु-छिनु पलु-पलु रह्यौ न परै तब सहचरि ओट लगाई
कमल-नयन कों फिरि-फिरि चितवति लोककी लाज मिटाई
को प्रति-उत्तर देइ सखी कों गिरिधर बुद्धि चुराई ।
मदनमोहन-राधा-रस-लीला[1] कछु 'परमानँद' गाई ॥

[५०२] सारंग

कहि री भटू ! तोहि कहा धौं भयो ।
डगमगि[2] रहति निसि[3] अरु बासर
छूटि गाँठि तें कहा धौं गयो ॥
कै तोहि मात-पिता घर त्रासैं कै काहू कछु कह्यो ।
कै जसोदा के लाल लाडिले चितै चित चोरि लयो ॥
कै तैं सुनीऽब घोर मुरली की कै कछु पढिऽब दयो ।
'परमानँद' प्यारे मिलिवे कों तरसत है मेरौ हियो ॥

[५०३] धनाश्री

कब की तू दह्यौ[4] धरैं सिर डोलति ।
झूठें ही इत-उत फिरि आवति ह्याँई आनिकैं बोलति॥

१. लीना (इ.) २. उमगी (इ. घ.) ३. निसा (इ. घ.)
४. लिए (इ.)

मौंह लौं भरी मथनियाँ तेरी[१] तोहि रटत भई साँझ।
गो-रस कौ लेवा जानति हौं या ही बाखरि माँझ॥
आगै आउ बात इक बूझौं कहत बुरौ[२] जिनि मानैं।
तेरे घर में तूँ हि सयानी और बेचि नहिं जानैं॥
ता दिन तें नीकैं जानति हौं जा पै चित्त चुरायो।
अंचर छाँडि दियो राज सुनि जन 'परमानँद' गायो॥✽

[५०४] गौरी

फिर-फिरि कहा हेरति है री माई!
को प्रीतम पाछैं आवत है मानहुँ नंदकुमार कन्हाई॥
गो-रस बेचनि चली री! मधुपुरी पाँइ परत नहिं आगै।
ऐसी ठगौरी मेली हो! कौनें मन तरसत ताहि लागै॥
देखत[३] रूप चिहुँटि चितु लागौ[४] ताहि के हाथ बिकानौं।
'परमानंद' प्रीति[५] है ऐसी कहा राँक कहा रानौं॥

[५०५] कानरौ

नैननि कौ टकुझकु तेरौ।
न्याँइ गोपाललाल बस कीने मोहन रूप जगत केरौ॥

---

१. अजहूँ (इ.) २. बिलग (ग. ज.)
✽ सूरसागर प० सं० १२६४ पर साधारण परिवर्तन से।
३. निरखि सरूप ४. अटक्यो (बं. ११३।६)
५. नंदनंदन सों रति सोइ सुखी सयानों (बं. ११३।६)

बिनहीं[1] काज नंद जू के आँगन बारंबार करति फेरौ।
जानी बात बदन पहिचान्यो औरहि भाँति प्रेम घेरौ॥
उरहन के मिस भई लगनियाँ चंचल मन[2] कीनों चेरौ।
'परमानँद'स्वामी-रस अटकी बाँध्यो है सखि! मदन-बेरौ॥

[५०६] कानरौ

दोउ नैननि तें तैं लायो टकुझकु।
बारंबार द्वार ह्वै झाँकति मदनगोपाल की मूरति कौतुकु
जौ लौं हरि कौ स्वरूप[3] न देखति
ह्दै तलाबेली ह्वै लागति[4]।
परौस-बास हमारौ-तेरौ ग्वालिनि चरनकमल अनुरागति[5]
तू नागरि और सबै[6] अयानी
अपनौ सहज सुभाव जनावति।
'परमानँद' स्वामी-रस अटकी
ताकी गीधी दिन-प्रति आवति॥

[५०७] आसावरी

तू जिनि जाइ नंद के द्वारें तेरी[7] बात चलाई री!
खान-पान सब तज्यो साँवरे तें लियो है चित्त चुराई री!

---

१. वे ही काज (इ. ग. घ. ङ. च. छ.) २. चित (ग. ज.)
३. रूप, सुरूप ४. लागी (क. ख.) ५. अनुरागी (क ख.)
६. सब मूरख (इ. क. ग. घ. च. छ.) ७. तेरिय (छ.)

कौन नंद का कौ सुत सजनी ! मैं देख्यो सुन्यो न माई री!
फूँकि-फूँकि हौं पाँउ धरति हौं मेरे पैंडे परें लुगाई री !
अहो सखि ! कालि गई ही ब्रज में कान्हर ढौरी लाई री!
जब तें दृष्टि परी[1] तू हरि कें तब तें कछु न सुहाई री!
अहो सखी! तू सुनिलै बतियाँ मेरे जियकी हौं[2] न दुराईरी!
सुंदरस्याम मिलिबे के कारन नयन-बान चलाई री !
मेरे मन कौ इहै मनोरथ पै गुरु-जन हैं दुखदाई री !
'परमानँद' प्रभु जोपै पाऊँ मेरे तन की व्यथा[3] बुझाई री!❀

[५०८] सारंग

विह्वल भई फिरति राधे जू कौन की लई ।
का के बिरह बदन कुम्हिलानों तन की आव गई ॥
को प्रीतम ऐसौ[4] मन[5] भावत जिनि दसा दई ।
मैं तन की गति ऐसी देखी कमलनि हेम-हई ॥
कहा करौं इक स्याम-ढिटौना तासौं प्रीति नई ।
'परमानँद' को आनि मिलावै हरि आनँदमई ॥

---

१. परे मनमोहन (ग. ज.) २. कहुँ न (क.)
३. बिथा (क.), तपत (च.)
❀कुछ परिवर्तन के साथ सूरदास की छाप से भी (बं. २६।१२७।६०)
४. एतौ (इ.) ५. जिय

[५०९] सारंग

तनु विष गयो[1] है छहरि ।
तुमारौ[2] पूत मंत्र जानतु है नैंक पढ़ै देहु महरि !
घिच अवसान भीरि नहिं भाँवति छाँड़हु चहरि ।
बोलहु गुनी गारुरी[3] गोविंद इहि बाँधिहै लहरि ॥
तंतु[4] न मंतु नहिं गद औषध कीजैऽब कहरि ।
'परमानँद' प्रभु सुनत बात उठि चले हैं महरि❀ ॥

[५१०] कानरौ

सुनि री सखी ! तेरौ दोसु नहीं मेरौ पिउ रसिया ।
जो देखत है सो भूलि रहत है कौन-कौन के मन बसिया ॥
सो को जो न करी बस अपने जा तन नेंकु चितै हँसिया
'परमानँद' प्रभु कुँवर लाडिलौ अबही कछु भीजत मसिया ×

[५११] केदारौ

डगरि चलि गोवर्द्धन की बाट ।
खेलत तहाँ मिलेंगे मोहन जहाँ गोधन के ठाट ॥
सुनि री[5] सखी ! तोहि लै जु दिखाउँ[6] सुंदर बदन-सरोज
कमल-नयन के एक रोम पर वारौं कोटि मनोज ॥

---

१. रह्यो री ! (क. ग.) २. तेरौ पूतु (क. घ.) ३. गाररू (क.)
४. जगै न मेरु बैरु करि खाई साँची है नागरि ।
डसी भुवंगम प्रेम 'परमानंद' गयो है डगरि ॥ (क.)
❀ सूरसागर प० सं० १३६८ पर भी इसी तुक से भाव साम्य, पद-साम्य के साथ । × 'कृष्ण-जीवन लच्छीराम' की छाप से भी मिलता है ।
५. चलि री ! (क.) ६. मिलाउँ (क.)

तू[1] पाहुनी अपूरब आई आन गाँउ की ग्वारि ।
'परमानँद' स्वामी के ऊपर सरबसु दीजै वारि ॥

[५१२] सारंग

बन-बन माधौ की डोलनि ।
इत चातक इत कोकिल कूजित इत मोरनि की बोलनि॥
कबहुँ पीतपट लेत हाथ कै बारंबार फिरावत ।
कबहूँ कहत लागि तू मो सौं बाँह डफोरि बुलावत ॥
आपुनि हँसत हँसावत औरनि नौतन भेषु बनावत ।
'परमानँद' प्रभु बालक-लीला सबनि गोपाल जनावत॥

[५१३] सारंग

माधौ निवसत जमुना-कुंजं ।
बाल-केलि बल्लव-सँग बिहरत चारत गोधन-पुंजं ॥
बिकसित तरुन अरुन अंबुज-दल लोचन बिमल बिसालं
मृगमद-तिलक सलिल मुख कुंतल बरुहपीड बनमालं[2]॥
कुंडल लोल कपोल पीतपट नील-जलद-तन-रूपं ।
धातु प्रवाल स्रवन गुंजाफल भ्रमित भेष अनुरूपं[3] ॥
बंस विषान अघ्न दधि ओदन धरम करम सिसु-हासं ।
'परमानँद' स्वामी मनमोहन माया-मनुज-बिलासं ॥

---

१. पाहुँनी एक २. मनि मालं (इ. घ.)

३. अनूपं

[५१४] सारंग

गोपाल दिखाई दै-दै जात ।
फिरि आवत वृषभानु के द्वारें सकुचत कहा लजात ॥
मेरौ मन तुम ही सों बाँध्यो टूटत कैसें नात ।
अब तौ आइ बनी नँद-नंदन नैननि नैन मिलात ॥
जहँ संकेत रच्यो मनमोहन तहाँ सनेह की बात ।
'परमानँद' प्रभु[1] हौं जानति हौं खेलनि कौं अकुलात ॥

[५१५] हमीर

माई री ! बन-क्रीडा मोहि भावै ।
गिरिधर-संग निमिष नहिं छाँडौं कबहूँ मधुर सुर गावै ॥
कबहुँक नैन सों नैन जोरिकै बातनि चित्त चुरावै ।
हँसि मुसिकाइ कंठ कर सों लै रीझि कैं हृदै लगावै ॥
कबहुँक नैननि मूँदि ध्यान धरि रूप-सुधा-रस प्यावै ।
कबहुँक रहसि बिलास करत हरि बन-माला पहिरावै ॥
इहि सुख सखी ! कहौं अब कैसै कैसेंई उर में न आवै ॥

साक्षात् स्वामिनी जू के बचन—

[५१६] सारंग

❀मदनगोपाल बलैया लैहौं ।
वृंदा-विपिनि तरनि-तनया-तट
चलु ब्रजनाथ ! आलिंगन दैहौं ॥

---

१. स्वामी हौं जानति खेलनि (ग.ङ. छ.) ❀अहो नँदलाल० से भी प्रारंभ

सघन निकुंज सुखद रति-आलै
नव कुसुमनि की सेज बिछैहौं।
त्रिगुन[1] समीर पंथ पग बिहरत
मिलि तुम[2] संग सुरत-सुख पैहौं ॥
अपनी चौंप तें जब बोलहुगे तब गृह छाँडि अकेली ऐहौं।
'परमानँद' प्रभु चारु बदन कौ उचित[3] उगार मुदित ह्वै खैहौं

[५१७] सारंग

तुमहिं जु चाहति कानन डोली।
देखि गोपाल ! अवस्था मेरी स्रम-जल-भीनी[4] चोली ॥
हौं अपने गृह-काज करति ही बैनु-ब्याज कत[5] बोली।
तुम अटपटे मनोहर नागर ! हम अहीरि मति भोली॥
ऐसी बहुरि करहु जिन बलि जाउँ[6] अरु ओडति हौं ओली
'परमानँद' प्रभु प्रेम जानि कै तमकि कंचुकी खोली ॥

[५१८] बिलावल

तैं मेरी लाज गँवाई हो दिखनौते[7] ढोटा !
देह विदेही ह्वै गई मिटि घूँघट-ओटा ॥

---

१. प्रफुलित कुंज-कुंज द्रुम-वेली० (बं. १३०।२)
२. संगम-सुख लैहौं (बं. १३०।२) ३. उछिष्ट (क.)
४. भींजी (ग. च. छ.) ५. कित ६. गई (घ.)
७. जसुमति के० (बं. १६१।१)

कमल-नयन तुम कुँवर हौ हलधर तें छोटा ।
छैल छबीले रूप में भई लोटकपोटा ॥
श्रीगोपाल तुम चतुर हौ हम मति की बोटा ।
'परमानंद' सोई जानिहैं जाहि प्रेम की चोटा ॥

[५१६] कानरौ

तिहारे बदन के हौं रूप-राची ।
आउ गोपाल ! खेलौ मेरे आँगन
इहिं मिस लाल प्रीति करि साँची ॥
अबके दुराएँ क्योंऽब दुरति है प्रगट भई सब गोकुल माँचा
घर-घर घोन[1] मथन सबहिनि कें अकेली मात जसोदा बाँची
ऐसी करि सुंदर ब्रजनाइक मरकतमनि कंचन ज्यों पाची
'परमानँद'प्रभु लोक हँसनि दै हौं तौ दृढ नाहिंन मति काची

[५२०] कानरौ

❀तिहारी बात मोहि भावति लाल !
बार-बार जसोमति के भवनें[2] यहै सुननि हौं आवति लाल
पार-परोसनि अनख मरति[3] हैं औरै कछू लगावति लाल
ताकी साखि विधाता जानें जिहि लालच उठि धावति लाल
दधि-मंथन अरु गृहकौ कारज तिहारे प्रेम बिसरावति लाल
'परमानँद'प्रभु कुँवर माँवतौ[4] तुम देखें सचु पावति लाल॥

---

१. घेर. (ग. ङ छ.) ❀ तुम्हारी (क.) से भी प्रारंभ है २. आँगन में (छ.)
३. करति (ग. ङ च. छ.) ४. लाडिले निरखि बदन सचु०

[५२१] कानरौ

माधौ ! भली जु करत मेरे द्वार व्है वन पाँउ धारत ।
साँझ सवार देखति हौं हियौ भरि
प्रीति के भूखे मेरे लोचन आरत ॥
बालतया में नागरता नित-प्रति[1]
उठि चित लगनि बिचारत ।
यह जु भली गृहपति नहिं जानत
प्रीतम-मिलन[2]-हित गोसुत चारत ॥
कुनित बेनु-रव खग-मृग मोहे मुनि-मन[3] समाधि टारत
'परमानँद' प्रभु चलत ललित गति
बासर-जनित ब्रज-ताप निवारत ॥

[५२२] आसावरी

गोपाल ! तेरी मुरली हौं मारी ।
सबद-बान बेधी चित-अंतर नंदकिसोर मुरारी ॥
कहति राधिका सुनु जगमोहन ! तुम्हारी दासि लचारी ।
रूप-निधान स्यामघनसुंदर या बंदसि पर वारी ॥
रह्यो न परै कनक-मंदिर में आई बनहिं[4] सवारी ।
'परमानँद' स्वामी सुख-कारन सही है लोक की गारी॥

---

१. उठि प्रति छिनु लगन (क.) २. खेलन-रस गोसुत
३. मनसा समाधै ४. बनहुँ (क. ग.)

[५२३]   विभास

हौं परभात-समै उठि आई नंदनँदन[1] देखनि तुम्हरो मुखु।
हौं[2] दधि बेचनि चली री ! मधुपुरी
लाभ होइ मारग पाऊँ सुखु ॥
करत कलेऊ स्याममनोहर नेंकु चितै कीजै हम तन रुखु ।
तुम सपनें मोहि मिलिकै बिछुरे
कहा[3] कहौं रजनी-जनित दुखु ॥
प्रीति जु एक स्यामसुंदर सौं इहि मिस करि सब बात जनाई
'परमानंददास' उहि नागरि नागर सौं मनसा अरुझाई॥

[५२४]   सारंग

मानहुँ नाहिंन प्रीति हियें ।
बाईं दाहिनी दैऽब चलत हौ नीचे नैन कियें ॥
रूखे रहत बचन नहिं बोलत आवत मौन दियें ।
ऐसी भई अनत रुचि उपजी काहू के सिखयें ॥
सुमिरत बाल-दसा की बातें मन में घालि सियें ।
'परमानँद' प्रभु कृपा तजहु जिनि कूरम द्रिष्टि कियें॥

साक्षात्-भक्त प्रार्थना-प्रभु प्रति—

[५२५]   सारंग

कहति है राधिका अहीरि ।
आजु गोपाल हमारें न्योंते परसि जिवाऊँ खीरि ॥

---

१. कमल नयन   २. गोरस बेचनि (क.)   ३. का सों (ग. ज.)

बहुत प्रीति अंतर-गत मेरे नयन[1] ओट दुख पाऊँ ।
जानति हौं पिय कुँवर छैल कौं संग मिलें जसु गाऊँ ॥
तुम्हारौ कोऊ विलगु न[2] मानें लरिकाई की बात ।
'परमानँद' प्रभु नित उठि आवहु भवन हमारे प्रात ॥

[५२६] सारंग

❀लला रे ! नेंकु हमारें आउ ।
जो माँगहु सो देउँ मनमोहन ! लै मुरली कल गाउ ॥
मंगलचारु करौं गृह मेरे सँग के सखा बुलाउ ।
करहु बिनोद जुवति सुंदरि सौं प्रेम-पीयूप पियाउ[3] ॥
बलि-बलि जउँ मुखारबिंद की तेऊ त्रिभंग दिखाउ ।
'परमानँद' रसभरी सहचरी लैं चली करत उपाउ ॥

[५२७] सारंग

लाल ! नेंकु देखिये भवन हमारौ ।
सीतल सुखद सिंहासन बैठहु अविचल राज तुम्हारौ ॥
सासु हमारी खरिक सिधारी प्यौ बन गयो सकारौ[4] ।
आसपास घर सबै[5] को बसत है इहैं[6] एकांति निन्यारौ ॥

---

१. पलक २. नहिं (क.)
❀ ललन रे !, लाल ! नेंकु भवन हमारें (बं. १३०।२) से भी प्रारंभ हैं
३. पिवाउ (क.) ४. सवारौ (ग. ज.)
५. कोऊ नाहीं (बं. १३०।२) ६. ह्याँ (क. ग. घ. ङ. च. छ.)

आछौ[1] सद्द दूध धरि झारी इतनक[2] अचवहु बारी ।
'परमानंददास' की जीवनि इहि रति केलि तुम्हारी ॥

[५२८] सारंग

नीकौ बन देखहु[3] मदनगोपाल !
बहुत फूल फूले हैं मोहन ! तुम कों गूथोंगी माल ॥
बैठहु या तरुवर की छहियाँ अंबुज-नैन बिसाल ।
नेंकु बयारि करों अंचर[4] की पाँइ पलोटोंगी लाल !
राध-रंग-भरी प्रीतम के बोलति बचन रसाल ।
'परमानंद' प्रभु इहइँ रहिबौ अब नाहिंन ब्रज चाल ॥

[५२९] कानरौ

हौं रीझी तेरे दोऊ नैन ।
थकित भई हौं चलि न सकति मारग एकौ[5] गैन ॥
चलत छबीलौ देखत छबीलौ बोलत छबीले बैन ।
'परमानँद' प्रभु गिरिधरलाल छबीलौ छबीली[6] सैन॥

---

१. औटयो दूध सद्य धौरी कौ लेहु स्यामघन पीजै ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर कह्यौ हमारौ कीजै ॥ (बं. १३०।२)
२. अचवौ नेंकु जाउँ बलिहारी (बं. २४२।१३५)
३. खेलौ (ट.)   ४. अँचरा (छ.)
५. रौक्यो ऐन (बं. १३७।१)
६. और छबीली

साक्षात् प्रभुजी-वचन भक्तन-प्रति—

[५३०] सारंग

राधे ! तेरे भवन हौं आउँ ।
सादर कहत साँवरौ गोविंद तनक[1] दूध जो पाउँ ॥
मात-पिता जो बिलगु न मानैं अरु इहि भेद न जानें ।
जो तू सौंह करैं बाबा की तौ मेरौ मन मानें ॥
सब दिन खेलौं तेरे आँगन अपने नैन सिराऊँ ।
निरखत रहौं चंद-मुख सीतल प्रेम-मुदित सुख पाऊँ ॥
कही मते की कान लागि कै जब[2] हौं खरिक तें आऊँ
'परमानँद' प्रभु बिनती कीनीं अपने सूत्र[3] बुलाऊँ ॥

[५३१] सारंग

❀बातनि लई री ! लाइ ।
खेलनि मिस आउँ गौ तेरें दूध राखि जमाइ ॥
कनक[4] बरन सुढारि सुंदरि देखि मुख मुसिकाइ ।
रूप-राचे[5] स्यामसुंदर नैन रहे अरुझाइ ॥
गुपत प्रीति न प्रगट कीजै लाल ! रहौ अरगाइ ।
'दास परमानंद' सँग हैं नातरु गहती पाइ ॥

---

१. नंकु (च.) २. जबै खरिक ३. मित्र
❀ मोहन लई बातनि लाइ (बं. ७१४) से भी प्रारम्भ है ।
४. कंचन बरन सुभाइ सुंदरि देखि मन लजचाइ (बं. १३२।१)
५. ऊपर (बं. १३२।१)

१५. स्वरूप-शोभा

प्रभु-स्वरूप-वर्णन—

[५३२] धनाश्री

देखत ब्रजनाथ[1]-बदन मदन कोटि वारों ।
जलज निकट नयन-मीन उपमा विचारों ॥
कुंडल ससि सूर उदित अघटन की घटना ।
कुंतल अलि-माल तामें मुरली कल[2] रटना ॥
जलद-खंड सुंदर तन पीतबसन-दामिनी ।
बन-माला सक्र-चाप मोही सब[3] भामिनी ॥
मुगतामनि-हार मंडित[4] तारा-गन-पाँति ।
'परमानँद' स्वामी गोपाल सब विचित्र भाँति ॥

[५३३] सारंग

ढोटा कौन कौ है री[5] !
स्रुति कुंडल मंडित मकराकृत कनक कंठ दुलारी ॥
घन तन स्याम कमल-दल-लोचन चारु चपल चल[6]री ।
चंद बदन मुसिकाइ माधुरी लर-लटकन[7] कल री !

---

१. ब्रजराय (इ. घ.) २. की (इ. घ.) ३. ब्रज (इ. घ.)
४. सुभग ५. आलि री !(इ. घ.)
६. चित री ! (ज.), चंचल री (ग.) ७. लटकत (इ. घ.)

उर मोतिनि की माल पीत-पटु मुरली कर-तल री !
पग[१] नूपुर मनि-जटित कुनित रव कटि-किंकिनि झल री !
बालक-वृंद जु मध्य बिराजत सोभा के बल री !
'परमानंददास' की जीवनि नंद-सुकृत-फल री !❀

[५३४] सारंग

सिर धरें पखौआ[२] मोर के।
गुंजाफल फूलनि के लटकन सोभित नंदकिसोर के[३] ॥
ग्वाल-मंडली-मध्य बिराजित कौतुक माखनचोर कें।
नाचत गावत बेनु बजावत अंस भुजा सख ओर कें॥
तैसें[४] फरहरात रस-भीने छबि पीतांबर-छोर कें ॥
'परमानंददास' मोहन[५] मनु हरत नैन की कोर कें।

[५३५] सारंग

सुंदर मुख की हौं बलि-बलि जाउँ।
लावनि-निधि गुन-निधि सोभा-निधि
देखि-देखि जीवत सब गाउँ ॥

---

१. पद (क. ख. ज. के अतिरिक्त)

❀ सूरसागर प० सं० ३६४४ पर भी साधारण अन्तर से।

२. चंद्रिका मोर की ३. की ४. तैसे ही फरहरात रँग-भीने

५. कौ ठाकुर मन, 'परमानंद' नंदनंदन मन० (बं. १३२।१)

अंग-अंग प्रति अमित माधुरी
प्रगटित रस्मि रुचिर ठाउँ-ठाउँ।
तामें मृदु मुसिकानि हरत मन न्याइ कहत[1] कवि मोहननाउँ
सखा-अंस पर बाम बाहु धरें
या छबि की बिन मोल बिकाउँ।
'परमानंद' नंदनंदन[2] कों निरखि-निरखि उर नैंन सिराउँ ×

[५३६]   सारंग

चारु कपोलनि[3] की झलक।
हरि कौ मुख-कमल देखें लागत नाहिं पलक॥
कुमकुम कौ तिलकु बन्यो कुटिल निबिड अलक।
मोरचंद-मुगट सीस मनसिज की ढलक॥
स्यामसुँदर देखनि कों आवत जिय ललक।
'परमानँद' स्वामी गोपाल ननिन के सलक॥

[५३७]   सारंग

मदनगोपाल देखि री माई !
द्विभुज[4] त्रिभंगी स्याम[5] मनोहर
सुंदर निधि जुवतिन सुखदाई॥

---

१. धरत (क.) २. लाल गिरिधर कों (क.)
× सूरसागर प० सं० १२८१ पर भी साधारण अन्तर से।
३. कपोलनु (ख.)   ४. ललित (ङ. छ.)   ५. लाल (घ.)

माथें बने मोर के चँदवा रुचिर चित्र बनधातु बनाई ।
गुंजा-हार माल बैजंती पीतांबर-छबि बरनि न जाई ॥
अरुन अधर-धृत मधुर मुरलिका
तैंसियै चंदन-तिलक निकाई ।
मानु द्वितीया-दिन उदित अर्द्ध ससि
निकसि जलद में देत दिखाई ॥
अद्भुत मनि-कुंडल कपोल मुख अद्भुत उठत परस्पर झाँई।
मानु बिधु मीन बिहार करत दोउ
जल-तरंग में चलि-चलि आई ॥
तैंसे अनूपम नयन लाल के चितवत चित-बित लेत चुराई
सोभा और कहाँ लौं बरनों 'परमानंददास' मुख गाई॥

[५३८] सारंग

सुंदरता गोपालहि[1] सोहै ।
कहत न बनै नयन[2] मन आनँद जा देखत रति-नाइक मोहै
सुंदर चरन-कमल गति सुंदर सुंदर गुंजाफल-अवतंस ।
सुंदर बन-माला उर-मंडित सुंदर गिरा मानों कल हंस॥
सुंदर बेनु मुगट-मनि सुंदर सुंदर सब अँग स्यामसरीर।
सुंदर बदन अवलोकनि[3] सुंदर सुंदर तें सुंदर बलबीर

१. गोपालै २. नय नय (ख.), नए नए आनँद(घ.छ.), नैन रहे आनँद(च.)
३. बिलोकनि (ङ. छ.)

वेद-पुरान-निरूपित बहुबिधि परब्रह्म नराकृत[1] रूप-निवास
बलि-बलि जाउँ मनोहर मूरति हृदै बसौ 'परमानँददास'

[५३६]   सारंग

सब भाँति छबीली कान्ह की ।
नंदनँदन की आवनि नीकी मुख[2] बोरी लियें पान की॥
अलक छबीले तिलकु छबीलौ पाग छबीली सुबान की
भौंह छबीली दृष्टि छबीली सैन छबीली सु मान की ॥
चरन-कमल की चाल छबीली सब अँग-सोभा सुठान की
'परमानँद' प्रभु बेनु छबीली सुरति छबीली सु गान की

[५४०]   सारंग

बंदसि बनी कमल-दल-लोचन ।
चितबनि चारु चतुर-चिंतामनि
बिनु गुन चाप मदन-सर-मोचन ॥
कटि पीतांबर लाल उपरैना माथें पाग मनोहर कुंडल
मुगता कंठ हाथ में बीरा पाँइ पाँवरी गति ब्रज मंगल[3]
नंद-किसोर कूल-कालिंदी संग गोपाल-सभा मँह मंडल
"परमानंददास" बलिहारी जै जगदीस कंस-कुल-खंडन

[५४१]   सारंग

अपने गोपाल की बलिहारी ।
नाना बिधि रचि फूल बनाए भली बनी है धारी ॥

---

१. नररूप निबास   २. छबि   ३. मंडल

सौंधे सहित सुदेस केस-बिच बाँकी[1] कुलह बिथारी।
गोपिनि कौ अनुराग भाग सब बाँधी सुहथ सँवारी ॥
निरखि-निरखि फूलति नँदरानी[2] सुख की रासि बिचारी
'परमानँद' स्वामी के ऊपर सरबसु देउँगी बारी ॥

[५४२] सारंग

बदन की बलि जाउँ बोलत मधुर रस।
बचन-बचन प्रति सकल भुवन बस ॥
चंद निचोइ रचे अंबुज-दल नाम धरयौ कमल-नैन।
यह अवलोकनि सुर-नर मोहे
त्रिपुर फेरि रिपु जारयो जिवायो मैन ॥
अंग-अंग प्रति मदन-कोटि-द्युति जहाँ परति दृष्टि तहाँ रहति
'परमानंद' चपलता तजि मनु स्वस्थ[3] भयो ब्रजनाथ रति॥

[५४३] सारंग

ओढें लाल उपरैनी झीनी।
तनसुख सेत सुदेस अंस पर बहुत अरगजा-भीनी ॥
अति सुगंध सीतल उर चंदन सादिये रचना कीनी।
राहि धँसि भ्रु अ पर पाग दुपेची कोटि मदन-छबि छीनी
सूथन बनी जरमची[4] सोभित[5] गति गयंद की लीनी।
'परमानँद' प्रभु चतुर-सिरोमनि ब्रज-बनिता रति दीनी ॥

---

१. बाँधी (ख.) २. ललितादिक ३. स्वच्छ (ग.)
४. जरकसी (छ.), हिरमिची ५. सोहत

[५४४]   सारंग

कान्ह ! कमल-दल नैन तुम्हारे ।
अरुन बिसाल बंक अवलोकनि हठि मनु हरति हमारे॥
तिनि पर बनी कुटिल अलकावलि मानहुँ मधुप झँकारे
अतिसै रसिक-रसाल-रसमसे चित तें टरत न टारे ॥
मदन कोटि रवि कोटि-कोटि ससि ते तुम ऊपर वारे ।
'परमानंददास' की जीवनि गिरिधर नंददुलारे ॥

[५४५]   सारंग

आनँद की निधि नंदकुमार ।
परब्रह्म[1] नट-भेष नराकृत जगमोहन लीला-अवतार ॥
स्रवननि आनँद मन मँहि आनँद
लोचन आनँद आनँद पूरति ।
गोकुल-आनँद गोपी-आनँद नंद-जसोदा-आनँद-मूरति॥
सब दिन आनँद धेनु चरावत बेनु बजावत आनँद-कंद।
नृत्तत-हँसत-कुलाहल आनँद राधा-पति वृंदावनचंद ॥
सुर-मुनि आनँद संतनि आनँद
निज गुन[2] आनँद रास-बिलास ।
चरनकमल-मकरंद-पान के अलि आनँद'परमानँददास'॥

---

१. पूरन ब्रह्म (ङ. छ.)   २. जन (ग. घ. च.)

[५४६] सारंग

ग्वालिनि न्याइ तजै गृह-बास ।
कैसैं धीरज रहै लोल[1] मनि देखि कृष्ण-मुख-हास ॥
घस्याम-तन नख-सिख-सुंदर पहिरें पिंगल वास ।
लत ललित गति जगत-विमोहन जानु[2] देखिए इक[3] लास
प्रंग-अंग प्रति रची ठगौरी काम-विनोद-बिलास ।
परमानंददास' को नागरि छाँडै[4] इहि उपहास ॥

[५४७] गौरी

सिक-सिरोमनि नंदनंदन ।
समै रूप अनूप बिराजित गोप-वधू और सीतल चंदन
निनि मँहि रस चितवनि मँहि रस
बातनि मँहि रस ठगत मनुज पसु ।
गावनि मँहि रस मिलवनि मँहि रस
बैन मधुर रस प्रगट पावन जसु ॥
जिहिं रस-मत्त फिरत मुनि-मधुकर
सो रस संचित ब्रज-वृंदावनु ।
स्याम-धाम रस-रसिक उपासत प्रेम-प्रवाह सु'परमानँद'-मनु

[५४८] गौरी

नंदनंदन जिय-भाँवते तेरे चंचल डोल ।
इंदु-बदन भ्रू नासिका सुभ चारु कपोल ॥

---

१. लोभ (ङ.छ.) २. जनु (घ.ङ.छ.) ३. मँहि (क.) ४. जो छाँडै० (क.)

भाल तिलक अलकावली स्त्रुति कुंडल लोल।
अधर मधुर मुसिकावनी मृदु मीठे बोल ॥
अंग-बास रस-संग हैं मधुपनि के टोल।
'परमानंद' प्रभु लै मिली नव उरज अमोल ॥

[५४६] सारंग

जो रसु रसिक कार-मुनि गायो।
सो[1] रस रटत रहत निसि-बासर
सेस सहसमुख अंत[2] न पायो ॥
गावत[3] सिव सारद मुनि-मधुकर[4]
कमल-कोस-रस तउ न चखायो।
जद्यपि रमा रहति चरननि-तर
निगमनि अगम अगाध बतायो ॥
तरनि-तनया-तट निकट बंसीबट
वृंदावन-बीथिनि जु बहायो।
सो रस रसिक दास 'परमानँद'
वृषभानु[5]-सुता कुच बीच दुरायो[6] ॥

---

१. सोई रसिक रटत निसि० २. पार (ग. घ. च.)
३. सोई रस नारद मुनि-मधुकर कमल-कोस नेंसुक न चखायो (क.)
४. नारद (घ. ङ. छ.) ५. लै राधिका कुच० (क.)
६. समायो (ख.)

[५५०] गौरी

सोभा-सिंधु अनत न रही री !
नंद-भवन भरि उमडि सखी री !
ब्रज की बीथिनि फिरति बही री !
देखि जु आजु गई हुती सजनी!बेत्रनि गोकुल माँझ दही री!
कहा कहि[1] कहों सुनि चतुर सखी री !
कहत न मुख-सहस हुँ न निबही री !
जसोमति-उदर-अगाध-उदधि तें
उपजी इहै जु सबहीनि कही री !
'परमानँद' प्रभु इंद्रनीलमनि
ब्रज-जुवतिनि उर लागि रही री !❀

[५५१] गौरी

आनँद-सिंधु बढ्यो हरि-तन में।
श्रीराधा[2]-पूरन ससि निरखत
उमगि चल्यो ब्रज-वृंदावन में ॥
इत रोक्यो जमुना इत गोपिनु
कछु एक फैलि पर्यो त्रिभुवन में।
ना परस्यो करमठ अरु ज्ञानिनि
अटकि रह्यो रसिकनु के मन में ॥

---

१. करि (ग. घ. छ.)

❀सूरसागर प० सं० ६४७ पर भी साधारण अन्तर से २. राधा-मुख-पूरन

मंद-मंद अवगाहत बुधि-बलु
भक्त-हेत नित-प्रति[1] छिन-छिन में ।
कछुक लहत नँद-सुवन-कृपा तें
सो देखियत 'परमानँद' जन में ॥

[५५२] गौरी

सो राधा कें कंठ-भूषनु ।
इहि सिंगार सोहत निसि-वासर
निरमोलक लागत नहिं दूषनु ॥
गरभ देव की विमल सीपि उपज्यो मुकुताफलु ।
स्याम-धाम कमनीय ज्योति पानिप बिनु ही जलु ॥
रतन-पारखी परखु जु जानत कसत कसौटी सुंदर चोखौ।
सोई 'परमानंद' उर-भंडार लागतु तित नोखौ ॥

[५५३] मालव

मोहन नंदराइ-कुमार ।
प्रगट ब्रह्म निकुंज-नाइक भक्त-हित अवतार ॥
प्रथम चरन-सरोज बंदों[2] स्यामघन गोपाल ।
मकर[3]-कुंडल गंड-मंडित चारु नैन बिसाल ॥
बलराम सहित बिनोद-लीला सेस संकर-हेत ।
'दास परमानंद' प्रभु[4] हरि वेद[5] बोलत नेत ॥

---

१. लीला छिन० (बं. १३२।१) २. बंदित (ज.)
३. कनक ४. स्वामी (क. ख.) ५. निगम (ज.)

[५५४] कल्यान

गिरिधर सब ही[1] अँग कौ बाँकौ ।
बाँकी चालि चलत गोकुल में छैल-छबीलौ का कौ ?
बाँके चरन-कमल गति बाँकी बाँकौ हिरदौ ताकौ[2] ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर कियौ खोर ब्रज साँकौ[3] ॥

[५५५] मालव

माई ! तजि न सकौं सुंदरबर-सोभा मन बँध्यो इहि रीति ।
कोटि कहौ कोउ अपनी सी बाढी परम प्रतीति ॥
अरुन पाग पर पेच जरकसी तापर सुवन अपार ।
मनहुँ जलद जिमि तात विराजित अरुन उदै तिहि बार ॥
मृगमद-तिलक भाल पर राजित ए बिच बिंदुला एक ।
मनहुँ जपा कौ कुसुम पात पर कहिए कहा विवेक ॥
भृकुटी बंक संक नहिं मानत भृंग करत मैं लाल ।
काम आदि के किये सकल बस धाइ धनुष नँदलाल ॥
चंचल नैन मन के निज गृह चतुर बरन बिस्तार ।
खंजन मीन मधुप मृग हू तें देखियतु अधिक अपार ॥
प्रभु-नासिका सुघट सबहिंनि तें अरध उरध मध्य मूल ।
नीरत कीर सुमिरि दामिनी निकट नैन के कूल ॥

---

१. अँग-अँग कौ (ग.) २. जाकौ (ग.)
३. साँखौ (ग.)

अरुन अधर द्विज परम मनोहर आवलि चिबुक सुठि सार।
मंद हास अचरज कमला पर मनहुँ वज्र की माल ॥
कुंडल कनक जडे मनि मरकत जगमगात जैसें मीन।
मनहुँ गंडस्थल-अमी-सुघट पर तहाँ भए लौ-लीन ॥
कौस्तुभ-कंठमाल मुकताफल नगनि-जटित जुग हार।
मनहुँ नछित्र-सहित ससि सविता कीनों नभ बिस्तार ॥
बाहु-दंड करि अंबुज-पल्लव नख-भूषन थिर थोक।
बंसी कनक-कुलिस ता ऊपर मनहुँ मुनिनि के लोक ॥
नव-नव फूल-मंजरी नव-नव वैजंती-अधिकार।
मनहुँ ईस तजि सीस सुरसरी धरही धसी जुग धार ॥
कटि-किंकिनी कुनित कछनी पर ता तर लाल इजार।
मनहुँ कनक के खंभ सुधारे निमित हंस-परिवार ॥
नूपुर रुनित सुभग चरननि पर रवकत झुकत अनूप।
मनहुँ सेत मनि रंजि रहे धुनि सुंदर सखनि सरूप ॥
पद-अंबुज मकरंद पलहु पल दिग दिगंत नख-काँति।
मनहुँ राहु-रिस देखि-देखि ससि आनि दुरयो दस भाँति॥
स्याम सुभग अँग धातु-चित्र अँग बसन प्रसन्न मनु हास।
मनहुँ तडित जल-जोग बने सखी प्रगट होत दुरि जाति॥
नख-सिख-रूप बन्यो अति कमनिय निरखि भयो आनंद।
जान राइ तजि चल न सकै चित कहै भृत 'परमानंद' ॥

[५५६] सारंग

कदँब-तर ठाढे हैं गोपाल ।
आसपास ग्वालनि[1] की मंडली बाजत बेनु रसाल ॥
बरुहा-मुगट अरु[2] काननि कुंडल मृगमद-तिलक सु भाल
'परमानँद' प्रभु-रूप-विमोही प्रेम-मगन ब्रज-बाल ॥

[५५७] सारंग

जो तू नंदगाँउ-दिसि जैहै ।
नैननि कौ फल इहै मेरी सजनी! राम-कृष्ण कों देखति ऐहै
बीथिनि बच्छ चरावत ह्वै हैं अबलोकत अति आनँद पैहै
गौर-स्याम तन नील-पीत पट मकर-कुंडल सिर मोर-चंदै है
गुरु-जन तें जो अवसर पावै कान्ह सुनत मो बात चलै है
'परमानँद' गिरिधरन कुँवर कों मेरी कोतें अंग लगै है॥

[५५८] गौरी

जसोदा बदन जोवै बार-बार कमल-नयन प्यारे ।
मधुपनि की पाँति बनी अलक घुँघरारे ॥
जो सुख ब्रह्मादिक कों कबहूँ नहि दीनों ।
धरा अरु बसुदेवादि सत्य बचन कीनों ॥
निगम गावै नेति-नेति पार कहूँ न पायो ।
'परमानँद' स्वामी गोपाल सोई गोकुल आयो ॥

---

१. सब ग्वाल-मंडली (बं. १३०।१)
२. काननि में कुंडल (,, ,,)

[५५६] सारंग

नटवर-भेष धर्‌यो छबि आछें ।
मोर-पिच्छ बन-धातु-चित्र किये मल्लकाछ कटि काछें ॥
सेली हाथ दोहनी सँग लिये डोलत गाइनि पाछें ।
'परमानँद' प्रभु करत दुहारी टेरि बुलावत बाछें ॥

[५६०] सारंग

सोभा माई ! अब देखनि की की बार ।
गोवर्द्धन परबत के ऊपर मोरनि की पतबार ॥
ठाढे लाल पीत पट ओढें बरषत[1] घन टुंकार ।
मोर-मुकुट मकराकृत कुंडल अरु घुँघुची के हार ॥
कहिए कहा कहत नहिं आवै सोभा बढी अपार ।
'परमानँद' देखति न अघाईं अँखिया व्है लख चार ॥

[५६१] सारंग

आजु धरी गिरिधर पिय धोती ।
अति भीनी सु अरगजा-भीनी पीतांबर घन-दामिनी-जोती
टेढी पाग भृकुटी-छबि छाजत मुक्ताफल माला उरझाई।
'परमानँद' प्रभु सब सुखदाई ॥

[५६२] सारंग

सखी री ! सुंदरस्याम सलौना ।
चंचल चपल चितवनी में हो ! कीनो है कछु टौना ॥

१. कर मुरली बनमाल

भूली लोक-लाज-कुल सजनी! ना जानौं कहा हौना ।
'परमानँद' प्रभु कोउ कैसी कहौ भूलि गई ग्रह-गौना॥

[५६३] सारंग

लाल बैठे कुसुम-फूली लटपटी पाग विधुनि ।
नित लोचन-सर कुंडल सोहैं स्रवननि ॥
सीतलताई सुंदरताई सौरभ छाइ रह्यो सोभन ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर भक्तनि के मन-रंजन ॥

[५६४] सारंग

❀ तुम देखौ माई! सुंदरता कौ सागर ।
बुद्धि विवेक बल पार न पावत मगन होत मन नागर॥
तनु अति स्याम अगाध अंबुनिधि कटि पट-पीत तरंग ।
चितवत चलत अधिक छबि उपजति भँवर परति सब अंग
नैन मीन मकराकृत कुंडल भुज-बल सुभग भुजंग ।
मुक्तामाल मिली मानौं सुरसरि द्वै सरिता लिए संग॥
मोर-मुकुट मनिगन-आभूषन अवलोकनि सुख देत ।
मानौं जलनिधि प्रगट कियो ससि श्री औ सुधा समेत॥
देखि सरूप सकल गोपी-जन रही हैं बिचारि-बिचारि ।
....॥
तदपि सुरतौन सखियनिमें रही है प्रेम हमारो तन अतिछीजै
'परमानँद' स्वामी मनमोहन कह्यौ हमारौ कीजै ॥

❀सूरसागर प० सं० १२४६ पर भी

[५६५] जै जैवंती

सुंदर बदन प्यारौ न्यारौ कैसे कै कीजिए।
मस्तक मुकुट छाजै चंद की जोति बिराजै
गुंजाफल-हार हियें मुख देखि जीजिए॥
केसर की खौर कियें पीतांबर उर लियें
हरषि सुकंठ लागि अमृत-रस पीजिए।
'परमानँद' प्रभु प्यारौ ब्रज कौ उजियारौ
तन मन धन वा पर वारि-वारि दीजिए॥

[५६६] धनाश्री

गाँउ बसत एते द्यौसन्हि में आजु कान्ह मैं देखे।
जे दिन गए स्याम बिनु देखें ते दिन लेख अलेखे॥
कहिए तौ जो होइ सयानी कहिबे के उनमानें।
नंदकुमार निकाई कौ सुख नैना ही ये जानें॥
जब तें रूप-ठगौरी लागी जुग-समान पल बितवति।
'परमानँद' स्वामी-रस अटकी ठाढी मुख-तन चितवति॥

[५६७] बिलावल

माई री! साँवरौ सौ ग्वाल-बाल नंदगाँउ खेलै।
देखत सुधि भूलि जाति मोहनी सी मेलै॥
मृग-छौंना से नैन सैन उर तें बनसि कारौ।
तबहिं मन करषि लेत गति-मति सब टारौ॥

रुनझुन पाँइ पैंजनी अरु ठुमुकि-ठुमुकि डोलैं ।
तोतरे से अमृत-वचन मैया कहि बोलैं ॥
ऐसी जो होइ कबहुँ बहुरौं बाल पैए ।
निरखि-निरखि नैन-सुख हँसि-हँसि उर लैए ॥
जसुमति कौ पूत भाग ऐसौ सुत जायो ।
'परमानँद' बलिहारी निगम छंद गायो ॥

[५६८] बिलावल

सुंदर ढोटा कौन कौ सुंदर मृदु बानी ?
भेद बतायो ग्वालिनी जायो नँदरानी ॥
सुंदर भाल तिलक दिएँ सुंदर मुसिकानी ।
सुंदर नैननि हरि लियो कमलनि कौ पानी ॥
सुंदरता तिहुँलोक की या[1] ब्रज में आनी ।
'परमानँद' प्रभु जसुमति सब सुख लपटानी❀ ॥

[५६९] बिलावल

कमल-नयन-मुख मुरली सोहैं ।
बंक अवलोकनि मुख त्रिभुवन-मन मोहै ॥
मोरचंद्रिका-मुकुट बनायो बीच-बीच गुंजाफल लायो ।
तामें फूल बने चंपा के गोपबधू देखत अनुरागे ॥

---

१. लै (इ. क.)

❀ भाव-साम्य: सूरसागर प० सं० १०६३ पर पाठ-भेद के साथ ।

यह सरूप कबहूँ नहीं काछौ जो ब्रज बसि ब्रजनाथहि कीनौं
निगम चोरि बाल-लीला-रस 'परमानंददास' ही दीनौं ॥

[५७०] गौरी

छबीली भौंहें तेरी स्याम मनोहर मानों चढी कमान ।
देखत रूप-ठगौरी लागी लोचन मनसिज-बान ॥
करतल अधर-पुट दीने जबहि करत हौ गान ।
सुरपति-नारि सुनत रव मोहीं थाके व्योम विमान ॥
कंदर्प-कोटि वारने करिहौं या मुद्रा की ठान ।
'परमानँद' स्वामी रति-नाइक मेटत हौ अभिमान ॥

[५७१] आसावरी

हौं अपनें लाल की बलिहारी ।
बिच[1]-बिच कुसुमनि नाना रंगनि भली बनी है धारी ॥
कुंचित[2] केस सुदेस बदन पर बाँकी कुल्है अति प्यारी ।
गोपिनि के[3] अनुराग-भाग-बस अपने[4] हाथ सँवारी ॥
निरखि-निरखि फूलति नँद-रानी मुख की रासि बिचारी ।
'परमानँद' स्वामी के ऊपर सर्बसु डारति[5] वारी ॥

---

१. नाना विधि रचि फूल बनाए भली (ग.)
२. सौंधें सहित सुदेस केस-बिच बाँकी कुलह-बिधा री ! (ग.)
३. कौ (ग.) ४. बाँधी सुहथ सँवारी (ग.)
५. कीजै (ग.)

[५७२] कानरौ

नैन की चाहनि मुख की मुसिकावनि ।
कर-पल्लव गहि त्रिजग बेनु धरि मीठी है[1] गावनि ॥
कुंडल चलित कपोल ललित पंडुल तन[2] सोहै ।
कुंचित केस सुदेस गुंजामनि मोर-पंख मन मोहै ॥
उर बन-माल बिचित्र बिराजित जनु घन-बीच इंद्र-धनु भासै
गिरा गँभीर सुनत सखि व्याकुल
देखत रूप मदन-जिय[3] त्रासै ॥
बालक-वृंद नछित्र-माला[4] मानु पूरन चंद ।
रजनीमुख दुख-हरन मिल्यो बलि-बलि 'परमानंद' ॥

[५७३] बिलावल

पीतांबर कौ चोलना पहिरोंगो[5] मैया ।
कनक-छाप ऊपर[6] दई झीनी एक तैया ॥
लाल इजार चुनाव की जरकस कौ चीरा ।
पहुँची[7] जरी जराव की उर[8] राजत हीरा ॥
कंठ कौस्तुभ-आवली मोतिनि कौ हार ।
काजर दै बेंदी दई हाँसैं ब्रज की नारि ॥

---

१. मीठो-मीठी गावनि २. सखि ३. जनु (ख. के अतिरिक्त)
४. माल मधि मानों (ग.), माल में (ज.)
५. पहिरावति (च.) ६. ता पर धरी झीनी
७. हंसुली हेम० ८. मधि. (ग.)

बेलि गुलाब जु मालती चंपे कौ हार ।
देखें खरीं ब्रज-भामिनी कछु तन[1] न सँभार॥
नंद बबा मुरली दई कहैं तान बजाउ ।
जोई सुनै ताकौ मन हरै 'परमानँद' गाउ ॥

[५७४] सारंग

बिहरत वृंदावन गोबिंद ।
गोप-मंडली-मध्य बिराजित स्याम-मनोहर पूरन चंद[2]॥
बरुहापीड दाम गुंजामनि पीत कर्निका स्रवन बिराजनि।
लोचन लोल कपोल सुचिक्कन
सुंदर बेनु मधुर धुनि गावनि[3] ॥
नाचत गावत आनँद-मूरति नटवत गति नाना रस-रूप
बरनत गोपी पावन लीला गोप-भेष हरि त्रिभुवन-भूप ॥
रटत[4] पसु-पंछी सुर-बनिता अपनौ जन्म कृतारथ मानत ।
'परमानँद' स्वामी सुख-दाइक गोपी-गोप सबै सचु[5] पावत॥

[५७५] नायकी

ठाड़ौ कुंज-भुवन ।
लटपटी पाग सिथिल अलकावलि
घूमत नयन सोहैं अरुन बरन ॥

---

१. मन. (ग.) २. इंद (क. ग. ङ. छ. ज.)
३. बाजनि (इ. ग. ङ. छ. च. ज.) ५. देखत (ग.) ६. सुख (ङ.)

अरगजा भींजि रह्यो तन बागौ निरखि होत मन मगन।
'परमानंददास' कौ ठाकुर रति-पति-करन-सरन ॥

[५७६] सारंग

देखौ ढरकनि नवरँग-पाग की ।
बाम भाग वृषभानु-नंदिनी चितवनि अति अनुराग की ॥
सोभा-निधि गिरिधरन लाडिलौ मूरति परम सुहाग की।
राधा-मदनमोहन जू की जोरी 'परमानँद' के भाग की॥

[५७७] सारंग

कमल-मुख देखत त्रिपति न होइ ।
इहि सुख कहा दुहागिल जानै रही निसा-भरि सोइ ॥
ज्यों चकोर चाहत उडुराजहिं चंद्र-बदन रहि जोइ ।
नेंकु अँकोर देति नहिं राधे चाहति पियौ निचोइ ॥
उनि तौ अपनौ सरबसु दीनौं एक प्रान बपु दोइ ।
भजन-भेद न्यारौ 'परमानँद' जानत बिरलौ कोइ ॥

स्वामिनी-स्वरूप-वर्णन—

[५७८] सारंग

अरी अबला ! तेरे बल हि[1] न और ।
बींधे मदनगोपाल महारस कुटिल[2] कटाच्छ-नयन की कोर?

१. नाहिन (ग.) २. चपल (बं. ११३।७)

जमुना-तीर तमाल-लता-बन फिरत निरंकुस नंदकिसोर।
भौंह[1]-बिलास-पास-बस कीने मोहन अगह गहे तैं जोर॥
लै[2] राखे कुच-बीच निरंतर सृंखल सुदृढ प्रेम की डोर।
इहै[3] उचित होइ ब्रजसुंदरि! 'परमानंद' चपल चितचोर॥

[५७९] सारंग

आजु तेरी चूनरी अधिक बनी।
बारंबार सराहत मोहन[4] राधा परम गुनी॥
जे भूषन पहिरति ते सोहत चोली चारु तनी।
मदन-गोपाललाल तैं मोहे जे त्रैलोक-धनी॥
अंग-अंग बरनौं कहा भामिनि! राजत खुँभी अनी।
'परमानँद' स्वामी की जीवनि जुवतिनि रतन गनी॥

[५८०] सारंग

बदन-छबि मानहुँ चंद बियौ।
मदनगोपाललाल प्यारे कौ क्यों न जुडाइ हियौ॥
सायर मथ्यो स्रयो नैननि तें तब मुनि तपन कियो।
जुग की आदि निचोरि प्रेम-जल बिधि जस-तिलकु दियो॥

---

१. भ्रकुटि
२. राखे कठिन कठोर कुचनि बिच सृंखल सुखद प्रेम० (बं. १३८।१)
३. ये नहिं उचित तोहि
४. गिरिधर (क. ग. च. छ.)

अब[1] लगि राखि दुराइ सबनि तें खग नग[2] सुर न छियो
पूरन सकल प्रगट 'परमानँद' जग जसु गाइ लियो ॥

[५८१] गौरी

धनि ए राधिका[3]-वर-चरन ।
सुभग सीतल अति सुकोमल कमल के से बरन ॥
नख-चंद्र चारु अनूप राजित बिविध सोभा-धरन ।
कुनित नूपुर कुंज बिहरत परम कौतुक-करन ॥
रसिक[4] लाल मन-मोद-कारी बिरह-सागर-तरन ।
बिबस[5] 'परमानंद' छिनु-छिनु स्याम जिनि के सरन ॥

[५८२] कल्यान

अमृत निचोइ कियो इक ठौर ।
तेरौ बदन सँवारि[6] सुधा-निधि
ता[7] दिन बिधिना रची न और ॥
सुनि राधे ! उपमा कहा दीजै स्याममनोहर भए चकोर ।
सादर पिबत[8] मुदित तोहि देखत तपत काम उर नंदकिसोर
कौन-कौन अँग करों निरूपन गुन अरु सील रूप की रासि
'परमानँद' स्वामी-मन बाँध्यो[9] लोचन वचन[10] प्रेम की पासि

---

१. राख्यौ हुतौ दुराइ (बं. १३०।१) २. मृग मुनिनि चयो (बं.१३०।१)
३. लाडिली के० (ग. ज.), (बं. ३२।१८)
४. नंद-सुत मन० (बं. ३२।१८) ५. दास (बं. ३२।१८)
६. सुधारि ७. तब तें ८. पान करत तोहि देखत तृषित काम-बस नंद०
९. बेध्यो १०. बँधे

[५८३] नायकी

प्यारी के दृगनि पर भँवर-नगनि बरसैं मीन खंजन ।
अति ही सलौने अतिहि सुढार ढरे
अति कजरारे भारे बिनु हि अंजन ॥
सेत प्रसेत कटाच्छि दृग तारे उपमा पावें मृग ही कंजन ।
'परमानँद'प्रभु रस-बस करि लियो
सब सखियनि के मन के रंजन ॥

[५८४] गौरी

❀ करति जो कोटि घूँघट की ओट ।
तौउ न रहत नयन अनियारे निकसि करत हैं चोट॥
पाछें फिरि देखें कोउ ठाढे सुंदरवर इक ढोट ।
'परमानँद'स्वामी रति-नाइक लगी प्रीति[1] की चोट ॥

[५८५] भैरव

जै-जै श्रीराधा-पद-पंकज ।
बिधि नारद सिब सेस सकल सुर
सनकादिक सुक मुनि-बांछित रज ॥
स्वस्तिक ऊर्धरेख कमल ध्वज
कुलिस मत्स्य जब छत्र बिराजित ।
कलस तृकोन इंद्र-धनु अंबर जंबूफल अंकुस छबि छाजित

❀ बरजों कोटि घूँघट० से भी प्रारंभ है । १. प्रेम

अष्टकोन अरु संख धेनु-पद अरधचंद्र अति मंजु रह्यो फबि
नख-मनि जोति ब्रह्म झलकति द्युति
जितनी कर नग दीपें ससि रवि ॥
ललकत सादर समाजहिं सेवत
निगम-कदंब नेति-नेति गावत ।
रुनित महामुनि नूपुर किंकिनि अंबर खंजन आदिक धावत
ब्रज-सुंदरि-कुच-कुंकुम-रंजित संतत वृंदा-बिपिन-बिहारी।
रसिक अवनि उपासक सर्वसु 'परमानँद' आनँद-सुखकारी॥

---

१६. व्रताचरण

कात्यायनी—

[५८६] सारंग

हरि-गुन गावति चलीं जमुना-नदिया के तीर ।
लोचन लोल बाँह जोटि[1] सब स्रवननि झलकें बीर ॥
बेंनी बिकल[2] चारु काँधेला कटि-तट अंबर लाल ।
हाथनि फूल[3] लियें करडी भरि उर मुगता-मनि-माल ॥
जल-प्रवेस करि मज्जनि लागीं प्रथम हेम के[4] मास ।
ऐसे[5] प्रीतम होइ नंद-सुत तपु ठान्यो इहि आस ॥

---

१. जोटि करें (क.) २. सिथिल (बं. ११५।१)
३. लए फूल की डलिया अरु० (बं. ११५।१) ४. हेम रितु (बं.११५।१)
५. जासों पीय होइ नँदनंदन ब्रत ठान्यो (बं. ११५।१)

तब लै[1] चीर हरे नँद-नंदन चढि कदंब की डारि ।
'परमानँद' प्रभु वर दैवे कों उद्यम कियो मुरारि ॥

[५८७] सारंग

दै ब्रजनाथ ! हमारी आँगी ।
नातरु रंग सुरंग होइगौ कै बिरियाँ मैं माँगी ॥
ब्रज के लोग कहा कहिहैं[2] सब देखि परस्पर नागी ।
खरे चतुर हरि हौ अंतरगत रयनि परी कब जागी ॥
सकल सूत कंचन के लागे बिच-बिच रतननि धागी ।
'परमानँद' प्रभु दीजत काहे न प्रेम-सुरँग-रँग-रागी ॥

[५८८] सारंग

❀ हो मोहन ! हौं हारी तुम जीते ।
नागर-नट ! पट देहु हमारे काँपत हैं तन सीते[3] ॥
रसिक[4] गोपाललाल ! अबलनि पर एती[5] कहा अनीते ।
'परमानँद' प्रभु हम जानति[6] हैं तुम गाल बजावत रीते॥

गनगौर—

[५८९] सारंग

×बैठि रही राधे सकुमारी ।
बूझति है वृषभानु की महरी क्यों न जेंवति बाबा की प्यारी॥

---

१. हीं (बं. ११५।१) २. कहिंगे (क.)
❀ अहो हरि ! हम हारीं० से भी प्रारंभ है । ३. तीते (अ)
४. तुम ब्रजराजकुँवर (अ.) ५. ऐसी (अ.) ६. सब जानति गाल०
× क्यों बैठि रही (इ. ग. ङ. छ.) से भी प्रारम्भ है ।

आजु हमारें गौरी कौ व्रतु ताकी बिधि तोही पें पाउँ।
सुंदर सुभग सलौनौ ढोटा ताकों पूजि हौं हाथ जिंबाउँ॥
ऐसौ ढोटा नंदराइ कौ ताकों हौं अबही लै आऊँ।
तुम जानों[1] सयानी मईया !
बेगि चलहु चरननि सिर नाऊँ॥
सुनि री जसोमति! कुँवर आपनौ बेगि पठै हौं न्योंतनि आई
'परमानँद' स्वामी सब जानत
देखि-देखि तिहि सब निधि पाई॥

[५६०] सारंग

फूल गही वृषभानु-दुलारी।
पहिलें तौ निरखति नैननि भरि क्यों पूजों एकांति निन्यारी
करि मज्जन नैननि अंजन दै गिरिधर[2] अपने हाथ जेंवायो
अंग-अंग सब भूषन भूषित बसन मनोहर तिलकु करायो
रूप-रासि कैसे कें बरनों नवनागरि नवनागर पायो।
रति-रस-केलि करत दोऊ जन लीला-रस'परमानँद'गायो

[५६१] ईमन कल्यान

राधे ! कौन गौरि तैं पूजी।
वृंदाबन गोकुल गलियनि में सब कोउ कहत बहूजी॥
मदनमोहन पिय कों बस कीन्हों और बात नहीं सूझी।
'परमानंददास' कौ ठाकुर तो सी त्रिया नहीं दूजी॥

---

१. ब्रज-नारि सयानी (बं. १३०/२) २. मोहन (इ. क. ग. ङ.)

१७. द्विजपत्नी-प्रसंग

[४६२] सारंग

गोपालै जू माँगनि पठए भात ।
देहु-देहु करि बालक बोले औ बैठे ब्रजनाथ ॥
पठए[1] ग्वाल देंई नहिं ब्राह्मन फिरि हरि बूझनि आए ।
लै उपहार चलीं सब नागरि भागनु दरसन पाए ॥
बाम बाहु श्रीदाम-कंध पर[2] लीला-कमल फिरावैं ।
सरनागत कौं दैंहि अभय-पद 'परमानँद' जसु गावैं ॥

[४६३] सारंग

जानि दै कमल-नयन पैं आजु ।
सुनहुऽब कंत[3] लोक-लाज तें बिगरत हैं सब काजु ॥
बृंदावन हरि धेनु चरावैं[4] संकरषन के साथ ।
पठए ग्वाल भात माँगनि कौं जज्ञ-पुरुष ब्रजनाथ ॥
मो तौ[5] याहि देह कौ नाँतौ कत रोकत घर माँझ ।
मिलौं पचारि स्यामसुंदर कहुँ[6] नँतर जननि भई बाँझ ॥
नंद कौ लाल भगत-चिंतामनि धरैं गोप कौ भेख ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर प्रिय बिचारि किनि देख ॥

---

१. गए (छ.), ठटए (ग. ङ. ज) २. धरि (घ.)
३. कंत लोगनि तें लाजत (इ. ग. घ. ङ. छ. ज.)
४. चरावत (क. ख. के अतिरिक्त) ५. मो सौं (ङ. छ.)
६. कों नतु जननी (इ. ग. घ. ङ. छ. ज.)

१८. दान-प्रसंग

गोपी-वचन—

[५६४] सारंग

छाँडहु लाल ! हमारी बाट ।
अतिसै सुभर भरे किनि देखहु सिर-ऊपर गो-रस के माट
इनि बातनि कैसें मनु मानैं जाइ चरावहु गोधन-ठाट ।
कमल-नयन! बलिजाउँ तुम्हारी हमहिं जानिदेहु मथुरा-घाट
कर-कस-मिस ब्रजनाथ बिलोक्यो
सुरति भई उर अंतर दाट ।
'परमानँद'प्रभु लेहु मुँदरिया प्रात-समैं की भाजहु नाट ॥

[५६५] सारंग

मानों या के बाबा की कोउ चेरी ।
ढीठयौं[1] देत संक नहिं मानत मारग आवत घेरी ॥
कब लगि लाज बास की कीजै काँनि गुसाँई ! तेरी ।
'परमानंद'प्रीति[2] अंतर-गति दरसन-मिस[3] कै[4] फेरी ॥

[५६६] सारंग

मोहन ! तुम जु बडे के बेटा ।
ऐसी न बूझिए चतुर-सिरोमनि ! बन मँहि करत झँझेटा ॥
आवन-जान बहू-बेटी कौ जमुना-पानी-घाट ।
गगरी फोरत बाँह मरोरत चलनि न पावैं बाट ॥

---

१. गारी २. प्रेम अंतरगत परसन ३. के मिस हेरी ४. करि

जो इहि बात जसोदा सुनिहै बडे गोप उपनंद ।
एक पूत सोई अलक लडैतौ करत अटपटे छंद ॥
सुनत बात मन में सुख उपज्यो भावै हरि की केलि ।
'परमानंददास' की जीवनि बढौ नंद की बेलि ॥

[५६७] सारंग

न गहौ कान्ह ! कोमल मेरी बहियाँ ।
सुंदर-स्याम छबीले ढोटा हौं नहिं आऊँ या बन महियाँ
बलि-बलि जाऊँ चरन-कमलकी जाति ही अपने घर कहियाँ
होति अबार बार मोहि लागै छाँडहु कौन टेव तुम पहियाँ[1]
ब्रज बसि बास बडे के ढोटा
करि न सकति तुम सों फिरि नहियाँ ।
'परमानँद' प्रभु कहि निबरों कछु
बैठहु नेंकु कदम की छहियाँ ॥

[५६८] सारंग

छाँडहु मेरे अँचरा कान्ह! तुम्हारी सौं आउँगी ।
हौं तुम सों सही करि बोलति इहि अवसर कत पाउँगी
उगटि-मगटि करि बसन पलटि कै
फिरत बिलंबु न लाउँगी ।
दधि की मटुकिया अबहि भवन धरि
इहि पाँइनि उठि धाउँगी ॥

---

१. महियाँ

जो पद-कमल ब्रह्मादिक दुर्लभ सो परमारथ पाउँगी ।
'परमानँद' स्वामी सौं मिलिकें नौतन नेह बढाउँगी ॥

[५९९] सारंग

❀ माधौ ! जानि दै चलि बाट ।
कमल-नयन काहे कौं रोकत औघट जमुना-घाट ॥
औरै सखा देखिहैं कोऊ गहत सीस कौ माट ।
तुम नाहिंन डर मानत मोहन ! नियरें गोधन-ठाट ॥
क्यों बिकाइगो मेरौ गो-रस भोर करत हौ नाट ।
चंद्रावलि उभकति 'परमानँद' निसि-दिन एही दाट ॥

[६००] सारंग

× आवति ही गैल चली ।
नंदकुमार बीच ही रोकी इनिकी बात अनकही भली ॥

❀ ऐसा भी प्राप्त है—
जानि देहु माधौ ! किनि बाट ।
मदनगोपाल कहा चाहत हौ रोकत औघट घाट ॥
रहौ गोपाल ! दूरि जैबौ है जहाँ गोधन के ठाट ।
गैहर होत है कबै मथैंगी आई धरि गोरस- माट ॥
बाल लाल सों प्रीति अति बाढी देख बदन-विधु-रूप ।
'परमानंद' नंद-नंदन कौ सुखद विनोद अनूप ॥ (स. भ. बं. ३१।१०)
× ही माई ! गैल० (बं. १२८।३) से भी प्रारम्भ है ।

गो-रस बेचि मधुपुरी नीकें काहू बात न पूछी ।
रहि ढोटा ! तू कहा चाहत है देखि मटुकिया छूछी।।
कहा भयो जो गाँउ कौ ठाकुर इहि कैसी लरिकाई ।
'परमानँद' स्वामी कौ झगरौ तोकों गारि बडाई ।।

[६०१] बिलावल

सुनु ब्रजनाथ ! छाँडहु लरिकाई ।
बिनु रस प्रीति कहाँ तैं उपजै तुम ठाकुर तौ करत बरियाई
कर कहि बाँह नाह अपने ज्यों हटकि करी मारग में ठाढी
कबहु छुवत लर कबहु तोरत हार
कबहुँ गहत कंचुकि अति गाढी ।।
राते नैन रोष में भामिनि जानि देहु मोहि नंद-दुहाई ।
'परमानँद'स्वामी रति-नाइक प्रेम-बचन कहि भलौ मनाई।।

[६०२] कल्यान

काहे कों सिथिल किए मेरे पट ।
नंद-गोप-सुत छाँडौ अटपटी बार-बार रोकत बन में बट
कर लंपट परसौ न कठिन कुच
अधिक बिथा तन रहे[1] निधर घट ।
ऐसौऽब रहौ खेलु तुम्हारौ पीर न जानत गहत पराई लट
कबहु न सुनी कहूँ नहिं देखी बाट परत कालिंदी के टट ।
'परमानंद'प्रीति अंतरगत सुंदर-स्याम बिनोद सुभग[2]नट

---

१. गहे (इ.) २. सुघर (क.)

[६०३] कानरौ

तुम बनमाली ! हो बनबासी !
बिना बिनोद रह्यौ नहिं भावै करत अटपटी हाँसी ॥
कहिहों कछू छाँडि देहु अंचल तिहारे बबा की को दासी
अपने रँग तू छैल ढिटौना गैल चल्यो किनि जासी ॥
ऐसी और कौन जैसे तुम कहा भयो जो दिखाई त्रासी।
'परमानंददास' सँग लीने जहाँ-तहाँ करत मवासी ॥

[६०४] गौरी

कमल-नयन मनमोहना !
मेरौ मारगु छाँडिऽब देहु हो !
कटि-पट पीत सुहावनौ अरु उपरैना लाल !
सीस मोर के चंद्रका चंचल नैन बिसाल हो ॥
कुंचित केस बदन छबि सुंदर चारु कपोल।
स्रुति मंडल कंचन मनि झलकत कुंडल लोल हो ॥
भौंहनि भेद भलौ बन्यो मृगमद-तिलक सुभाल।
अलक मधुप-सम राजहीं उर मुकतावलि माल हो ॥
कुंज-भवन तें हौं चली अपने गृह कों जाति।
तुम हि बिचारौ न जिय कछू इहै कुहू की रात हो ॥
उर-अंचर कर गहत हौ दूरि भयें कहौ बात।
बन-बिच सौंह न लाइये सुंदर-साँवल-गात हो ॥

साँझ परी दिन आँथयो अरुझाई किहि काम ।
सेंतमेंत क्यों पाइये पाके मीठे आम हो ॥
नंदराइ के लाडिले ! याही कों लई बोलि ।
नाहिंन रहत पुकारिहों मति कंचुकि-बँद खोलि हो ॥
'परमानँद' प्रभु यों रमी ज्यों दंपति रस-हेत ।
सुरत-समागम-रसु रह्यो नदि जमुना के रेत हो ॥

[६०५] कानरौ

का पर ढोटा ! नैन नचावत है कोउ तेरे बबा की चेरी।
हौं दधि बेचनि जाति मधुपुरी आइ अचानक बन में घेरी ॥
सैननि में सब सखा बुलाए बात हि बात समस्या फेरी ।
जाइ पुकारौं नंद जू के आगै जो कोउ छुहै मटुकिया मेरी
गोकुल बसि तुम ढीठ भए हौ बहुतै कानि करति हौं तेरी
'परमानँद'प्रभु रसिक-मुकुट-मनि
बलि-बलि जाउँ स्याम-घन केरी ॥

[६०६] कानरौ

का पर ढोटा ! करत ठकुराई ।
तुम तें घाट कौन या ब्रज में नँदहु तें वृषभानु सबाई ॥
लूटत घाट-बाट मधुपुर के ढोरत माट करत बरिआई ।
मारगु छाँडि अबार होत है लालच लंपट की पत जाई ॥
एक ब्रज-वास बडे के ढोटा ऐसी बुधि कौनें जु सिखाई ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर कर गहि गोपी उर में लाई ॥

[६०७] सारंग

माधौ जू ! हम सों तुम इहई ठई ।
मारग जात दान माँगत हौ उह सनेह अति मिठई ॥
तुम बालक से हम भर-जोवन करत तव बिनती ढिठाई।
वह रस और भँवर मालति-बस तब जु मनावौ रुठई ॥
करि मनुहारि पाँइ लागति हों क्योंहू प्रीति न टुटई ।
'परमानँद'प्रभु कतब मिलहुगे इहऽब सँदेसौ झुठई ॥

[६०८] देवगंधार

लालन ! ऐसी बातें छाँडो ।
मदनगोपाल ! छबीले ढोटा ! झगरौ नित उठि माँडौ ॥
अनौखे दानी अबहि चले[1] हैं माँगत गो-रस-दानु ।
प्रात हि होतु आइ ठाढौ भयो ऊगनि न पायो भानु ॥
चंद्रावली कह्यो सुनि मोहन ! इहै समै है औरु ।
'परमानँद' प्रभु जानि देहु घर नंद-सुवन[2] सिर-मौरु ॥

[६०९] देवगंधार

लला हो ! किनि ऐसे ढँग लायो ।
डगर छाँडि उठि चतुर गुसाँइनि चाहत गारि दिवायो॥
को तुम्हरे कुल भयो अचगरौ गो-रस-दान निबेर्यौ ।
त्यों किनि चलौ ज्यों नंद भलौ मानें इक ब्रज-बास-बसेरौ॥

---

१. भये (ङ. छ.) २. नंदन (ङ. छ.)

दारुन कंस बसत है मथुरा ताहु की संक न मानों ।
नंद गोप के कुँवर लडैते आपु वहुत करि जानों ॥
बातें करत प्रेम-रस बाढ्यो नैन रहे अरुझाई ।
'परमानंददास' वह ग्वलिनि घरहि कौन बिधि जाई ॥

[६१०]　　　　देवगंधार

तेरी सौं कान्ह ! अबहि आवति हों
　　　　नेंकु बिलमु कीजे कदम की छहियाँ ।
या मटुकी धरि भवन रँवन कें
　　　　पाँ लागों छाँडहु मेरी बहियाँ ॥
चंद्रावलि पूछति माधो-प्रति कवन जुगति ठानी बन महियाँ
गो-रस-दानु कहाँ कौ लागै इहि विनोद नीकौ तुम पहियाँ
नंद-गोप-सुत गाउँ कौ ठाकुर सुंदरस्याम करों कैसें नहियाँ
'परमानँद'स्वामी की लीला तेरे गुन-गन गरग जु कहियाँ

[६११]　　　　कानरौ

इहि गौइल रे अनोखे दानी !
चले न जाहु अपुने रस ढोटा ! हम सों कौन चतुराई ठानी
कौन हाल[1] कीने हरि ! मेरे फिर-फिरि कहत अटपटी बानी
ए सब बातें ब्यौरि कहोंगी बैठी जहाँ जसोदा रानी ॥

---

१. हवाल किये (इ. क. ग. से ज. पर्यन्त)

अंतरगत[1] हरि सों मिल्यो भावै
इहि[2] नागरता जु मुख हि रिसानी ।
प्रान[3] बसत तेरे कमलनयन पें
जिय की जन 'परमानँद' जानी ॥

[६१२] आसावरी

मटुकिया लै जु उतारि धरी ।
इनि मोहन मेरौ अचरा पकरयो तब हौं आपु डरी ॥
मो पै दान साँवरौ माँगै लीने हाथ छरी ।
हौं ठटिवारि कंसराइ की सो तौ जिय क्यों बिसरी ॥
पइयाँ लागि करति हों विनती दुहुँ कर जोरि खरी ।
'परमानँद' प्रभु दधि बेचनि दै बिरियाँ जात टरी ॥

[६१३] बिलावल

अबहि कछु औरै चालि चलाई ।
तुम हौ नंद के[4] लाडिले मोहन ! राखहु यह चतुराई ॥
घाट-बाट घर[5] बन गिरि-कंदर सदा अटन तोहि भावै ।
गोकुल भए अनोखे[6] दानी मारग चलनि न पावै ॥

---

१. नंदराय के कुँवर लाडिले बात तिहारी कपट सों सानी (छ.)
२. देखहु ग्वालिनि (क. ङ. छ.) ३. मन क्रम वचन और गति नाहीं०
४. महरि के ढोटा छाँडौ ये लरकाई, लाल लाडिले (ग. ज.)
५. गिरि गैहवर कंदर सदा अटक०
६. हठीले

चोली चीर निहारत चंचल[1] छाँडि लला इहि हाँसी ।
'परमानँद' प्रभु राखु[2] अटपटी एक गाँउ के बासी ॥

[६१४]   देवगंधार

भोर ही ठानत हो नित झगरो ।
आईं गईं सदाईं इहि मग कितहूँ न रोक्यो डगरो ॥
तब मुसिक्याइ कही मनमोहन नंद कौ लाल अचगरो ।
रहि री ग्वालि ! जोबन-मदमाती लेहुँ छीनि दधि सगरो॥
काहे कों ढोटा नैंन नचावत निकट है ब्रजराज कौ नगरौ ।
'परमानँद'प्रभु इहि विधि बिहरत रूप-रासि-गुन-अगरौ ॥

[६१५]   देवगंधार

कबहू न दान सुन्यो गो-रस कौ ।
तुम तौ कुँवर ! बडे के ढोटा पार नहीं कछू जस कौ ॥
रोकत हौ पर-नारि विपिन में नेंकु नहीं जिय कसकौ ।
'परमानँद'प्रभु मिस जो दान कौ है कछु और ही चसकौ

[६१६]   सारंग

सूधे क्यों न बोलौ कहा इतराने ।
ब्रज में कौन कौन तें को बडौ नाहिंन रे इतराने ॥
कौन टेव तिहारी दिन-प्रति की तकत अंग बिराने ।
जोई-जोई करम किये कहि देऊँ 'परमानँद'रहौ छाने॥

---

१. अंचल छाँड लाल ये०   २. छाँडि

[६१७] सारंग

लेहु दही कान्ह ! लेहु दही ।
मेरे संग की दूरि निकसि गईं
सबनि छाँडि हौं ही आनि गही ॥
धरी उतारि मटुकिया सिर तें तब मनमोहन तें बात कही
खइये सु दधि जानि दीजै चली यह अबलौं कछु हौं न लही
ऐसौ रंग रह्यो सुनि नागर ! ये अपने कुल-लाज बही।
'परमानँद' प्रभु चतुर ग्वालिनी सर्बसु लै निबही ॥

[६१८] सारंग

दधि लै आऊँगी उठि भोर ।
तुम तौ इहि बन बछरा चरावत नागर नंदकिसोर !
जानि देउ बड़ी बार होत है घन मिलि दामिनि घोर ।
जो न पत्याउ तौ गहनें राखौ उर-मनि-कंचन मोर ॥
तुम गोविंद ! सर्वज्ञ कहावत मानौ ये तौ निहोर ।
'परमानँद' स्वामी मनमोहन अटके नैन की कोर ॥

[६१९] देवगंधार

पिछौंडी बौंहनि दैहौं दान ।
साँचे मन तुम लेहु कन्हैया[1] ! राखहु मेरौ मान ॥
मारग रोकि रहे मनमोहन ! सब गुन-रूप-निधान ।
बदन देखि मुसिकानी भामिनि नैननि बान-सँधान ॥

---

१. साँवरे

नंदराइ के कुँवर लाडिले ! सब के जीवन-प्रान !
'परमानँद' स्वामी नागर हौ तुम तें कौन सयान ॥

प्रभु-वचन—

[६२०] देवगंधार

रंचक चाखन दै री ! दह्यौ ।
अद्भुत स्वाद स्रवन सुनि मो पें नाहिंन परत रह्यो ॥
ज्यों-ज्यों कर-अंबुज कुच झंपति त्यों-त्यों मरमु लह्यो ।
नंदकुमार छबीलौ[1] ढोटा अँचरा धाइ गह्यो ॥
हरि हठ करत 'दास परमानँद' इहि मैं बहुत सह्यो ।
इनि बातनि खायौ चाहत है सँत न जात बह्यो ॥

[६२१] सारंग

ग्वालिनि ! गो-रस नेंकु चखाउ ।
त्यों नारि तैं औटि जमायो तातें कीजत भाउ ॥
कहति बकति बे काज बावरी ! औरनि देति जनाउ ।
मदनगोपाल मोल दै लैहै ह्वै है तेरौ स्वाउ ॥
कहा करै सकुचि मुसिकानी रस-लंपट ब्रजराउ ।
'परमानंद' नंद-नंदन सों नयौ नेह नयौ चाउ ॥

[६२२] सारंग

ग्वालिनि ! मीठी तेरी छाछि ।
कहा दूध में घालि[2] जमायो साँचु कहि मेरी बाछि ॥

---

१. अचगरौ (च.), हठीलौ २. मेलि

औरै भाँति चितैबौ तेरौ भौंह चलति है आछि ।
ऐसौ टकुभकु कहूँ न देख्यो तू जु रही कछु काछि ॥
रहसि कान्ह कुच कर गहि परसत तू जु परति है पाछि ।
'परमानँद' गोपाल आलिंगी गोप-बधू हरिनाछि ॥

[६२३] सारंग

करि दधि-मोलु आजु हौं लैहौं ।
इहि गज-मोती[1] तोरि कंठ तें चंद्रावली गुपति तोहि दैहौं
पानि पानि गहि ठाढी कीनी बाट माँझ लै माँड्यो झगरौ
बाबा की सौं जानि न दैहौं नंदकुमार हठीलौ अचगरौ ॥
लोभ दिखाइ प्रीति जो कीजै[2] ते बात भली सब फीकी ।
'परमानँद' प्रभु जानि महातमु जे हरि भजै चतुर सोई नीकी

[६२४] सारंग

नेंकु तू मटुकी धरहि उतारि ।
बैसि[3] प्रेम की बातें कीजै सुनि चंद्रावलि नारि !
बहुरि कहाँ इहि संगु बनैगौ ऐसे कानन माँझ ।
लरिकाई कौ इहि रसु चलिहै द्यौस आँथये-साँझ ॥
इहि जोबन धन संग कौन कै लाड दिवस द्वै-चारि ।
'परमानंददास' हरि नागर खेल करै मनुहारि ॥

---

१. मौतिनि हार कंठ कौ० २. कीन्हो नीकी ये बात और सब फीकी
३. बैठि (ग. ज.)

[६२५]　　　　　　सारंग

कौन हौ री ! किनि ठाढी रहौ ।
कहा लियें तुम जाति कहाँ हौ हम सों किनि इक बात कहौ
तुम्हें एतौ सौ काजु कहा है हमकों हौं तुम डगरु गहौ।
काम-नृपति वृषभानुकिसोरी दियो हो ! दान कौ बाँधि बहौ
एते राज-काज में देखे दूध-दही कौ दान न हौ।
'परमानँद' गोपाल हठीलौ दान लियो अरु गह्यो गहौ

[६२६]　　　　　　धनाश्री

गो-रस बेचिबे मँहि भाँति।
कमल[1]-नयन बिनु कोउ न लैहै काहे कों मधुपुरी[2] जाति।।
दूध-दही के दमका देहै छुवत कहा सतराति ?
'परमानँद' ग्वालिनी सयानी मोलु करति मुसिकाति।।

[६२७]　　　　　　देवगंधार

गो-रस राधिका लै डगरी।
नंद कौ लाल अमूलौ गाहक ब्रज तें निकसत पकरी ।।
उचित मोलु कहि री! या दधि कौ लैहौं मटुकी सगरी ।
कछुक दान कौ कछुक रोक लै कहाँ फिरैगी नगरी ।।
नंदराइ कौ कुँवर लाडिलौ दधि के दान की झगरी ।
'परमानँद' स्वामी सों मिलि कें सरबसु दीनौ भगि री ।।

---

१. नंदनँदन　　२. मधुरा (इ. घ. च.)

[६२८] आसावरी

अहो नागरी ! गोवर्धन-गिरि की
बिनु लाहैं क्यों उतरैंगी घाटी ।
समौ छाँडि दधि बेचनि आई कहि सुंदरी ! कौन मिस ठाटी
रसिकराइ तब देख्यो चाहत तेरी मथनिया मोठी कै खाटी
हमरौ दान जात ब्रजसुंदरि !
'परमानँद' प्रभु इहि मिस डाटो ॥

[६२९] देवगंधार

नँदनंदन दान निबेरतु री ।
राखहु रोकि दधि-समेत ग्वालिनि[1] सखा-वृंद-प्रति टेरतु री
जब उठि चलीं प्रबल[2] गोपी-जन तब आगें व्है घेरतु री।
बाँधि जठर पट-पीत ललित गति
कर गहि[3] लकुटिया फेरतु री ॥
काहू के कुच भुज अंचलु गहि सबहिनि कौ मनु मेरतु री।
'परमानँद' प्रभु रसिक-सिरोमनि मुसकि करखियनु[4] हेरतु री

परस्पर गोपी-वचन--

[६३०] सारंग

मैं तासों केतो बार कह्यो ।
इहि मारग इक सुंदर ढोटा बरबट लेत दह्यो ॥

---

१. ग्वालिहिं (इ. घ.) २. चपल (ग. ज.) ३. लै
४. कनखियन (ग. ज.)

इत-उत सघन कुंज गव्हर तकि मारग रोकि रह्यो ।
अति कमनीय अंग[1]-छबि निरखत नेंकु न परत रह्यो ॥
लोचन सफल होत पल निरखत बिरह न जात सह्यो ।
'परमानँद' प्रभु सहज माधुरी मनमथ-मानु ढह्यो ॥

[६३१] सारंग

मोहन नंद-गोप कौ चंचलु ।
जबहिं चलै परगु इक सुंदरि धाइ गहै तब अंचलु ॥
चंद्रावली चतुर चित-अंतर ते इहि मारगु आवै ।
जँहई भेट होत नागर सों बालक-लीला भावै ॥
देखि सुरूप ठगौरी लागी गो-रस कौ मिस पायो ।
'परमानंददास' इहि झगरौ काम-प्रेम तें लायो ॥

[६३२] सारंग

गो-रस बेचत ही ठगी ।
कहा करै[2] वाकौ बस नाहीं मनसा अनत लगी ॥
खेलत बीच मिले नँदनंदन कालिंदी के तीर ।
चितयो नेंकु कमल-दल-लोचन मनमोहन बलवीर ॥
और सखी सब बूझन लागीं करत कौन कौ मोलु ।
'परमानंददास' बलिहारी मीठे तेरे बोलु ॥

---

१. नैन (इ. ध.) २. करों आप

[६३३] सारंग

इहि हरि के उर कौ गज-मोती ।
चंद्रावली! कहाँ तैं पायो दूरि करत दिन-मनि की जोती ॥
ढीठ भई पहिरें तन डोलति बूझे तें कहा ऊतर दैहै ।
भूलि भवन जिनि जाइ नंद के
निरखि छिडाइ जसोदा लैहै ॥
अजहुँ तौ नृपति कंस जीयतु है मैं दधि के पलटे है पायो
जो न पत्याउ सपथ दै बूझहु 'परमानँद' सँग ता दिन आयो

[६३४] सारंग

न जैहौं माई ! बेचनि दह्यौ ।
नंद-गोप कौ कुँवर लाडिलौ बन माँहि दाटि रह्यो ॥
इहि सब भेद सखी अपनी सों चंद्रावली कह्यो ।
माँगत दान अटपटी बातें अंचरु रवकि गह्यो ॥
रावरि जाइ उराहनु दैहौं अब लगु बहुत सह्यो ।
'परमानंद' कहै सुनि भामिनि ! बहुतें पुन्य लह्यो ॥

[६३५] कान्हरौ

आवति ही साँकरी खोरि ।
दोऊ हाथ पसारि रहे हरि हौं बलि जाइ रही मुख मोरि
बालक सों बत[1] कहा कहौं सखि! लैऽब दोहनी हाथ मरोरि
ऐसौ चपल हठीलौ ढोटा भाज्यो बहुरि मटुकिया फोरि॥

---
१. उत (च)

का पर करनी अटपटी बरनौं ग्रीव तें लियो मेरौ हार तोरि
ताकी साखि 'दास परमानँद' इक-इक लाल लहैं[1] लख कोरि

[६३६]   कल्यान

नंद जू के ढोटा हौं मारी ।
करौं पुकार जसोदा आगैं चोली हमारी फारी ॥
बरबट दान दही कौ माँगै सिर तें मटुकी जु डारी ।
इतनी लाज करति हौं नंद की नाँतर दैहौं गारी ॥
कुच नख देत अधर-रस माँगै यह देखौ मेरी सारी ।
'परमानँद' प्रभु प्रीति प्रगट भई हँसि कर दीनी तारी॥

[६३७]   आसावरी

करत कत कमल-नयन सौं झगरौ ।
दान देहु घर जाहु सयानी छाँडहु लाल अचगरौ ॥
तातौ सीरौ तैं न मिलायो औटि जमायो सगरौ ।
नेंकु छुवनि दै नंदलाल कौं कबहुँ न लहै अगरौ ॥
मोहनलाल गोवर्धनधारी नवलनि माँझ नवलरौ ।
'परमानँद' प्रभु बतरस अटकी भूलि गयो ब्रज-डगरौ॥

[६३८]   आसावरी

अरी ! मो पै दान माँगै कुँवर कन्हाई ।
बार-बार चोरी दधि बेच्यो अब की बेर मैं जानि न पाई

---

१. रहे (ग.)

जासों तू राति लरी मृगनैनी तेहि सयानी बात लखाई।
लेउ निबेरि आजु सब दिन कौ जानि न देहुँ ब्रजराज-दुहाई॥
मोहनलाल गोवर्द्धनधारी हरि नागरि बातनि अरुझाई।
'परमानँद' प्रभु बतरस अटकी दान लियौ अरु डगर बताई॥

गोपी-वचन, यशोदा प्रति--

[६३९] सारंग

कान्ह बिनोदी मन-चोर।
मेली ठगौरी सब गोकुल पर सुंदर नंदकिसोर॥
सुनि री जसोदा! करतब सुत के तू जिनि जानहिं भोर।
जाके उर[1]-आभिंतर[2] सब जगु खेलत अपने जोर॥
तौ छाँडों यों कहत चपल चित जो तू देहि अकोर।
माखन दूध दही घृत मेवा भावै[3] न भाँवते मोर॥
हँसी[4] जसोदा मूँदि कमल-मुख मेरे गो-रस थोर।
'परमानंददास' सँग लीने फिरत स्याम अरु गोर॥

[६४०] सारंग

बरजहु अपनौ ललुन।
सुनि री जसोदा! या बालक कौ ऐसौई चलनु॥
मारगु रोकि कंचुकी फारत ढोरत गो-रस माट।
प्रातकाल उठि निडर[5] हठीलौ रोकत जमुना-घाट॥

---

१. उदर-आभ्यांतर (क.) २. आभासत (बं. १२८।२)
३. भवन भाँवते ४. हँसति ५. निपट (ग.)

लाज की बात कहौं किहिं आगैं पाँच लोक की कानि।
बाँह पकरि पैठत बन-भीतर पत्र बिछावत आनि ॥
ऐसी बात करत मनमोहन प्रीति बढावत धीर ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर संकरषन कौ बीर ॥

[६४१] देवगंधार

देख्यो री कहुँ नंदकिसोरा ।
स्याम बरन अरु पीत पिछौरा अंग चढाएँ गोरा ॥
बरबट दान दही कौ माँगैं बृंदावन के ठौरा ।
कहिहौं जाइ कंस के आगें करिहै और के औरा ॥
बरजि जसोदा ! अपनौ[१] ढोटा अंचर के किये कौरा ।
'परमानंद' प्रीति के गाहक तिहूँ लोक सिर-मौरा ॥

---

१९. दीपमालिका-अन्नकूट

धनतेरस—

[६४२] बिलावल

धनतेरस रानी धन धोवत्ति ।
गर्ग बुलाइ वेद-विधि पूजति ठौर-ठौर घृत-दीप सँजोवति
धूप दीप नैवेद्य भोग धरि स्यामसुँदर इकटक मुख जोवति
'परमानँद'त्यौहार मनावति सब ब्रज पुष्टि-मारग-धनबोवति

---

१. अपने सुत कों (ग. ज.)

गो-क्रीडन—

[६४३] सारंग

किलकि हँसे गिरिधर ब्रजराई ।
भाज्यो सुबल लीनें गोद बछरुवा पाछें धौरी धाई ॥
मधुमंगल लै मोर-पखउवा दौरि वाहि अहटाई ।
तोक ताक तकि मोहन की ढिंग भली बिधि धेनु खिलाई
खोलि भवन भूषन के बाबा परबी भली मनाई ।
लियो है लपेटि लाल गहने में सब ब्रज देखनि आई॥
स्याम जलद-गंभीर गरज सों मोहन टेरि सुनाई ।
वह वा पर वह वा पर गैयाँ सोभा कही न जाई ॥
सुवर्ण[1] सिंग घंट अरु कठुला पीठि पत्र-समुदाई ।
'परमानँद' आनँद भरी खेलति मुरली तबै बजाई ॥

[६४४] सारंग

बिफरि गई धूमरि अरु कारी आपु गोपाल खिलावत।
कूकत ग्वाल बछरुआ लीनें बदन पिछौरी डारत ॥
तब तौ हूँकि-हूँकि सनमुख ह्वै भली विधि भट्ट सँवारी।
उच्च पूछ करि दौरी दोऊ कुँवर भरे अँकवारी ॥
भीर खरिक के अटा-अटारी ठाढी हैं ब्रज-नारी ।
'परमानँद' देखें बनि आवै नवल लाल गिरिधारी ॥

---

१. सोने सींग घंटा (बं. १२८।३)

[६४५] सारंग

सब गैयनि में धूमरि खेली।
सुनि[1]-सुनि कूक सुबल की सनमुख
ग्वाल भजावत चिफरि अकेली॥
तब[2] गिरिधरन धाइ कें पकरी कंठ बनावत सेली।
चुचुकारत[3] चुंबत कर फेरत कहत टेरि लावहु गुर-भेली॥
आपु गोपाल खिलाइ[4] खिलावत औरुव धेनु जे हेली।
बाँह चढाइ लैरुवा घेरत अलक बदन पर फैली॥
हरषित श्रीब्रजराज निरखि यह अपने लालकी अद्भुत केली
'परमानँद' देखें बनि आवें जब धौरी की बछिया झेली॥

[६४६] सारंग

नीकी हो! खेली गोपाल की गैया।
कूकें देत ग्वाल सब ठाढे इहैं दिवारी नीकी हो भैया!
नंदादिक[5] देखत[6] हैं ठाढे इहैं परबनी नीकी आई।
बरस द्यौस लगि कुसल कुलाहल नाचहु गाबहु करहु बधाई[7]

---

१. स्रवन पूछ ऊँचे करि सनमुख(बं ६६।१),
स्रवन पूछ उचकाइ सूधि व्है ग्वाल भजावत फिरत (बं. १२८।३)
२. पकरि लई गोपाल आप ही (बं.१२८।३) ३.चूमत मुख आँकौ भरि भेटी
४. खबाइ खिलावत सब गायन कों हेली (बं. १२८ ३)
५. सब मिलि कहत ग्वाल मोहन सों यह परबनी नीकी भैया (अ.
६. देखें सब ठाढे इहै पाहुनी नीकी हो! ऐया (घ. ङ. छ.)
७. बधैया (अ. घ. ङ. छ.)

धौरी धेनु सँवारी[1] मोहन बडडे वृषभ सिंगारे[2] ।
'परमानंद' राम दामोदर गोधन के रखवारे ॥

[६४७] सारंग

स्याम खरिक के द्वार करावत गाइनि के सिंगार ।
नाना रंग सृंग मंडित किए ग्रीवा[3] मेले हार ॥
घंटा कंठ मुरफ[4] के कठुला पीठनि कों ओछार ।
नूपुर किंकिनि चरन बिराजित बाजत चलत सुढार ॥
इहिं बिधि सब ब्रज धेनु सँवारी[5] सोभा बढी अपार ।
'परमानँद' नँदनंदन[6] खिलावत पहिरावत सब ग्वार ॥

दीपमालिका— [६४८] सारंग

आजु अमावस दीप-मालिका बडी परबनी है गोपाल !
घर-घर गोपी मंगल गावें सुरभी वृषभ सिंगारहु लाल!
कहति जसोदा सुनु मनमोहन! अपने तात की आज्ञा लेहु
बारहु दीपक बहुत लाडिले ! करि उजियारो आपुने गेहु
हँसि ब्रजनाथ कहत माता सों धौरी धेनु सिंगारहुँ माइ !
'परमानंददास' कौ[7] ठाकुर जिहिं भावति हैं सब दिन गाँइ

[६४६] सारंग

आजु कुहू की राति माधौ ! दीप-मालिका मंगलचारु।
खेलहु जूप[8] कृष्ण संकरषन मोहन मूरति नंदकुमारु ॥

---

१. सिंगारो (अ. इ. ग.) २. सँवारे (ङ. छ.)
३. अरु ग्रीवा मनि-हार (अ. इ.) ४. मोतिनि की पटियाँ ५ सिंगारीं(इ.)
६. प्रभु धेनु खिलावत निरखति व्रज-सुकुमारि
७. संग लोनें मृदित खिलावें धौरी गाँइ (बं. ६६।१) ८. द्यूत सहित

कहति जसोदा सुनु मनमोहन ! चंदन-लेप सरीर करौ।
पान फूल चोवा दिव्य[1] अंबर मनि-माला लै कंठ धरौ।
गो-क्रीडन[2] पुनि काल होइगौ नंदादिक देखहिंगे आइ।
'परमानंददास' सँग[3] लीने मुदित खिलावत धौरी गाँइ॥

[६५०] केदारौ

घरी एक छाँडहु तात ! बिहारी।
राम-कृष्ण तुम दोऊ भैया ! आवहु करहु सिंगार॥
जसोमति कहति आजु अपनें[4] है दीप-मालिका नामु।
औरै[5] बालक सबै सिंगारे सुनहु कान्ह[6] घनस्यामु॥
पेलहु[7] गाँइ ग्वाल नाचत हैं गोपी गावहिं गीत।
'परमानंददास' इहि[8] मंगल वेद पुरान पुनीत॥

[६५१] कान्हरौ

गिरिधर ! हटरी भली बनाई।
दीपावलि हीरा-मनि राजत देखत हरष होत अति माई!

---

१. मृगमंद सजि बनमाला० (बं. ६६।१)
२. क्रीडा बिनु कल न परति है नंदादिक सब देखौ आइ।
'परमानंद' लाल गिरिधर पिय आनँद-मगन खिलावत गाँइ (बं. ६६।१)
३. कौ ठाकुर खिरक (बं. १२८।३) ४. बडौ दिन (बं. १२८।३)
५. घर-घर (१२८।३), ब्रज के लरिका (बं. ६६।१)
६. स्यामघन राम (बं. १२८।३), स्याम बलराम („)
७. खेलहिं (ग. से छ.), खेलिहें (घ.), खेलें गाँइ गुवाल नचावें(बं. १२८।३)
नाचत गाय ग्वाल अरु गो-सुत (बं. ६६।१)
८. कौ ठाकुर रसना करौ पुनीत (बं. १२८।३)

अनेक भाँति पकवान बनाए अति नौतन बिंजन सुखदाई
सुंदर भूषन पहरि सुंदरी सौदा करनि लाल तें आई ॥
सावधान ह्वै सौदा कीजै दीजै तोल पुराई ।
राखौ चित चंचल नहिं कीजैं ग्वालि हँसी मुसिकाई ॥
कैसें बोली बोलति ग्वालिनि ! कहत जसोदा माई ।
'परमानंद' हँसी नँद-घरुनी सबै बात हौं पाई ॥

[६५२] कानरौ

दीप-दान दीपावलि देखौ हीरा-खंभनि दीप-नग रजत ।
जगमग जोति रही चहुँ दिसि तें
निबिड तिमिर अति भाजत ॥
बैठे लाल हटरिया बेचत मृदु मेवा पकवान मिठाई ।
देखि-देखि सोभा ब्रजसुंदरि सौदा लैन लाल सौं आई ॥
मृदु मुसुकाइ कहत लालन[१] सौं घटि जिनि तोलौ लाल !
'परमानँद' प्रभु नंदनँदन हँसे और हँसी सब ब्रज की बाल ॥

[६५३] केदारौ

गोवर्द्धन-पूजा—

नंद गोवर्द्धन पूजहु आजु ।
जातें गाँइ ग्वाल गोपिका सब[२] सुख नीकौ राजु ॥
जाकौं रचि-रुचि बलिहि बनावत कहा सक्र सौं काजु ।
गिरि के बल बैठे घर अपने कोटि इंद्र पर गाजु ॥

---

१. मोहन (ग.) २. सबै सुखनि कौ (ङ. च. छ)

मेरौ कह्यौ मानि अब कीजै भरि-भरि सकटनु साजु ।
'परमानंद' आनि कै दीने वृथा करत कत नाजु ॥

[६५४] केदारौ

बार-बार समुझावनि लागे अमृत-वरनी[1] वानी ।
सुनहु पें[2] उपदेस हमारौ चारि पदारथ-दानी ॥
करहु बेगि पकवान बहुत करि दूध दह्यौ घृत-सानी ।
गोवर्द्धन की पूजा कीजै गोधन कौ सुख-दानी ॥
इहै प्रतीति नंद कें आई कान्ह कही सो मानी ।
'परमानँद' प्रभु मान-भंग करि झूठे[3] कीने पानी ॥

[६५५] केदारौ

गोधन पूजहिं गोधन गावहिं ।
गोधन के सेवक संतत हम गोधन ही कों माथौ नाँवहिं॥
गोधन मात-पिता गुरु गोधन
गोधन देव जाहि नित ध्यावहिं ।
गोधन कामधेनु कलप-द्रुम गोधन पें माँगहि सो पावहिं ॥
गोधन खोरि खरिक गिरि गह्वर
रखवारौ घर बन जहाँ छाँवहि ।
'परमानंद' भाँवतौ[4] गोधन गोधन कौं[5] हमही फिरि भाँवहि॥

---

१. बरखत (ग. से छ.) २. धौं (इ. ग. से छ.), सुनि हो इक०
३. झूठौ कियो इंद्र कौ पानी ४. लाडिलौ (बं. १२८।४)
५. पें माँगे सोई पावहि (बं. १२८।४)

[६५६] सारंग

गोवर्द्धन पूजत परम उदार ।
गोप-वृंद गोहन मोहन के सोभा बढ़ी अपार ॥
षट् रस-बिंजन भोग सैल[1] के धरत बिविध उपहार ।
पूजा करि पाँइ[2] लागि प्रदच्छिना देत दिवावत ग्वार ॥
चहूँ ओर गोपी कंचन-तन[3] मानों गिरि पहिरयो है हार ।
'परमानँद' प्रभु की छबि निरखत रह्यो जु बिथकित मार ❀

[६५७] बिलावल

गोवर्द्धन पूजि हैं हम आइ ।
राखौ भाग नंद मघवा कौ करि है कहा रिसाइ ॥
आनँद मन सब ग्वाल-बाल चले रस गो-रस माट बनाइ
सखनि सहित बलराम-कन्हैया फिरत सिंगारत गाँइ ॥
आपुन स्याम लिएँ गिरि-मूरति अंतर-प्रीति उपाइ ।
'परमानँद' प्रभु लै दधि-ओदन बैठि रहे सब खाइ ॥

[६५८] बिलावल

गिरि गोवर्धन पूजत तात ।
भरि पकवान चले परबत लौं मोहन बूझत मात ॥
ग्वाल-बाल सब सखा संग के लिएँ माखन-दधि सब खात
'परमानंददास' कौ ठाकुर गिरिधर पिय बोलत तुतरात

---

१. सकल लै (अ.) २. गोपी कंचन मनि दच्छिना (अ.) ३. मनि (अ.)
❀ कुंभनदास की छाप से भी (अ. ८१) में

[६५६] बिलावल

ब्रजपुर बाजत सबहिंनि के घर ढोल दमामा भेरी ।
श्रीगोवर्धन की पूजा के हेत सबनि कों टेरी ॥
अन्नकूट बहु भाँति बनावत रचि पकवाननि ढेरी ।
नंदराइ पूजत परबत कों गाँइनि लाओ घेरी ॥
धूमरि गाँइ बुलाई ऊपर लाल उपरैना फेरी ।
सुबल सुबाहु कूक दै दौरे नाँही लगायो बेरी ॥
डाढ मेली महुरी की बछिया लायो पूछ है छछेरी ।
देखत 'परमानंद' सखनि कों गाँइनि लियें उभेरी ॥

[६६०] सारंग

अपनौ देव गोवर्द्धन-रानौ ।
जाकी छत्र-छाँह में बैठे ताकों तजि औरै क्यों मानौ ॥
नीकें तृन सुंदर जल नीकौ नीकें गोधन रहत अघानौ
नीकें ब्रज सब होत सुखारौ सुरपति कोप का कौ पहिचानौ
खीर खाँड घृत भोजन मेवा ओदन साक अनोपम आनौ
'परमानँद'गोवर्द्धन-उच्छव अन्नकूट अलौकिक जानौ ॥

[६६१] केदारौ

गोधन पूजिकें घरु आए ।
जननि जसोदा करति आरती मोतिनि चौक पुराए ॥

मंगल कलस बिराजित[1] द्वारें बंदनबार बनाए[2] ।
'परमानँद' मोहन[3] गिरि पूज्यो भए भोजन मन भाए॥

गोवर्द्धन-धारण— [६६२] केदारौ

माधौ ! राखहु अपनी ओट ।
वह देखहु गोवर्द्धन-ऊपर उठे मेघ के कोट ॥
तुम जु सक्र की पूजा मेटी बैरु कियो उहि बोट ।
नाहिंन नाथ महातमु जानत भयो खरे तें खोट ॥
लियो उठाइ हाथ करि परबत मुदित ग्वाल अस्फोट ।
काली-दमन पूतना-सोषन जियो नंद के ढोट ॥
सात दिवस जल बरषि[4] सिरानौ तन[5]-मन कियो निघोट
'परमानंद' इंद्र चलि आयो मुगट चरन[6]-तर लोट ॥

[६६३] केदारौ

बरखन दैं री ! बरखनि दै ! हमारें गोकुल-नाथ सहाइ।
एक हि हाथ नंद के नंदन परबत लियो उठाइ ॥
मोहि[7] भरोसौ कमल-नयन कौ बार न बाँकौ जाइ ।
महाबली घनस्याम मनोहर समरथ जादौराइ ॥
सात दिवस जल बरषि सिरानौ मघवा चल्यो खिसाइ ।
'परमानँद' स्वामी के गोपा निकसे बेनु बजाइ ॥

---

१. लिये व्रजसुंदरि बंदन द्वार २. बँधाए (अ. ग.)
३. गिरिधर ४. वृष्टि निवारी (इ.)
५. मघवा भयो (अ.) ६. पाँइ (इ. घ.) ७. हमें (अ.)

[६६४] पंचम

महाकाय[1] गोवर्द्धन परबत एक हि हाथ उठाइ लीनों।
देवराज कौ गरबु हरयो हरि अभय-दान ग्वालनि कों दीनों
गरग बचन कहे सो साँचे इहि बालक लीला-अवतारी
कहें नंद ग्वालनि के आगें सेवा करहु सनेह बिचारी॥
तोरयो सकट पूतना मारी तृनावर्त-दानव संघारयो।
कालिंदी-जल निर्बिसु कीनौ कालीनाग विदेस निकारयो
अर्जुन वृच्छ निमिष मँहि तोरयो[2]
आपुनि दाम ऊखल[3] बँधाए।
'परमानँद' स्वामी मुसिकाने किए भक्त-मन-भाए॥

[६६५] गौरी

आवहु रे! आवहु रे ग्वालौ! या परबत की छाँह[4]।
गावहु नाचहु करहु कुलाहल जिनि[5] डरपहु मन माँह॥
जिनि तुम्हारौ पकवान खायो सब सोई रच्छा करिहै।
'परमानंददास' कौ ठाकुर गोवरधन[6] कर धरिहै॥

[६६६] धनाश्री

महा बल कीनौं हो ब्रजनाथ!
इत मुरली उत गोपिनि सौं रति इत गोर्द्धन हाथ।

१. भार (अ.) २. तोरे (ङ. छ.) ३. उलूख (च. छ.)
४. छहियाँ (बं. १२८।४) ५. सुखै चराबहु गैयाँ (बं. १२८।४)
६. गिरिगोवरधन („). नख ऊपर गिरि („)

इत बालक पै-पान करत हैं इत सुरभी तृन खात ।
इत सब बच्छ चरत अपने रँग ग्वाल बजावत पात ॥
कोप्यो[1] मेघ महाप्रलय कौ[2] झर लायो[3] दिन सात ।
'परमानंद राखि लिए मोहन मेटि इंद्र की घात ॥

[६६७] सारंग

अब न छाँडों चरन-कमल महिमा मैं जानी हो ।
सुरपति तुम नाउँ धरयो लोका अभिमानी हो ॥
अब ही लौं[4] जानत हौ ठाकुर है कोई ।
अपनौ[5] ब्रज राखि लियो मेरी पति खोई ॥
ऐरावति कामधेनु गंगा-जलु आन्यों[6] ।
हरि कों अभिषेक कीनो जै-जै सुर-बान्यों[7] ॥
बार-बार प्रनामु[8] करत गोवर्द्धन-धारी ।
'परमानँद' प्रभु[9] गोपाल लीला-अवतारी ॥

[६६८] सारंग

हम नँदनंदन-राज सुखारे ।
सबै[10] टहल आगेंई भुज-बल गाँय गोप प्रतिपारे ॥

१, कोपे (ग. च. छ.) २. के (ग. च. छ.) ३. लाए (ग. च. छ.)
४. अब लौं हौं जानत हौ ठाकुर नहिं कोई ५. गोपौ ग्वाल राखि लिये
६. आनी ७. बानी ८. प्रनत इंद्र ९. गोप-भेष (ग. घ. ङ. छ.)
१०. सब दुख टारे या भुज-बल करि गाय. (अ)

गोधन फैलि चरत बृंदावन राखत[1] कान्ह पियारे ।
सुर-पति खुनस करी ब्रज-ऊपर आपुन सों पचिहारे ॥
गोपी औरु[2] ग्वाल बनि आए अब बड भाग हमारे ।
'परमानँद' स्वामी सरनागत अब[3] जंजार निवारे ॥

[६६९] बिलावल

यातें जिय भावै सदा गोवर्द्धन-धारी ।
इंद्र-कोप तें नंद[4] की आपदा निवारी ॥
जो देवता अराधिये सो हरि कौ भिखारी ।
अन्य[5] देव कत सेइये बगरे[6] उपकारी ॥
दुःसासन के क्रोध[7] तें द्रौपदी उबारी ।
'परमानँद' प्रभु साँवरौ भक्तनि हित-कारी ॥

[६७०] बिलावल

चिरजियौ लाल गोवर्द्धनधारी !
सात दिबस जल-वृष्टि निवारी या ढोटा पर वारि डारी ॥
देवराज[8] ! प्रतिज्ञा[9] मेरी गोप-भेष लीला-अवतारी ।
नलकूबर-मनिग्रीव उद्धारे बालक-दसा पूतना मारी ॥
देहि असीस सकल गोपीजन-राज करहु बृंदावनचारी ।
परमानंददास' कौ[10] ठाकुर अनुदिन आरति हरत[11] हमारी

---

१. महाबली रखवारे (अ.) २. ग्वाल कहत सब फूले अब निज भाग (अ.)
३ सब (अ. ग. से. छ.) ४. गोप की (घ.) ब्रज-जन की (ङ. च. छ.)
५. आन देव कित बिगरें सुभकारी (अ.) ६. बिगरें (ग.) बगरे अपकारी
७. कोप ८. देवनि राज ९. परतिग्या
१०. की जीवनि ११. हरहु. (अ.)

[६७१] बिलावल

हमें सरन तुम्हारे राखहु जू।
गोपी-ग्वाल पुकारत हरि पै जुरि-जुरि बादर गरजत जू
इंद्र कोप कीनौं हम[1]-ऊपर मेंघ-समूह पठाए जू।
मूसलधार[2] घन बरसनि लागे रिपु-समान होइ धाए जू
जिनि डराउ हौं नाथ तुम्हारौ हँसिऽब[3] कहत मुरारी जू।
अनआयास छानौ ल्यों परबत कर धरि लियो उपारी जू
सात दिवस अपनौ सौ कीनों मघवा गयो खिसाई जू।
'परमानँद' स्वामी के गोपा बसे निसान बजाई जू॥

[६७२] बिलावल

जहाँ गगन-गति गरगु कह्यो।
इहि बालक अवतार पुत्र[4] है कृष्ण-नाम आनंद लह्यो॥
द्रोन धरा बसु परम तपोधन पुत्र-काम[5]-निर्वाह करी।
ते तुम नंद-जसोदा दोऊ बरु माँग्यो सुत देहु हरी॥
कहें[6] नंद ग्वालनि के आगें सकल[7] मनोरथ पूरन करें।
'परमानंददास' कौ ठाकुर गोकुल की आपदा हरें॥

[६७३] बिलावल

करत हैं भगतनि की सहाइ।
दीनदयाल देवकीनंदन समरथ जादौराइ॥

---

१. व्रज (अ.) २. मूसल धारा बरसनि (अ.) ३. हँसि-हँसि (अ.)
४. पुरुष ५. नाम (घ.) ६. कहत ७. सबे

हस्त-कमल की छाया राखै जगत निसान बजाइ ।
दुष्ट-भवन-भय हरत घोष-पति गोवर्द्धन लियो उठाइ ॥
कृपा-पयोधि भगत-चिंतामनि ऐसें बिरद बुलाइ ।
'परमानंददास' प्रतिपालक बेद बिमल जसु गाइ ॥

[६७४] बिलावल

❀ बूझनि लागे गोप गोवर्द्धन क्यों धरयो[1]?
कहौ कान्ह[2]! का कौ कछु बरु है क्यों मघवा पाँइनि परयो
इहै मंत्र किनि हमहिं सिखाबहु करें तुम्हारी सेवा ।
'परमानँद' ऐसौ ठाकुर तजि कौन[3] उपासै देवा ॥

[६७५] सारंग

×धनि इहि कूख जनमु जहाँ लीनों गिरि-गोवर्द्धनधारी
लरिका कहा बहुत सुख जाए जो न होइ उपकारी ॥
एक सौ लाख-बराबर गिनिए करै जो कुल रखवारी ।
अति आनंद कहत गोपीजन मन-क्रम-वचन-विचारी ॥
इंद्र कोप कीनों ब्रज-ऊपर मघवा-वृष्टि निवारी ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर भुज-बल गरव-अहारी ॥

❀ सबै मिलि बूझें गोप० से भी प्रारंभ है ।

१. धारयो, पारयो (ग.)

२. कृष्ण ! ऐसौ डर का कौ मघवा० ३. कित आराधें

× धन्य कूख जनमे गिरिधारी (अ.) से भी प्रारंभ ।

[६७६] सोरठ

卐 कैसौ माई ! अचरज उपजत भारौ ।
परबत लियो उठाइ अकेले सात बरस कौ बारौ ॥
सात द्यौस-निसि एकटक ही इनि बाम पानि पर धारचो।
अति सुकुमार कुँवर नंद के कैसैं बोझ सहारचो ॥
बरषें मेघ महापरलै के तिनि में घोष उबारचो ।
गोधन ग्वाल गोप सब राखे सुरपति गरबु प्रहारचो ॥
भक्त-हेत अवतार धरत प्रभु प्रगट होत जुग चारचो ।
'परमानँद' प्रभु की बलि जैये जिनि गोवर्द्धन धारचो॥

[६७७] सारंग

अपने ब्रज कौं नाथ निबाहिये ।
गोप कौ राइ गोवर्द्धन पर्वत ताकी कीरति गाइये ॥
आपुन सुरपति कहाऔ सो और इनिकौ कह्यौ कछू खाइये
गैयाँ चरत गिरिवर के पाछें इहि प्रताप सुख पाइये ॥
निसि-दिन रच्छा करत गोकुल की जाके निकट रहाइये
'परमानँद' प्रभु कह्यो अब ही सब मिलि सिला पुजाइये

[६७८] सारंग

मघवा कौन ! कहाँ कौ ईस ।
जातें तुम डरपत सब ब्रज-जन धरत चरन पर सीस ॥

卐 'देखौ माई ! अचरज उपजै भारो' से भी प्रारंभ है (बं. ६१५)

केतौक बल रे ! बापुरे कौ कहा करैंगौ रीस !
जातें प्रगट भये तुम ता दिन ये आपनौ सब दीस ॥
अब ही सब अरपौ बलि ब्रजजन गौरी पर बरस बरीस
परमानंद' कहें जन माधौ ! ए जु ! अपनौ जगदीस ॥

[६७६] सारंग

गिरि कौ महातमु अब मैं जान्यो ।
केतीइक बात कहौं हौं वा की कैसें करौं बखान्यो ॥
निगम अगत्य जाकौ जसु निसिदिन चाहत दरस दिखान्यो
'परमानँद' प्रभु जो-जो कह्यो सो नंदराइ नें मान्यो ॥

[६८०] बिलावल

गोवर्द्धन नख पर धरचो मेरे बारे कन्हैया ।
दधि-अच्छत फल-फूल लै भुज चरचति मैया ॥
जुरि आईं सब घोष की और जु अढैया ।
ग्वाल-बाल पाँइनि परें गोपी लेति बलैया ॥
बलदाऊ फूल्यौ फिरै जग जीत्यो रे भैया !
'परमानँद' आनंद में ब्रज बजति बधैया ॥

[६८१] बिलावल

गोवर्द्धन धरनी धरचो मेरे बारे कन्हैया ।
दधि-अच्छत फल-फूल लै भुज पूजति मैया ॥
विप्र बोलि बरनी करी दीनी बहु गैयाँ ।
ग्वाल-बाल पाँइनि परे गोपी लेति बलैयाँ ॥

नंद मुदित मन फूलहीं कीरति जग-छैया ।
'परमानँद' ब्रज राखि लियो खेलत लरकैया ।।

[६८२] बिलावल

सुंदर सब अँग स्याम सरीर ।
गोवर्द्धन लीनों कर-ऊपर गोप-कुँवर राजत बलबीर ।।
ए सब सखा खिजावत मोकों लीनों परबत जाति अहीर
'परमानंददास' सँग बिहरत उर माला पहिरावत चीर ।।

[६८३] बिलावल

मैया ! मेरी रही बाँह पिराइ ।
सात द्यौस गिरि कर धरि राख्यो मेरे दूखत पाँइ ।।
बडे गोप उपनंद नंद जू करि हैं सबै साहइ ।
'परमानँद' पग चाँपि जसोदा मुख की लेति बलाइ ।।

[६८४] कानरौ

मति गिरि गिरै गोपाल के कर तें ।
आवौ ग्वाल ! लकुट लै-ले टेकौ
अपनी-अपनी भुजनि के बर तें ।।
सात दिवस मघवा झर लायो बरषि-बरषि हार्यो अंबर तें
गोपी-गोप नंदादिक राखे बूँदन एक परति नग झर तें
आनि तिरिछी जल लै आयौ नंदनँदन बिनको घर-घर तें
'परमानँद'प्रभु करी कृपा यों ऐरावत आयो चरननि परतें

[६८५] बिलावल

बाल-दसा कर पर लियो मेरे बारे कन्हैया ।
तेरे को काननि लगौ जिनि सिखयो कन्हैया ॥
देखि निरखि मुखरोहिनी मुसिक्यानी मैया ।
एक हाथ ऊपर लियो प्यावति है घैया ॥
एरा चढि आइ कें गिरौ पाँइ परैया ।
कृष्ण-नाम आप राखि कें ब्रजजन-रखवैया ॥
मधु मेवा पकवान दै चल्यो लेत बलैया ।
'परमानँद' प्रभु साँवरौ ब्रज-जन कौ छैया ॥

[६८६] धनाश्री

देखौ इनि बदरनि का बरिआई ।
नंद कौ लाल हठीलौ मोहन तासों इन्द्र ढीठ झर लाई ॥
पूरिष-दंड नंद पै माँगत इनि पुनि लाज गँवाई ।
'परमानँद' सिव कों त्रापें जिहि बिना सोग्र कन्हाई ॥

भाईदूज—

[६८७] आसावरी

जसुमति थार साजि कें बैठी मोहन तिलक करावें हो ।
बैठि अंक भोजन करौ लालन! भाई-दूज मनावें हो ॥
देखि नंद उपनंद गोप सब प्रमुदित मन हुलरावें हो।
श्रीमुख चंद निरखि गोपीजन नैननि कोर सिरावें हो ॥
मुदित भई अति रोहिनी माता सुख अंतर उपजावें हो।
नाना भाँति सकल गोकुल-तिय मंगल गीतनि गावें हो॥

यह लीला अवगाहन कीजै जो चितवनि उर आवैं हो।
'परमानंद' प्रभू श्रीवल्लभ-चरन-कृपा-बल पावैं हो ॥

प्रबोधिनी—

[६८८] बिलावल

आनँद आजु कुंज के द्वार ।
सखीसकलमिलि मंगलगावति नैननि निरखति नंददुलार
नव नव वसन नवल नव भूषन पुहुप-दाम सब सुभग सिंगार
मंडप-मधि बैठे मनमोहन संग लियें श्रीराधा नारि ॥
दीपमालिका रचि चहुँ दिसि तें
जगमगात अँग-जोति अपार ।
बारि आरती जुगल-रूप पर 'परमानंददास' बलिहार ॥

[६८९] बिलावल

आजु एकादसी देव-दिवारी तजि निद्रा उठि हो गिरिधारी
सकल विस्व कौ प्रबोध जु कीजै जागौ परम चतुर बनबारी
सुभग मुहूरत भवन बधाई निरखत बदन परम रुचिकारी
'परमानंददास' छबि उपजी बार-बार जाऊँ बलिहारी ॥

[६९०] बिलावल

देव-दिवारी सुभ एकादसी हरि-प्रबोध तहाँ कीजै आजु ।
तजि निद्रा उठौ हो गोविंद ! सकल विस्व-हित-काजु॥
सुभ मुहूर्त भयो भवन बधाईं ठौर-ठौर गावतिं ब्रजनार
'परमानंददास' कौ ठाकुर जगत-पतित-आधार ॥

[६६१] बिलावल

देव जगावति जसोदा रानी बहु उपहार पूजा के करिकैं।
इच्छु-दंड-मंडप पुहुपनि कौ चौक चहूँ दिसि दीवा धरिकैं
ताल पखावज भेरी संख-धुनि
गावत नित मिलि जागरन करिकैं।
धूप-दीप करि भोग लगावति
दै पुहु पावलि अँजुलि भरिकैं।।
घृत-पकवान अरु प्रीति परम रुचि
विंजन सिगरे सुथरे तरिकैं।
'परमानँद' जगदीस विराजौ
गोकुलनाथ सुमिरि पद हरिकैं।।

[६६२] नायकी

जागे जगजीवन जगनाइक।
कीयो प्रबोध देव-गन जब ही उठे जगत-सुख-दाइक।।
या प्रभु की प्रभुताई भारी सिव ब्रह्मादिक पाइक।
कमला दासी पाँइ पलोटै निपुन निगम से गाइक।।
जहँ-जहँ भीर परति भक्तनि कौं तहँ-तहँ होत सहाइक।
'परमानँद'प्रभु भक्त-बच्छल हरि जिनि केमन-वच-काइक।।

२०. रास

मान—

दूती-वचन, श्रीस्वामिनी-प्रति—

[६६३] टोडी

हरि कौ भलौ मनाइये।
मान छाँडि उठि चंद्र-बदनी ! उहाँ लौं चलि आइये ॥
निबिड कदंब-छाँह तहाँ सीतल किसलय-सेज बिछाइये।
एकौ घरी जु ता बिनु रहिये सो कत वृथा गँवाइये ॥
दान नेमु ब्रत सोई[1] कीजै जिहि गोपाल पति पाइये।
'परमानँद' स्वामी सौं मिलि कै मानज[2] दुख बिसराइये

[६६४] आसावरी

कमल-नयन बोलत रूप-निधान।
बेगि चलहि राधिका मुगध-मनि !
उदय करनि चाहत सखि ! भान
सुनहि कृसोदरि! निसा कृसा भई कृस न भयो तेरौ इहि मान
प्राची दिसि बर अरुन देखियत
तैं न दियो अनुराग कौ दान ॥
चरनायुध बर बोलनि लागे तैं नहिं मौन तजी मतिमूढ !
फिर पाछे पछितैहै मिलनि कौं नंद-कुँवर नागर गुन-गूढ ॥
इतनी बात सुनी जब स्रवननि गहि दूती के चरन अरु बाँह।
'परमानँद' स्वामी पै लै चलि जो बोली प्यारे निज नाह॥

---

१. तहाँ लगु (क.) २. मानस (क.)

[६६५]　　　　　　सारंग

राधे ! तैं लोचन दूत किए ।
नंद-भवन तें मोहन माधौ सैन बुलाइ लिए ॥
ब्रस तें निकसि गवन्न कियो बन कौं अतिसै चतुर हिए
कुंज-कुटी में पैठि स्यामघन उर पर उरज दिए ॥
कमल-नयन मृग-नैंनि परस्पर हिलि-मिलि अधर पिए।
'परमानंद' सफल दिन मान्यौं कहत हैं हम जु जिए ॥

[६६६]　　　　　　सारंग

चितवनि प्रीति की पहिचानी ।
मारग मिले राधिका नागरि घूँघट में मुसिकानी ॥
ठाढे द्वार नंद जू के ढोटा दीनी गुपत निसानी ।
बेगि चलहु उठि गहरु करति कत दूती रही रिसानी॥
भाग्य आपुने भाँवतो पायो नैंननि माँझ समानी ।
'परमानँद' स्वामी मनमोहन तेरीये मिलनि हितानी ॥

[६६७]　　　　　　सारंग

बैठे लाल कालिंदी के तीरा ।
लै राधे ! मोहन[१] पठयो है इहै प्रसाद कौं बीरा ॥
सुनि री ! समाचार श्रीमुख के जे कहे स्याम-सरीरा ।
तेरे काजें चुनि राखे हैं जे निर्मोलक हीरा ॥

---

१. गिरिधर (क.)

सुंदरस्याम कमल-दल-लोचन पहिरि पीतांबर-चीरा ।
'परमानंददास' कौ[1] ठाकुर नैन-लोल मति-धीरा ॥

[६९८] सारंग

तू हि मनाइ लेहि लाल प्यारौ ।
रूठि रहे ब्रजनाथ राधिका कीजै चित्त सवारौ ॥
तुम्हारौ उनकौ एक प्रान है सो कत करति निन्यारौ ।
बिछुरि गएँ ज्यौं बहुरि चाहिये सुनिये मतौ हमारौ ॥
तू जिनि जानहु जाति ग्वालु है गोधन कौ रखवारौ ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर तहाँ गरबु नहिं गारौ ॥

[६९९] सारंग

मोहन-मुख देखनि आउ री !
जहाँ स्यामसुंदर खेलत हैं अबहि मिलनि कौ दाउ री॥
सघन निकुंज बहुत द्रुम फूले बिधि निरमी इहि ठाँउ री
नौतन दल लै कर परसत हैं नीकौ कियो है बनाउ री॥
दूती-बचन कहत सुख लागत धाइ गहे तब पाँउ री ।
'परमानद' प्रभु दरसन दैहैं आनँद-मंगल गाउ री ॥

[७००] सारंग

मान तौ तासौं कीजै जोऽब होइ मन बिरुई ।
मोहन कमल-नयन की महिमा कै बिरियाँ तुम्है सिखई ॥

---

१. की जीवनि (घ.)

उठि चलि वेगि गहरु कत लावति निसा जाति है खूटी ।
उडुपति-ज्योति मलिन भई भामिनि ! अरुपीरी पहँ फूटी
दूती वचन कहे जब सनमुख मन में ग्वालि मुसिकानी ।
'परमानँद' स्वामी की प्यारी रवकि कंठ लपटानी ॥

[७०१] सारंग

नंदलाल की बंदसि नीकी ।
देखत बदन-ज्योति अति नीकी
जाके रूप काम[१]-द्युति फाकी ॥
चितवनि नीकी बोलनि नीकी
गावनि नीकी गति-मति नीकी ।
सब विधि नीकी कमल-नयन की
तैसीये हँसनि हरनि मन पी की ॥
कौन-कौन अँग करों री ! निरूपन
सरद-चंद सीतलता तन की ।
मिलहि राधिके ! प्रेम-रस-सागर
'परमानँद' स्वामी के मन की ॥

[७०२] सारंग

सुनतहिं जिय धरि मुरि मुसिकानी ।
को[२] है स्याम कौन कौ ढोटा अनगढ छोली बानी ॥

---

१. ससि (घ.) २. कौन स्याम नंदसुत कैसो (ख के अतिरिक्त)

कछु अनुराग हृदै कौ जनायौ अलकलडी मति ठानी।
लै स्यामता नयन मँहि राखी कज्जल[1]-रेख सयानी॥
जिय की बात न प्रगट जनावति चौंप रहति क्यों छानी।
'परमानँद' प्यारी विचित्र मति मुख रूखी हिय मानी॥

[७०३] सारंग

राधा! माधौ कुंज बुलावै।
सुनि सुंदरी! मुरलिका धारें तेरौ नाँउ लै-लै गावै॥
कौन सुकृत फल तेरौ माई! बदन-सुधाकर भावै।
कमला कौ पति पावन लीला लोचन प्रगट दिखावै॥
अब चलि मुगध बिलंबु न कीजै चरन-कमल-रस लीजै
ऐसी प्रीति करै जो भामिनि ताकौं सरबसु दीजै॥
सरस-निसा सखि पूरन चंदा खेलु बनैगौ माई!
या सुख की परिमिति 'परमानँद' मो पैं बरनी न जाई॥

[७०४] सारंग

चलहि किनि देखनि कुंज-कुटी।
सुंदर-स्याम मदनमोहन जहाँ मनमथ-फौज लुटी॥
सुरत-सौर में लरत सखी की मुगता-माल टुटी।
उरज-तेज कंचुकि चुरकट भई कटि-पट-ग्रंथि छुटी॥
चतुर-सिरोमनि सूर नंदसुत लीनी अधर-घुटी।
'परमानँद' ग्वालिनि गोबिंद-सँग नीकी जोट जुटी॥

---

१. अंजन (ख. के अतिरिक्त)

[७०५] सारंग

चलि री[1] ! मदनगोपाल बुलावै ।
तेरौ ई नाँउ लै-लै बेनु बजावै ॥
इहि संकेत बद्यौ बन महियाँ ।
सघन[2] कदंब मनोहर छहियाँ ॥
मिलत परम सुख अद्भुत लीला ।
'परमानँद' प्रभु भावन-सीला ॥

[७०६] सारंग

चलि लै मिलऊँ मदनगोपालहि[3] ।
भले ठौर बैठे मेरे[4] मोहन कूजत बेनु-रसालहि ॥
चतुर सखी मोहन[5] जू की पठई सिखवति है ब्रज-बालहि
मानि मनायौ पाँइ लागति हों और बात जिनि चालहि॥
माता-पिता बंधु जे गुरु-जन लाज छाँडि भजि लालहिं।
'परमानँद' प्रभु भलौ मानि है चितु दै बा बनमालहि ॥

[७०७] सारंग

चलि री ग्वालि ! तोहि बोलत हरे ।
एते जतन आवति नाहिंन कौन दूती तेरे कान भरे ॥

---

१. सखि ! (क.) २. कुंज-कुटी अरु सीतल० (छ.)
३. गोपालै (ङ. छ.)—इसी प्रकार अन्य तुकांत—रसालै । बालै । चालै । लालै । मालै । ४. मन (ग. ङ. च.), नँदनंदन (घ.)
५. गिरिधर जू (क.) माधौ जू (ग. से छ.)

हौं पठई मनुहारि बहुत करि तेरे कारन कुंज खरे ।
ऐसी कृपा प्रीति मैं देखी ना जानौं कौन गुन हृदै धरे ॥
वे कमला-पति मोहन ठाकुर कहाऽब तुम्हारे गरें परे ।
'परमानँद' प्रभु सरबसु दाता जाहि के भाग ताहि कें ढरे॥

[७०८] सारंग

चलि सखि ! कुंज गोपाल जहाँ ।
तेरी सपत[1] जहाँ मनमोहन हौं लै जाऊँ तहाँ ॥
नीके कुसुम मंद मलयानिल तरु कदंब की छाँहि ।
तहाँ निवास कियो नँदनंदन मन तेरे तन माँहि ॥
ऐसी बात सुनत री[2] भामिनि ! तोहि रह्यौ क्यों भावै ।
'परमानँद' स्वामी कौ[3] संगम भाग बडे तैं पावै ॥

[७०९] सारंग

छाँडि न देति झूठौ अति अभिमान ।
मिलि रस-रीति प्रीति करि हरि सौं सुंदर है भगवान ॥
इहि जोवन धन दिवस चारि कौ पलटत रंग सौ पान ।
बहुरि कहाँ इहि अवसर मिलिहै गोप-भेष कौ ठान॥
बार-बार दूतिका सिखावै करहि अधर-रस पान ।
'परमानँद' स्वामी सुख-सागर सब गुन रूप-निधान ॥

---

१. सौंह, सौंह नंदनंदन पै (बं. १०८।२१)
२. ब्रज-सुंदरि !   ३. मनमोहन (बं. १०८।२१)

[७१०]   सारंग

मानि री ! मानि मेरौ कह्यौ ।
मोहन[1] मदनगोपाल मिले बिनु अंत तऊ परिहै न रह्यौ
प्रथम हेमंत मास-ब्रत आचरि कत जमुना-जल-सीत सह्यौ
नंद-गोप-सुत माँगि भलौ बरु भाग्य आपुने तैं जु लह्यौ
जो हरि पठई तौ हौं आई पानि पानि ब्रजनाथ गह्यो ।
'परमानँद' प्रभु प्रीति मानि है इहि रस जात अकाथ बह्यो

[७११]   सारंग

तू को री[2] ! हौं हरि की दूती ।
अति आसक्त रसिक नँदनंदन राधा रैनि जगाई सूती ॥
अपने हाथ सयन-रचना रचि राखी है उहि सेज अछूती।
मोसों व्यौरि कह्यो रति-नाइक प्रथम समागम तें सुनि ऊती
गहे चरन उठि चली री ! मुदित ह्वै
पिय-संकेत सुरत रस-भूती ।
'परमानंद' प्रभु दै आलिंगन प्रगट्यो रूप चतुर धन दूती

[७१२]   सारंग

इतराइ चली थोरे पानी ज्यों भादौं की नरिया ।
कमल-नयन सों मानु करति है अब माई! तेरौ बरिया

---

१. मदनगोपाल लाल गिरिधर बिनु (वं. १३०।१)
२. है (क.)

हौं बावरी मनावनि आई हरि पठई पगु धरिया।
जानि महातमु नंद-सुवन कौ चरन-कमल उर धरिया॥
इहि जोवन धन सदा रमा कौ अधिक रूप गुन भरिया।
'परमानँद' स्वामी गुन-सुंदन पूरन आनँद-दरिया॥

[७१३] सारंग

कत तू करति प्रेम-रस-बाधा।
नवरँग गिरिधर[1] लाल लाडिलौ नई दुलहिया राधा॥
सुनि इहि बात भली जो लागै आइ बनी है जोरी।
मरकत मनि कंचन मानु नवघन लाल स्याम तू गोरी॥
पहिली कथा फुनि-फुनि सुमिरौंगी पाँइ परे लट छोरी।
'परमानँद' स्वामी सों जो रस सो कत डारति तोरी॥

[७१४] सारंग

तेरी बाट हरि अबलौं चाही।
काहे कौं बिलँबु कियो तैं राही॥
किसलय-सैन रची हरि कानन।
तोसौं प्रीति बढी चंद्रानन॥
चलि उठि मुगध! कान्ह के पासा।
'परमानँद' प्रभु पूरन आसा॥

---

१. दूलह (ग.)

[७१५] सारंग

राधा री ! तू मदन-कला ।
देखत रूप चिहुटि चित लाग्यो परम रसिक नँदनंदलला ॥
बार-बार हरि चाह करत हैं जहाँ निकुंज-निवास भला
जमुना-पुलिन[1] समीर सुसीतल मगु जोवै लागै न पला॥
रति बसंत रति-नाइक राजा भमर-निचय कूजित कोकिला
'परमानँद' स्वामी के संगम हिलत-मिलत सुभग चंचला॥

[७१६] सारंग

सुनि राधा ! एक बात भली ।
तू जिनि डरै रैनि अँधियारी मेरे पाछै आउ चली ॥
तहाँ लै जाऊँ जहाँ मन-मोहन मैं देखी इक बंक गली।
सघन[2] निकुंज सेज कुसुमनि रचि भूतल आछी बिटप-तली
हरि की कृपा कौ मोहि बहुत भरोसौ
प्रेम-चतुर चित करत अली ।
'परमानँद' स्वामी कों मिलि किनि
मित्र-उदै जैसें कमल-कली ॥

[७१७] सारंग

प्यारी ! तू न करि गहरु कंचुकी कसत ।
बेगि चलहि उठि बिलँबु करहि जिनि
सुनि राधे ! नभ-उडुप खसत ॥

---

१. तौर (घ.)

२. कुंद कुसुम कमलनि सिज्जा रची तापै बिछाई बिटप-तली ।

अपनौ नेम ब्रत तू जिनि छाँडहि
कहा भयो जो लोक हँसत।
मन क्रम वचन सपथ चरननि की
हरि के प्रान तुव माँझ बसत ॥
जोवत पंथ अकेले मोहन कुंडल चारु कपोल लसत।
'परमानँद' प्रभु प्रीति जु मानत
मरकत मनि मानों कनक रसत ॥

[७१८] सारंग

ऐसी मैं देखी तन की ईहा।
अधर पीयूस पियावति काहे न
तोकों भयो मदनगोपाल पपीहा ॥
बार-बार मुख नाँउ उचारै।
सुनि राधे ! तव रूप बिचारै ॥
सुहथ कुसुम लै रचि सुख-साई।
बेगि चलहु ब्रजनाथ बुलाई ॥
'परमानँद' प्रभु मारगु चाहै।
परै चटपटी रतिपति दाहै ॥

[७१९] सारंग

सखि ! ऐसौ रसु कहाँ पाइबौ।
को ऐसौ प्रीतम को सुंदर अंग-संग मिलि गाइबौ ॥

मोहन नयन नासिका मोहन मोहन सुभग कपोल ।
मोहन बदन कमल-नयन कौ मधुमिव मीठे बोल ॥
मोहन अंग अनंग कोटि द्युति मोहन अंबर-पीत ।
मोहन सकल सिंगार कान्ह के मोहन मुरली-गीत ॥
मोहन चाल स्यामसुंदर की मोहन बाहु बिसाल ।
'परमानंददास' मनमोहन भृगु-पद बनि बनमाल ॥

[७२०]   सारंग

मो सों तू काहे कों लरति ।
बार-बार तेरे हित कारन पाइँनु परति ॥
अबहि तो[1] लोचन डबडबाइ जल उमगि भरति ।
तब जानैगी नंदलाल सों एतौ[2] मानु करति ॥
अबहि चपल चलि बेगि चतुर पै कतइ बंक ढरति ।
'परमानँद' मोहन बिनु देखे सु को तन-तापु हरति ॥

[७२१]   सारंग

तरनि-तनया के तीर गोपाल बजाबत हैं बाँसुरी ।
चलि राधे! जु सुकृत-फल पूजिहै अब मिलिबे कौ गाँसुरी
पहरि लेहि सोने के तरिका रतन-जटित कौ हाँसुरी ।
माँग सँवारि नयन कज्जर दै नवल प्रीति करि फाँसु री!
वे गोपाल मन-मोहन मूरति है कमला तेरौ आसु री !
'परमानँद' प्रभु खेल्यौ चाहत रितु बसंत मधु मासु री !

---

१. तू (क. ग.)   २. इतनौ (क. ग. घ. ङ. छ)

[७२२] सारंग

तो तें लाल कनावडे ।
मानि मनायो सारँग-नैनी देहि नवल दल-पाँवडे ॥
सौंह सपत करि मेरे आगें जो हौं पीउहि जानौं ।
'परमानँद' प्रभु माथे हाथ दियो प्रान-तुल्य वे मानौं ॥

[७२३] सारंग

जैसी प्रीति गोपाललाल कें तैसी नाहिंन तेरें ।
सुनि री ग्वालि ! मही की माती जाति सुभाव अनेरें ॥
इहि रसु सो जानें जो नागरि राजकुँवारि सयानी ।
ताकी कहा कसौटी कीजैं कंचन बारह बानी ॥
केतकु समुझाई ये नागरि नंद-कुँवरु[1] है देवा ।
'परमानँद' स्वामी सों मिलिये मानौं श्रीपति-सेवा ॥

[७२४] सारंग

राधे ! हरि तेरौ बदनु सराह्यौ ।
बाबा[2] की सौं हौं जानति हौं इहै ध्यान अवगाह्यौ ॥
लै दर्पन अपनौ मुख देख्यो निरखि[3] नैंन मुसिकाने ।
इहि[4] मैं समुझी सारँग-नैनी तेरे ई हाथ बिकाने ॥
करत प्रसंसा बार-बार हरि मोही तें अति नीकी ।
'परमानँद' प्रभु खेल्यौ चाहत परम भाँवती जी की ॥

---

१. नँदन (क.) २. बार-बार सुनि सारँग-नैनी इहै० (घ.)
३. नैन मूँदि (घ.) ४. बाबा को सौं इहि जानति हौं (घ.)

[७२५] सारंग

कान्ह अकेले ई सोवत ।
सपने में तेरौ मुख देखत[1] तब उठि मारग जोवत ॥
सीतल छाँह कदम की बैठे तेरौ ई रूप विचारत ।
कबहुँक मौन करि[2] रहत ध्यान धरि कबहुँक द्रिष्टि परत ॥
नव पल्लव सुमन कदम-दल रचि-रुचि सेज सँवारत ।
'परमानँद'प्रभु तेरे हि कारन अति संचित हरि आरत ॥

[७२६] सारंग

काहे कों करति री ! निसा-गवनु ।
तेरौ बदन देखि री राधा ! अति लजात है रोहनी-रवनु
दिवस चलति जब अपनी सखी सँग
सकुचत मराल हरिनी बन छाँडति ।
मृगपति अपनी कटि अवलोकत
सब सों बैरु कहाँ लौं माँडति ॥
इहि सरीर तेरौ रचि बिधाता सुहथ सँवारि गोपालहि दीनौ
'परमानँद'प्रभु तेरे हि कारन इहि अवतार केलि-रस कीनौ

[७२७] सारंग

काहे कों ग्वालि ! सिंगार बनावै ।
सादीये बात गोपाल हि भावै ॥

---

१. निरखत (च.) २. व्है (ग. से. छ.)

एक प्रीति तें सब गुन नीके ।
बिनु गुन अभरन सब ही फीके ॥
कनकहि नूपुर लेहि उतारी ।
पहिले बसन पहिरि ब्रजनारी ॥
हरि नागर सब ही की जानैं ।
'परमानँद' प्रभु हित की मानैं ॥

[७२८] सारंग

तोहि मनावत हौं हारी ।
सरबसु जात गरब के घालें बिरचे मदन-मुरारी ॥
नील निचोल पहरि तू भामिनि ! नूपुर लेहि उतारी ।
तैसैं चलि ज्यों कोऊ न जानैं ससि-बिनु रैनि अँध्यारी॥
तू ही बिचारि देखि अंतरगति कत इहि माँग सँवारी ।
सो ही करहु जैसें नंद-कुमार हि लागहु अधिक प्यारी॥
सुनि राधा ! बाधा कत कीजै चतुर मुगध तू नारी ।
'परमानँद'प्रभु मिलत प्रेम-रस अपनौ भरयौ न ढारी ॥

[७२९] सारंग

मनावत हारि परी री माई !
तू चट तें मठ होति न सुंदरि ! कत हरि लैनि पठाई ॥
राजकुमारि होइ तौ जानैं कै गुरु होइ पढाई ।
नंदनँदन कौ जानि महातमु अपनी राखै बडाई ॥

ठोडी हाथ चली दै दूती तिरछी भौंहें चढाई ।
'परमानँद' प्रभु करौं[1] दुलहिनी तौ बाबा की जाई ॥

[७३०]	कल्यान

सिखवत केती राति गई ।
चंद्र उदै बर दीसनि लाग्यो तू नहिं और भई ॥
सुनि हो मुगध ! कह्यौ नहिं मानति जामी हृदै कई ।
'परमानँद' प्रभु कों नहिं मिलती तौ प्रतिकूल दई ॥

[७३१]	कल्यान

तेरौ ज्यौ बसत गोविंदे पहियाँ ।
हौं[2] जु कहति हों काहे कों दुरावति
जानति हों परखति पर छहियाँ ॥
द्रिष्टि सुभाव बिचारति सुंदरि
वहे[3]ई तक लागी मन महियाँ ।
'परमानँद' स्वामी की प्यारी
आउऽब[4] आउ चली गहि बहियाँ ॥

[७३२]	कानरौ

या हरि तें औरु कौन बडैतौ ।
देव-सिरोमनि राज-सिरोमनि कुँवर-सिरोमनि नंद-लडैतौ ॥

---

१. करोंगी दुल्हैया
२. काहे कों दुराव करति है री ! मोसों (बं० १३०।१)
३. सो जकि लागि रही (बं० १३०।१) ४. हाव-भाव दै चली (बं. १३०।१)

सुनि राधा बाधा तजि [1]मन [2]की लै मिलऊँ तेरौ मान चढैतौ
'परमानँद' स्वामी सुख-सागर रति-नागर ब्रज-ताप-हरैतौ॥

[७३३] कानरौ

मानिनि ! एतौ मानु न कीजै ।
इहि जोबन अंजुरि कौ जल ज्यों जब गोपाल माँगै तब दीजै
निसि-दिन घटी-बढी नहिं सुंदरि ! जैसें कला चंद्र की छीजै
पूरब[3]-पुन्य-सुकृत-फल तेरौ काहे न रूप नैन भरि पीजै ॥
चरन-कमल की सपथ करति हों ऐसौ जीवन दिन दस जीजै
'परमानँद' स्वामी सों मिलि कें
अपनौ जनम सफल करि लीजै ॥

[७३४] केदारौ

तेरी सौं कै अपने बाबा की सौं मेरे मदनगोपाल पियारे
नंदके लाल हृदौ मेरौ बेध्यौ लागे हैं मनसिज-बान अनियारे
निसि अँधियारी कछुवै न सूझत
अरुन बसन तेरे देखियत कारे ।
'परमानँद' स्वामी लै मिलऊँ ज्यों नहिं जानैं नभ के तारे ❀

[७३५] केदारौ

सूधे मन मिलि रसिक-सुजानै ।
नंदकुमार अटपटौ नागर छाँडि ग्वालि ! तू अपनी बानै

१. कत कीजै (ङ. छ.) २. जिय (घ.) ३. पूरन (घ.)
❀ कुंभनदास की छाप से भी मिलता हैं (बं. १३०।१)

सुंदरता की सींव साँवरौ सुख-निधान सब गुन की खानैं
बहु-नाइक बल-रासि देव-मनि कृपासिंधु सबही की मानैं
इहि जोवन धन दिवस चारि कौ
ताकौ गरबु न करि री ग्वारि !
'परमानँद' स्वामी कों मिलि अब
देखि कमल-मुख नयन पसारि ॥

[७३६]　　　　केदारौ

मोहन-मुख की सुनहु द्वै बतियाँ ।
बिनती करि हरि हित चित की सब
जो कछु कहि जनाई अधरतियाँ ॥
नव घन प्रगट सुभट संबर-अरि[1]
नृप-आसन बैठौ करि खतिया[2] ।
कुसुम विसिख सर-चाप लिये कर
इंदु-किरनि सोभित पंकतियाँ ॥
चमर ढार मारुत बह्यो गुन-निधि
बरुहा नट नृत्तत अनुभतियाँ ।
कुंज-वितान गान अलि कुलकत
जस गावत पिक कीर अनतियाँ ॥

---

१. रिपु (ग.)
२. घतियाँ (ग.)

तव कुच-कोट-ओट दुरयो चाहत
मदनमोहन पिय की ए गतियाँ।
'परमानँद' स्वामी कों जितवहि
सुजस प्रगट करि मनसिज-हतियाँ ॥

[७३७] केदारौ

देखि सखी ! मोहन-मुख नीकौ।
मोरचंद फरहरात सीस पर तैसै ही बन्यो है अर्द्ध-बिधु-टीकौ
रूप-रासि गिरिधरन छबीलौ पायो तैं परम भावतौ जी कौ
'परमानंद' रसिक नँदनंदन भाग बडौ वृषभानु-नंदिनी[1] कौ

[७३८] केदारौ

उठि काहे न मोहन-मुख जोवै !
बिनु देखें गिरिधरन छबीलौ ऐसी घरी वृथा कत खोवै
इहि जोवन अंजुलि कौ जल ज्यों
बिनु ब्रज-नाथ वृथा छीजै री।
विद्यमान अपने इन नैननि वह मुख-कमल देखि जीजै री!
मेरे कहे तजि मान लाडिली! काहेकों करति सखी अनभायो
'परमानंददास' कौ ठाकुर तजि बैकुंठ खेलनि ब्रज आयो

[७३९] केदारौ

राधे ! तू देखि बन के चैन।
भृंग कोकिल शब्द सुनि करि प्रगट प्रमुदित मैन ॥

---

१. तनी कौ (ग. घ.)

कमल कुमुद-सुगंध सीतल भामिनी सुख-सैन ।
इहै पुन्य अगाध कौ फल तू जु बिलसति ऐन ॥
लाल गिरिधर मिल्यौ चाहत मधुर मनोहर बैन ।
'दास परमानंद' प्रभु हरि चारु पंकज नैन ॥

[७४०] कानरौ

हरि की आनँद केलि ।
मदनगोपाल निकट करि पाए ज्यों भावै त्यों खेलि ॥
स्यामसुँदर की भुजा मनोहर अपने कंठ लै मेलि ।
प्रेम-मगन अरु सावधान ह्वै छूटे[1] बार सकेलि ॥
स्याम-तमाल नंद कौ नंदन तू जु कनक की बेलि ।
इहि लपटानि 'दास परमानँद' मुगति पाँइ गहि ठेलि॥

[७४१] केदारौ

आजु सखी ! मोहन इहि कुंज ।
जुव जन तन मन करि न्योंछावरि सुनि मुरली की गुंज॥
तैं रहि इहाँ कहा कियो बावरी ! तजि सुख परम निधान
देखि बिलास जानती तब तुम इहै प्रवीन सुजान ॥
एक सुकाज होत अति तेरौ मोपें कहत न आवै ।
सुनि दुख प्रबल होइ चित-अंतर जिय तें तनु बिसरावै

१. छूटी अलक

हा हा सखी ! कहों पाँइ लागों बिनहि सुनें अब मरिये
सुनि करि मन उपचार बनैं कछु तिहि बिधि जतन सु करिये
उ वह अति गोप्य गोप्य गोप्य हू तें गोप्य भाव धरि कहिये
जो[1] तू चतुर सयानी नागरि ! समुझि सैन मन गहिये ॥
मारुत-सुत-पति उद्यम जानि करि ता रिपु मध्य निवासै।
ता उर बसि दुहुँ बिधि सजनी ! भूलि हू तोहिं न त्रासै ॥
समुझि सैन उठि चली बिचच्छन जहाँ रास-रस वृंद ।
देखत रूप भयो मनु औरै पूरन 'परमानंद' ॥

[७४२] आसावरी

सुनि मेरो बचन छबीली[2] राधा !
तैं पायो रस-सिंधु अगाधा ॥
जे रस निगम नेति-नेति भाख्यो।
ता कौ तैं[3] अधरामृत चाख्यो ॥
सिव विरंचि के ध्यान न आवैं।
ताकों[4] कुंजनि कुसुम बिनावैं ॥
तू वृषभानु गोप की बेटी।
मोहनलाल भाँवते भेटी ॥

---

१. या ब्रज में तू ही बडभागिनि कह्यौ बचन निरबहिये (बं. १३०।१)
जो तू समयौ और न पावै समुझि समुझि मन गहिये (बं. १६५।१६)
२. लडैती (ग.) ३. अधर-सुधा-रस (ग.) ४. तापें (ग. ङ. छ.)

तेरौ भाग्य मोहि कहत न आवै।
कछु एक रस 'परमानँद' गावै ॥

[७४३] केदारौ

तो सी त्रिया नाहिंन भुवन भट्ट री।
रूप-रासि गुन[1]-रासि रसिक-मनि
जाहि भए नँदलाल लट्टू री !
यों कर सुदृढ करि गाँठि दई विधि सुरँग चूनरी पीत-पटूरी
'परमानँद'स्वामी रति-नाइक तू नागरि वे नागर-नट्ट री❀

[७४४] सारंग

कैसें माई ! रूसिवौ बनै।
नंदनँदन की बहुत सखिनि में मो सी कौन गिनै ॥
तुम जु कहति हौ बात अटपटी राखौ अपनौ सयान।
मन क्रम वचन लाल गिरिधर सों तजै बनै अभिमान॥
चतुराई ता आगें कीजै जो प्रभु होइ अग्यान।
जा पर प्रीति 'दास परमानँद' सहि[2] रहिये जु गुमान ॥

[७४५] केदारौ

राधा ! माधौ कौ मुख नीकौ !
देखि नयन भरि मोहन मूरति मिल्यो भाँवतौं जी कौ॥

---

१. रस

❀ 'कृष्णदास' की छाप से भी (बं. २३।१ तथा ७०।२)

२. हँसि रहिये गुन मान

सघन निकुंज-कुंज द्रुम-बल्ली[1] ठौर भलौ तैं पायो ।
तेरी चौंप प्रीति मैं जानी आनि समीप बसायो ॥
अब जिनि टरनि देहु तुम ह्याँ तें जो भावै सो कीजै
'परमानंददास' कौ ठाकुर सरबसु दै रसु लीजै ॥

[७४६] गौरी

स्याम जू की देखिबे की बार ।
चलि सखि ! दौरि देखि आई हौं ठाडे निकसि दुवार ॥
मंद माधुरी छाँडि चलन सखि ! काहे करति झमार ।
फुनि अब ही भीतर उठि जैहैं मोहन नंद-कुमार ॥
सिर पर खौरि लाल उपरैना हाथ कुसुम की डार ।
'परमानँद' गिरिधरन लाल पर बारों कोटिक मार ॥

[७४७] गौरी

राधे ! बोलत नंदकिसोर ।
ललित त्रिभंगी स्यामसुंदर निर्तत[2] ज्यों बन मोर ॥
छिनु-छिनु बिलँबु करति है सुंदरि ! क्योंऽब रहति मन तोर
आनँदकंद चंद-वृंदावन तू करि नैन-चकोर ॥
कहा कहौं तेरे भाग की महिमा आपु न गनत न और
'परमानँद'प्रभु पें चलि भामिनि ! लै मिलि उरज[3] अँकोर

[७४८] सारंग

चलि तू मदनगोपाल बुलाई ।
छाडि विलंबु मिलहु प्रीतम सों हठ में कौन बडाई ॥

---

१. बेली (ग.) २. नृत्तत (घ.) ३. प्रान (घ. ङ.)

वृंदावन में बंसीबट-तर बैठे कुँवर कन्हाई।
नटवर-भेष धरयो सुर मोहति लीला बरनी न जाई॥
तेरे काज आपु नँद-नंदन रचि-रुचि सेज बनाई।
'परमानँद' स्वामी रति-नागर गति में गति दिखराई॥

[७४९]   सारंग

तेरौ नाँउ लै-लै गावै तू चलि भामिनि ! स्याम बोले।
वे बैठे देखौ वृंदावन की सोभा ठौर-ठौर द्रुम फूले॥
कोकिला-नाद मन आनँद भँवर विहंगम भूले।
नाना पच्छी सब्द-रासि रचि सकल बेलि केसू फूले॥
उनमद जोवन-मद-कोलाहल यहि औसर है नीकौ।
'परमानँद'स्वामी प्रथम समागम मिल्यो भाँवतौ जी कौ॥

[७५०]   कान्हरौ

क्यों न मिलै मन दै मोहन कों
मान कहा गहि रही री भामिनी।
सुंदरस्याम बिना सुनि सजनी !
वृथा बही सब जाति जामिनी॥
मान किये तैं कहा सचु पावति
सोच बढाबति हृदय कामिनी।
'परमानँद' प्रभु गिरिधर पै चलि
प्रमुदित मन गजराज-गामिनी॥

[७५१] श्री

तरुन घनस्याम तन बसन वर दामिनी
इन्द्र-धनु उदित मानों बनमाला बनी।
गरजत मंद धुनि हरि गिरि सुंदरा
भक्ति चात्रक कुमुदिनी प्रीति मनी ॥
नंदनँदन देखि विगत मानस-बिथा
गोपिका-प्रेम-जल नदी बाढी।
'दास परमानंद' सिंधु जादौराइ
मिलहु अनुसरी रहि न गाढी ॥

दूती-वचन, प्रभु-प्रति—

[७५२] आसावरी

इहि प्रसंग ऐसौ है माधौ! मानवती मनाइये।
जो पें तुम्हारे जिय भावत है तो उहाँ लौं चलि आइये ॥
कहा भयो जो वह नहिं आई तुम्हारे लाड की गरबी।
अबला के जिय[1] मान महातमु तातें ठानी अरबी ॥
दूती बचन कहै जे सनमुख जो तैं कही सो मानी।
'परमानँद' स्वामी रति-नागर नीकी बात हि[2] जानी ॥

[७५३] सारंग

अनमना बैठी ए रहै।
अंतरगत की बिथा मोहिनी काहू सों न कहै ॥

---

१. मन (ग.) २. हितानी (घ. ङ.)

सूखौ[1] बदन अधर कुम्हिलाने नैननि नीर बहै ।
रजनी निंदा करत चंद्र की अलकावली[2] दहै ॥
तुम्हारे बिरह बियोग राधा बासर-घाम सहै ।
बेगि मिलहु 'परमानँद' स्वामी दूती बचन कहै ॥

[७५३]   सारंग

मुगध मनाए की चाहति बाट ।
चलहु गोपाल ! कृपा करि उहिं बन जहाँ गोधन के ठाट
मेरे कहें वहै नहिं आवति करी बहुत मनुहारि ।
तुम ही सों जु है गुपत बतौवा जानत रसिक मुरारि॥
सो अभिमान-रास ह्वै बैठी मौन धरें नहिं बोलति ।
कठिन सुभाव अहीर[3] की बेटी उहाँ तें नाहिंन डोलति
हँसि ब्रजनाथ कह्यो दूती सों नाहिंन तेरे मान ।
'परमानँद' प्रभु रसिक-सिरोमनि बैठि रहे भगवान ॥

[७५४]   सारंग

गोपाल ! मनाए की चाहति बाट ।
चलु ब्रजनाथ ! कृपा करि उहि बन जहाँ गोधन के ठाट
तुम जु कह्यो बचन हँसि बोले वा के मन है उचाट ।
बिलख बदन चिंतातुर तब तें मथति न गोरस-माट ॥

---

१. सूख्यौ (घ.)   २. किरनावली (ग. घ.)
३. अभीर (क. ङ. छ.)

दूती-बचन कहे जब सनमुख लगी प्रेम की साट।
'परमानँद' प्रभु रसिक-सिरोमनि लोचन काम-कपाट ॥

[७५५] सारंग

संदेसौ राधिका कौ लीज।
तुम दुरि बैठे सघन कुंज मँहि ऐसौ खेलु न कीजै ॥
आइ फिरि गई चाहि सब कानन चंद्र-बदनि सकुमारी।
रहे मौन धारि ताहि देखि[1] हरि कठिन काम-सर-मारी ॥
बेगि चलहु हरि ! बिलँबु करत[2] कत वह कदंब-तर ठाढी
'परमानँद' प्रभु तुम्हारे रूप सौं प्रीति निरंतर बाढी ॥

[७५६] बिलावल

दधि-सुत-बदनी कोप-भरी।
अंबर खीझि लेति ब्रज-बाला सारँग बाजु[3] लरी ॥
तब नागरि पें इहि मति उपजी लै मनि हाथ धरी।
ग्रसित बेर भई नहिं बाला उनि तें चतुर खरी ॥
धरनि चंप रस[4] जब आये उदयाचल जु डरी।
'परमानँद' प्रभु तरसन अति सुख सरनागत उबरी ॥

[७५७] सारंग

बहुत रही समुझाइ मनायौ मानति नाहिं गोपाल।
आपुनि ही पाँउ धारि मनावहु गिरिधर गज-गति-चाल॥

१. देखें (ख.) २. करहु (ग. ङ. छ.) ३. सों जु ४. सद्स

प्रीति की रीति रँगीलौ जानें मान धर्यो नँदलाल ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर हठ छाँडहु ब्रज-बाल ॥

[७५८]   सारंग

बहुत रही समुझाइ मनायौ मानति नाहिं गोपाल ।
आपुन ही पाँउ धरि मनावहु गिरिधर गज-गति-चाल॥
प्रीति की रीति रँगीलौ जानें मान धर्यो नँदलाल ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर हठ छाँडहु ब्रज-बाल ॥

मानापनोदन—

[७५९]   सारंग

कैसें बनें माई मानु करत ।
सखि ! अपमान तऊ मनमोहन पाइँनु परत ॥
झुकि बोलत हँसि-हँसि मुख लागत आगें तें न टरत ।
रोकत हू अनुसरत निहोरत उर-अंचर पकरत ॥
सब सहि प्रीति सबाई मानत एकौ चितु न धरत ।
'परमानँद' प्रभु रोस तजि इहाँ मनु उलटि धरत ॥

[७६०]   सारंग

तैं मेरौ भाँवतौ न कीनौं ।
सुनि इहि बात स्यामसुंदर की
उर गहि गाढौ आलिंगन दीनौं ॥
बेनु बजाइ बुलाई राधा आई तहाँ जहाँ बंसीबट ।
इतनौ गहरु तैं कहाँ लगायो मदनगोपाल गही लीला लट

ऐसी प्रीति परस्पर बाढी अति आसक्त भयो सुंदर-चित ।
'परमानँद' प्रभु बिलगु न मानहु
तुम कारन संच्यो जोवन-बित ॥

[७६१] सारंग

स्यामा जू कों स्याम मनाएँ ल्यावत ।
ज्यों-ज्यों सुंदरि[1] चलति हरें-हरें त्यों-त्यों पाछें आवत॥
कछु जु लच्छनता रही है मानकी तातें अधिक छबि पावत
मानहुँ मत्त मतंग-मते तें डरपत रहत महावत ॥
कबहुक आगें कबहुक पाछें नैन सों नैन मिलावत[2] ।
कबहुक पथ कौ तनक तनूका दूरि करन कहँ धावत ॥
अति[3] संकित मोहन उर-अंतर बानिक कछुक[4] बनावत।
इहि[5] लीला-बिनोद गिरिधर को जन परमानँद गावत ॥

[७६२] सारंग

कमल-नयन राधिका हि मनावत ।
मृग-नैनी-मुख निरखि मनोहर नहियाँ में केतौ सचु पावत
इतनो ई भेद प्रीति कौ लच्छन स्यामसुँदर अंतरगत भावत
एते मान मनायौ न मानति हँसति चतुर बलबाँह छिडावत

---

१. कुवरि चलति हौरें हौरें २. जुडावत
३. अतिसै संक मोहन अति आतुर ४. बहुत (क. ग. च.)
५. परम रहसि गिरिधर-रस-लीला

उठि जब चले चरन लपटानी भीत भए मुख बोल न आवत
काम-केलि अपने गिरधर[1] की
प्रमुदित जन 'परमानँद' गावत ॥

[७६३]   सारंग

सुनि संकेत उठी हँसि प्यारी ।
छाँडि मान गुन मानि हरषि मन
चली चपल बुधि सों छबि वारी ॥
यों लिपटी पिय केलि सों मानों
स्यामतमाल के निकट लता री ।
दोऊ पौढे कुसुम-सेज पर 'परमानंददास' बलिहारी ॥

[७६४]   सारंग

आवत लाल अरी चलि माई !
छूटि जाइगी टेक रावरी करौ हो कृपा तैं नाच नचाई॥
यह सुनि बचन चली पिय पै हँसि
ज्यों सरिता बाहर में धाई ।
दोऊ मिलि पौढे सुखद सेज पै 'परमानँद' बलि जाई॥

[७६५]   सारंग

यह सुनि वचन पिया पै आई ।
मिली धाइ अकुलाइ अंक भरि मानहुँ रंक महानिधि पाई

---

१. मोहन (ग. घ. ङ. छ.)

मिलि पौढे संकेत कुंज में नव कुसुमनि की सेज बनाई
'परमानंददास' कौ ठाकुर विविध केलि कीनी बनि भाई

[७६६] नायकी

रूसे ही रहोंगी हां तौ रूसे ही रहोंगी ।
जब गृह आवेंगे स्याममनोहर
तिनि सौं हू बाँके बचन कहोंगी ॥
जो वे मनावेंगे तो हौं नहीं मानोंगी मनमथ-बान सहोंगी
'परमानंददास' कौ ठाकुर वे परें पाँइ हौं तौ हठनि गहोंगी

रास—

[७६७] आसावरी

❀ आजु नीकौ जम्यो राग आसावरी ।
मदनगोपाल बेनु नीकौ बाजै नाद सुनत भई बावरी ॥
कमलनयन सुंदर ब्रज-नाइक सब गुन-निपुन कथा है रावरी
सरिता थगित ठगे मृग पंछी[1]
खेवट चकित चलति नहिं नाव री ॥
बछरा खीर पिवत थन छाँड्यो[2]
दंतनि तृन खंडति नहिं गाव री ।
'परमानँद' प्रभु परम विनोदी इहै मुरली-रस कौ प्रभाव री

❀ मोहन ! आजु नीकौ (क.) से भी प्रारंभ है ।
१. पंखी (क. ग. ङ.) २. छौंर्यो (ग. ज.)

[७६८] गौरी

आईं हम पाँइनु परन ।
सोई करहु जैसै संग न छूटै राखहु सरन ॥
जब तुम बेनु बजाइ बुलाईं अब कैसें चतुराई ।
तुम्हारौ भजन पाप कौ कंदन इहि तौ निगम बताई ॥
चलत नहीं जु चरनगति थाकी मन न चलै ब्रज-वासा ।
'परमानँद' प्रभु हौ[1] उदार तुम छाँडहु वचन उदासा ॥

[७६९] टोडी

बन्यो रास-मंडल में माधौ गति में गति उपजावै हो !
कर कंकन झनकार मनोहर प्रमुदित बेनु बजावै हो !
स्याम सुभग तन पर दच्छिन कर पूजत चरन-सरोजै हो
अबला-वृंद अवलोकत हरि-मुख नयन-विकार मनोजै हो
नील पीत पट चलत चारु नट रसना नूपुर कूजै हो !
कनक कुंभ-कुच-बीच पसीना मानों मोतिनि[2] पूजै हो !
हेम-लता तमाल अवलंबित सीस-मल्लिका फूली हो !
कुंचित केस-बीच अरुझाने जानों अलि-माला भूली हो!
सरद बिमल निसि चंद बिराजित क्रीडत जमुना-कूले हो
'परमानँद' स्वामी कौतूहल देखत सुर-नर भूले हो !

---

१. होहु उदार तुम राखहु चरन-निवासा (क. घ. ङ. च छ.)
होहु उदार चित राखहु चरननि पासा (ग.)

१. मोतिन हर पूजै हो !

[७७०] गौरी

गोपाललाल सों [1]नीके खेली ।
बिह्वल भई सँभार न तन की सुंदरि छूटे बाल सँकेली ॥
टूटत हार कंचुकी फाटत फूटत चुरी खसत सिर-फूल।
बंदन मिटत सरस उर-चंदन देखत मदन महीपति भूल ॥
बाहु-बंध परिरंभन चुंबन महा मोहत्सव रास-बिलास ।
सुर बिमान सब कौतकु भूले कृष्ण-केलि 'परमानँददास ॥

अन्तर्धान—

[७७१] सारंग

अब कें जो लाल मिलें अचरा गहि झगरौं री ।
काहे तें तुम छाँडि गए संग लागि डगरौं री ॥
जुवतिनि कौ इहि सुभाव मान करत सोभा ।
नागर नँदलाल कुँवर काहे चित-छोभा ॥
बाँधौं कुच-भुजनि-बीच नैन-बान मारौं ।
'परमानँद' प्रेम लरौं जीतौं कै हारौं ॥

[७७२] सारंग

माई ! डार-डार पात-पात बूझति बनराजी ।
हरि कौ पथ कोउ न कहै सबनि मौन साजी ॥
बसुधा जड-रूप धर्यो मुख हूँ न बोलै ।
हरि कौ पद परसु भयो संगु लागि डोलै ॥

---

१. सँग (अ.)

'परमानँद' स्वामी गोपाल निठुर भए माई ।
हमारौ गुन-दोषु जानि कीनीं चतुराई ॥

[७७३] सारंग

पूछति है खग-मृग द्रुम-बेली ।
हमें तजि गए री ! गोपाल अकेली ॥
अहो चंपक ! मालती ! तमाला ।
तुम्हें सपरसि[1] गए नँदलाला ॥
ज्यों गजराज बिना बन-करनी ।
कृष्णसार बिनु व्याकुल हरनी ॥
'परमानँद' प्रभु मिलहु न आई ।
तुम्हारे दरस बिनु हंस उडाई ॥

[७७४] सारंग

ग्वालिनि ! अनमनी सी काहे ठाढी !
दारुन पीर मदन[2] की बाढी मदनगोपाल अकेली छाँडी ॥
तैं ही रसिकिनि ! रही सयानी जिहिं सनेह प्रभु बन लै आयो
नैंकु छुडाइ कछु कियो माधौसों तुरतहि कियो आपुनौपायो
चलिरी सखी! जाइ ढूंढें बन-बन चरनकमल के अंक निन्यारे
ध्वजा बज्र अंकुस जब रेखा कहाँ दुरहिंगे कान्हर प्यारे ॥

१. परसि कहँ २. बिरह

लोचन सजल प्रेम अति आतुर
सूखे अधर चंद-मुख गौं[1] घटि ।
'परमानंद' विरहिनी हरिकी पीउ-पीउ करति अनाथ रही लटि

[७७५] कानरौ

❀ जिहि तें रस रहै रसिक-कुँवर सौं
सोई सयानी ! तुम्ह करहु बसीठी ।
इहि अपराधु पर्यो अनजानत लाडकडी कछु बात उचीठी
काँधारोहनु माँगि सखी री ! नंनँदन सौं मैं कीनी ढीठी
जुवति-जाति दोस कौ भाजनु
समुझति नहिं कछु करई[2]-मीठी ॥
अब अभिमान करौं नहिं कबहूँ तेरे हाथ देऊँ लिखि चीठी
'परमानँद' प्रभु आनि मिलावहु
कमल-नयन की महिमा दीठी ॥

महारास—

[७७६] गौंडौ

टूटि परी मोतिनि की माला ढूँढति फिरति सकल ग्वाली
मुकुलित कुसुम-माल कच बिगलित निरखि हँसे बनमाली
रास-बिलास गहें कर-पल्लव इक-इक भुज ग्रीवाँ मेली ।
बिच-बिच गोपी इक-इक माधौ नृत्तत संग सहेली ॥

१. ग्यौ (क.) ❀ जा तें रस० से भी प्रारंभ है। २. करुई

सरद विमल निसि चंद विराजित नृत्तत नंदकिसोरा ।
'परमानँद' प्रभु बदन-सुधा-निधि भामिनि नैंन-चकोरा॥

[७७७] सारंग

कर गहि अधर धरी मुरली ।
देखहु परमेसुर की लीला ब्रजबनितानि की मन-चुरली॥
जाकौ नाद सुनत गृह छाँड्यो
प्रचुर भयो तन मदन ब्ली ।
जिनि सनेह सुत-पति बिसराए
हा हरि ! हा हरि ! करति चली ॥
बिहँसित बदन प्रफुल्लित लोचन
रवि-उद्योत जनु कमल-कली ।
'परमानंद'प्रीति पद-अंबुज कृष्ण-समागम बात भली ॥

[७७८] गौडी

बन्यो लालन[1] रसिक राधे ! सरद चाँदनि-राति ।
तत्त थेइ थेइ तत्त थेई करत गोपीनाथ ॥
इक-इक गोपी इक-इक माधौ बनी अनोपम भाँति ।
जैं-जैं सब्द करत सुर-मुनि-जन बरसत कुसुमनि जाति॥
रथ टेकि ससि हारि रह्यो सिर पर होत नहीं परभात ।
'दास परमानंद' प्रभु हरि निरखि अनँग लजात ॥

---

१. तालिम (क.)

[७७९] केदारौ

आली री ! रास-मंडल-मध्य निर्तत[1] मदनमोहन
अधिक प्यारौ[2] लाडिली रूप-निधान ।
चरन-चाल हस्त-भेद मिलवत[3] आछी जति
भाँति सों लेत नैननि ही में मान ॥
दोऊ[4] मिलि राग अलापत गावत
होडाहोड़ी उघटित विकट तान ।
'परमानँद' स्वामी[5] निरखि और रीझि रहीं
गोपी-जन वारति हैं निज तन मन प्रान ॥

[७८०] सारंग

माधौ चाचरि खेलें ही खेलें री ! जमुना के तीर ।
रास-बिलासी चाचरि खेलें ही गोकुल-नाइक जमुना के तीर
कुमकुम-बरनी गोपिका केसौ री ! घनस्याम-सरीर ।
नील-पीत-पट-मंडिता नाँचत री ! वे प्रेम-गँभीर ॥
बीच-बीच गोपी बनी बिच-बिच री ! वे बने हैं मुरारि ।
मरकत-मनि कंचन-मनी-माला हो ! मानों गुही है सँवारि॥

१. मंडित (ग.) २. सोहत
३. निरतत आछो-आछी भाँति नैन-भौं-विलास-मंदहास नैननि ही मान (बं. १२७।१०)
४. नाचत गावत दोउ रीझि परसपर उरप-तिरप मान लेत विकट (बं. १२७।१०)
५. प्रभु नवकिसोर निरखि-निरखि ललितादिक (बं. १२७।१०)

किंकिनी नूपुर बाजैं हीं सब्दहि री ! कोलाहल केलि ।
कुनित बेनु ब्रज[1]-नाइका लटकत लाल भुजा गल मेलि ॥
कर-तल ताल बजावैं ही गावैं री ! वे गीत रसाल ।
मदन-महोदै मन रह्यो[2] लीला-सागर गिरिधरलाल ॥
एकन पान खवावैं ही एकजु माँगे देहु उगार ।
एकत मुख चुंबन करैं एकनि भूले टूटे हार ॥
चंद भूलि कौतुक रह्यो नर-नारी मोहे मुरली के नाद ।
थाक्यो रथ कैसैं चलै ब्रज-जुवतिनि बिस्मायो बाद ॥
चढि बिमान सब देवता बरसनि री ! वे लागे फूल ।
जै-जै-जै जदुनंदना रास रच्यो रति-नाइक भूल ॥
सो प्रसाद हम कों दियो हरि परिरंभन बाहु पसारि ।
'परमानँद' प्रभु श्रीपति पुन्य-पुंज-कृत[3] गोकुल-नारि ॥

[७८१] श्री

निर्त्तत मंडल-मधि नंदलाल ।
मोर-मुगट मुरली पीतांबर उर[4] गुंजा बनमाल ॥
मुरज[5] मृदंग संगीत बजत हैं ततथेई बाजत[6] ताल ।
उरप तिरप नाचत नटनागर गंध्रव गुनी रसाल ॥

---

१. मधि (अ.) २. हरच्यो (ग.) ३. व्रज (घ.)
४. गरै (अ.) ५. ताल (ग.)
६. ततथेई बोलत लाल (ग.)

वाम भाग[1] वृषभानु-नंदिनी गज-गति मनहुँ मराल ।
'परमानँद' प्रभु की छबि निरखत सुख पावत ब्रज-बाल॥

[७८२] केदारौ

रास रच्यो बन कुँवर-किसोरी ।
मंडप विपुल सुभग वृंदावन जमुना-पुलिन स्यामघन-गोरी
बाजत बेनु रबाब किन्नरी कंकन नूपुर किंकिनी-सोरी ।
ततथेई ततथेई सब्द उघटत पिय
भले बिहारी-बिहारिनि-जोरी ॥
बरुहा मुकट चरन-तट आवत गहै भुजनिमें भामिनि-भोरी
आलिंगन चुंबन परिरंभन 'परमानँद' डारत त्रिनु तोरी॥

[७८३] बिलावल

सरद-निसा-ससि-सोभा हरे-हरे ।
कमल-नयन मन लोभा हरे-हरे ॥
रवि-तनया के तीरा । बिपिन बसे आभीरा ॥
सोवन जूथिका फूली । कुंज-कुटी पर झूली ॥
अति संकीरन द्वारा । बैठे नंद-कुमारा ॥
किसलय-तलप बिछावै । रचि-रुचि कुसुम बनावै ॥
मत्त मधुप गुंजारा । मनु गत मदन-बिकारा ॥
मृगमद भाल-बनाई । हौं तोहि लैनि पठाई ॥

---

१. अंग (ग.)

गावत तुव गुन-गीता । है त्रैलोक्य पुनीता ॥
प्रथम उबटि सिर खोरी । ग्रंथित सुरँग पट डोरी ॥
भाल तिलकु दै स्यामा । कमल-नयन की वामा ॥
स्रुति ताटंक सँवारी । भौंह चितौनि अनियारी ॥
चपल नयन मसि-रेखा । मधुकर मत्त विसेखा ॥
नक-वेसरि कौ मोती । मेटत दिन-मनि-जोती ॥
चिबुक चारु कंबु-ग्रीवा । सुंदरता की सींवा ॥
उलटि धरे मनु ताला । कंचुकी-मध्य विसाला ॥
पहिरें मोतिनि-माला । रिझवति मदनगोपाला ॥
नीबी नाभि सुदेसं । मोहन मदन-प्रवेसं ॥
मृग-रिपु कृस कटि नारी । जघन नितंबनि भारी ॥
गति गजराज मरालं । लटकत बाहु-मृनालं ॥
नूपुर चरन सुढारं । पिय-सनमुख पाँउ धारं ॥
अंग-अंग सुकुवाँरी । रसिक कुँवर की प्यारी ॥
स्रवन सुनत मृदु बानी । ब्रज-सुंदरि अकुलानी ॥
चपल चली पिय-तीरा । मथत मदन की पीरा ॥
नवल कुँवर कों भेटी । मानों द्रुम-लता लपेटी ॥
कुच-जुग बसन दुरावै । गिरिधर-प्रेम बढावै ॥
नीवी-ग्रंथि न खोलै । नेति-वचन मृदु बोलै ॥
सुरति हिंडोरे झूली । मानहुँ कुमुदिनी फूली ॥

रसना कोटिक पाऊँ। कोटि जनम भरि गाऊँ॥
मदनमोहन जू की जोरी। उपमा कहै सो थोरी॥
क्रीडत कुंजबिहारी। भक्तनि के हितकारी॥
चरन-कमल-रज पाऊँ। मुदित बिमल जस गाऊँ॥
'परमानँद' ब्रत कीनों। पद-अंबुज चित दीनों॥

[७८४] टोडी

निर्तत मोहन रास बिलास।
गुन गावति वृषभानु-नन्दिनी उघटत सब्द ताथेई तास॥
करतल ताल मिलत मुरली-सँग
बिच-बिच मोहन-मुख-मृदु-हास।
जै-जै करत कुसुम सुर बरषत गुन गावत 'परमानँददास'॥

जल-क्रीडा—

[७८५] टोडी

करत गोपाल जमुना-जल-क्रीडा।
सुर नर असुर थकित भए देखत
बिसरि गई तन-मनजा[1] ब्रीडा॥
मृगमद मलय[2] कुमकुमा केसरि[3]
अगर कपूर सुबास बहु भुरकनि।
कुच-जुग-गगन[4]-मगन नँदनंदन
कोमल[5] पानि परस्पर छिरकनि॥

१. जिय. २. तिलक. ३. चंदन. ४. मगन रसिक. ५. कमल.

निरमल सरद-काल-रितु[1]-सोभा
बरषत स्वाति-बिंदु-सम मोती।
'परमानंद' कनक[2]-छबि गोपी
मरकत-मनि गोविंद-तन[3]-जोती ॥

[७८६] सारंग

मोहि मिलनि भावै जदुवीर[4] की।
सरद-निसा पूरन ससि उदौ[5] करि खेलनि जमुना-तीर की
हरि हम कों हम हरि कों छिरकति पैसि[6] दफोलनि नीर की
हँसि[7] कर खेंचि लेत ऊँडे[8] जल अंक[9] माल भुज भीर की॥
जबै निकसि होत जल ठाढे निरखि अँगोछनि चीर की
'परमानँद' स्वामी रति-नागर बलि-बलि स्याम-सरीर की

[७८७] सारंग

बैठे घनस्यामसुंदर खेवत हैं नाउ।
आजु सखी! कान्ह-संग खेलनि कौ दाउ ॥
पथिक हम खेवट तुम लीजै उतराई।
बीच धार-माँझ रोकि मिस कै डुलाई ॥
जमुना गंभीर नीर अति तरंग लोल।
गोपिनि प्रति कहनि लागे मीठे मधु[10] बोल ॥

---

१. कृत, की २. कंचन-मनि ३. मुख
४. बल-वीर ५. उदए ६. पैठि ७. हरि (ङ. छ.) ८. औंडे (ग.)
९. अंस भुजा भरि भीर की १०. मृदु (ग.)

डरपति हौं स्यामसुंदर राखहु पद-पास ।
एहिं[1] रस मिल्यौ चाहै 'परमानँददास' ॥

युगल-रस-वर्णन—

[७८८] सारंग

राधा बैठी तिलकु सँवारति ।
मृग-नैनी कुसुमायुध के डरु सुभग नंद-सुत-रूप बिचारति॥
दरपन हाथ सिंगारु बनावति बासर-जाम जुगति यों डारति
अंतर प्रीति स्यामसुंदर सों प्रथम समागम-केलि सँभारति॥
बासर-गत रजनी ब्रज आवत मिलत लाल गोवरधनधारी
'परमानँद' स्वामी के संगम रति-रस-मगन मुदित ब्रजनारी

[७८९] सारंग

❀नवरँग कंचुकी तन गाढी ।
नव रँग सुरँग चूनरी ओढें[2] चन्द्र-बधू सी ठाढी ॥
नव रँग मदनगोपाललाल सों प्रीति निरंतर बाढी ।
स्याम-तमाल लाल उर लपटी कनक-लता सी आढी ॥
सब अँग[3] सुंदर नवलकिसोरी कोक-कला-गुन पाढी ।
'परमानँद' स्वामी[4] की जीवनि रस-सागर मथि काढी ॥

१. याही मिस (क.) ❀ सुरंग... से भी आरंभ है २. पहिरें
३ गुन-सींव चतुर नागरी (बं० ३४।७) ४. गिरिधरनलाल-हित

[७६०]

राधा रसिक गोपाल[1]हिं भावै ।
सब गुन-निपुन नवल अँग सुंदरि
प्रेम-मुदित कोकिल-सुर गावै ।।
पहिरि कसूँभी कटाव की चोली चंद्र-वधू सी ठाढ़ी सो है ।
सावन मास भूमि हरियारी मृग-नैनी देखत मन मोहै ।।
उपमा कहा देउँ को लाइकु केहरि के वाही मृग-लोचनि
'परमानँद' प्रभु प्रान-वल्लभा चितवनि चारु काम-सर-मोचनि

[७६१] सारंग

राधा माधौ सौं रति बाढी ।
चितवति तहाँ जहाँ नँदनंदन सब तें लियो मनु काढी ।।
एक द्यौस जमुना-मज्जन करि निकसि तीर भई ठाढी ।
सुकवति बार बाम कर सिर धरि बनी है कंचुकी गाढी ।।
स्यामा नवल कनक-चंपक-तन नागरि मनसिज गाढी ।
चाहति मिल्यौ प्रानप्यारे कौं 'परमानँद' गुन-आढी ।।

[७६२] सारंग

राधा माधौ बिनु क्यों रहै ।
एक स्यामसुंदर के कारन और सबनि की निंदा सहै ।।

१· गोपालै·

प्रथम भयो अनुराग द्रिष्टि तें इत मोहन मन हरयो ।
पिय के पाछें लागी डोलै बंधु-बरग सों बैरु परयो ॥
मनक्रम-बचन और गति नाहीं बेद-लोक-लज्जा तजी ।
'परमानँद' तब तें सचु[1] पायो जब तें पद-अंबुज[2] भजी ॥

[७६३] सारंग

अति रति स्यामसुँदर सों बाढी ।
देखि सुरूप गोपाललाल कौ रही ठगी सी ठाढी ॥
घर नहिं जाइ पंथ नहिं रेंगति चलनि-चलनि गति थाकी
हरिनी ज्यों हरि कौ मगु जोवति काम-मुगध मति ताकी
नैनहु नैन मिले मनु अरुझ्यो इहि नागरि वह नागर ।
'परमानंद' बाच ही बन में बात जु भई उजागर ॥

[७६४] सारंग

साँची प्रीति भई एक ठौर ।
मृगनयनी कमल-दल-लोचन लाल स्याम राधा तन गौर
तुम सिर सोहति पाट की डोरी हरि-सिर रुचिर चंद्रिका मोर
तुम रसिकिनी वे रसिक-सिरोमनि
तुम ग्वालिनि वे माखनचोर ॥
तुम करिनी वे गजबर-नाइक तुम मालती वे भोगी भौंर
'परमानंद' लाल[3] गिरिधर कें राधा-सी जोरी नहीं और ॥

---

१. सुख. (ग.) २. अंभोज (ग.) ३. नंदनंदन कें (ग. ज.)

[७६५] कान्हरौ

तेरौ मुख नीकौ कै मेरौ री प्यारी !
दर्पन हाथ लिएँ ब्रज-नंदन साँची कहौ वृषभानु-दुलारी ॥
तुम हौ नंद के छैल छबीले हम हैं गूजरी दासी तिहारी।
'परमानंददास' कौ ठाकुर चरन-कमल की हौं बलिहारी॥

[७६६] ईमन

आजु बने सखि ! नंदकुमार ।
सँग सोभित वृषभानु-नंदनी ललितादिक गावति गुन-सार॥
कनक-थार कर लिएँ कामिनी मुक्ता फल-फूलनि के हार
रोरी कौ सिर तिलकु बनावति करत आरतो हरषि अपार
यह जोरी अविचल वृंदाबन दैं असीस मिलीं बृज-नारि
कुंज-भवन में बैठे दोऊ 'परमानंददास' बलिहार ॥

[७६७] सारंग

जसुमति-जीवन नंदलाल-सँग राधा सुंदरि जोरी ।
अगर कपूर कुमकुमा मिलि रस कियें चंदन तन खौरी ॥
कटि पर सुभ सु बसन किंकिनी खचित नगनि अति राजै
मुक्तामाल सुढार हृदै वर कौस्तुभ-मनि कल भ्राजै ॥
निरखि सकल गोपी-जन हरषति सुर-बधू सुमन बधावत
अति आनंद मोर मुदित मन जन 'परमानँद' गावत ॥

[७६८] सारंग

राधा सों रस-रीति बढी ।
सादर करि भेटीं नँदनंदन दूने चाउ चढी ॥

बृंदावन में क्रीडत दोऊ कुंजर-सँग करिनी।
'परमानँद' स्वामी मनमोहन ता कौं[1] इहि मन-हरिनी॥

[७९९] सारंग

लटकि लाल रहे राधा कें भर।
सुंदर बीरी बनाइ सुंदरी हँसि-हँसि जात[2] देति मोहनकर
गोपी सनमुख चितवति ठाढा तासों केलि करत सुंदरबर
ज्यों चकोर चंदा कौं[3] चितवत
त्यों आली निरखत गिरवरधर॥
कुंज-कुटी अरु बाग बृंदावन बोलत मोर कोकिला तरु पर
'परमानँद' स्वामी मोहन की हौं बारी या लीला-छबिपर❀

[८००] सारंग

अलक लडी मोहन जू की जोरी।
वे[4] रस-पुंज नंदजूकी जीवनि इहि दुलहिनि बृषभानु-किसोरी
वे कुंचित कच मधुप बिसेषित इहि सुदेस ग्रंथित सिरडोरी
वे अंबुज-मुख इहि बिधु-बदनी वे कोमल-कर उरज-कठोरी
वे गजमत्त प्रबल रति-नाइक इहि सारँग-रिपु कृस-कटिथोरी
वे बृंदावन-ससि 'परमानँद'
इहि निसि-नागरि नैन-चकोरी॥

---

१. ताहू कौ मन० (ग.) २. जाइ (घ.) ३. तन. (घ. ङ. छ.)

❀ चतुर्भुजदास की छाप से भी—'चत्रुभुज' प्रभु मदनमोहन पिय बलिहारी या छबि पर (बं. ३७१३, ८१४)

४. तुम (सर्वत्र.) (बं० १३०१२)

[८०१] सारंग

घन मँहि छुपि[1] रहो ज्यौं[2] दामिनि ।
नंदकुँवर के पाछैं ठाढी कुँवरि राधिका भामिनि ॥
बाल-दसा अपने[3] रँग खेलति सरद सुहाई जामिनि ।
'परमानँद'स्वामी रस[4]-भीजी प्रेम-मुदित गज-गामिनि॥

[८०२] सारंग

आजु बनी दंपतिबर-जोरी ।
साँवल[5]गौर बरन रूप[6] महा नंदकिसोर बृषभानु-किसोरी
एक सीस पचरँग[7]चूनरी एक सीस अद्भुत पट खोरी ।
मृगमद-तिलक एक के माथें एक माथें सोहै मृदु रोरी ॥
नख[8]-सिख उभय भाँति भूषन-छबि
रितु बसंत खेलत मिलि होरी ।
अतिसै रंगु बढ्यो 'परमानँद' प्रीति परस्पर नाँहिन थोरी

[८०३] सारंग

गोपी प्रेम की ध्वजा ।
जिनि जगदीस किए बस अपने उर धरि स्याम-भुजा ॥

---

१. छिपि (क. घ.) २. मानों (बं. ५७१६)
३. मोहन-सँग बिलसति (बं० ५७१६) ४. सँग क्रीडति प्रेम-पुंज (बं. ५७१६)
५. गौर-स्याम राजत दोऊ जन नंदलाल ६. निधि (ग.ज.), अति सुंदर, तन अनुपम ७. पगिया रँग-बोंरी
८. करत बिलास दोऊ जमुना-तट बढयो रस-सिंधु आनँद-झकझोरी । कहत न बनत 'दास परमानँद' (बं० ६२१२)

सिव[1] बिरंचि प्रसंसा कीनी उद्धव संत सराहीं ।
धन्य[2] भाग गोकुल की बनिता[3] अति पुनीत भव माहीं ।।
कहा बिप्र-घर जनमहि पायें हरि[4] सेवा-बिधि नाहीं ।
तेई पुनीत 'दास परमानँद' जे हरि सनमुख जाहीं ।।

[८०४] सारंग

कवन रस गोपिनि लीनों घूँटि ।
मदनगोपाल निकट करि पायो प्रेम-काम की लूटि ।।
देखत[5] रूप-ठगौरी लागी सकुच[6] गई तन छूटि ।
'परमानँद' बेद सागर की मरजादा गई फूटि ।।

[८०५] सारंग

अराधन राधिका कौ नीकौ ।
जाके संग मिलें हरि खेलत जो ठाकुर सब ही कौ ।।
पूरब नेंमु लियो सो साँचौ नंद-नँदन पति करिहों ।
देव-लोक तजि धातृ-आज्ञा गोकुल में अवतरि हों ।।
जो बृषभानु प्रबल गोपनि में चंद्र-बदनि तहाँ आई ।
देखत रूप अनूप मनोहर मदनगोपालहिं भाई ।।
बाल दसा माँहि प्रीति निरंतर क्रीडत गोकुल-बास ।
गौर-स्याम तन इहि जोरी पर बलि 'परमानँददास' ।।

१. सुक मुनि व्यास २. भूरि (बं० १३०।१)
३. ललना (१३०।१) ४. जो हरि से यो (बं० १३०।१)
५. निरखि सरूप नंदनंदन कौ लोक-लाज गई छूटि (बं० १३०।१)
६. लाज (ङ. क.)

[८०६] सारंग

लाल ! तेरी लाडिली लडबौंरी ।
चाहति फिरति अकेली बन-बन लागी प्रेम-ठगौरी ॥
इहि तुम करी नंद के नंदन बाँह बोलि दै हटकी ।
जानै करम[1] मरम अति भोरी रूप देखि तब लटकी ॥
सुनु ब्रजनाथ ! अनाथ-नाथ तुम एहि न बूझिए नागर ।
'परमानँद' प्रभु अब न छाँडत हौं करी सब बात उजागर॥

[८०७] कानरौ

गोबिंद प्रीति कै[2] बस कीनों ।
अंतरगत तें स्याम-मनोहर अनत जान नहिं दीनों ॥
नहिं सहि सकति बिछुरनों पलु भरि भलौ नेंमु तैं लीनों
'परमानँद' प्रभु मोहन मूरति-चरन कमल चितु दीनों॥

[८०८] बिलावल

इहि पट-पीत कहाँ तैं पायो ।
इतनी[3] प्रीति गुपत मोहन की तैं राधे ! त्रैलोक सुनायो[4] ॥
ना या कौ मोलु न या कौ गाहक
ना लियो मोलु न घर उपजायो ।
एक बार खेलत बृंदावन बहुत जतन करि मोहि उढायो

१. कहा (ग. ज.) २. सों ३. इतनिक (ग.) ४. बतायौ

सुमिरन भजन बसत उर अंतर
इहि मिस करि लालन समुझायो ।
प्रीति की रीति चतुर सोई जानें 'परमानँद' प्रभु यों बोहरायो

[८०९] मलार

बोलें माई ! गोवर्द्धन पर मुरवा ।
ऐसी स्याम-धुनि-मुरली बाजै तैसें उठें घन-धुरवा ॥
चलहु सखी री ! रंग-महल में पवन बहत अति भुरवा ।
'परमानँद' प्रभु तुम्हारे मिलनि कों जागत ही भयो भुरवा

[८१०] मलार

नँदलाल माई ! गुपति चलावत पीची ।
कुचहि कपोल ताकि-ताकि मारत फुनि खोदत में नीची
बालक जानि गए वृंदावन खेलनि आँखिनि मीचीं ।
सबहिं सखिनि के ओट दै ठाढी उनि मेरी लर खींची ॥
राव करो री ! जसोदा आगै लै उर अंतर-रस भीचीं ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर अधर-सुधा-रस सींची ॥

[८११] केदारौ

महल में बैठे[1] मदनगोपाल ।
भीतर जानि सोइ जन पावै जाहि बोलत नँदलाल ॥
स्याम सुभग तन चंदन-चर्चित उर सोहै बनमाल ।
नंद कौ लाल संग राधा के करत परस्पर ख्याल ॥

---

१. सोए

विविध विनोद करत रस-क्रीडा सज्ज्या कुसुम गुलाल ।
'परमानंददास' द्वारें[2] ठाढौ चितवन नैन विसाल ॥

[८१२] सारंग

कुंज-भवन बैठे नँद-नंद ।
स्यामा-स्याम जहाँ दोऊ राजत पवन चलत गति मंद गयंद
मदनमोहन मोहीं पठई बिरह-बिथा काटत दुख-द्वंद ।
छल सब त्यागि समुझि अपने उर रति-रन-जोर सफन्द
अंग-अंग हिय-पिय नें लीनों मानों पियो सरस राग-मकरंद
'परमानंद' प्रभू कौ चेरौ गुन बरनत मति-मंद ॥

[८१३] सारंग

सोभित नव कुंजनि छबि भारी ।
अद्भुत रूप तमाल सों लिपटी कनक-बेलि सकुँवारी ॥
मदन-सरोज डहे-डहे लोचन छबि-छबि सुखकारी ।
'परमानँद'प्रभु मत्त मधुप पें श्रीवृषभानु-सुता फुलवारी॥

[८१४] सारंग

नीकी बानिक नवल कुंज की ।
बरन-बरन प्रफुलित द्रुम-बेली मधुमाते अलि-गुंज की॥
करत बिहार तहाँ पिय-प्यारी संपति आनँद-पुंज की ।
'परमानँद'प्रभु की छबि निरखत मनमथ-मनसा लुंज की ॥

---

१. कौ ठाकुर

[८१५] सारंग

आजु नव कुंजनि की अति सोभा ।
करत बिहार तहाँ पिय-प्यारी निरखि नैन-मन लोभा ।।
रूप वारि सींचत निज तन कों उठत प्रेम की गोभा ।
'परमानंद'प्रभू चितवत लागति त्रित कौ चोभा ।।

[८१६] कल्यान

कहै राधा देखहु गोविंद !
भलौ बनाव बन्यो है बन कौ पूरन राका-चंद ।।
मंद सुगंध सीतल मलयानिल कालिंदी के कूल ।
जाई जुही मल्लिका जूथी फूले निरमल फूल ।।
सब अभिलाष होत हैं मन के[1] नहीं रहति जिय साध ।
तुम्हारे समीप कवन रस[2] नाँही नाथ ! सकल सुख-लाध ।।
सुनि ते[3] बचन बहुत भलौ मान्यों हँसि दीनी अँकवारि
'परमानँद'प्रभु प्रीति जु जानी नागर रसिक मुरारि ।।

[८१७] सारंग

कुंज बाहि दिखाबहुँ आजु ।
माँगै जोइ देउँ नंद-दुहाई यों बोलत ब्रज-राजु ।।
चितवत चित्त हर्यो उहि नागरि मोहि वाहि सों काजु ।
है किसोर जोवन नहिं परसी सबै मनोहर साजु ।।

---

१. पूरन (ज. च.) २. गुन (ग.) ३. कै (इ ग.से ज.)

फुनि[1] दूती राधा जू पैं आई वचननि स्याम समाजु ।
'परमानँद' प्रभु जो धन मिलऊँ तौ मेलौं मुख नाजु ॥

[८१८] सारंग

आजु तुम इहाँई रहौ कान्ह प्यारे !
निसि अँधियारी भवन दूरि है चलि न सकत पाँ हारे॥
तोरि पत्र की सेज बिछाऊँ वा तरुवर की छाँह ।
नंद के लाल तुम सैन करहु देउँगी उसीसे बाँह ॥
सँग के सखा सब घर को बिदा करौ हम तुम रहेंगे दोऊ
'परमानँद' प्रभु-मन राधा भावै अनख करौ मति कोऊ

[८१९] केदारौ

कुंज महल में पौढे दोऊ ।
नंद-नँदन बृषभानु-नंदिनी उपमा कौं दूजौ नहिं कोऊ॥
नाना[2] कुसुम की सेज रची है कोक-कला जानत हैं सोऊ
रसिक-मुगट-मनि रँग में भीने 'परमानँद' तहाँ द्वारें होऊ

[८२०] केदारौ

पौढे रंग-महल गोबिंद ।
राधिका-सँग सरद-रजनी उदित पूरन चंद ॥
बिबिध चित्र अनेक चित्रित कोक कौतुक-फंद ।
निरखि-निरखि बिलास बिलसत दंपती रस-कंद ॥

---

१. फूलो २. किसलय-दल-कुसुमनि की सज्जा (अ.)

मलय[1] चंदन अंग-लेपन परसि अति आनंद ।
कुसुम-बीजन बायु ढोरै सजनी 'परमानंद' ॥

[८२१] कानरौ

पौढे हरि झीनौ पट दै ओट ।
संग श्रीवृषभानु-तनया सरस रस की मोट ॥
मकर-कुंडल अलक अरुझी हार गुंजा- ताटंक ।
नील-पीत दोउ अदल-बदले लेत भरि-भरि अंक ॥
हृदय-हृदय सों अधर-अधर सों नयन सों नयन मिलाइ।
भौंह-भौंह सों तिलक-तिलक सों भुजनि-भुजा लपटाइ॥
मालती और जाई चंपौ सुभग जाति बकूल ।
'दास परमानंद' सजनी देति चुनि-चुनि फूल ॥

[८२२] केदारौ

पौढे रावरी सुख-सेज ।
संग श्रीवृषभानु-तनया सुरत-रस कौ हेज ॥
नवल कुंजनि जाल-रंध्रनि बहत मलयज पवन ।
'दास परमानंद' आली करत ब्रज-जन-गवन ॥

सुरतान्त—

[८२३] ललित

राधे जू ! हारावलि टूटी ।
उरज कमल-दल-माल मरगजी
वाम कपोल अलक-लट छूटी ॥

---

१. अगर.

बर उर उरज करज कर अंकित
बाहु-जुगल बलयावलि फूटी।
कंचुकि-चीर बिबिध रँग-रंगित गिरिधर-अधर माधुरीघूँटी
आरस-बलित नयन अनियारे अरुन उनींदे रजनी खूटी
'परमानँद' प्रभु सुरत-समैं रस मदन नृपति की सेना लूटी

[८२४] बिलावल

चली उठि कुंज-भवन तें भोर।
डगमगात लटकत लट छूटें पहिरें पीत-पटोर ॥
अरुन नयन घूमत आरस-बस मनु रस-सिंधु-हिलोर[1]।
गिरि-गिरि परत गलित कुसुमावलि
सिथिल सीस-कच-डोर ॥
पद-नख-अंक जुगल वर राजत सुभग हियें तन गोरि।
'परमानँद' प्रभु रमी निसा अब लपटि हँसी मुख मोरि॥

[८२५] सारंग

आवति आनँद-कंद-दुलारी।
बिधु-बदनी मृग-नैंनी राधा दामोदर की प्यारी।
जा के रूप कहत नहिं आवैं गुन बिचित्र सुकुमारी।
मानहुँ कहूँ पर्यो घुन-आखर बिधिना सुहथ सँवारी ॥

---
१. हिंडोर (क.)

प्रीति परस्पर ग्रंथि न छूटै ब्रज-जन इहै बिचारी।
'परमानंददास' बलिहारी मानहुँ साँचे ढारी ॥

[८२६] सारंग

बाँह डुलावति आवति राधा।
बदन-कमल झंपति न उघारति रह्यो है तिलक मिटि आधा
गिरिधरलाल कुँवर[1] नँद-नंदन तैं जु प्रेम करि लाधा।
रहसि मिली[2] प्रान-प्यारे कौं रही न एकौ साधा।
काजर अधर मिल्यो नैननि कौ मिटी काम की बाधा ॥
'परमानँद' स्वामी रति-नागर तेरौ पुन्य अगाधा ॥

[८२७] सारग

कहा फूली आवति है राधे !
मानहुँ मिले अंक-भरि माधौ प्रगटित प्रेम अगाधे ॥
बार-बार मुसिकाति बदन-छबि बिकसित पद्म[3] जु आधे
लोचन चारु बंक अवलोकनि काम नचावति ताधे ॥
इहि रस-मत्त फिरत मुनि-मधुकर संभु रहत दिन साधे।
सोई रसु दियो 'दास परमानँद' श्रीनिकेतन राधे ॥

[८२८] सारंग

छूटी री ! अलक-लट काहे न बाँधत।
मदनगोपाल रिझैवे हि कारन
सहजहि नैन-कुसुम-सर साधत ॥

---

१. रसिक (घ.) २. मिलो हैं प्रान-पिया सों (बं.११६।१) ३.कमल (घ.)

इहि चतुराई तेरी प्रगट देखियत
तू नागरि नागर-मन मोहति ।
बसीकरन तेरी प्रीति-रीति है
सखियनु माँझ सुहागिल सोहति ॥
बिनु सिंगार नीकी लागति है एहि रूप गोपालहि भावत।
'परमानँद'प्रभु प्रान-वल्लभा करत हहा रे ! सुमुखि मनावत

[८२६] सारंग

उपरैना स्याम-तमाल कौ ।
तैं धौं कहाँ लयो ब्रज-सुंदरि ! ललित त्रिभंगीलाल कौ ॥
सुभग कलेवर प्रगट देखियत हाथनि कंकन-जाल कौ ।
तू रस-मगन भई नहि समुझति बाल-केलि ब्रज-ख्याल कौ
निसि-दिन रहत गोप-ग्वालनि सँग चंचल नैन बिसाल कौ
'परमानँद'प्रभु गोधन चारत मत्त गयंदवर चाल कौ ॥

[८३०] सारंग

रस पायो नंदकुमार[१] कौ ।
सुनि सुंदरि ! तोहि नीकौ लाग्यो या मोहन-अवतार कौ
कंठ बाहु धरि अधर-पान दै प्रमुदित हँसत बिहार कौ
गाढे आलिंगन दै-दै मिलिबौ बीच न राखत हार कौ ॥

---

१. मदनगोपाल (ग.)

लोकपाल पावन जसु-गावन[1] प्रगट[2] हरन भुव-भार कौ।
सेस-अंक तजि गोकुल आए देख्यो चरित उदार कौ॥
बेनु बजावत नाचत गावत इहै बिनोद सुख-सार कौ।
'परमानंददास' की जीवनि रास-परिग्रह दार कौ॥

[८३१] टोडी

भली बनी बृषभानु-नंदिनी प्रात-समै रन जीतें आवै।
नूपुर मधुप-अलक-लट छूटी
मधुर चाल-मद गजहि लजावै॥
नागर छैल-रसिकिनी नागरि सुरत-हिडोरें झूलै गावै।
वे दोउ सुघर केलि-रस-मंडित नासत[3] मदन ठौर नहिं पावै
पिय की नख-मनि उरहि बिराजित बिनु सूते हि माल बनावै
'परमानंद' रूप-निधि नागरि
बदन-कांति रबि[4]-जोति छुपावै॥

खंडिता—

[८३२] ललित

कमल-नयन स्याम-सुंदर[5] निसि के जागे हौ आलस-भरे
कर-नख उर अरुन[6] रेख मानहुँ ससि[7] अर्द्ध[8] धरे॥

---

१. गावत (ङ. छ.) २. भक्तनि प्रान-अधार कौ (ग.)
३. भागत (छ.) ४. ससि-कांति (बं० ११६।१)
५. घनस्याम मनोहर तुम निसि के जागे आल-रंग-भरे (बं. ३।१)
६. राजतमनों अरध ससि धरे. ७. वाल ससि धरे (बं० ११५।१)

लटपटी सिर पाग बनी खसित वसन तिलक टरे ।
मरगजी उर कुसुम-माल भूषन अंग अंक परे ॥
सुरत-रँग उमगि रहे रोम-पुलक होत खरे ।
'परमानँद' रसिकराइ जाहि के भाग ताहीके ढरे ॥

[८३३] ललित

❀ साँवरे भले हौ रति-नागर !
अब कें दुराएँ क्यों ऽब दुरति है प्रीति जु भई उजागर ॥
अधर काजर में नयन रगमगे रची कपोलनि पीक ।
उर नख-रेख प्रगट देखियतु है परी मदन की लीक ॥
पलटि परे पट तिलकु गयो मिटि जहाँ-तहाँ कंकन-गाउ
'परमानँद'स्वामी मधुकर-गति भली आपुनी चाउ ॥

[८३४] बिलावल

भली करी जु आए हौ सवारे ।
वहुरि भानु कौ उदय होहिगौ
प्रगट देखियत अंक निन्यारे ॥
पलटे पीत नील-पट ओढे ऐसी कौन चतुर धन भावत ।
एते मान देह-सुधि भूली तुम हि जु आपुनपौ बिसरावत ॥
पाँउ धारिये बहुत मया भई कर गहि कंत तलप बैठारे ।
'परमानँद'प्रभु तु मतें और कोऊ
संध्या-वचन बदे नहिं टारे ॥

❀ भले आए साँवरे रति० बं० ११५।१) से भी आरंभ है.

[८३५] सारंग

राधे ! बात सुनहि किनि मेरी ।
घर-बैठे आईं सखि मोपैं सौंह करत हैं तेरी ॥
हौं आयो चाहत हो तुमपैं बीचि लियो उनि घेरी ।
बहुत चतुराई रहि[1]रहि देखी कैसैं हू जात न फेरी ॥
भवन आपने तानि लियो सखि अरु भई रयनि अँधेरी
पर-बस परे 'दास परमानँद' काहि सुनाऊँ टेरी ॥

[८३६ बिलावल

भलैं आए गिरिवरधारी नागर ।
जिय की कृपा मैं तब ही जानी भोर खुलाए आगर ॥
रति के समाचार लिखि पठए सुभग कलेवर कागर ।
जासों तुम अति खेलु रच्यो है चतुर नारि के बागर ॥
जाके रस तुम रहे जु बींधे सो धौं कौन अचागर ।
हमारी चिंता अरुन नैन भए सकल निसा के जागर ॥
बलि-बलि जाऊँ मुखारविंद की सुरत-रंग-रस-सागर ।
'परमानँद' प्रभु हमहिं लजावत आपुनि सदा उजागर ॥

[८३७] बिलावल

*लाल ! तुम पीत ओढिनी कहाँ बिसारी ।
एतौ लाल ढिंगनि की औरैं है काहू की सारी ॥

---

१. कै कै (ग. च. छ.)

*पीत पिछौरी कहाँ बिसारी (बं. १२८।४) (३०।२) से भी प्रारंभ है.

हौं[1] गोधन लै गयो जमुन-तट तहाँ हुती पनिहारी।
भीर भई सुरभी सब बिडरीं मुरली भलें सँवारी॥
ए[2] तौ हाथ परी काहू की सो लै गई हमारी।
'परमानँद' प्रभु[3] भली बनावत बलि जसुमति महतारी❀॥

[८३८] बिलावल

रति-रन जीते ई आवत मदन-फौज-रस लूटे।
सिथिल अंग मुख स्रवत जल मोतिनि हार-लर टूटे॥
पेच पाग के रसिक पगे सब कटि-पट-फेंट बँधे अधछूटे
लटकत केस जुल्फ घुघरारी बोलत सब्द हलाहल कूटे॥
कौन त्रिया ऐसी तुम पाई जहाँ भये कवार अधर-रस छूटे
'परमानँद' स्वामी जिय सकुचे
प्यारी फंद परी मेरे उर के भेद सब खूटे॥

[८३९] सारंग

मैं तुम देखे स्याम-मनोहर! गूँथत काहू की बैनी।
जद्यपि वे गुन जानति नागरि तौऽब करति कतलैनी॥

---

१. हों वा घाट पिबावत गैयाँ जहाँ भरति पनिहारी (बं. १२८।४)
२. हौं लै भजौ और काहू की बो. (,, ,,)
३. बलि-बलि बतियनि पै तृन तोरति महतारो (,,)
❀ सूरसागर प० सं० १३११ तथा ३७।३ व १५ २० में भी
'पीत उढनियाँ कहाँ बिसारी' सूरदास-छाप से.

मुख औरै अंतरगति औरै ताहि बडाई दैनी ।
'परमानँद' स्वामी पाँ लागूँ पर-दुख-कातर-छैनो ॥

[८४०] मलार

आई जु फिरि गई बिनु आदर ।
मैं वा की सँभार[1] न कीनो रवकि जु आए बादर ॥
धौरी दुहत भई दुचिताई प्रथम पहर की जामिनि ।
मेरे प्रेम भवन तजि आई बिमुख गई वह भामिनी ॥
बा के मन में कहा बीतति है प्रान-जीवन-धन[2] राइ ।
'परमानँद' प्रभु कह्यो प्रनय करि दूती तू चलि जाइ ॥

[८४१] सारंग

सूआ पढावति सारँग-नैनी ।
बदति सँकेत लाल गिरिधर सौं
गुरु-जन-निकट गुपति मति कैनी ॥
अहो कीर! नीलबरन तन नैकु सु चितै ममबुद्धि चितु-लैनी
होति अबार जात गृह दिन-मनि हम तुम भेट होइगी रैनी
तब लगि तुम[3] सिधारौ सदन निज
हौं जाऊँ जमुना-जल-लैनी ।
'परमानँद' प्रभु प्रीति अंतरगत
मृदु मधु बचन कहति पिक-बैनी ॥

---

१. सँभाषन (ख.) २. जदुराई (ङ. छ.)
३. तुमहु सिधारौ सघन बन हौंउ जाउँ.

२१. युगल-गीत

[८४२]　　　　देव गंधार

को बिसरै उह गाँइ-चरावनि ।
बाम कपोल बाम भुज पर धरि दच्छिन भौंह उचावनि ॥
कोमल कर अंगुलि गहि मुरली अधर-सुधा-बरसावनि।
चढि बिमान जे सुनत देव त्रिय तिननि मोह-उपजावनि ॥
हार-हास अरु थिर चपला उर रूप-दुखित सुख-लावनि।
दंत धरें तृन रहत चित्र ज्यों गाँइनि-सुधि बिसरावनि ॥
मोर-मुगट स्रवननि पल्लव कटि कटि मल्ल-स्वरूप-बनावनि ।
चरन-रेनु बांछत कंपित भुज सरितनि गमन थँभावनि ॥
आदि पुरुष ज्यों अचल भूत ह्वै संग सखा गुन-गावनि।
बन-बन फिरत कबहुँ मुरली कर गिरि चढि गाँइ-बुलावनि
लता-बिटप मनु माँझ प्रनत ह्वै फल-भर भूमि नचावनि।
ततछिन हरित होइ प्रति अवयव मधु-धारा-उबटावनि ॥
सुंदर रूप देखि बनमाला मत्त मधुप-सुर-गावनि ।
आदर देत सरोवर सारस हंस-निकट-बैठावनि ॥
बल-सँग स्रवन पुहुप-सोभा गिरि-सिखर नाद पुरवावनि।
बिविध भाँति बन-गमन विचच्छन नूतन तान बनावनि
सुनत नाद ब्रह्मादिक सुर-गन अधिक चित्त-मोहावनि ।
चलत ललित गति हरत ताप ब्रज-भूमि-सोक-बिनिसावनि

ब्रज-जुवती-मन मैंन उदित करि हरनी-भवन-छिडावनि।
कुंद-दाम-शृंगार सकल अँग जमुना-जल-उछरावनि ॥
मुदित सकल गंधर्व-देव-गन सेवा उचित करावनि ।
आरत द्रग ब्रज-गाँइनि के मन अति आनंद-बढावनि ॥
गो-रज-रंजित नव बन-माला सुख देवे ब्रज-आवनि ।
घूमत द्रिग मदमान देत कुंडल स्त्रुति-जुग-झलकावनि॥
बदर-सद्दस आनन सूचत सब बिधि ज्यों अंग-सिरावनि।
जुग-जुग गोपी रजनी-मुख सब अति पुनीत जस-गावनि
इहि लीला चित बसौ लसौ नित गोपी-जन-सुख-पावनि ।
'परमानंददास' कों दीजै ब्रज-जन-पद-रज-धावनि ॥

[८४३] देवगंधार

वे हरिनी हरिनी बन जाईं ।
जिनि तन कृपा-कटाच्छ चितै तुम अपने ढिंग बैठाईं ॥
जे गुन-सिंधु जानि हरि-मूरति कृष्णसार तजि आईं।
जिनि अपने नैननि मोहन कों गोपिनि सुरति दिवाई॥
करि करुना जिनि गोपिनि की ज्यों घर की आस छिडाई
मनि-माला करि गन तें गैयनु जे चितभीतर- लाईं ॥
जिनकी दृष्टि-बृष्टि अमृत की देखत रूप सिराईं।
जिनु गोपाल के अंस बाहु धरि लीला गूढ दिखाई॥

प्रेम-बिबस रस-हरि-दरसन के तन-सुधि जिनि बिसराई।
'परमानँद'स्वामी करुना तें गोपिनि की गति पाई ॥

२२. मथुरा पधारिवौ

[८४४] सारंग

गोकुल बैठौ कान्ह मथुरा लैंन कहै।
सुनु रे राजा कंस ! तेरी[१] बहुत सहै ॥
वासुदेव वसुदेव कौ नंदन वल्लव जाति कहावै।
मानुष-देह धारे कमलापति गोधन-वृंद चरावै ॥
समाचार सब नारद भाख्यो सावधान रिपु कीनों।
सोवत सिंघ जगायो पापी संतनि कों दुख दीनों ॥
बैठि मते अक्रूर पठायो राम-कृष्ण कों लैंन।
'परमानँद' स्वामी आवहिंगे कंसहि पूजा दैन ॥

[८४५] सारंग

माधौ सों कत तोरिये ?
कीजै प्रीति स्यामसुंदर सों बैठौ सिंघनि रोरिये ॥
बहन देवकी पाँइ लागिये बसुदेव बंदि छुड़ाइये।
'परमानँद' गोकुल कौ ठाकुर नंद बोलि पहराइये ॥

[८४६] सारंग

केसी तृनावर्त्त जनि मार्यो काली कौ विषु सोध्यो।
एक हाथ गोवर्द्धन-गिरि धरि इहाँ आनि प्रबोध्यो ॥
सुनि हो कंस ! हमारी बातें मथुरा सचु जो चाहै।
'परमानँद' स्वामी सों हिलिमिलि निज नातौ निरबाहै ॥

[८४७] सारंग

गरब काहू कौ सहि न सकै ।
रावन हिरन्यकसिपु इनि[1] मारे काहे कों कंस बकै ।।
आँखि देखि कहा साखि बूझिये अब[2] ही लौं कहा कियो ।
जो बिष दैन गई ही गोकुल पूतना प्रान पियो ।।
सो धौं करै ताहि कौ नीकौ चरन-सरोज गहै ।
'परमानँद' प्रभु सब बिधि समरथ बेद-पुरान कहै ।।

[८४८] सोरठ

कहति हों बात डराँत डराँत ।
जो मथुरा में सुनि आई हौं तुम्हारी कथा बल-भ्रात ।।
धनुष-जाग कौ ठाटु कियो है चोंह दिसि रोपे माँच ।
रंग-भोमि नीकी कै छोली मल्ल सँकेले पाँच ।।
कालि दूतु आवनु चाहतु है राम-कृष्ण कहँ लैन ।
नंदादिक सब ग्वाल बुलाए अपनी वार्षिक दैन ।।
हँसि ब्रजनाथ कह्यो तू साँची तेरी[3] कही हौं मानों ।
'परमानँद' स्वामी मुसुकाने कालि कंस कों भानों ।।

[८४९] सारंग

अरी ! तू अब मथुरा तें आई ।
कहे धौं समाचार उहाँ के बूझत कुँवर कन्हाई ।।

---

१. इहि (क. ग. घ. ङ. छ.)

२. अबहि कहा है (ग. घ. ङ. छ.) ३. तेरौ कह्यौ (ङ. छ.)

कहा धौं बात चलति नगर में नृपति कंस के आगें ।
काकौ भरमु ओइ करत भोजपति बैरु करत किहिं नातें ॥
सुनहु कृष्ण ! तुम्हरी सपत करों सब कोऊ इहि गावै ।
बाल[1]-समेत नंद के नंदनु मधुपुरी देखनि आवैं ॥
बातें करत प्रेम-रसु बाढ्यो नैन रहे अरुझाई ।
'परमानंददास' उहि ग्वालिनि घरहि कौन बिधि जाई॥

[८५०] सारंग

गोपाल जू की सब कोउ करत दुहाई ।
गोरस बेचनि गई बबा की सौं हौं मथुरा सुनि आई ॥
बिद्यमान नृप कंस नगर मँहि राज तेज नहिं देख्यो ।
जब तें बैरु कियो माधौ सों जीवत मृतक करि लेख्यो ॥
करत अवज्ञा प्रजा-लोक सब कंस-अवज्ञा मानें ।
ठकुराई हलधर के सब की जन 'परमानँद' जानें ॥

[८५१] सारंग

अपने हाथ कंस मैं मारों ।
हँसि गोपाल कहत[2] ग्वालनि सों रंग-भोमि में डारों ॥
अहो बलराम ! सुनहु श्रीदामा ! आज रात कौ सपनों ।
हम-तुम सब मिलि गए मधुपुरी मिल्यो जाति-कुल अपनों
प्रातकाल भयो बतौआ संध्या पठयो दूत ।
'परमानँद' प्रभु भावी भाखी भयो चलनि कौ सूत ॥

---

१. बल (घ.) २. कह्यो (ङ. छ.)

[८५२] सारंग

तैं इहि[1] बालक सुत करि पाल्यो ।
इहि हम सुनी नाम कान्हर धरयो
धाइ जसोदा उर धरि लाल्यो ॥
राजा कंस सुहथ लिखि पठई
गुपत हि नंदगोप कों पाती ।
इहि न बूझिये पै नीकी कीनी
राखी प्रगट स्वान धरि काती ॥
या कौ प्रति-उत्तर लिखि पठवौ
को इहि आहि कहाँ तैं आयो ।
या कौ फल आगैं पावहिगौ
मरम 'दास परमानँद' गायो ॥

[८५३] कल्यान

ब्रज-जन देखें ही जियत ।
नयन-चकोर सुधाकर हरि-मुख दृष्टि पियत ॥
तुम अक्रूर चले लै मधुबन हरि मेरे प्रान-आधार ।
राम-कृष्ण गोकुल के लोचन सुंदर नंदकुँवार ॥
इतनी करहु पाँइ लागति हौं बेगि घोष लै आवहु ।
'परमानँद' स्वामी है लरिका कान लागि समुझावहु ॥

---

१. इक (ङ. छ.)

[८५४] कल्यान

सुनियत ब्रज मँहि ऐसी चालि ।
माधौ-राम संग काहू कें मधुबन चलनि कहत हैं कालि ॥
सब मिलि गईं जसोदा के घर कौन पाहुनौं तुम्हरे आयो
कहा है नाम पुत्र है काकौ
कौनें हित करि घोष पठायो ॥
घर-घर घोंन[१] मथान सबहिनि कें
भली बात देखति नहिं माई ।
'परमानँद' प्रभु बिछुरनि लागे
बिधिना बिधि कछु और बनाई ॥

[८५५] कल्यान

गोपाल[२]हिं मधुबन जिनि लै जाहु ।
मोहि प्रतीति कंस की नाहीं सोम-बंस कौ राहु ॥
तुम अक्रूर बड़े के बेटा अति कुलीन मति-धीर ।
बैठत सभा सकल राजनि की जानत हौ पर-पीर ॥
बहिन देवकी वसुदेव सज्जन उन्ह कौं दीनों त्रास ।
बालक हू तें निगड में राखे कारागृह मौं बास ॥
कहति जसोदा सुनु सुफलक-सुत ! हरि मेरे प्रान-अधार ।
'परमानंददास' की जीवनि छाँडि जाहु इहि बार ॥

---

१. घोर (ङ. छ.) २. गोपालै (ङ. छ.)

[८५६] कल्यान

कैसें माई ! जानि गोपालहि दैहों ।
कमलनयन-मानिक पर-हथ दै बहुरि कौन पैं लैहों ॥
कपटी कंस दूत पैं कपटी कपटी सब परिवार ।
कपटी होंइ राज के मंत्री कपट-चल्यौ ब्यौहार ॥
धनुष-जाग कौ काज रच्यो है[1] मन में और बात ।
तब तें बैरु अधिक करि मान्यो सुनी पूतना-घात ॥
'परमानँद' स्वामी की लीला कहा जसोदा जानें ।
ज्यों-ज्यों पुरुषारथ दिखरावै बहुरि पुत्र करि मानें ॥

[८५७] सारंग

गोविंद ! तुम जु चलत कौन राखै ?
ऐसे बचन कौन कहि जानै गिरा[2] अमी ज्यों भाखै ॥
जो हौं कहौं जाहु जिनि मधुबन[3] तौ तौऽब ढिठाई लागै ।
जो रथ गहौं अमंगल-सूचक लोक-लाज-कुल भागै ॥
बिछुरत प्रान रहै कैसें मोहन ! सोचत ही तनु छीजै ।
'परमानँद' प्रभु रसिक-सिरोमनि परै बिचार सो कीजै ॥

[८५८] कल्यान

आजु की घरी बिलँबि रहौ माधौ !
चलनि कहत हौ कत उहि गाँउ ॥
कहे पराएँ कत लागत हौ इहि ब्रज अपनौ नीकौ ठाँउ ।

---

१. कछु (ग. घ.) २. वचन (ग. घ. ङ. छ.) ३. मथुरा (क. ङ. छ.)

फिरि देखौ मुख-चँद्र सबनि कौ
चित्र-लिखी सी बलि-बलि जाउँ ॥
जो तुम त्याग करौ गोकुल कौ
तौ हम काकें पेट समाउँ ।
'परमानँद' प्रभु प्रान-जीवन-धन
नैननि ओट होत मरि जाउँ ॥

[८५९] कल्यान

वह तौ कठिन नगर की बात ।
देखि अवास लोभ जिनि उपजै
तुम गोकुल तें पहिले जात ॥
सब ग्वालिनि मिलि सिखवनि लागीं
सुनियत पोच कंस कौ राजु ।
पठयो दूत कपट-मनसा करि
नातर घोष कहा है काजु ॥
दधि-रोचन कौ तिलकु दियो सिर
रूपे-सहित सुपारी पाँच ।
'परमानँद' स्वामी चिरजीवहु
तुमै जिनि लागहि ताती आँच ॥

[८६०] सारंग

बदन[1] मुकुंद देखि-देखि जीवति ।
सुन्दर रूप नैन भरि पीवति ॥

---

१. बदन कों देखि (ग.)

रे अक्रूर ! क्रूर बटमारे ।
प्रान काढि लै चले हमारे ॥
बिरहाकुल फूलीं ब्रजनारी ।
द्वार के चित्र मानों लिखी बिसारी ॥
छाँडि लाज रथ गह्यौ[1] धाई ।
चरन[2] गहौ सुंदर कन्हाई ॥
प्रान गए तन केतिक आस ।
कठिन प्रीति 'परमानँददास' ॥

[८६१] कल्यान

देखो माई ! कान्ह बटाउ से रहे जात ।
तब की प्रीति अब की रुखाई
फिरि पाछें बूझत नहीं बात ॥
रथ-आरूढ भए बल–केसव
ओइ[3] देखौ बिमल ध्वजा फहराति ।
दोऊ बीर चले अति आतुर कहाँ बसहिंगे आजु की राति ॥
मधुबन आजु महामंगल रखु सब कोऊ गावत हैं गीत ।
'परमानँद' प्रभु चले हैं दिखावनि
अपने चरन-सरोज पुनीत ॥

---

१. पकरयो (ग. ङ. छ.) पकरिहु (घ.)
२. चरन-कमल गह्यो सुंदर कन्हाई (ङ. छ.) चरन गहौ जैपें रहै कन्हाई
३. वे (ग. घ. ङ. छ)

[८६२] कल्यान

सगत्य[1]ऽब लेऊँगौ राजधानी ।
कंसै मारि लूटि रँग-भोमि[2] आगैं चलैगी कहानी ॥
करिहों[3] सत्य गिरा नारद की अहो! जु अकास भई बानी।
कहत बात अक्रूर के आगें 'परमानँद' सुख[4]दानी ॥

[८६३] कल्यान

आए-आए सुनियत बाग मेला न भयो ।
तब लगु मदनगोपालैं देखनि कों जासूस गयो ॥
कान लागि कें कही मते की हौं वसुदेव पठायो ।
नंद-गोप तुम भली न कीनी लै गोपाल हि आयो ॥
काली-दमन पूतना-सोषन इहि[5] भरोसौ आवै ।
मथुरा राज नंदनंदन कौ जन 'परमानँद' गावै ॥

[८६४] कल्यान

निंदक मारिए त्रासु कीजे ।
नाहिन दोषु सुनहु नँदनंदन आपुनि मधुपुरि लीजै ॥
इहै[6] धर्म निति-निति स्रुति गावै संतनि कों सुख दीजै ।
दानव-सेन-समुद्र बढ्यो है सो अगस्त्य ज्यों पीजै ॥
कहत ग्वाल सब हरि के आगें जदुकुल अपनों छीजै ।
'परमानँद' स्वामी सुख-सागर सो करि आनंद दीजै[7] ॥

---

१. सगति हौंऽब लेऊँगौ रजधानी (ग.) २ भूमि में (ग. ३. करहुँ (ख.)
४. प्रभु सब सुख (ग.)
५. मोहि (ङ. छ.) ६. यह तौ धरम नित्य स्रुति गावै (क) ७. जीजं

[८६५] कल्यान

मथुरा देखिये नँदनंदन ।
भले अवास रचे कंचन के केसी-कंस-निकंदन ॥
बैठे मोर झरोखें बोलत मारग सेंच्यो[1] चंदन ।
भले लोग सनमुख आवत हैं चरन-कमल-रज बंदन ॥
कहत श्रीदामा सुनहु स्यामघन ! मोरि[2] लेहु इहि पाटन ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर बहुत दैत्यनि[3] कौ डाटन ॥

[८६६] बिलावल

आए-आए होइ रहे नँद-ढोटा ।
देखत लोग मधुपुरी के सब तरुन बिरध अरु छोटा ॥
गौर-स्याम तन नील-पीत पट बनी दुहूँ की जोटा ।
सुफलक-सुत बालक कत लायो कंस असुर बड बोटा ॥
गहे केस कर धाए माइ पर सीस धरनि धर लोटा ।
'परमानँद' बलि-बलि ऽब भुजनि की
हत्यो भोज-कुल छोटा-मोटा ॥

[८६७] सारंग

आवै बाबा नंद कौ हाथी ।
बाहु बिसाल कमलदल-लोचन बल बिचित्र[4] कौ साथी ॥

---

१. सींचत (ग.) २. मारि (ग. घ. ङ. छ.) ३. दैतन (ख)
४. संकरषन (ग. घ. ङ. छ.)

अपनी इच्छा रहत बन-भीतर ग्वालनि के सँग खेल्यो ।
केसी तृनावर्त्त जेहि मारे सकट पाँइ गहि पेल्यो ॥
बासुदेव देवकीनंदन कंस-बंस कौ कालु ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर नाइक नंद कौ लालु ॥

[८६८] सारंग

देखौ माई ! गोबिंद अपने रस कौ ।
बल-विद्या कैसें हु न पईये केवल एक भगति के बस कौ ॥
ग्वालनि के सँग गाइँ चराबत
अनुदिन पर्यो दूध कौ चसकौ ।
छीर-समुद्र में बसत निरंतर संत बिचार करत वा जस कौ॥
'परमानँद' प्रभु त्रिभुवन-ठाकुर कैसें होत कंस के गस कौ।
मारे मल्ल असुर सब जीते जद्यपि कान्ह बरस है दस कौ॥

[८६६] सारंग

आवै निरंकुस मातौ हाथी ।
देखि नयन-भरि कुँवर साँवरो संकरषनु कौ साथी ॥
कहति नागरी सब मथुरा की कंस पगाइ ढहायो ।
सब काहू कौ भलौ करैगो जो गोकुल[1] तें आयो ॥
तोर्यो धनुष कुवलया मार्यो चारौं मल्ल पछारे ।
'परमानंददास' बलिहारी मंगल किए हमारे ॥

---

१. मथुरा में (घ)

[८७०] सारंग

आयो मथुरा मल्ल हठीलौ ।
देखहु माई ! मोहन मूरति कंस-हृदै कौ कीलौ ॥
कुंजरदंत कंध धरि लीनें रुधिर-बिंदु लपटानें ।
सोभा भई स्यामसुंदर तनु मोरचंद सिरबानें ॥
गावहु नाचहु करहु कुलाहल घर-घर मंगलचारु ।
'परमानंददास' की जीवनि नाइक नंदकुमारु ॥

[८७१] सारंग

देखि गोपाल कौ तमासौ ।
अबकें तौ नीकी बिधि ऊग्यो जैसें बरजे बासौ ॥
मारे दुष्ट संत सब राखे सुबसु कियो देवनिवासौ ।
'परमानंददास' बलिहारी ब्यास कियो है रासौ ॥

[८७२] सारंग

काहे कौं मारग में अघ छेटत ।
नंदराइ कौ मातौ हाथी आवत असुर लपेटत ॥
कहत ग्वाल सब सखा नंद के गल गरजत भुज ठोकत ।
कंस-बंस कौं परिचित करि[1] है कौन भरोसे रोकत ॥
नाहिन सुन्यो पूतना मारी तृनावर्त्त बक केसी ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर इहि गोपाल[2] औरेसी ॥

---

१. हरि (ध.)

२. गोकुल (ध.)

[८७३] सारंग

सुदामा कें माधौ आए ।
चरन पखारि बैठारि सिंघासन
विविधि भाँति माला पहिराए ॥
तोर्यो धनुष असुर सब मारे
बालक आनँद मोद बढाए ।
माँगि लियो कुबिजा कौ चंदन
वा के कूबर[1] उहाँहि लगाए ॥
फिरि आए देरा[2] फुनि बाबा
नंद तहाँई पाए ।
पाउँ धारिकें भोजन कीनों
'परमानंददास' गुन गाए ॥

[८७४] सारंग

लागौ प्रीति कौ मोहिला हो ।
देखनि रूप नगर सब लाग्यो मदनगोपाल उमाहो ॥
जब तें सुने नंदनंदन कों लै आए अक्रूर ।
मथुरा ढोल दमामें बाजै कंस करैगौ चूर ॥
नर-नारी सब कौतक आए गाढैं देई असीस ।
'परमानँद' प्रभु राजु तिहारौ इहाँई रहौ जगदीस ॥

---

१ वाहि (ग. घ. ङ. छ) २. डेरा (ग. छ) जहाँ अपने डेरा (घ.)

[८७५] सारंग

महावत ! करिहो हाथी हाँतो ।
जम-सदन पठवोंगो पापी दै छाती पर लातो ॥
दंत उपारि मारि या गज कों अबहिं करों भौं पातो ।
तबहिं पाँउ धारिहों आगें इहि मारि कुवलया मातो ॥
रंगभूमि में मल्ल पछारों ग्रीव कंस की तोरों ।
बंदि-वास बसुदेव-देवकी तिनहु के बंधन छोरों ॥
उग्रसेन के छत्र करों सिर मथुरा जादौ-राज ।
'परमानंद' प्रभु कहत सदाई मोहि भक्तनि सों काज ॥

[८७६] सारंग

काहे तैं मदनगोपाल बिरोध्यो ।
कीनों वैर स्यामसुंदर सों भोज-बंस सब सोध्यो ॥
तें ऽब कत मनुज करि जान्यों परब्रह्म अवतारी ।
बीरसेन महँ कहति रुदन करि कंस नृपति की नारी ॥
ऐसो जानि बहुरि जिनि कोऊ नंदलाल सों खोरो ।
'परमानंद' कंस अभिमानी कितोक भीत पर दौरो ॥

[८७७] सारंग

मथुरानाथ सों बिगारी ।
रंग-भोमि मँह परयो भयानक क्यों पति रहेगी तुम्हारी ॥

तब काहे चेत्यौ नहिं पापी जब हि पूतना मारी।
मूरख अधम कर्म-बस[1] तेरे बालक-सृष्टि पछारी॥
विकल भई दोऊ कर मींडैं कहै कंस की नारी।
'परमानंददास' कौ ठाकुर गिरि गोवर्द्धन-धारी॥

[८७८] गौरी

जीत्यो बे[2] जीत्यो नँदनंदन व्योम दमामे बाजैं।
बरषत कुसुम देवगन गावत रितु मेघ[3] ज्यों गाजैं॥
नाचत ग्वाल बजावत मुरली रंग-भोमि मँह राजैं।
मल्ल पछारि कंस-सिर तोर्‌यो नौतन भूषन साजैं॥
तब हूँ हम आनँद में रहते मदनगोपाल निवाजैं।
'परमानँद' प्रभु गोधन चारत डोलत कानन आजैं॥

[८७९] सोरठी

अपने जन कहँ राज दियो।
उग्रसेन बैठारि सिंघासन आपु जुहार कियो॥
रंग-भूमि महँ मल्ल पछारे कंस बाहु-बल मार्‌यो।
हत्यो रजक लीनें नाना पट पूरब-बैरु संभार्‌यो॥
का पै होहि कौन करै ऐसी किहि इहि मोसरु आवै।
ठाकुर करै दास की सेवा सुख दै काज करावै॥

---

१. कुकर्म सब (घ. च.) २. जीत्यो है (ङ. छ.) जीत्यो हो (ग.)
३. बरषा (ग. घ. ङ छ.)

यामें कहा घटै श्रीपति कौ जानि गरीब निवाजै ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर जसु तिहुँ लोक बिराजै ॥

[८८०] सारंग

नीकौ मथुरा नगरु ।
मूरतिवंत सदा संतनि हित स्याम सगरु ॥
जनम मरन[1] मुंजी-ब्रत दाहक मुक्ति अगरु ।
कोउ कैसें रहौ करौ नाहिन कगरु ॥
उत्तम मध्यम अधम भेद नहिं एक हि डगरु ।
'परमानँद' स्वामी महातमु अधिक लगरु ॥

२३ गोपी-बिरह

[८८१] सारंग

चलत हूँ न कान्ह कह्यौ रहनौं ।
लै अक्रूर चले गोविंद कों मधुपुरि हीं कौ लहनौं ॥
बिनु ब्रजनाथ अनाथ भईं हम लागीं दुख सहनौं ।
गोकुल-ससि कान्ह बिना चाँप्यो मनु गहनौं ॥
माई बिरहानल दुखित[2] भयो लाग्यो देह दहनौं ।
'परमानँद' संग समुझि लोचन जल बहनौं ॥

[८८२] सारंग

चलत[3] हूँ न देखनि पाये लाल ।
नीकें करि न बिलोक्यो हरि-मुख इतनौं रह्यो जिय साल ॥

१. करम (ङ. छ.) २. प्रचुर (क.) ३. चलत न देखन (क.)

लोचन मूँदि रहे जल-पूरित दुष्ट भये तिहिं काल।
दूरि भएँ रथ ऊपर देखे मोहन मदनगोपाल ॥
मींडति हाथ बिसूरति सुंदरि आतुर बिरह-बिहाल।
'परमानँद' स्वामी फिरि चितयो अंबुज-नैन बिसाल ॥

[८८३] सारंग

जिय की साध जिय हीं रही री।
बहुरि गोपाल देखनि न पाए बिलपति कुंज अहीरी ॥
इक दिन सो जु सखी इनि मारगु बेचनि जात दही री।
प्रीति के लियें दान मिस मोहनु मेरी बाँह गही री ॥
बिनु देखें घरी जात कलप भरि बिरहा-अनल दही री।
'परमानँद' स्वामी बिनु दरसन नैननि नदी बही री ॥

[८८४] सारंग

कौन बेर भई चले री गोपालहिं।
हौं मौसार[1] गई ही न्यौंते बार-बार बूझति ब्रज-बालहिं ॥
तेरे तन कौ रूपु कहाँ गयो भामिनि!
अरु मुख-कमल सुकाइ[2] रह्यो।
सब सौभाग गए हरि के सँग
हृदौ सुकोमल बिरह दह्यो ॥
को बोलै को नैन उघारै
को ऊतर देई बिकल मन।

---

१. प्यौसार (छ. ग.) ननसार (ग.) २. सुखाइ (ङ. छ.

जो सरबसु अक्रूर चुरायो
'परमानँद' स्वामी जीवन-धन ॥

[८८५] कल्यान

बिधिना बिधि करी बिपरीत ।
स्याम-मनोहर बिछुरनि लागे बालदसा के मीत ॥
लै अक्रूर चले कहु मधुबन सब ब्रज भयो भय-भीत ।
स भए तबहि हम जाने गरग जु गाए गीत ॥
चूक परी सेवन नहिं पाए चरन-सरोज पुनीत ।
'परमानँद' अब कबहि मिलहिंगे सुबलु-श्रीदामा-मीत ॥

[८८६] सारंग

सरबसु लै गए ब्रज खाली ।
तुम्हारे बिरह साँवरे माधौ ! काम-धेनु भई टाली ॥
वृंदाबन हरी[1] तृनु दै-दै काहे कों प्रतिपाली ।
अब ऐसी कीनी तुम नागर ! सोक-सिंधु मँह[2] घाली ॥
स्याम-मनोहर बिछुरनि लागे बिरह भली करि[3] जाली ।
'परमानँद' प्रभु सींचि जियावहु ज्यों ग्रीषम-रितु माली ॥

[८८७] केदारौ

जिनि गोपालहि जानि देहि ।
अब ब्रज नंद बगदि आए हूँ इहि मन पछतावौ लेहि॥

---

१. हरिय २, में (ग. ङ. छ.) ३. परि (ग. ङ. छ.)

मोहन कान्ह मोहिनी मथुरा मोहन लोगु मोहिनी नारि।
मोहन गति मोहिनी हरि-लीला
मोहन गति त्रैलोक-मझारि ॥
बसुदेव पिता देवकी माता इहि सब प्रगट भई नर लोक।
'परमानंद' स्वामी कत आवहिं[1]
सुँदर-स्याम विनासन-सोक ॥

[८८८]   सारंग

तहाँई अटक जहाँ प्रीति नई।
वह रस गयो जु बालदसा कौ अब गोपाल-मति और भई ॥
कवन दोस दीजै ब्रजनाथहि[2] परंपरा ऐसी चलि आई।
कंटक कंस हुतौ सो मारयो राजधानी मथुरा की पाई ॥
अब जो कृपा करहि[3] तो आवहि[4] कृपनपालु प्रभु जदुराई।
'परमानँद' स्वामी सरबेसुर राम-कृष्ण दोउ भाई ॥

[८८९]   सारंग

अहो ! तुम गोबिंद सौं कहियो जाई।
बहुत दिवस प्यारे मनमोहन मैं नाहिन सुधि पाई ॥
नंदग्राम तें अपनि दासिका मथुरा गुपत पठाई।
सुहथ पत्रिका लिखि मृगनैनी अपनी प्रीति जनाई ॥

---

१. आवै (छ.)   २. ब्रजनाथै (घ.)
३. करै (ङ. छ.)   ४. आवै (ङ. च)

चरनकमल गहि विनती कीनी बैठे जहाँ कन्हाई ।
ताको कौन हाल नँदनंदन अपने संग खिलाई ॥
ओइ तौ तनु-मनु तुमहि समर्प्यो चरनकमल लपटाई[1] ।
'परमानंद' प्रान आतुर हरि ! बारक देहु दिखाई ॥

[८६०] सारंग

जानी कान्ह पुरातन जोरी ।
करचक[2] हुती पहले हि नाँते सोई प्रीति चटक[3] दै तोरी॥
तृन[4] तरवर सींचेई पलु है जो बरषत है मेघ बहोरी ।
जोबन गयो बहुरि नहिं आवै जो सुर द्रव तेतीस करोरी॥
तुम दिन तरुन किसोर मूरति
हास-बिलास लेत चितु चोरी ।
'परमानंद' मिलन कब ह्वैहै करति बिषाद राधिकागोरी॥

[८६१] सारंग

कान्ह बिनोदी रे ! मधुबनियाँ ।
अब काहे कों गोकुल आवहि[5] भावति नव-जोबनियाँ ॥
बाल-दसा तें मैं जु खिलाये लएँ[6] रहति ही कनियाँ ।
सुनि री सखी ! कहाँ लगु बरनों उन्हकी प्रीति अपनियाँ॥

---

१. लौ लाई (ग.) २. रंचक हुती (ग. घ. ङ. छ.)
३. तृटक (ङ. छ.) ४. तरवर तृन (क.)। तरवर बिन सींचे नहीं पलु है जो बरषे रितु० (ङ. छ.)
५. आवै (ग. ङ. छ.) ६. लिये (ग. ड. छ)

पाँच बरष तें पहिरनि सिखये लाल पटंबर तनियाँ।
अपनें हाथ पोवति पहिरावति कंठ कनक के मनियाँ ॥
तब वह चोंप स्यामसुंदर की भये गोरस के दनियाँ।
'परमानंद' सुमिरि वह बातें नयन बहत घन पनियाँ॥

[८६२] सारंग

मेरी सुरत्यौ गई ।
मथुरा बसत नँदनंदन प्रीति भई नई ॥
इतनि दूरि इहै मथुरा निकट कियो विदेस ।
कागद मसि खूटि गई पठयो न संदेस ॥
हरिनी ज्यों जोवति मगु ऊरध लेति उसास ।
इहै दसा देखि जाहु 'परमानँददास' ॥

[८६३] सारंग

सुधि करति कमलदल-नैन की ।
भरि-भरि लेति नीर अति आतुर रति वृंदावन चैन की॥
गाढे आलिंगन दै-दै मिलति ही कुंजलता-द्रुम-ऐन-की ।
वे बतियाँ कैसैं कें बिसरति बाँह उसीसे सैन की ॥
वसि निकुंज में रास खिलाये बिथा गँवाई मैन की ।
'परमानँद' प्रभु सो क्यों जीवहि जो पोषी मृदु बैन की॥

[८६४ सारंग

वे बात कमलदल-नैन की ।
बार-बार सुधि आवति सजनी वह दुरि दैनी सैन की ॥

वह लीला वह रास सरद कौ गोरज-रंजित आवनि[1]।
अरु वह ऊँची टेर मनोहर मिस करि मोहि सुनावनि॥
वे बातें सालति उर-अंतर को पर पीर हि पावै।
'परमानंद' कह्यौ न परै कछु हियौ सु रूँध्यो आवै॥

८६५] सारंग

बिधाता! करहु हमारौ भावतौ।
नंद गोप कौ लाल मिलावहु[2] जो रस-रास खिलावतौ॥
वे दिन कहाँ रसिक वृंदावन अधर पीयूष पिवावतौ।
ऐसी प्रीति परस्पर करतौ कर गहि कंठ लगावतौ॥
कमलनयन केतौ सुख देतौ जब मुरली रस गावतौ।
स्याम-कलेवर गोरज-मंडित बासरगत ब्रज आवतौ॥
तब वह कृपा स्यामसुंदर की नैननि नैन मिलावतौ।
'परमानंद' स्वामी सुख-सागर बिरह-ताप बिसरावतौ॥

[८६६] सारंग

लाल! तुम कौन बिनोद कियो[3]।
वृंदावन बसि कुँवर लाडिले! सब संतोषु दियो॥
जो सरूप मन-बचन-अगोचर सो तुम प्रगट दिखायो।
नंदकिसोर बाललीला धरि सब कौ भलौ मनायो॥

---

१. वन तें आवनि (क. ख.) २. रसीलौ (छ.)
३. किये (ग. घ. ङ. छ.) ४. दिये (ग. घ. ङ. छ.)

गिरि-तर[1] वर-सरिता-पसु-पंछी बपु हि दिखाइ निस्तारे।
'परमानंददास' कौ ठाकुर दीनानाथ मुरारे॥

[८६७] सारंग

हरि बिनु अब ऐसे दिनु आए।
रूप सुभाव तेज या तन कौ लै गोपाल सिधाए॥
एक दिवस[2] सूती[3] आँगन महिं[4] कंकन कान्ह चुराये।
तब[5] हँसिकें हौं माँगन लागी कुसुमलता अरुझाए॥
सुमिरत बाल-दसा की बातें नैन नीर भरि आए।
'परमानंददास' क्यों जीजैं प्रीतमु भये पराए॥

[८६८] सारंग

जो पैं कोऊ माधौ सों कहै।
तौ कत कमलनयन मथुरा मँहि एकौ घरी रहै॥
प्रथम हमारी दसा सुनावै गोपी बिरह दहै
हा! ब्रजनाथ! रटति[6] बिरहातुर नैनिन नीर बहै॥
बिनती करि बलबीर-धीर सों चरन-सरोज गहै।
'परमानँद' प्रभु इत सिधारिबौ ग्वालिनि दरसु लहै॥

[८६९] सारंग

मोपैं हरि बिनु रह्यो न जाइ।
कमलनयन घनस्याम मनोहर चले[7] उमाहो लाइ॥

---

१. गह्वर (ग. घ. ङ. छ)   २. द्यौस (ख.)
३. सोई (ग.)   ४. में (ग. घ. ङ. छ.)   ५. जब (ङ. छ.)
६. विलपति (ङ. छ.)   ७. चलि लै मोहि मिलाइ (क.)

प्राननाथ मधुपुरी सिधारे सब गोकुल कर लाइ ।
वा मूरति कौ ध्यान धरत[1] मेरौ मन रात्यो[2] बौराइ ॥
प्रगट मिलें तौ काहे न जीजैं अवधि-बचन की आस ।
कबहुक बिरह प्रान लै जैहै कहै[3] 'परमानँददास' ॥

[६००] सारंग

प्रीति माई ! बिनु भएँ बरु रहती ।
मधुबन चलत गोपाललाल कें कत एतौ दुख सहती ॥
कत इहि कामु कटकई करतौ कत बसंत-रितु दहती ।
बिनु बरषा-रितु नैन जलद तें उर-सरिता कत बहती ॥
जो जानती बहुरि नहिं आवनु चलत[4] धाइ पटु गहती ।
'परमानँद' स्वामी के बिछुरे अनत न सुख[5] सचु लहती ॥

[६०१] सारंग

गोबिंद बीचु दै सरमारी ।
उर-तिन-कुटी बिरह-दावानल फूँकि-फूँकि सँधि जारी ॥
सोच पोच तन[6] छीन भयो अति कैसी देह बिगारी ।
जो पहिलें हरि[7] के हित कारन बिधिना सुहथ सँवारी ॥

---

१. धरत ही (ग. ड. छ.) २. रह्यो भुराइ (ग. ड छ.)
३ सुनि (ड. छ.) ४. तो धाइ पीतपट (क.)
५. कछु सुख (ड. छ.) ६. सूकत अंतर तन (ग. ड. छ.)
७. विधि हरि के कारन अपने हाथ संवारी)ग. ड. छ.)

बरु गोपनु घर जनमु न लेती रहति गरभ में डारी ।
'परमानँद' इतनी[1] कत होती नाँउ धर्यो ब्रज-नारी ॥

[६०२] सारंग

मेरौ मन उहाँई[2] चाह करै ।
वह मुसकानि बंक अवलोकनि हृदै तैं न टरै ॥
जब गोपाल गोधन-सँग आवत मुरली अधर धरै ।
मुख की धूरि दूरि अंचर करि जसोमति अंक भरै ॥
संध्या-समै घोष में डोलत वह सुधि क्यों बिसरै ।
'परमानंद' प्रीति अंतरगत सुमिरत नैन भरै ॥

[६०३] सारंग

जोबन काहे कों ऽब गयो ।
अब इहि देह देखि दुख लागत हरि सों बीचु भयो ॥
सकुचत गात बात नहिं आवत[3] केस पलित भई बानी ।
लोचन तिमिर पंथ नहिं सूझत काम-प्यास मंदानी ॥
तीन अवस्था करी बिधाता ता मँह इहि गति पोच ।
'परमानंद' बिरहिनी गोपी बार-बार जिय सोच ॥

[६०४] सारंग

क्यों ब्रज देखनि हैं हरि आवत ?
नव बिनोद नई राजधानी नौतन नारि मनावत ॥

---

१. एती (ग. ड. छ.) २. ह्याँई (ग.) ३. आवै (ग. ड. छ.)

सुनियत कथा पुरातन इनि की बहुत लोक है गावत ।
मधुकर न्याँइ सकल गुन चंचल रस लै रति बिसरावत ॥
को पतिआइ स्याम तन[1] कै तब जे पर-मनहि चुरावत ।
'परमानंद' प्रीति पद-अंबुज हरि-अंतरगत भावत ॥

[६०५] सारंग

ता-बिनु बीतत कठिन दिना ।
हमारें प्रीतम कोउ नाँहिन एक गोपाल बिना ॥
माता-पिता सजन-बंधव सब करत रहे उपहास ।
सब की छाती पाउँ दै गई स्याममनोहर-पास ॥
इहि ब्रत नेमु निबाहें बनिहै जब लगि है उर-स्वांस ।
तन-मन-प्रान समर्पनु कीनों चित चातक ज्यों प्यास ॥
बाल-बिनोद सँभारति पुनि-पुनि लोचनि मुंचति वारि ।
'परमानँद' प्रभु मधुवन गवने जाम जात जुग चारि ॥

[६०६] सारंग

अब कें[2] बन-बन फिरति बही ।
तब काहे न गोपाललाल-रस छिनु इक संग रही ॥
पूरब-संचित सुकृत-रासि-फल श्रीपति बाँह गही ।
तू ग्वालिनी जोबन की[3] माती गरब की बात कही ॥

---

१. तनकों ते (क.) स्यामघन तन कों (घ.) २. क्यां (ग.)
३. मदमाती (ङ. च. छ.)

कहा पछितायें होहि अबहि कें बिरहा–अनल दही ।
'परमानँद' अब का सों खेलें हरि–बिनु सोच सही ॥

[६०७]   सारंग

पथिक ! इहिं पंथ न कोऊ आवै ।
गोकुल देत दाहिनों-बायों हम हि देखि दुख पावै ॥
का सों कुसल संदेसौ पाऊँ का प्रीतम मन भावै ।
मथुरा निकट भई[1] सत जोजन को हरि बात सुनावै ॥
ब्रज-बनिता बिरहानल-जारीं[2] को तन-तपति बुझावै ।
बिधि प्रतिकूल 'दास परमानँद' को हरि[3] आनि मिलावै ॥

[६०८]   सारंग

सखी री ! अब चित कौन बिचार ?
वह सुख वह रस वह मन-आनँद लै गए नंदकुमार ॥
रह्यौ मैल भार टूटि गई सरि वह मुक्ता-मनि-हार ।
का कों पहिरि ओढि दिखराऊँ नवसत साजि सिंगार ॥
सब बिसरयो गोपालहिं बिछुरें भोजन सयन बिहार ।
'परमानँद' स्वामी के[4] बिछुरें ब्रज चाँप्यो दुख-भार ॥

---

१. करी (ग. घ. ङ. छ.)
२. व्यापित (ग. ङ. छ.)
३. तन सींचि जिवावै (ग)
४. बिन इहि गति (ग.)

[६०६] सारंग

सखी री ! ता दिन काजर दैहौं ।
जा दिन नंद-नँदन के नैननि अपने नैन मिलैहौं ॥
करिहौं न तिलकु तँबोर तिरोनाँ बसन पलटि पहिरैहौं ।
करौं हटतार[1] सिंगार सकल कौ कंठनि पोत बँधैहौं ॥
अब तौ जिय ऐसी बनि आई भूलि न अनत चितैहौं ।
'परमानँद' प्रभु इहै परेखौ या[2] करिकै मरि जैहौं ॥

[६१०] सारंग

ब्रज में बातें पैं रही ।
सुमिरत ही सालति उर-अंतर मदनगोपाल कही ॥
सुनि री सखी ! बिथा या तन[3] की ज्यों बन-बेलि दही ।
'परमानँद' स्वामी के बिछुरें बन[4]-बन फिरति बही ॥

[६११] सारंग

कान्ह-सँदेसे तें ऊ टूटी ।
आखर चारि लिखि न पठावत मसि-कागद उत खूटी ॥
तब जु कह्यो हम सों हरि आवनि सोउ मरजादा फूटी ।
का सों करौं पुकार अकेली मदन-चोर इत लूटी ॥
बाल-दसा हिलि-मिलि कें खेले सोउ प्रीति अब छूटी ।
'परमानँद' एती कत होती दें चलते बिस-घूँटी ॥

---

१. हठतार (ड.) २. आकरषें (ग. घ. ङ. छ.) ३. मन (ग. छ.)
४. धर-बन (क. ग. ङ. छ.) ५. संदेसन ('घ')

[६१२] सारंग

किते दिन भए रैंनि सुख सोएँ ।
कछु न सुहाइ गोपालहि बिछुरें रहे पूँजी सी खोएँ ॥
जब तें गए नँदलाल मधुपुरी चीर न काहू धोए ।
मुख तंबोर नयन नहिं कज्जर बिरह सरीर बिगोए ॥
ढूँढत घाट बाट बन परबत जहाँ-जहाँ हरि खेल्यो ।
'परमानँद' प्रभु अपनौ पीतांबर मेरे सीस पर मेल्यो ॥

[६१३] सारंग

दिन-दिन तोरन लागे नातौ ।
मथुरा बसत गोपाल पियारे प्रेम कियो हठि हातौ ॥
इतनी दूरि जु आवत नाहिंन मन औरहि ठाँ रातौ ।
मदनगोपाल हमारे ब्रज की चालत नाहिंन बातौ ॥
बिरह-बिथा अब जारन लागी चंद भयो अति तातौ ।
'परमानँद' स्वामी के बिछुरे भूलि गई अब सातौ ॥ ❀

[६१४] सारंग

माधौ काहे कों दिखाई अपनी काम की कला ।
तुम सों जोरि सबनि सों तोरी नंद के लला !
जो गोपाल मधुबन ही बसते गोकुल-बास न करते ।
जो हरि गोप-भेष नहिं धरते कत मेरौ मन हरते ॥
तुम्हारौ रूप तजि और न भावै चरन-कमल मन बाँधौ ।
'परमानँद' प्रभु द्रोन-बान ज्यों बहुरि न हूँजो साँधौ ॥

❀ पाठभेद और परिवर्तन से सूरसागर में प० सं० ४५५२ पर भी

[६१५] सारंग

माई री ! अब तो डरु लागत बृंदाबन जात ।
गोबिंद-बिनु भीत भए तरवर के पात ॥
उई निसि उई ससि उई सखी साथ ।
उई गुल्म-वल्ली पै परत नहीं हाथ ॥
उई समीर जमुना तीर दहत है सरीर ।
'परमानँद' प्रभु सीतल निधि नाहिंन बलबीर ॥

[६१६] सारंग

कान्ह मनोहर मीठे बोलैं ।
मोहन-मूरति कब देखोंगी सरसिज चंचल डोलैं ॥
स्याम सुभग तन चंदन-चरचित पहिरें नील[1] निचोलैं ।
हीरा लाल कंठमनि माला नंद लए बहु मोलैं ॥
बेनु बजावत गावत आवत उर-कपाट प्रभु खोलैं ।
'परमानँद' स्वामी सुख-सागर बाल-दसा-गुन लोलैं ॥

[६१७] सारंग

माधौ मुख देखे के मीत ।
पाछैं कौन[2]-कौन को चलवत मँडहा-तर के गीत ॥
सो प्रीतम जो और निबाहै सदा करैं निहचीत ।
मथुरा बसत देवकीनंदन सुनी कथा बिपरीत ॥

---

१. पीत (गः घः ङः छः) २ः को का की चलवत (गः डः छः)

सब ही प्रान समरपनु कीनों अधर-सुधा-रस पीत ।
'परमानँद' प्रभु पाँइ लागिये कंस मारि रनु जीत ॥

[६१८] सारंग

कबहुक[1] साँवरौ माई ! गोकुल आवै ।
मदनगोपाल त्रिभंगी सुंदर कब वह बदनु दिखावै ॥
मोर-चंद कौ मुकटु बनायो कटि पीतांबर सोहै ।
बाल गजेंद्र–चाल मन मोहै या उपमा कों को है ॥
जाकौ जसु त्रैलोक्य सुमंगल बेद-उपनिषद भाख्यो ।
सो प्रभु कृपावंत 'परमानँद' लीला गोकुल राख्यो ॥

[६१९] सारंग

कब लगि मन करों हौं धीरौ ।
मदन–मूरति मेरे नैननि लागी स्याम बरन पट पीरौ ॥
आजु सखी सपने में भेटे मिलत भयो तन सीरौ ।
अब कहा जरनि कहों जागे तें तपति हरन नहिं नीरौ ॥
सुनि री सखी ! कहौं अब का[2]सों
सुख कौ आँकु विधि कीरौ ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर निकसि गयो हरि हीरौ ॥

[६२०] सारंग

इहि बिरियाँ बन तें आवते ।
दूरिहि तें वर बेनु अधर धरि बारंबार बजावते ॥

---

१. कबहूँ (ङ. छ.) २. को हौं (ग.)

कबहुक केहू भाँति चतुर चित अति ऊँचे स्वर गावते।
कबहुक लै[1]-लै नामु मनमोहन[2] धौरी धेनु बुलावते ॥
इहि मिस नाँउ सुनाइ स्यामघन मूरछ-मदन जगावते।
आगम-सुख उपचार बिरह-जुरि बासर-अंत नसावते ॥
रुचि-रुचि प्रेम प्यासी[3] नयनन्हि दै क्रम-क्रम बलहि बढावते।
'परमानँद' प्रभु गुन-निधि दरसन पुनि पथ प्रगट करावते ❀

[६२१] सारंग

सुनि सखि ! जोबन-सिंधु लट्यो ।
तेज स्वभाव रूप या तन कौ बिनु ब्रज-नाथ घट्यो ॥
ता दिन तें बिधि और करी कछु उलटे हि ठाटु ठट्यो।
है उहि बात सबै इहिं गोकुल पुन्य कौ अंकु कट्यो ॥
बज्रहु तें कठिन जानति हौं बिरहा हियौ न फट्यो ।
'परमानँद' स्वामी के बिछुरें चात्रुक भयौ रट्यो ॥

[६२२] सारंग

कमल-नयन बिनु औरु न भावै
अनु[4] दिनु रसना कान्ह-कान्ह रट।
रोदन कै-कै नैन गँवाए
बिलखत बदन ठाढी जोवति बट ॥
तुम्हारे परस-बिनु वृथा जातु है
मेरे उरज धरे कंचन-घट ।

---

१. धौरी धेनु मनोहर लै-लै नाउँ (ग. ङ. छ.) २. मनोहर (घ) ३. प्रिया सैननि दै (घ. ङ. छ.) ❀ पाठान्तर से सूरसागर प० सँ० ३८१६ पर भी
४. अहनिस (ग.)

ए[1] गोपाल प्रभु तबहिं मिलहुगे
जबहिं होइगी सीस सुकल लट ॥
दुर्बल भई देह छाँडे सुख
और बात बिसरि मलिन भए पट ।
'परमानँद' प्रभु अबहिं बिसरि गयो
हमरो तुम्हरो खेलु रयनि जमुना-तट ॥

[६२३] सारंग

हरि ! भए और के मिलनियाँ ।
बाल[2]-दसा तें मैं काहे कों लै जु खिलाए कनियाँ ॥
जानै को बिधाता की गति कुबिजा नव-जोबनियाँ ।
'परमानँद' प्रभु प्रकट दिखाई चपल प्रीति आपनियाँ ॥

[६२४] सारंग

हरि तेरी भावती जु पहेली ।
बार-बार चित चाह करत है उह[3] हि लाड़ गहेली ॥
बसन कुचील चिकुर अति रूखे सजल नैन मुख-मलिनी ।
या तन की गति ऐसी देखी हेम-हई जैसी नलिनी ॥
बाल-दसा जासों मिलि खेले मीठे बचन दुलारी ।
'परमानँद' प्रभु प्रिया राधिका बिछुरि काम-सर मारी ॥

[६२५] धनाश्री

ते दिन चलि गए मेरी माई !
इहि कानन हिलि-मिलि खेलत हे कमल-नयन लरिकाई ।

---
१. नंद-गोप-सुत (घ.) २. बालक (ख.) ३. उहाँई (ग. घ. ङ छ.)

उहि रस प्रीति बाल-लीला कौ तब दै सैन बुलाई ।
मातु-पिता काहू नहिं जानी तैसें हरि पँहि आई ॥
नव-जोबन धन नंद-सुवन पिय कर गहि कंठ लगाई ।
ऐसी मिलनि स्यामसुंदर की रयनी कुंज बसाई ॥
लेखे कौन हमारे लागै जो रजधानी पाई ।
'परमानँद' स्वामी की बातें समुझि बधू पछिताई ॥

[६२६] सारंग

तब उहि कृपा प्रीति अधिकाई ।
एकौ घरी न मो-बिनु रहते बालक-दसा कन्हाई ॥
एक दिवस[1] सूती आँगन मँह डेली मेलि जगाई ।
उठि राधिका कमल-मुख देखौं नैननि परै जुडाई ॥
नेंकु रिसाइ रही जो पिय सों करि मनुहारि मनाई ।
उइ[2] गुन सुमिरि[3] दास 'परमानँद' हृदै न दाह बुझाई ॥

[६२७] सारंग

दिन चारि आइबौ पहिले हू[4] नातें ।
स्यामसुँदर[5] गोबिंद ! खेल-बिनु
जाति है वृथा सरद की रातें ॥

१. द्यौस (ङ. छ.) २. वे (क. घ.) वेइ (ङ. छ.)
३. समुझि (क. ग. घ. ङ. छ.) ४. पहिलेउ (क. ग. घ. ङ. छ)
५. गोविंदचंद-संग खेले बिनु (ग. घ.)

बरसु दिन बीतगौ[1] अवधि ऐसी भई
बेद-बानी क्यों टरै टारी।
बहुरि परतीति को करै जादौराइ !
मरति गोपीबृंद बिरह की मारी ॥
कहौ ऊधौ ! चरन-अंबुज टेकि
नंद-नंदन बहुरि बेद-रस दीजै।
मिलहु अब की बार जियत ब्रजपाल !
प्रेम 'परमानंद' प्रगट कीजै ॥

[६२८]   धनाश्री

लेहु माई ! चरननि कौ चंदनु।
ब्रह्मा महादेव इन्द्रादिक इहि सबहू कौ बंदनु ॥
स्याम सरीर कमल-दल-लोचन भावत है नँदनंदनु।
जो मथुरा-मानिनी-मनोहर लीला कंस-निकंदनु ॥
बाल-बिनोद राधिका-बल्लभ रूपु देखि असपंदनु।
'परमानंददास' कौ ठाकुर जोगी जन-मन-रंजनु ॥

[६२६]   सारंग

कमल-नयन कौ मथुरा राजु।
चलहु सखी ! मिलि देखनि जईये
अब धौं कहाँ कियो है साजु ॥

---

१. गयो (ग, घ,)

सुनियत हैं वे भेषु उतारे मोर मुकुट गुंजा-मनि-हार।
'परमानंद' नए-नए भूषन पहिरनि लागे राजकुमार ॥

[६३०] सारंग

⊛जदपि हौं बावरी गँवारि ।
कान्ह प्यारे कों यों भावति ही ज्यों प्यासे कों वारि ॥
घरी-घरी कौ रूसनौ अरु घरि[1]-घरि की मनुहारि ।
घरी-घरी हँसि बोलावनो[2] सुख पावते मुरारि ॥
जब मोहि नेंक अनमनी देखत बाँधत बार सँवारि ।
ओइ[3] गुन सुमिरि 'दासपरमानँद' हरौ बिरह-दौ जारि॥

[६३१] सारंग

⊛सँभारौ माधौ[4] पहिले बोल ।
जे तब कहे सबै पलटाने सँग बन करत कलोल ॥
अपनें हाथ करि मोहि पहिरावत मेरेई नील निचोल ।
कसन कंचुकी बाँधते कबहूँ हस्तकमल अति लोल ॥
बिसरि गये रजधानी पाई क्यों जिय कियो निटोल ।
'परमानँद' प्रभु दासि और भई लोगु[5] लिए बहु मोल॥

⊛ जद्यपि० (ग. घ. ङ. छ.) से भी प्रारंभ ।

१. घरी-घरी मनुहारि (ङ. छ.)। २. बुलावते (ङ. छ.)

३. 'परमानंद' प्रभु वह गुन सुमिरत (ग. घ. ङ. छ.)

⊛ सँभारहु० से भी प्रारंभ ४. गिरिधर (क. ग. ङ. च.)

५. लोक (क.)

[६३२] सारंग

माधौ ! इतनी दूरि टरि गए काल ।
मिलत कहा घटि जात मनोहर !
जसुमति केरे लाडिले लाल।
'जोवत पंथ मलिन'[1] भए लोचन
बिनु दरसनु हम भईं बिहाल।
निकट बिदेस कियो क्यों जीजै
ब्रजनाइक ! तुम्ह औरहि ख्याल ॥
जब उहि सुरति संग की आवै
हृदै चटपटी परति गोपाल।
'परमानँद' प्रभु अवधि अधिक भई
को मेटै छतियाँ कौ साल ॥

[६३३] सारंग

वे दिन या देह अछित बिधनाँ जो आनै री ।
स्यामसुँदर-संग रंग जुवति-वृंद ठानै री !
जद्यपि अक्रूर क्रूर परमगति पठावै री ।
नंदनँदन प्राननाथ बंसी न बजावै री ॥
कहा करों परम कठिन कह्यौ कोउ न मानै री !
'परमानँद' बिरह-पीर बिरही पै जानै री❀ ॥

---

१. मिलित (घ.)

❀ साधारण पाठ-भेद के साथ पद सं० ४०२० पर सूरसागर में भी

[६३४] सारंग

कहा बूझति तन की दुबराई।
इहि[1] थोरी जियत रहियत है बिछुरे कुँवर कन्हाई॥
जा दिन तें मधुपुरी सिधारे राम-कृष्ण दोउ भाई।
ता दिन तें ब्रजबासी लोकनि घर-बन कछु न सुहाई॥
जागत सपन रयनि अरु बासर हरि-बिनु कल न पराई।
'परमानंददास' की[2] जीवनि कब[3] मिलहिंगे आई॥

[६३५] सारंग

[] इह पखानों लोगनि कौ सो मैं देख्यो आँखि री।
कमल-नयन ऐसी करी[4] बचन मनोहर भाखि री॥
अपनी अरथ आदर करै न्यौंति जिवावै खीर री।
चाउ सरैं दुख बिसरयो ओइ छाछ न देत अहीर री॥
जब लगि जोबन-धन रह्यो तब लगि कीनी प्रीति री।
'परमानँद' स्वामी हरि कीनी षटपद की सी रीति री॥

[६३६] सारंग

❀माई री! मदन-बान मारि गए मदन-मूरति कोऊ।
स्यामसुँदर चपल नयन भावत मोहि सोऊ॥

---

१. इहै थोरी है जु जीवत रहियतु (ख.) २. दास कौ ठाकुर (ख,)
३. कबहि मिलेंगे (ग.)
[]. इहै (ङ. छ.) से भी प्रारम्भ ४. है कीनी (क: ग. ड. छ.)
❀ मदन-बान० (ग.) से भी प्रारम्भ

सपने मँह[1] डहकि गए दै आलिंगन गाढे।
जागे[2] तें दुखित नयन जल-प्रवाह बाढ़े॥
मंद[3] हास गति-विलास ताकी हौं चेरी।
सरबसु लै अनत गए ऐसी गति मेरी॥
कैसैं कैं[4] प्रगट मिलौं कैसें करि देखौं।
'परमानँद' भाग-दसा इतनौं करि[5] लेखौं॥

[६३७] सारंग

परदेसी कौ नेह सखी री! अंत नहीं ठहरात।
खायो पियो डगर उठि लाग्यो ताकौ कहा पिरात॥
सुनि बावरी! भूलि जिनि काढैं कठिन बिरह की घात।
मेरे जान[6] नंदनंदन-बिनु द्यौस कलप-सम[7] जात॥
कौन अभागी जो बिसरावै स्याम-मनोहर-गात।
'परमानँद' स्वामी के बिछुरें अब गोकुल उतपात॥

[६३८] सारंग

स्याम ढिटौना मोही री माई!
रंचक सकुच हुती मेरे जिय गहि अंचर मेरी लाज छुड़ाई॥
बाल-दसा हौं कछुवे न जानों लै निकुंज-मँह बातनि लाई।
पत्र बिछाइ तहाँ बैठारी तरु कदंब की छाँह सुहाई॥

---

१. मोहि (क. घ.) २. जागों तौ (ग.) ३. गति-बिलास मधुर हास (क.घ.)
४. करि (घ.) ५. सुख (क.) फल ६. जानें (ग. घ. ङ. छ.) ७. भरि (घ.)

ऐसे चतुर नंद के ढोटा[1] बोलि न जानों बरहि बुलाई।
अपने हरि की प्रीति निरंतर चलि री सखी! गोपाल मनाई॥
वह रति[2]-केलि-सुरति जो आवै
चार्यों[3] जाम समीप बसाई।
'परमानँद' स्वामी मनमोहन पहिली कथा सबै बिसराई॥

[६३६] सारंग

बहुरि वे दिवस कहाँ मेरी माई!
मदनगोपाल मिलत जब हँसि कैं काम-केलि सुखदाई॥
एक बार बिहरत बन-अंतर मेरी लट कुसुम[4] अरुझाई।
आपुनि हँसत दूरि भए ठाढे हठि करि गारि दिवाई॥
मानु करत मेरौ महतु राखते करि मनुहारि मनाई।
'परमानंद' सुमिरि वह[5] बातें सोचति अरु पछिताई॥

[६४०] सारंग

मोहन! वह क्यों प्रीति बिसारी?
कहत सुनत समुझत चित-अंतर दुख लागत है भारी॥
एक दिवस खेलत बन-भीतरु बैनी सुहथ सँवारी।
बीनत फूल गयो चुभि कंटक ऐसी सही बिथा री॥
मो पर कठिन हदौ अब कीनों लाल गोवर्द्धन-धारी।
'परमानँद' बलबीर बिना हौं[7] मरति बिरह की जारी॥

---

(१) नंदन (घ.) २. रस (घ.) ३. चारों
(४) मोहु... ५. इहि (ङ., छ.) ६. हम ७. हम

[६४१] सारंग

ऐसौ मन तैं कियो मेरे ललना !
इतनिक दूर वहै मथुरा तैं कोई[1] आयो चल ना ॥
नयन-नीर घट्यो नहिं कबहूँ अधर[2] सबै दिन गीले ।
मुखहि[3] तंबोर नयन नहिं कज्जल चिकुर सबै दिन ढीले॥
कंकन-बलय परैं खसि भूतल बहुरि उचाइ[4] न पहिरे ।
सूकौ कंठ पुकारति हरि-हरि स्रवन-रंध्र भए बहिरे ॥
ऐसी दसा दया तोहि नाँही बेद कहत है नागर ।
'परमानंद' बिरहिनी कौ मुख बिनु प्रीतम दिन आगर ॥

[६४२] सारंग

हम तौ माधौ ! तुमहिं लगे ।
जियकी बिथा[5] कवन सौं कहिये मातु-पिता-कुल-निकट सगे
पपीहा की प्यास मेघ ज्यौं[6] बरषैं आरति जानि पुकार करै।
हरि सर्वज्ञ जगत के ठाकुर कृपा करै तौ फिर ढरै ॥
कीजै कृपा जानि जन[7] अपने जो ब्रजबासी गर्व भरे ।
'परमानँद' स्वामी[8] तुम्हरे भरोसे गनति न काहू तृन हू बरे॥

[६४३] सोरठ

गोबिंद मधुपुरी कत जातौ ।
उखेरी बरडै हति टैटी[9] लाई असुर-राज मदमातौ ॥

---

१. कोउ न आयो चलना (ङ. छ.) २. अंचर (छ.) ३. न (छ.)
४. वाहि नाहिं (ग. ङ. छ.) ५. बात (घ.) ६. क्यों (ख) ७. जिय (ग. ङ. छ.) ८. प्रभु (ङ. छ.) ९. बैठी आतुर (ग.)

बरु उह कंस जीवतौ रहतौ वैरु चल्यौ बरु जातौ ।
बंदि-बासु बसुदेव बरु सहतौ[1] कत टूटत इहि नातौ ॥
अब काहे कों गोकुल आवै गो-सुत-वृंद चरावन ।
उहि गुन सुमिरि कियो नहिं फेरौ दाम उलूखल[2] बँधावन॥
बिरह-बिथा तन बाढनि लागी प्रेम न हृदै समाई ।
'परमानंद' नदी अंतरगत उमडि ऊपरें[3] आई ॥

[६४४] सारंग

या मन कों कहा करों जो न रहै ।
उहि मूरति नैननि बिनु देखें जीउ बिरह-दुख सहै ॥
बार-बार समुझावति सखी री! धीरजु करि दिन च्यारि।
स्याम-मनोहर या गोकुल की नाहिन सुरति बिसारि ॥
बदी जु अवधि टरै सो कैसें सत्य बचन प्रभु भाख्यो ।
'परमानँद' स्वामी के निज गन[4] में अंतर तें राख्यो ॥

[६४५] सारंग

इह ठौर जहाँ हरि खेलते ।
सुनि री सखी ! कहाँ लों बरनों तब ग्रीवाँ[5] भुज मेलते॥
एक दिवस नँदलाल लकुटिया तेरे[6] करिया बेलते ।
इहीं[7] निकुंज जहाँ मन-मोहन मिलि मनमथ-दल पेलते॥

---

१. रहतो (ग. घ. ङ. छ.) २. ऊखल (ग. ङ.) ३. ऊफरें (छ.)
४. गुन (ग.) गन में दुख अन्तर (छ.)
५. भुज पर (ग.) ६. तिरछी करि (ग. घ.) तीरी ७. इहै (ग. घ. ङ. छ.)

तब कत इहै[1] जात ब्रज राख्यो इन्द्र-कोप की रेल तें।
'परमानंद' कहहु[2] हरि सों[3] जैसें दिया बिनु तेल तें ॥

[६४६] सोरठ

माई ! दोइ कैसें बनि आवति ।
बिमुख जु रहति कमल-लोचन सों ताही तें दुखु पावति॥
कै तू होइ स्यामसुंदर की कै तू[4] अपनें घरहि रहै ।
कै गहु चरनकमल गाढे[5] करि कै अब जाइ भव-जलधिबहै॥
इहि जु एक मन बहुत ठौर धरि कहै कौनें सुख पायो।
'परमानंद' वाद है एतौ निगम-भागवत गायो ॥

[६४७] सारंग

किते दिन हरि-देखे[6]-बिनु बीते ।
एकौ न स्फुरै[7] स्यामसुंदर-बिनु बिरह सबै सुख जीते॥
मदनगोपाल बैठि कंचन-रथ चितै किए तनु रीते ।
सुफलक-सुत लै गए दगा दै प्राननि ही तें प्रीते ॥
सो दिन कबहिं घोष आवहिंगे मोहन-बलभद्र-समीते।
'परमानँद' प्रभु देह अछत अब मिलहु श्रीदामा-मीते॥❀

---

१. वह (ख.) २. कहौ (ङ. छ.) ३. ऐसं (छ.)
४. कै अपने घर बैठि० (ङ. छ.) ५. गाढौ (ग. ङ. छ.)
६. दरसन (ग. ङ. छ.) ७. फुरै (ग. ङ. छ.)
❀ साधारण पाठभेद से पद सं० ४००९ पर सूरसागर में भी

[६४८] मलार

❀उय मनहु बुलावत है गोपालहि[1] ।
बहुरि नयन भरि देख्यो चाहें मोहन गिरिधरलालहि[2] ॥
गोवरधन परबत के ऊपर बैठि सिला पर बोलत मोर।
भँव[3] उचाइ-उचाइ पुकारै नाम लेत है नंदकिसोर ॥
पंख[4] पसारि-पसारि दिखावहिं
इहि गति भई आएँ[5] ब्रज-नाइकु ।
'परमानँद' प्रभु या बिनोद-बिनु
कानन-भवन भए दुख-दाइकु ॥

[६४९] मलार

प्रथम कृपा करि सोखी आँखिनि ।
अब उहैं ठौर रमि जु रहे मरियत हैं झाँखिनि[6] ॥
सो बिरहिनि कैसें जीवै दरसन-अभिलाखिनि ।
ताके मन कैसै मानत अधरामृत-चाखिनि ॥
उह चित हम ते दूरि गयो सनमुख मधु भाखिनि ।
'परमानँद' प्रभु हस्त-कमल गोवरधन राखिनि ॥

[६५०] सारंग

लाल बुलावत है उहि बरियाँ ।
मदनगोपाल मनोहर मुख तें मुरली बिसद उच्चरियाँ॥

❀ओइ मन० (ड. छ.) से भी प्रारंभ १. गोपालै (ड. छ.) २. लालै (ड. छ)
३. ग्रीव (ड. छ.), जेवउ ४. अरी ! ओइ पंख (ख.) ५. न आए (ग.)
६. झाँखिन—इसी प्रकार सर्वत्र तुकान्त (ख.)

जब घनस्याम सिधारत बन कों तबहूँ हम न बिसरियाँ।
'परमानँद' दरसन भयो दुर्लभ बिछुरे कौन कुघरियाँ ॥

[६५१] सारंग

नहिं बिसरति वह रति ब्रजनाथ !
हौं रिसाइ रिस रही मौन धरि रस ही में खेलत इक साथ॥
पचिहारे जु मनावौ[1] न मान्यो आपुन चरन छुहे हरि[2] हाथ।
तब रिसाइ सोए[3] उत मुख होइ
झुकि कें झाँपि उपरेंना माथ ॥
रहि न सके जु प्रेम आतुर अति जानी रजनी जात अकाथ।
'परमानँद' प्रभु ठगी[4] जु महा निसि
पढ़ि जु सुनाई प्रात[5] की गाथ ॥

[६५२] सारंग

कमलचंद की सोभा मेटत कब देखोंगी उय[6] सुंदर मुख।
संमिलित बेनु पीत रज-मंडित
अलि-लोचन पीवत पावत सुख ॥
ऐसौ भाग्य वहुरि कब करिहै
कब करिहै या ब्रज के ऊपरि रुख।
सुंदर-स्याम मनोहर मूरति नंद-सुवन मोचन-गोकुल-दुख॥

---

१. मनायौ (ग. घ. ड. छ.) २. हँसि (ग. घ. ड. छ.) ३. फिरि सोइ रहे उत (क. ग. घ. ड. छ.) ४. छली महा (क. ग. घ. ड. छ.) ५. प्रीति पर
❀ पाठ-भेद से पद सं० ३८२१ सूरसागर में भी ६. वह (ग. घ. ड. छ.

उपमा कों दूसरौ नहिं कोऊ
कमल-नयन सब संतनि कौ पख।
'परमानँद' प्रभु रसिक-सिरोमनि
पांडव-कुल-पालक पारथ-सख ॥

[६५३] सारंग

कब री ! मिलैगो मेरौ मदनगोपाल मनोहर ।
जा दरसन-बिनु बन री ! भयो घर ॥
कालिंदी बृंदावन इहि ब्रज
देखि-देखि लागनि लागौ डर।
सारदूल उठि चले री ! मधुपुरी
अब री सखी ! की जतु का के बर॥
चलियतु काहे न जहाँ री ! स्यामघन
मेरौ कह्यौ तुम सब सखि परिहरु।
'परमानँद' प्रभु रसिक-सिरोमनि
नंदकिसोर सुभाय-कलपतरु ॥

[६५४] सारंग

मारग माधव कौ जोवै ।
वहै अनुहारि न देख्योकोउ जोऽब नयन-दुख खोवै ॥
बाल-बिनोद किए नँदनंदन सुमिरि-सुमिरि गुनि रोवै ।
बासर-प्रति गृह-काज न भावै निसि भरि नींद न सोवै॥

१. ही (ग. घ.)

अंतरगत की व्यथा[1] मानसी सो तन अधिक बिगोवै ।
'परमानँद' गोविंदचंद-बिनु अँसुअनि-जल उर धोवै॥

[६५५]   सारंग

❀बहुरों ब्रज कौ नामु न लीनों ।
जानों नहीं कहा जिय उपजी[2] कान्ह निठुर चित कीनों॥
जननी-पिता-बंधु-गोपीजन सबै घोष बिसरायो ।
केते दिन पाछें री माई ! मैं हुँ सँदेस न पायो ॥
अब ऐसी आवत हे मन मँह[3] नंदनँदन पँह जइये ।
कै बिनु मिले 'दास परमानँद' कठिन बिरह-बिष खईये॥

[६५६]   सारंग

माई ! को इहि गाँइ चरावै ?
दामोदर-बिनु अपनौ संघातीनु कौन सिंगार करावै[4]॥
सब कोउ पूजै दीपमालिका हौं कहा पूजों माई !
राम-गोपाल मधुपुरी गमनें धाइ-धाइ ब्रज खाई ॥
दाम दोहनी माट मथानी जाइ पासि को पूजै ।
का कों मिलें चलैं इह गोकुल कौन बेनु-कल कूजै ॥
करत प्रलाप सकल गोपीजन मन मुकुंद हरि लीनों ।
'परमानँद' प्रभु इतनी दूरि बसि मिलन दोहिलों कीनों॥

---

१. विथा (ग. छ.)

❀ बहुरचौ० (ग. ङ. छ.) से भी प्रारंभ २. आई (ग. घ. ङ. छ)

३. में (ग. घ. ङ. छ.) ४. बनावै (क. ग.)

[६५७] सारंग

गोपाल-बिनु कैसें कें ब्रज रहिबौ ।
धूसर-धूरि उठाइ गोद लै लाल कवन सों[1] कहिबौ ॥
जो मधुपुरी दिवस लागत[2] तुम्हें सोच सूल तनु दहिबौ[3]।
'परमानँद' स्वामी रिपु काजें[4] सरन कौन कौ गहिबौ॥

[६५८] सारंग

*मानु इहाँई लों प्रीति ।
मदनगोपाल भली है कीनी मधुकर की सी रीति ॥
सुनियत हैं गुरुकुल पढि आए भली राज की नीति ।
सेवकई[5] नीकें करि जानत कंस मारि रिपु जीति ॥
कहाँ उह[6] प्रीति जु बाल-दसा की मिलि खेलते समीति[7]।
'परमानँद' प्रभु उदर तें राखी अपने कुल की भीति ॥

[६५९] सारंग

वह मुख कबहुँ[8] दिखावहुगे हरि !
जिहि मुख बस कियो सब गोकुल
चारु बिलोकनि मुरली अधर धरि ॥

---

१. कौन (छ.) २. लागिहें (ख.) लागहिंगे (क.)
३. सहिबौ (घ.) ४. कोजें (क. ख.)
*मानों० (ग. घ. ड. छ.) से भी प्रारम्भ ५. सेवक ही (ग. छ.)
६. वह (ग. घ. ड. छ.) ७. समीप (ख.)
८. कब दिखरावहुगे (ड. छ.)

जिहि मुख अमृत स्रवत मधु-धारा
　　पिवत स्रवन-पुट मन अति गहवरि ।
नेकु न मलिन सदा आनँदमय
　　कोटि चंद डारों[1] वारि उपरि करि ॥
जिहिं मुख धौरी धेनु बुलावत
　　गावत गीत मधुर नाना परि ।
'परमानंददास' वा मुख-बिनु अंध भयो ब्रज रह्यो बिरह मरि[2]॥

[६६०]　　सारंग

सुरति आवै कल बेनु की ।
मदनगोपाल त्रिभंगी सुंदर मुख-मंडित कच रेनु की ॥
अब उह समै बहुरि बिधि करिहैं कुंज चरावन धेनु की।
सात दिवस झर इंद्र-कोप तें गोवरधन कर लेनु की ॥
नहिं बिसरति उह केलि कान्ह की घर के दधि पय-फेनु की।
'परमानँद' स्वामी हरि प्रहसित और लरिकवन देन की॥

[६६१]　　सारंग

हरि की[3] मधुकर की सी न्याँई ।
एक बार रस चाखि फूल कौ बहुरि न दई दिखाई ॥
स्याम-बरन तन वाहिर-भीतर ताकौं को पतियाई ।
काहे कों एतौ कीजतु है झूठी असत सगाई ॥

१. वारों ऊपरि (ग.)　　२. भरि (ग. ङ. छ.)
३. कीनी (ग. ङ. छ.)

लेति उसास नयन जल भरि-भरि प्रेम न हृदै समाई ।
'परमानँद' गोपिका बिरहिनी प्रान-जीवन जदुराई ॥

[६६२] सारंग

इतनि दूरि मनमोहन की कछु आवत नाहिन पाती ।
ज्यों-ज्यों गहरु करत है मधुबन त्यों-त्यों धरकति छाती ॥
गत बसंत ग्रीषम रितु प्रगटी बनसपती सब पाती ।
चातक मोर कोकिला कलरव ए बिरहिनि के घाती ॥
कहाँ लगु जाँहि कवन[1] सों कहिये बोलि जगावहि राती ।
'परमानँद' प्रभु चलत न जाने तौ संगहि उठि जाती ॥

[६६३] मलार

चातक पीउ-पीउ बोलत ।
पिय गोपाल की सुरति आवति तातें[2] मेरौ मन डोलत ॥
अंबर मेघ-घटा घन गरजत चौहों दिसि कौंधति दामिनि ।
माधौ-राम बिदेस सिधारे नींद न आवै जामिनि ॥
नैननि नीर सरीर न सूझत अंधकार उठि भेटति ।
'परमानँद' प्रभु तुम कब आए लज्जित चीर समेटति ॥

[६६४] सारंग

ता दिन सरबसु देउँ बधाई ।
जा दिन दौरि कहै सुनि सजनी ! आए हैं कुँवर कन्हाई ॥

---

१. कौन (ग. घ.) २. तामें (ङ. छ.)

मैं[1] अपनौ सौ बहुत करि लीनौ लाल न देत दिखाई।
सोचत जात दिन अवलोकत उह न कबहु न जाई॥
मेरी उनकी प्रीति निरंतर बिछुरत पल न घटाई।
'परमानंद' बिरहिनी हरि की सोचति अरु पछिताई॥

[६६५] सारंग

प्रान-जीवन जदुराई! मिलिहौ कब माधौ!
सोचत सोच भयो तन पियरौ घटि गयो जोबन आधौ॥
चंदन-चीर मंद मलयानिल सकल भए दुखदाई।
बैरिनि कुहुकि-कुहुकि कत बोलति कोकिल देहु उडाई॥
क्यों दुख जाइ कवन सों कहिये रहिये कहाँ सयानीं।
'परमानँद' प्रभु अवधि बितीती हरि मधुबन-रति मानी॥

[६६६] मलार

माधौ माई! मधुबन छाए।
कैसें[2] रहैं प्रान गोविंद-बिनु पावस के दिन आए॥
हरित बरन बन सकल द्रुम पातें मारग बाढी कीच।
जल पूरित रथ कौ गमन[3] नहीं बैरिनि जमुना बीच॥
का के हाथ सँदेसौ पठऊँ कमलनयन के पास।
आवत जात इहाँ कोऊ नाँही सुनि 'परमानँददास'॥

---

१. हौं (ग. ड. छ.)
२. मेरे सो नहिं प्रान (ड. छ.)
३. गम नाहीं (घ.)

[६६७] सारंग

नयनाँ रहट की घरी रहाइँ ।
करि-करि सुरति मदनमोहन की भरि आवैं ढरि जाइँ ॥
बिनु ब्रजनाथ सखी ! क्यों जीजै घर-कानन न सुहाइँ ।
वेई वसन वेई पट-भूषन भए भुअंगम खाँइ ॥
या मथुरा तन तेज[1] सखी री ! बायो पै न बहाइ ।
'परमानँद' स्वामी के बिछुरे हियरा[2] क्यों न सिराइ ॥

[६६८] सारंग

रहि सखि बावरी ! तन छीजै ।
बिछुरन-मिलन रच्यो बिधि ऐसौ सोचु कहाँ लौं कीजै॥
अंबुज-नयन नीर कत ढारति उर-अंचर तेरौ भीजै ।
'परमानँद' धीरजु धरि भामिनि ! हरि के चरन चित दीजै॥

[६६९] सोरठ

बाबा की सौं कै उनकी सौं आजु राति नहिं नीद परी ।
जागत गनत गगन के तारे रसना रटति गोबिंद हरी॥
उह चितवनि उह रथ की बैठनि जब अक्रूर की बाँह धरी
देखति रही ठगी-सी ठाढी बचन न आवैं बिरह-भरी ॥
उहहि[3] ध्यान अंतरगत मेरे बिसरत नाहिन एक घरी ।
'परमानँद' प्रभु मोहन मूरति मुरली-मनोहर स्याम-हरी॥

---

१. तेजु, तन तें सखी (घ. ङ. छ) २. हियरौ (ग. घ. ङ. छ.)
३. वेई (घ.)

[६७०] सोरठ

अब हौं गहरें पैठि डरानी ।
कमलनयन तब कर गहि काढी प्रीति निरंतर जानी ॥
उइ दिन सुरति करति ब्रज-ललना जमुना निरमल पानी ।
अपनि अंक[1] धरि स्याम-मनोहर काढि कें बाहिर आनी ॥
उह खेलिबौऽरु हँसि-हँसि मिलिबौ बचन कहत मधुबानी ।
'परमानंद' करी अब ऐसी निपट बटावनि जानी ॥

[६७१] गौरी

माई ! हरि प्रीतम परदेस ।
का कें हाथ देउँ लिखि पाती को लै जाइ सँदेस ॥
नींद न परै भूख न लागै अनुदिन सोच अपार ।
कहा करौं कैसें मन राखौं बिछुरे नंदकुमार ॥
लै-लै स्वास नयन जल भरि-भरि जीवति मिलन की आस ।
कैसैं कहौं 'दास परमानँद' बिरह मनोभव-त्रास ॥

[६७२] गौरी

बेधी हौं पद-अंबुज-मूल ।
रह्यौ न परै स्यामसुंदर-बिनु नयना मुख देखि न भूल ॥
लरिका-वृंद संग करि लीनें खेलत हैं जमुना[2] के कूल ।
बलिहारी मनमोहन मूरति नाहिन जाहि कोउ समतूल ॥

---

१. कध (घ.) २. कालिंदी कूल (क.)

मारग चलत अचानक सखि री! लागी कुसुम बान की भूल
तनमय भई ठगौरी लागी उपजी उर मदन की सूल ॥
बिसर्‌यो गृह-ब्यौहार प्रेम-रस निमिष नहि भयो चित लूल[1]
'परमानंद' हर्‌यो मन केसौ लोचन चारु कमल के फूल॥

[६७३] गौरी

जसोदा ! मधुबन तें आजु-कालि तेरे हु कोउ आयो ?
बहुत द्यौस बितित[2] गए संदेसौ[3] न पायौ ॥
कैसै ताहि नींद परै कैसै गृह[4] भावै ।
जाकी निधि छूटि जाइ धीरज कैसै आवै ॥
गोपिनि के बचन सुनत बिलखति नँदरानी ।
'परमानँद' प्रीति जानि[5] नयन स्रवै पानी ॥

[६७४] सारंग

हमकों बिषम भई निसि सेजौ ।
ऊधौ ! कमलनयन की बातें छुटि-छुटि जरत[6] करेजौ ॥
गोवर्द्धन वृंदाबन इहि ब्रज फुनि-फुनि सुरति करावै ।
इहि[7] निबास कान्ह जहाँ खेलत बल-सह गाँइ चरावै ॥
एई बेनु बिषान बेत दल मोर-पिच्छ मनि-गुंजा ।
'परमानँद' स्वामी के खिलौना सकल प्रेम के पुंजा ॥

१. चूल (ड. छ.) २. बीति (ग. घ. ङ छ.) ३. सँदेस हू (घ. ड. छ.) ४. इह (घ. ङ. छ.) ५ हृदै (क घ. ड. छ) ६. जाति ७. इहाँ निसि-बासर गिरिधर खेलत (क. ग. घ. ङ. छ.)

[६७५] सोरठ

❀कवन सच टरि गयो ब्रज केरौ।
सुनि जसोमति! गोकुल के लोचन लै गयो मोहन तेरौ॥
को जानै कहा जिय उपजी बहुरि न कीनों फेरौ।
स्यामसुंदर के हित की बाँधी[1] बाढ्यो विरह घनेरौ॥
जा के चरनकमल मुनि-बंदित[2] भवसागर कौ बेरौ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर ता कौ[3] सब जगु चेरौ॥

[६७६] केदारौ

एते दिन अवधि के टारे।
मदनगोपाल हमारे उनके किहिं लेखे मँह पारे॥
तब वह प्रीति मिलनि बन मँह की प्रानंनि किये निनारे[4]।
स्याम-मनोहर आइ बैठते रुचिर तलप पर वारे॥
वत्स उबेरि खेलिबे के मिस चलते बनहिं सवारे।
तब ऐसी करि[5] हमारे हित कौं संखचूड़ से मारे॥
तुम ठाकुर बनिता तहाँ केती हम गुन-ग्राम बिचारे।
'परमानँद' प्रभु तिनकी कहावति जनम नाथ-हित हारे॥

[६७७] सोरठ

तब हरि बतियनि ही सुख देते।
छिनु[6] एक भवन विलंब करति तब लोचन भरि-भरि लेते॥

❀ कौन० से भी प्रारंभ (छ) १. बीधी (ग.) २. बंदत (क.)
३. जाकौ (ग. ४. जु न्यारे (ग.) ५. करत (ग.)
६. जब छिनु एक भवननि बिलंबति (क.)

को जानै इहि प्रीति कपट की मुख और हि जिय और।
पाछे कैं[1] पहिचानि तजहिंगे स्वारथ-साधक भौंर ॥
तदपि इहि मन खरौ लालचौ करत मिलन की आस।
नहिं[2] जात बदन बिनु देखें सुनि 'परमानँददास' ॥

[६७८] सोरठ

अब दरसन की साधनि मरियतु ।
मदनगोपाल मनोहर मूरति
देखिबे कौं केतौ लालच करियतु॥
जब तें कमलनयन ब्रज छाँड्यो
सुनि री सखी ! बिरह-दौ जरियतु ।
अवधि-आधार आस मिलिवे की
चलत प्रान जतननि छिनु धरियतु॥
सुमिरत रास सरद[3] रातनि के
मनसिज-बान छिनु ही छिनु भरियतु ।
'परमानँद' स्वामी बिनु देखें
सोक समुद्र[4] दिवा-निसि तरियतु ॥

[६७९] सोरठ

बरजौ या चंद मंद किरन-पुंज जारै।
स्यामसुँदर गोविंद-बिनु कौन इहि निवारै ॥

---

१. को (क. ङ. छ), तें (घ.) २. कछु न सुहाइ दरस देखे बिनु (क.) ३. सरद जामिनी के (छ.) ४. सिंधु (ङ. छ)

ससि हर गुन कहियत है सीतल सुखदाई।
ग्रीषम काल रबि की गति हम तन दौ लाई ॥
इक कलंकु लागि रह्यो दूसरौ क्यों मिटिहै ।
अबला बल मास मंद जुग न पाप घटिहै ॥
जा परि[1] तू एतौ करत माँझ बिमल सोऊ।
'परमानंद' संतनि में भलौ न कहै कोऊ ॥

[६८०]　　　　　　　　　　　　　　　　सोरठ

माई ! अब इहि[2] सरद-निसा लागति है फीकी।
स्यामसुँदर-संग होइ तब ही पै नीकी ॥
ससि हर संतापकारी बरषत विष-बूँदें[3] ।
मारुत-सुत सुभाव तज्यो दसों दिसा[4] मूँदैं ॥
'परमानँद' स्वामी गोपाल परिहरि हम सिखई ।
प्रान पयान करन चाहत मिलहु कपट बिखई ॥

[६८१]　　　　　　　　　　　　　　　　सोरठ

माई री ! मधुबन केतिक दूरि ?
चढि गिरि-सिला बिरहिनि गोपी नैन रहे जल पूरि ॥
जो बिधि बीच कियो हरि हम सों निसि-दिनु जोवति बाट।
रह्यौ न परै नंद-नंदन-बिनु मूँड जु पर्‌यो उचाट ॥

---

१. जा परि तुम (घ.), जा बरि (क. ख.)
२. तौ (ङ. छ.), तौ इहि (ग. घ.) ३. रहै (क. ग. घ. ङ. छ.)
४. दसा (ख.)

कहा[1]री ! करों कैसै लै आऊँ जाउँ स्याम के पास ।
कछु न सुहाइ भवन अब[2] देखों सुनि 'परमानँददास'॥

[६८२] गौरी

कब[3] देखिबे खरिक में ठाढे ?
मिलिहैं मदनगोपाल मनोहर दै[4] आलिंगन गाढे ॥
कटि पट-पीत धूरि-धूसर बपु[5] उर बिचित्र[6] बनमाला ।
कुंचित अलक तिलक अति[7] सुंदर लोचन चारु बिसाला॥
एक हाथ दोहनी कनक[8] की एक पाट की नोई ।
बछरा मिलवत[9] धेनु दुहावत साँझ समै सचु सोई ॥
कठिन बिरह उपज्यो उर-अंतर हरि-बिनु कौन निबारै ।
'परमानंद' मधुपुरी प्रीतम गोपी अवधि बिचारै ॥

[६८३ मलार

बहुरि हरि आवहुगे किहिं काम ?
रितु बसंत अरु मकर-बितीते अरु बादरु गए[10] स्याम॥

---

१ कहा करों (ग. घ. ड. छ.) २. अपने में (ग. घ. ड. छ.)
३. कबहुँक (ग. ड. छ.) ४. दैऽब (ग. घ. ड.) दै अब (छ.)
५. तनु (क. ग. घ. ड. छ.) ६. राजित (ग. घ. ड. छ.) ७. की सोभा लोचन-कमल (क.) मृग-मद रुचि अंबुज-नैन (ग. घ. ड. छ.)
८. बिराजित (क. ग. घ. ड. छ.) ९. छोरत (ग. घ. ड. छ.)
१०. भए (क. ग. घ. ड. छ.)

तारे गगन गनत री माई ! बीते चारयौं जाम ।
और[1] काज सब बिसरि गए हरि ! लेत तुम्हारौ नाम ॥
छिनु आँगन छिनु द्वारें ठाढी हम सूकत ए[2] घाम ।
'परमानँद' प्रभु रूप बिचारत रहे अस्थि अरु चाम❀ ॥

[६८४] मलार

काहे कौं बिलँबु कियो बेगि न आए
कमल-नयन ! मेरे प्रान-जुडावन ।
दादुर मोर पपीहा बोलैं
मदन जगावनु आयो[3] सावन ॥
बिरह-बिथित तनु धीर न धरैं मनु
दिन-दिन लागे अवधि बढ़ावन ।
गनत दिना अब पावसु आयो
बूँद परत लागी दुख पावन ॥
तब जु बचन बदि गमन कियो हरि
सुनहु[4] न सखियनु मन बहरावन ।
'परमानँद' प्रभु रसिक-सिरोमनि
मिलौंगी आँकों भरि मधुबन-भावन ॥

---

१. घर कौ काज (ड.) गृह-काज (छ.) २ हैं (ग. व. ड. छ.)
❀ प०सं० ३६२७ पर सूरसागर में भी परिवर्तन से ।
३. आयो है (ग. घ. ड. छ.) ४. सुनि उनि सखि

[६८५] केदारौ

रयनि पपीहा बोल्यो[1] माई ।
नींद गई चिंता चित बाढी[2] सुरति स्याम की आई ॥
सावन मास देखि[3] बरषा-रितु हौं उठि आँगन आई[4] ।
गरजत गगन दामिनी दमकति[5] वा में जीउ डराई ॥
रागु मलार कियो[6] जब काहू मुरली मधुर बजाई ।
बिरहिनि बिकल 'दास परमानँद' धरनि परी मुरझाई ॥

[६८६] केदारौ

हमारे हितकारी गोपालु ।
सुंदर-स्याम जसोदा-नंदन गोकुल कौ प्रतिपालु ॥
जब तें जनमु नंद-गृह लीनौ बकी-पूतना-कालु ।
गोवरधन-उद्धरन एक कर कंस-हृदै कौ सालु ॥
समुझि न परै सकल अदभुत गति लीला-बिग्रह लालु ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर गोधन-चारन ख्यालु ॥

[६८७] गौरी

सुरति करि डहकिऽब रोइ दियो ।
पथिक एक जात हौ मारगु राधा बोलि लियो ॥
कहि धौं बीरु ! कहाँ तें आयो उहु[7] मिलि प्रनामु कियो ।
वह[8] पाइ लागि सिधाई मंदिर बहु[9] दुख जानि गयो ॥

---

१. वोल्योरी (ग. ङ. छ.) २. उपजी (क.) ३. मेघ की बरसनि ४. धाई ५. चमकति तातें खरी (क.) ६. अलाप्यो ७. पुहुमि (ग. घ. ड. छ.) ८. इह पग लागि सिधारी (ड. छ.) वह पग लागि (ग. छ.) ९. यह (छ.)

गदगद कंठ हृदौ-भरि आयो[1] बचन न कह्यो गयो[2] ।
'परमानंददास'[3] बूझे तें ऊतरु कछु न दयो[4] ॥

[६८८] मलार

या हरि कौ संदेस न आयो ।
बरष-मास-दिन बीतन लाग्यो[5] बिनु-दरसन दुख पायो॥
घन गरज्यो पावस रितु प्रगटी चातक पीउ-पीउ सुनायो।
मत्त मोर बन बोलन लागे बिरहिनि-बिरह जनायो ॥
राग मलार सह्यौ नहिं जाई काहू पथिक हि गायो ।
'परमानंददास' कहा कीजै कान्ह मधुपुरी छायो ॥

[६८९] मलार

ओसेरनि जियरा तपत है माई री! माधौ के मिलन कों।
मोहि चातुक की सी प्यास देखन नंद के ललन कौं॥
उद्यम बहुत किए अपने चित या मधुबन के गमन कों।
कहा री! करों कैसें करि राखौं बिरहानल तन जरन कों॥
बदन बिलोकि दोष हम धरतीं इन्ह नयननिकीपलन कों।
'परमानंददास' बिनु-देखे बरष गयो रिपु-दलन कों ॥

---

१. आवै (छ.) २. परचो (ङ. छ.) ३. बहुरि (ग. घ. ङ. छ.)
४. करचो (ङ. छ.), कह्यो (ग.) ५. लागे (ग. घ. ड. छ.)
* पद सं० ४०१४ पर सूरसागर में भी पाठ-भेद के साथ

[६६०] मलार

❀माई री ! माधौ-बिनु कैसें सहौं सावन घनघोर।
चहुँ[1] दिसि बृंदाबन बोलत[2] हैं मोर ॥
एक जु और कठिन परी चातक करै[3] सोर।
पीउ-पीउ पुकारत रिपु अवधि बंधत[4] जोर ॥
बिरह-बिथा अब जु सहत प्रान अति कठोर।
निकसि नहीं[5] तहाँ चलत जहाँ नंदकिसोर ॥
अब तौ इहि[6] आनि बनी मरन होत भोर।
प्रीति हमारी गोविंद की पर न चाहत ओर ॥
कहा करौं चोरयो मनु माखन के चोर।
'परमानँद' देखि गगन बिरहिनि सिर ढोर[7] ॥

[६६१] धनाश्री

सुरति आवै बदन की।
स्यामसुँदर कबहुँ[8] मिलिहैं मूरति कोटि मदन की ॥
जब तें हरि गमन कीन्हौं बिसरी सुधि सदन की।
कमल-नयन चारु-बयन माँखन दधि ओदन की ॥

❀ माधौ-बिनु कैसें० से भी प्रारंभ (क.) १. दहौं दिसि (ख.)
२. बोलन लागे (क. घ. ड. छ) ३. करहि (क. ड. छ)
४. बधत (क) ५. नाहिनें (क. ग. घ. ड. छ.)
६ जिय आइ (क.) ७. ठोर क ड. छ.)
८. कबहि

बिरह-बिथा को मेटै कठिन काम-कदन की ।
'परमानँद' हृदै बसौ केलि नंदनंदन की ॥

[६६२] धनाश्री

मन में रमि रही ओइ[2] बतियाँ ।
जिहि गोपाल गोकुल बस कीन्हे सरद बिमल सुख-रतियाँ॥
ओई चंद्र-किरनि फुनि ओई अब लागति है ततियाँ ।
सब बिपरीत भए तिहि[3] औसर दाह दहन दुख छतियाँ॥
सीतलता लै गए नंद-सुत स्याम-सुभग तन भतियाँ ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर ब्रज देखति इहिं गतियाँ ॥

६६३] धनाश्री

गोपालहिं कैसें कै लै आऊँ ।
उन्ह तें अधिक होउ मैं नागरु तौ बातनि समुझाउँ ॥
तुम्ह जानति हौ उह बातें हैं संग मिलें पुनि गाउँ ।
'परमानँद' प्रभु मथुरा-राजा भाग होइ तो पाउँ ॥

[६६४] सारंग

री ! माधौ के पाइनि परिहौं ।
अपनौ[4] सनेही जब देखौंगी[5] तन न्यौछावरि करिहौं॥
लोक-वेद की कानि ना करिहौं ना काहू तें डरिहौं ।
नँद-नंदन की निज चेरी ह्वै पिय कौ पान्यो भरिहौं ॥

---

१. कौन (ग. घ. ड. छ.) २. वेइ (छ.) ३. इहि (ग.)
४. स्याम (ग.) ५. भेटौंगी (ग. ड. छ. ज.)

कमल-नयन कों[1] जब देखोंगी सरबसु आगें धरिहों।
'परमानँद' स्वामी सों मिलिकें अपने नेम तें न टरिहों॥

[६६५] सोरठ

हरि! तेरी लीला की सुधि आवति।
कमलनयन मोहन-मूरति कौ मन-मन चित्र बनावति॥
एक बार जाहि मिलत मया करि सो कैसें बिसरावति।
मृदु[2] मुसकानि बंक अवलोकनि चाल मनोहर भावति॥
कबहुँक निबिड तिमिर आलिंगति
कबहुँक पिक-स्वर गावति।
कबहुँक संभ्रम 'क्वासि-क्वासि' करि संग-हीन उठि धावत॥
कबहुँक नयन मूँदि अंतरगति बनमाला पहिरावति।
'परमानँद' प्रभु स्याम ध्यान करि ऐसें बिरहु गमावति[3]॥

[६६६] सारंग

माई! को मिलिबै नंदकिसोरै।
एक बार कों[4] नैन दिखावै मेरे मन के चोरै॥
जागत गगन[5] गनत नहिं खूटत क्यों पाऊँगी भोरै।
सुनि री सखी! तब[6] कैसें जीजै सुनि तमचुर खग-रोरै॥

---

१. नैननि निरखों तब (ग.)

२. मुख (घ. ङ. छ.) ३. गँवावति

४. मोहि नैन (ङ. छ.) ५. जाम (ग. घ.) ६. अब (ग घ. ङ छ.)

जो पैं प्रीति होइ[1] अंतरगति जिनि[2] काहू ऽब निहोरैं ।
'परमानँद' प्रभु आइ मिलहिंगे सखी ! सीस जिनि ढोरैं

[६६७] सोरठ

हरि-बिनु बैरिनि रैनि बढी ।
हम अपराधिनि निठुर बिधाता काहे कौं सँवारि गढी ॥
तन-मन जोबन वृथा जात है बिरहा-अनल डढी[3] ।
नंद-नँदन कौ रूपु बिचारत निसि-भोर[4] ह्रर चढी ॥
जिहि गोपाल मेरे बस होते सो विद्या न पढी ।
'परमानँद' स्वामी न मिलैं तौ घर तें भली मढी❀ ॥

[६६८] कान्हरौ

ब्याकुल बार न बाँधति छूटे ।
जब ते हरि मधुपुरी[5] कहँ सिधारे
उर के हार रहत सब टूटे ॥
सदा अनमनी बिलख बदन अति
इहि ढँग रहति खिलवना[6] से फूटे ।
बिरह-बिहाल सकल गोपी-जन
आभरन मनहु बटकुटनु लूटे ॥

---

१. सत्य (ग. घ. ङ. छ.) २. मति काहू सों (घ. ङ. छ.)
३. आनि (ग. घ. ङ. छ.) ४. धरहोर (क. घ. ङ. छ.
❀ साधारण परिवर्तन से प० सं० ३८८७ पर सूरसागर में भी ५. कों
(क. ङ. छ.), मधुपुरी सिधारे (ग. घ.) ६. खिलौना (ग. घ. ङ. छ.)

जल-प्रवाह लोचन तें बाढे
बचन-सनेह अभ्यंतर-छूटे ।
'परमानंद' कहौं दुख का सों
जैसे चित्र-लिखी मति टूटे ॥

[९९९] कान्हरौ

गोबिंद प्यारे बिनु कौन हरै नैननि की जरनि ।
सरद-निसा अग्नि[1] भई चंद भयो तरनि ॥
मन-मन संतापु करति दुखित नंद-घरनि ।
प्रेम-पुलकि बार-बार अँसुअनि की ढरनि ॥
गरग-बचन सुरति आवै पाउन्ह[2] की परनि ।
'परमानंद' क्यों बिसारी क्रीडा की करनि ॥

[१०००] कान्हरौ

हरि-बिनु हार करहु हो ! हाँतौ ।
कलप-समान आजु कौ बासर नाँहिन बिहाँतौ ॥
सुनि री सखी ! बिरह-दुख मो पैं[3] सह्यौ नहिं जातौ ।
'परमानंद' साँवरे सीतल नामहि कौ है नातौ ॥

[१००१] कान्हरौ

कौन रसिक है इनि बातनि कौ ?
नंदनँदन-बिनु का सों कहिए
सुनि री सखी ! मेरे दुख या तन कौ॥

---

१. अनल (घ.ङ. छ.) २. पाइन (पायन) (घ.)
३. नाहिने सह्यौ जातौ (ङ. छ.)

कहाँ वे जमुना-पुलिन मनोहर
कहाँ वे चंद सरद-रातनि कौ।
कहाँ वे सेज-पौढिबौ वन कौ
फूल-बिछौना मृदु पातनि कौ॥
कहाँ वे मंद-सुगंध-अनिल-रस
कहाँ वे षटपद जलजातनि कौ।
कहाँ वे दरस परस 'परमानँद
कमल-नयन कोमल गातनि कौ॥

[१००२] केदारौ

नींद तौ ताहि परै जाहि लाल[1] न भावै।
चारि जाम निसि बैठी जागौं कबहि[2] स्याम घन-आवै॥
जा की[3] छूटि जाइ चिंतामनि सो कौनें ढँग सोवै।
उपजी प्रीति पपीहा की सी सदा गगन-तन जोवै॥
जा कौ मन जा ही सौं बंध्यौ[4] सो ता हाथ बिकानौं।
'परमानंद' हिलग[5] है ऐसी कहा राँक[6] कहा रानौं॥

[१००३] केदारौ

माधौ-मिलन अजहूँ दूरि।
स्यामसुंदर! सुमिरि तुव गुन नयन[7] आए पूरि॥

---

१. कान्ह (ग. छ.) २. कबहुँ (ग. छ.) ३. जाकीऽब छूटि परै (क.)
४. बांध्यौ (ग. छ.) ५. प्रीति (क. ग. घ. ङ.)
६. रंक (ग. घ.) ७. नैन रहे जल-पूरि (ङ. छ.)

गयो बसंत अनंत हरि-बिनु प्रकट पावस मास ।
देखि जलधर-घटा उन्नत मुई चातक-त्रास[1] ॥
'दास परमानंद' कौ प्रभु दीन-नाथ कहाइ ।
कै तुम अपनों बिरद छाँडहु कै तुम मिलहु आइ ॥

[१००४] केदारौ

पून्यों-चंद्र देखि मृगनैनी माधौ कौ मुख-सुरति करै ।
रास-बिलास सँभारत फुनि-फुनि सीस ढोरै अरु नयन भरै
कत ब्रजनाथ मधुपुरी जाते कत इहि पापी कंसु मरै ।
जमुना-पुलिन[2] समीर सुसीतल उदित काम मनु तमिर हरै
ओइ[3] दिन बहुरि कबहुँ करिहै हरि[4]
रहसि कमल-कर बाँह धरै ।
'परमानँद' स्वामी के बिछुरें मलिन बदन अरु हृदौ जरै ॥

[१००५] मारू

बोलि-बोलि रे ! बंस सुजाती[5] ।
राम-कृष्ण[6] की बातें कहौ कछु तुम हौ बाल[7]-सँघाती ॥
कर-पल्लव गहि अधर-बिंब धरें मधुर नाद-सुर करती ।
गिर तरवर पसु तापस पंछी सब हीं कौ मनु हरती ॥

---

१. प्यास २. तीर (घ.) ३. वे (छ.) वे ही (ग.) ४. सखि ! (ग. घ. ड.छ.)
५ सुजाती 'हो' (ग. में सर्वत्र) ६. कमल-नयन (क. ग घ. ड. छ.)
७. स्याम (घ. ड. छ.)

सरद-रयनि रस रास-रसिक कों अधर-सुधा-रस पाए[1] ।
सुंदर मुख तें या छिद्रनि करि अमृत-समोह[2] बहाए ॥
चित्र बिषान देखि गृह-भीतर नैन नीर भरि आए ।
कमलनयन घनस्याम मनोहर समाचार कछु पाए ॥
वे हम वे तुम वे बन वे गृह सो रस कहाँ दुराए ।
जब तें बिछुरे नंदनँदन मेरे स्रवन नैन न अघाए ॥
हम अबला मतिहीन दुखित[4] सब बिकल-वचन ब्रजनारी।
'परमानँद' प्रभु चतुर-सिरोमनि कारन कौन बिसारी ॥

[१००६]   सोरठी

गोपाल न आए मेरी माई !
जा-बिनु प्रान-ध्यान सचु नाहीं ता-बिनु कछु न सुहाई॥
मोहनलाल अवधि वह राखी पीउ पावस रितु आई ।
कोइल[5] तरफि-तरफि मग जोवै तारे गनत बिहाई ॥
'परमानँद' साँवन की समसरि मग जोवै चित[6] आसा ।
हरि के[7] चरन चितवनी लागी लोचन मरत पियासा ॥

[१००७]   सारंग

माई ! हौं लागी साँचे के पाछें ।
नंद-कुँवार चतुर-चूडामनि गोप-भेष नट-काछें ॥

---

१. प्याए (ग. घ. ङ. छ.)   २ समूह (ग. ङ. छ.)   ३. वेत्र (ग.)
४. देखिकें गोकुल की सब नारी (ग.)   ५. कोकिल (ग. घ. ङ. छ.)
६. चितासा (ख. छ.)   ७. हरिचरन चित बनें (ख.)

जुवति-जाति मोहन कौ भाजन सदा काम-अभिलाखी।
तिन्ह करीर-फल क्यों भावत है जिनि चाख्यो रस-दाखी॥
ओस प्यास जाय[1] कहौ कैसें जो न नदी-जल पीजै।
'परमानंददास' कौ ठाकुर प्रगट मिलै तौ जीजै॥

[१००८] सोरठी

ए दिन ऐसे हीं गए री!
हरि मधुबन दुख का सौं कहिये कलप-समान भए री॥
अवधि गनत इकटक मगु चितवत सजनी! नयन पिराने।
नागरि नारि मिलत रस बाढ्यो प्रीतम भए बिराने॥
अब को का की चाह करत है राज-काज लपटाने।
'परमानँद' स्वामी कत आवें मिले हैं सयान-सयानें॥

[१००९] सोरठी

अब कत सुधि[2] आवै हमारी।
कमलनयन बहुतनि के बल्लभ आनँद-कंद मुरारी॥
उह अवसर तब हीं चलि बीत्यो कान्ह कुँवर लारकाई।
खेलत अंग-संग बन-भीतर कर गहि कंठ लगाई॥
राजकुँवार बड़े ब्रज-नाइकु नई प्रीति जिय भावै।
घूँघट में मुख-चंद्र बिलोकित मानवती जु मनावै॥
छाँडि राज-सुख रसिक साँवरौ अब कत गाँइ चरावै।
'परमानँद' प्रभु इहै भलौ जो कुसल सँदेसौ आवै॥

---

१. जिय कहौ कैसें रहै (ख.) २. सुरति (घ.)

[१०१०] बिलावल

अब कैसै पावत है आवनु।
सुंदरता सब गुन की परिमिति
ब्रज तजि चले मधुपुरी छावन ॥
कमल-नयन मुख-इंदु मनोहर
नर-नारी-मन प्रीति बढावन ।
नंदकिसोर बाल-लीला धरि
वेनु-नाद सीखे हैं गावन ॥
कंस-तुषार-त्रास तन-दुर्बल
नलिन-देवकी-दुख-निवारन ।
जदुकुल-कमल-दिवाकर प्रमुदित
तिमिर-हरन प्रभु त्रिभुवन-तारन ॥
रे अक्रूर ! क्रूर सुफलक-सुत !
तोहि न बूझिये दूतहि आवन।
'परमानँद' स्वामी मिलिबे कों
लागी हैं गोपी बिधिहिं मनावन॥

[१०११] बिलावल

सरद-राति गोपाल-लीला रही है नैननि लागी।
अब हौं जो ब्रजनाथ मिलहिं हरहिं मनसिज-आगी ॥
भोग-भवन भुजंग सीतल बाहु-दंड बिसाल ।
हरषि तन-त्रय-ताप-मोचन कामिनी-प्रतिपाल ॥

कर-कमल सीतल धरत उर परिहरत मन की पीर ।
'दास परमानंद' प्रभु हरि तरनि-तनया-तीर ॥

[१०१२] धनाश्री

क्यों न बनें कुबिजा सों आप अंग-त्रिभंगी ।
सुभग सुजाति जानि कें हरि कीनी है अरु नैन-कुरंगी॥
मोहन के मन अति मानी है कुटिल-कुटिल तें तान तरंगी।
'परमानंददास' के ठाकुर नृपति भएँ ऐसी अरधंगी ॥

[१०१३] धनाश्री

क्यों न बनें कुबिजा सों आप अंग-त्रिभंगी ।
हम तन-मन सब सूधी ग्वालिन वे काम-कुटिल काजर-रंगी
कनक-कमल-रस-रूप जानिकें बिन बासनि भूल्यो भ्रम-भ्रंगी
'परमानँद' श्रीमुरच्य जानि जल कृष्णसार तहाँ[2] हुती कुरंगी

[१०१४] गौरी

कहाँ वे तब के दिननि कौ[1] चैन ।
जब गोपाल गोकुल में रहते सुंदर अंबुज-नैन ॥
यद्यपि राम ! गोप-गोपी-कुल नव गोधनु के ठाट ।
ए ब्रज बेनु सकल संपति-सुख ए जमुना के घाट ॥
एक कृष्ण-बिनु सब दीसत है चंद्र-हीन जैसी राति ।
'परमानँद' स्वामी के बिछुरें गई देह मुख-काँति ॥

---

१. कौ (ग. घ. ङ. छ) २. जहाँ (क.)

[१०१५] कान्हरौ

जा के भवन लच्छमी देवी ।
इतनौं नेंक ओसिलौ लागत कुबजहिं मिले जदुमनि एवी ॥
जद्यपि सब जानत जीवन-धन करत उग्रसेन की नेवी ।
बड़े तें बड़े सकल गुन-पूरन इन बातनि लागत है जेवी ॥
मधुबन बसत स्यामघन-सुंदर बहु नृप-चरन-सरोरुह-सेवी ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर जो देखियै सो सबै औरेबी ॥

[१०१६] केदारौ

गोबिंद ! फेरि गोरस-माटु ।
प्रगट होहु बिनोद-मूरति कहहु बानी चाटु ॥
बहुरि काहे न फेरि कीजै पहिलैं ही सौ ठाटु ।
बिस्वकर्मा नंदनंदन सुहथ पोहमी पाटु ॥
हमहिं जो सुख दियौ चाहत मोह-रसना काटु ।
'दास परमानंद' प्रभु हरि संग लियें स्वराटु ॥

[१०१७] सारंग

भए हैं पहार-से दिना ।
निघटत नाहिन सुनि री सजनी ! मदनगोपाल-बिना ॥
स्याम-समीप कछुव नहिं जान्यो जुग-सम जात छिना ।
'परमानंद' बिरहिनी हरि की तोरिऽब चली है तिना ॥

[१०१८] सारंग

बिरह-बिनु नहीं[1] प्रीति कौ खोज।
बिनु लागें कैसैं आवत है इन नैननि कौं रोज ॥
स्याम-मनोहर बिछुरे[2] सखी री ! बैरी भयो मनोज।
'परमानंद' निसूगे[3] जे नर ते हैं राजा भोज ॥

[१०१९] कान्हरौ

कुबिजा हरि-मानी तो सबहिनि जानी।
हरि के परसु भयौ तनु ऐसौ जैसौ सोनौं 'बारह बानी'॥
केतिक बात चोप चंदन की है जु कछू पहिली पहिचानी।
'परमानंददास' हू जानी अरु पुरान सुक-ब्यास बखानी॥

[१०२०] धनाश्री

काहे कौं[4] दीनानाथ कहावत।
भए कठिन निरमोही माधौ ! तेरे ब्रजबासी दुख पावत ॥
कपटी कुटिल लोक मधुबनियाँ बतियन्नि ही बहरावत।
जिन मधुकर[5] मकरंद-रस चाख्यो
ताहि सीमल-फल कैसैं भावत ॥
इहि ब्रज क्यों रहिबौ गुसाँई ! राम-रूप चितै गुन गावत।
'परमानँद' प्रभु बहुत कहा कहौं अपनौं बिरद लजावत॥

---

१. नाहिन (ग. ड. छ.) नाहि (घ.) २. बिछुरें (ग. ड. छ.)
३. ज्ञान सूझे जे० (छ.) ४. कों धौं (ग.)
५. मकरंद-दरस-फल (ग. घ.) मकरंद-पान रस (क.)

[१०२१] मलार

पैयाँ तेरे लागों पंथी ! मेरे बीर !
ग्वालिनि एक संदेसौ दीनों ठाढी भई जमुना के तीर॥
जो तुम जात कंस के पाटन कहियो रे ! मेरे तन की पीर।
खेलत मिलै वसुदेव-भवन-महि[1]
इतनक ढोटा स्याम सरीर ॥
बहुरि-बहुरि[2] बिनती करति हौं
भरि-भरि लोचन डारति नीर ।
'परमानँद' स्वामी सों कहियो
चरन दिखावहु साहस धीर ॥

[१०२२] सारंग

तौ तोहि जानोंगी जान।
जो तू हमारी मानसी बिथा मेटिहै भगवान ॥
बिरहानल-दुखित कीनी चातक पिक चंद ।
चंदन जलजात सम संभव बिष-कंद ॥
'परमानँद' स्वामी गोपाल कमलनयन चाहि ।
प्रीति करि जो मिल्यो चाहै छाँडो मति ताहि ॥

[१०२३] गौरी

नैन भरि कबहुँ न देखनि पाए ।
सकुचहिं सकुच रही घर-भीतर तब लगि भए पराए ॥

---

१. में (ग. घ. ङ. छ.) २. बिनंती बहुत करति (ग.)

प्रथम लरिकिनी गौनें आई रोकि-रोकि पिय राखी ।
ससुर-सास की लज्जा मानी इहि मेरी सिखि साखी ॥
हौं कहा जानौं मधुबन रहिहैं छाँडि नंद-गृह-बास ।
'परमानँद' प्रभु-संग न खेल्यो सरद-रयनि रस-रास ॥

[१०२४] सारंग

ब्रज की औरैं रीति भई ।
प्रात-समै अब नाहिंन सुनियतु प्रति गृह चलत रई ॥
ससि की किरनि तरनि-सम लागत जागत निसा गई।
उद्भट भूप मकर के तन की आज्ञा होत नई ॥
बृंदाबन की भूमि भाँवती ग्वालनु छाँडि दई ।
'परमानंद' लाल[1] के बिछुरें बिधना और ठई ॥

[१०२५] बिहाग

नींद तोहि बेचौं सारी जो कोइ गाहक होइ ।
आए मेरे ललना फिरि गए अँगना
मैं या पै हि रहि सोइ ॥
सीस धुनति कर सों कर मींडति
तैं मेरो सर्वसु डारौ री ! खोइ ।
'परमानँद' प्रभु अब कै मिलें तौ राखौं नैन-समोइ ॥

---

१. स्वामी (घ.)

[१०२६] मलार

बदरिया! तू कत ब्रज पर घोरी।
असल न साल सु लावन लागी बिधना लिख्यो बिछोरी॥
रहो[1] जु रहो जाउ घर अपनैं दुख पावत है किसोरी।
'परमानँद' प्रभु सो क्यों जीवै जाकी बिछुरी जोरी॥

[१०२७] बिहागरौ

माई री! चंद लग्यो दुख दैन।
कहाँ वे देस कहाँ वे मोहन कहाँ वे सुख की रैन॥
तारे गिनत गई री! सब निसि नैंकु न लागे नैन।
'परमानँद' प्रभु पिय-बिछुरे तें पल न परत चित चैन॥

[१०२८] सारंग

काहे तें ब्रज कह्यो रहन।
कमलनयन-बिना अब हीं लागी दुख सहन॥
मानों रवि-कोटि-किरनि लग्यो हृदौ दहन।
स्यामसुँदर-बिनु बिधु-गोकुल गह्यो मानों गहन॥
बिरह-बिथा कौन मेटै मेरौ ई लहन।
'परमानँद' प्रभु-बिना नैन लागे जल बहन॥

[१०२९] सारंग

ऐसें दिन काहू जिनि बीतौ।
जैसें पिउ-बिनु मोहि जाति है जग लागतु सब रीतौ॥

---

१. रहे जु रहे जाहि गृह (ग.)

भावी-बस निकसनि नहिं पावत प्रान हमारे रहैं पी तौ।
'परमानंद' जीव जो जातौ होतौ नेह सही तौ ॥

[१०३०] सारंग

हरि मो सों गमन[1] की बात कही ।
मन गह्वर उत तें नहिं आवत हौं सुनि सोच रही ॥
आजु सखी सपनों मैं देख्यो बिरह-बेलि उलही ।
जेइ-जेइ बचन कहे हरि मो सों तेइ-तेइ भए सही ॥
और सखी ! सपने में देख्यो सागर-मैंड ढही ।
'परमानँद' स्वामी के बिछुरें दुख मनु जात बही❀॥

[१०३१] सारंग

हरि कौ मिलनु भयो अब दूरि ।
स्याम-मनोहर कहाँ पाइये सब आनँद की मूरि ॥
जब-जब सुरति संग की आवै नैन लिये जल पूरि ।
वा मूरति[2] कौ दरसन नाहिन रही बिसूरि-बिसूरि ॥
कछु हू सेवा भई न मो पै हौं चरननि की धूरि ।
वह सनेह अब क्यों बिसरतु है जब बाँधत लट-जूरि॥
तौ भेटिये नंद के नंदन भाग्य होंहि जो भूरि ।
'परमानंद' बिरह भयो बैरी तिहिं डारी कटि चूरि॥

---

१. चलन (ग.)

❀ पद सं० ३५८३ पर सूरसागर में भी पाठ-परिवर्तन से

२. काम-रति (ङ. छ.)

[१०३२] सारंग

सखी री ! कहि धौं गोपाल कब आवै ।
बहुत दिवस के प्यासे लोचन अमृत प्याइ जिवावै ॥
नटवर-भेष धरैं या ब्रज में मुरली-सब्द सुनावै ।
मोरमुकुट गुंजा-मनि[1]-माला रचि-रुचि[2] रास बनावै ॥
कब गिरि चढि पीतांबर फेरै धौरी धेनु बुलावै ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर ब्रज-जुवती-मन भावै ॥

[१०३३] सारंग

वे देखियतु मधुबन[3] के रूख री !
तिनि[4] में स्याम हमारे प्रीतम
जिननि हरी मेरी नींद-भूख री ॥
कहा करौं कछु कहत न आवै
दरसन-बिनु लागत अति दूख री ।
'परमानँद' स्वामी के बिछुरैं
बिरह कोल्हू भयो तन मेरौ ऊख री ॥

[१०३४] देवगंधार

सखी री ! कित ही है वह गाउँ ।
जहाँ बसत ब्रजराज-लाडिलौ मथुरा मोहन नाउँ ॥

---

१. बन (ड.) २. रचि (ड.) ३. हमारे मधुवन (ड, छ)
४. वा वन के स्वामी (ड़. छ. ग.)

कालिंदी के कूल बसति हैं परम मनोहर ठाउँ ।
मो तन पंख होहिं सुनि सजनी ! अब ही उठि उडि जाउँ ।।
होनों होइ सो होहु किनि अब ही हौं इहाँ अन्न न खाउँ।
'परमानँद' प्रभु कबहुँ न छाँडों अबकैं पकरनि पाउँ ।।

[१०३५] मारू

कहाँ री ! साँवरौ पाइये खेलिये मिलि साथ ।
देखि सरद कौ चंद्रमा मींडति सब हाथ ।।
हम अबला जोबन-भरी भईं कान्हहिं जोग ।
हमें तजि हरि मथुरा गए कुबजा सों भोग ।।
जैसी रितु तैसी निसा कैसें बन चैन ।
कैसें मुकुलित हैं द्रुम-लता हुलसत मन मैन ।।
बिरह-बिकल ब्रज-भामिनी सोचति पछिताइ ।
'परमानँद' प्रभु-मिलन कौं कछु करहु उपाइ ।।

[१०३६] गौरी

कियें माई ! बारु के से घरुवा ।
गए उदारि-पुदारि खेलि-मिलि मोहन नंद-दुलरुवा ।।
ते दिन बिसरि गए मनमोहन जब डारे दधि-चरुवा ।
'परमानँद' स्वामी के बिछुरें सूकनि लागे तरुवा ।।

[१०३७] आसावरी

हमारे अंतर की बिरह-पीर कैसैं हूँ न जाई ।
गोविंद-गुन-स्त्रवन-कथन प्रान रहे माई !

भवन-काज कुटुँब-लाज जा पर बिसराए।
गोकुल-पति तजि गए सु अजहूँ न आए॥
तजौं देह इहि सनेह आगें सचु नाहीं।
बहुरि आस हरि-बिलास बृंदाबन माहीं॥
'परमानँद' स्वामी गोपाल जन कौ दुख जानें।
पूरब-हेतु सखी! चेति मिले ही रति मानें॥

[१०३८] आसावरी

मेरौ मन गोविंद सों मान्यौं ता तें और न जिय भावै।
जागत सोवत इहै उतकंठा कोउ ब्रजनाथ मिलावै॥
बाढी प्रीति आनि उर-अंतर चरन-कमल चितु दीनों।
कृष्ण-बिरह गोकुल की गोपी घर ही में बन कीनों॥
छाँडे अहार-बिहार देह-सुख और न चाली काऊ।
'परमानंद' बसत हैं घर में जैसें रहत बटाऊ॥

[१०३९] सारंग

हमारें माई! इहै बहुत जो बात चलावै।
राज-काज में स्याम-मनोहर कृपा करें तो निकट बुलावै॥
जादौपति वसुदेव कौ नंदन अब काहे कों गोकुल आवै।
भए छत्रपति मधुवन-बासी अब काहे कों गाँइ चरावै॥
चूक परी सेवन नहिं पाए मन समुझत बिरह-दुख पावै।
'परमानंददास' कौ ठाकुर ज़ा कौ जसु[1] ब्रह्मादिक गावै॥

---

1. सब (ग.)

[१०४०] मलार

नंद कौ लाडिलौ लला ।
कब देखों कब मिलों अंक भरि कंदर्प-कोटि-कला ॥
सावन-मास दहै वह चातक नान्हें बूँद-झला ।
ता प्रीतम-बिनु गनत न खूटहिं बासर-बरष-पला ॥
कहा करों मनु रहै न राख्यौ बिरहा दियौ जला ।
'परमानंददास' इहि औसर हरि-बिनु कौन भला ॥

[१०४१] सारंग

कब लगि मन करों हौं गाढौ ।
स्याम-मनोहर दिन-प्रति देखों अपने आँगन ठाढौ ॥
सपने माँझ दिखाई दीनौ दोऊ हाथ पसारचो ।
जागी रैनि बहुत दुख उपज्यो सिर धरनी गहि मारचो
सोइ जु घरी भली प्रीतम सों इतनों सुख बहुतेरौ ।
'परमानँद' स्वामी कबहिं मिलेंगे प्रान-जीवन-धन मेरौ॥

[१०४२] गौरी

लरिकई लों रोई देत हैं जैसे इहाँ देते ।
पाछे तें मेरे माट कौ गो-रस हरि लेते ॥
दुरि-दुरा कौ खेलिबौ खेलत बन-महियाँ ।
बाल-दसा लपटाइ कें गहते[1] मेरी बहियाँ ॥
वे बातें जब सुरति करी लोचन भरि आए ।
'परमानँद' प्रभु प्रीति कै हरि भए पराए ॥

---
१. गहत (ग. छ.)

[१०४३] गौरी

मदनगोपाल हमारे उनकें किहि लखे में पारे ॥
तब वह प्रीति-मिलनि बन मँह की प्राननि किए न न्यारे।
स्याम-मनोहर आय बैठते रुचिर तलप पर पारे ॥
बछ उबेरि खेलिबे के मिसि चलत सवार-सवारे ।
तब ऐसी करि हमारे हित कों संखचूड से मारे ॥
तुम ठाकुर बनिता तहाँ केती हम गुन-ग्राम बिचारे ।
'परमानँद' प्रभु तिनि की कहावति जनम नाथ-हित हारे॥

[१०४४] सारंग

कहाँ तें आए हौ द्विज-राज !
साँचु कहौ तुम कहाँ जाहुगे कहाँ बसौगे आज ॥
हम तौ थकित अस्त-उदयाकर रहे तलप इहाँ साज ।
इहि बट बसत जु कारौ भोगी कहत तिहारे काज ॥
गोकुल जाउ सँकेत सबनि सों जाइ कहौ हरि ! लाज ।
'परमानँद' बछ डरत हमारे तुष्णि विप्र ! लेहु नाज॥

———

२४. भ्रमर-गीत

[१०४५] सारंग

आजु कछु नीकी बात सुनावै ।
भुज फरकत कंचुकी-बँद तरकत नंदनँदन घर आवै ॥

कै मधुबन तें नंद-लाडिलौ कै[1] एक दूत पठावै ।
भँवरा एक चहूँ दिसि उडि-उडि कान लागि-लागि गावै॥
भामिनि एक कहति सखियनि सों नयननि[2] नीर ढरावै[3]।
'परमानँद' स्वामी रति-नागर हे ब्रजनाथ ! मिलावै॥

[१०४६] सारंग

❀हरि-कथा कहि मधुकर प्यारे !
हमहि[4] सुनावहु अब की लीला ।
आपुन मधुबन कहा करत हैं
कुबिजा मिलें कौन गुन-सीला ॥
कैसें कंस बध्यो रिपु मारे कैसें गज के दंत उपारे ।
कैसें धनुष भाँजि सिसु केसब[5] उय मल्ल रंग-भूमि में मारे॥
कैसें बसुदेव[6] बंदि छिडायो कैसें उग्रसेन भयो राजा ।
कैसें नंद गोकुलहिं पठाए आपुन रहे हैं सु कौन काजा॥
तब[7] षटपद प्रति-उत्तर दीनों
तुम्हारी बात निसि-दिनहिं चलावत ।
'परमानँद' प्रभु जदपि पर-पुरी
तुम्हारी बात उनके जिय भावत ॥

---

१. कोऊ दूत (ग. ङ. छ.) २. नैन नीर ढरि आवै (क.) ३. बहावै (ग. ङ. छ.)
❀ बहुरि० से भी प्रारंभ (घ.) ४. हमहुँ (ख.) ५. कैसें वह (छ.)
कैसौ बह (ड.) ६. बसुद्यौ (ड. छ.) ७. तौ षटपदै प्रति-ऊतरु (ङ. छ.)

[१०४७]	सारंग

❀सुनु सखि ! प्रीतम के संदेस ।
हम सों कहि पठए ब्रजबल्लभ गुपत ज्ञान—उपदेस ॥
हम जु कहत हैं तुम्ह न मानसि[1] हौ हृदै बिरह की पीर ।
बाहु-बिसाल कमलदल-लोचन भावत स्याम सरीर ॥
तदपि[2] कछु करिए परमारथ आज्ञा-भंगु न होइ ।
पाछें हमहिं बिचार परहिगी[3] सुदृढ करहिंगे[4] सोइ ॥
हास-बिलास प्रेम-अवलोकनि परिरंभन नख-पाँति ॥
'परमानँद' प्रभु उय[5] कत कीनी जो पै जिय इहि भाँति ।

[१०४८]	सारंग

बातें कहत बनाइ-बनाइ ।
करचक[6] प्रेम हुतौ या ब्रज में सो इनि मधुकर खोयो आइ ॥
संचित करि राख्यो उर-अंतर
जैसै इत-उत निसरि न जाइ ।
थोरी पुँजी हरै ज्यों तस्कर बपुरौ रंक मरै पछिताइ ॥
कमलनयन की मोहन-लीला जीवति[7] हैं गाइ ऽब गाइ ।
'परमानंद' सबै इनि खोई निर्गुन-कथा सुनाइ-सुनाइ ॥❀

❀ सुनहु (क. ग. ङ. छ.) सुनि हो सखी ! (घ.) से भी प्रारम्भ
१. मानिहौ (क. ग घ. ङ. छ.)	२. जद्यपि (क.)
३. परहिंगे (क. ग. ङ. छ.)
४. करेंगें (ग घ. ङ. छ.) ५. वह (ग. घ. ङ. छ.)
६. रंचक (ग.) ७. जीजति (ग.)
❀ पद सं. ४४११ पर सूरसागर में भी

[१०४९] सारंग

हम हिं गोपाल सों निज नातौ।
बृंदावन महिं ग्वालनु के सँग करतल भोजन खातौ॥
कबहुँ कदँब-तर टेकि लकुटिया ठाढे कहते बातौ।
कबहुँ[1] चरन एक राखि चरन पर
त्रिभंग—ललित मुसिकातौ॥
आनि मिलावहु[2] भाँवति मूरति-ज्ञान जोग करि हातौ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर बेनु-नाद-रँग-रातौ॥

[१०५०] सारंग

ऊधौ! तुम हौ निकट के बासी।
इहि परमारथ समुझि कहहु अब नाम बडौ किधौं कासी॥
ज्ञान ध्यान जोग आराधन साधन मुक्ति उदासी।
आन प्रकार कहूँ सचु नाहीं जैहें स्याम—उपासी॥
परमारथी जहाँ[3] लगु जेते बिरहिनि के दुखदाई।
'परमानंद' स्याम-रँग-राची नाहिंन जोग-सगाई॥❀

---

१. एक चरन पर चरन धरें री! तृभंग (ग. ङ. छ.)
एक चरन सखि! (क. घ.) २. मिलावतौ (छ.)
३. स्वारथ (छ.)
❀ पद सं० ४२८७ पर सूरसागर में भी

[१०५१] सारंग

हरि मनु औरहि ठौर धरयो ।
इहि[1] जानि ही बसीठी झूठी इहाँ ऊँ तें॒ऽब टरयो ॥
जबहु कृपा करी या बन पर मृग उनि मानु चरयो ।
गनिका आदरु करति पुरुष कौं देखति द्रव्य भरयो ॥
जो[2] सनेहु हौ हम पर पहिलें सो अब पार परयो ।
'परमानँद' प्रभु ऐसें मधुकर बहुतनि बाझ सरयो ॥

[१०५२] सारंग

मथुरा हूँ धेनु चरावत हैं ।
राम-समेत जसोदानंदन ऐसें[3] बेनु बजावत हैं ॥
कोउक[4] ग्वाल कहत ऊधो-प्रति अँग सिंगार बनावत हैं ।
मोरमुकट गुंजा वनमाला गोप-भेष बनि[5] आवत हैं ॥
वे[6] ब्रजनाथ नंद के नंदन बल्लव जाति कहावत हैं ।
करतल पात भात ता ऊपर सँग के सखनि[7] जिंवावत हैं ॥
सुंदर भवन मनोहर छाजे सब काहू देखरावत हैं ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर रति-रस-प्रीति बढावत हैं ॥

---

१. इहै जानि (ग. घ. ङ. छ)
२. जे सनेह हम पर पहिलें होते सब (घ.)
३. वैसें (ग. घ. ङ. छ.) ४. कोएक (ख.)
५ धरि (घ. ङ. छ.) ६. उहाँ (घ.) अब (ङ. छ.) ।
७. सखा (घ) ।

[१०५३] सारंग

जतिया-चारे के नाँते दिन दस मिलि रहिवौ।
और पाँहुनई कहा है हमारे माखन दूध दह्यौ खैबो ॥
राम-कृष्ण सों बिनती कीबी दोऊ बीर के पाँइनि परिबौ।
बाल-बिनोद सुमिरि नँद-नंदन
तब गोकुल कों गमन करिबौ ॥
ऊधौ-हाथ सँदेसौ पठयो[1] भव बूडत ब्रज उद्धरिबौ।
'परमानँद' प्रभु[2] करुना-सागर
मेटहु आइ बिरह कौ[3] जरिबौ ॥

[१०५४] सारंग

मथुरा काहे कों हौं आउँ।
इहि झूठी मनुहारि मधुप! सुनि जो पें हरि हिं न भाउँ ॥
जानति हों तुम मोहि बुलावत हरि कौ दरसन पाउँ।
या ते औरु कहा चाहति हों संग मिलें गुन गाउँ ॥
महत-हीन आदर-बिनु षटपद ! ऐसी बात बहाउँ।
जो पें प्रभु दासी करि मानें तौ पाँइ लागि मनाउँ ॥
तुम चलि जाहु स्यामसुंदर पें बहुरि सँदेस पठाउँ।
'परमानँद' स्वामी जो आवहिं बिरह-ताप बिसराउँ ॥

---

१. दीनों (क. ग.)

२. स्वामी करुनामय (क. ग. घ. ङ. छ.)

३. बिरह जरिबौ (क. घ. ङ. छ.), दुख जरिबौ (ग.)।

[१०५५] सारंग

तब जु[1] पलटि लेते बसन ।
आधी बाँटि मो[2] कहँ देते बीरी खंडित दसन ॥
अब उह प्रीति कहाँ गई प्यारे ! कंध भुजा धरि हसन ।
बारंबार हु नाम उचारत[3] ठालि[4] न देते रसन ॥
इहि कहिबी जदुनंदन[5] आगें भूलि गए ओय[6] जसन ।
'परमानँद' प्रभु तेरे बिछुरें काम-भुजंगम[7] डसन ॥

[१०५६] सारंग

प्रीतम तब जु बेनी गुहत ।
बोलत हसि स्यामसुँदर[8] धवरी अध दुहत ॥
अब तौ मन[9] और भयो मधुबन के रहत ।
अनरुचि ब्रज-ऊपरि भई[10] अब सँदेसु कहत ॥
देखे-बिनु बदन-रूप नैन-नीरु बहत ।
'परमानँद' इहि वियोग कठिन प्रान सहत ॥

---

१. जो (ग. घ. ङ. छ.) २. मो कों (क. ग. घ. ङ. छ.)
३. उच्चरते (ग. घ. ङ. छ.) ४. ठोली (क. ग. घ. ड. छ)
५. नँदनंदन (क. ग. घ. ड. छ.) ६. वह (ग. घ. ङ. छ.)
७. भुवंगम (क. ग. घ. ड. छ.) ८. स्यामघन-सुंदर (क.)
९. जिय और भई (क. ग. घ. ड. छ.) १०. ठई (ग. क.)

[१०५७] केदारौ

तौ संभवै सरीर होइ जो मिलिबे कौ अनुमानु ।
हरि अनंत निरगुन अविनासी निराकार भगवानु ॥
कहा कहत हौ तुम कहा संचैं[1] बचन तुम्हारे ।
अब का के पठये आए हौ मदनगोपाल पियारे ॥
ग्यान-दसा हमरैं[2] नहिं उपजी अति सकाम ब्रज-नारि ।
'परमानँद' प्रभु देखैं जीजैं सुंदर रसिक मुरारि ॥

[१०५८] सारंग

माधौ ! जानि जाहु ओइ[3] बतियाँ ।
जेठ-मास जमुना-जल-भीतर जब खेलत[4] हिं[5] लतियाँ ॥
निरमल चंदु पून्यों कौ तेउ सरद की रतियाँ ।
परिरंभन अवलोकित[6] सनमुख निरति[7] करत हे गतियाँ ॥
वृंदावन बिहरत नँदनंदनु सुरति करत हे[8] भतियाँ ।
'परमानँद' स्वामी रति-नागर कहा सचु पठए पतियाँ ॥

[१०५९] सारंग

काहे लाल ! भूल्यो प्रेम-बतउआ ।
बृंदावन सुख-सेज्या-कारन तोरत फिरत पतउआ ॥

---

१. और साँचे (ड. छ.), औरें साँचे बोल तिहारे (ग.)
२. हमारें (ड. छ.) ३. वेइ (ग. छ.) ४. वे गहे लतियाँ (ड. छ.)
५. हैं लतियाँ (ग.) ६. अवलोकन (ग.)
७. नृत्य (ड. छ.) ८. इहि (ग. ड. छ.)

कहिबी जाइ स्यामसुंदर-प्रति पाले हंस के छउआ ।
टेढे अंग नीच नव लालच जाइ निवाजे कउआ ॥
भले लोक तुम सब विधि नागर बेगिहि भए बटउआ ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर पठए मधुप चलउआ ॥

[१०६०]   सारंग

गुपति मते[1] की कहति कहौ जिनि काहू के आगें ।
के हरि जानें कै तुम ऊधौ ! इतनीयें पें माँगें ॥
एक बार[2] खेलत वन-महियाँ में जु जनाई भूख ।
पाके फल तब देखि मनोहर चढे कृपा करि रूख ॥
एक दिवस[3] बिहरत बन हरि[4]-सँग कंटक चुभि गयो पाइ।
कंटक हिं[5] करि कंटक काढ्यो अपने हाथ लगाइ[6] ॥
ऐसी केती[7] हमारी-उन्ह की जब हौ गोकुल-बासु ।
'परमानँद' प्रभु सब[8] बिसराई मधुबन कियो निवासु॥

[१०६१]   सारंग

मधु-माधौ नीकी रितु आई ।
खेलन जोग अबहिं वृंदावन कमलनयन हरि! देखहु आई[9]

१. समै (छ.)   २. समै (ग क.)   ३. द्यौस (क. ग. घ. ङ. छ.)
४. अंतर (क. ग. ङ. छ.)   ५. ही सों (ग. ड. छ.)
६. सुभाइ (ग.)   ७. कितनी (घ)
८. सबैं बिसारी कियौ मधुपुरी (क. ग. घ. ड. छ.)   ६. माई ! (ख.)

मंद सुगंध बहै मलयानिल कोकिल कूजनि[1]-गिरा सुहाई।
मदन-महीपति कोपि पलान्यों
दहौं[2] दिसि जाकी फिरी दुहाई ॥
पथिक बीर! संदेस हमारौ
चरनकमल गहि कहियहु जाई ।
'परमानँद' प्रभु अवधि बदी ही नाथ! कहा औसेर लगाई॥

[१०६२] सारंग

मोहन ! बिसरि गई वह बानि ।
जो[3] माँगती प्रीति के कारन[4] सोई देते आनि ॥
नीके[5] फूल सुगंध द्रुम-ऊपर तोरते मनोहर पानि ।
कमलनयन मेरे सुख[6]-कारन भए सकल रस[7]-दानि॥
सब कहिबी जदु[8]नंदन आगें छाँडि सकुच मन-कानि ।
'परमानँद' प्रभु जदपि राजा बहु बनिता के मानि ॥

[१०६३] सारंग

माधौ ! गोकुल अपनों गाउँ ।
ब्रज की सुधि काहे बिसरावत तुम्हरे[9] बाप[10] कौ बडौ[11] नाउँ॥

---

१. कूजित (ड. छ.) २. दस (छ) ३. जब (क. छ.)
४. कानन ५. पाके फूल चढि द्रुम पर (ग.)
६. हित (क. ग. व. छ.) ७. सुख (क. ग. घ. छ.) ८. नंद (घ.)
९. तुम्हारे (घ. ड. छ.) १०. बवा (घ.) ११. बड़ौई (ग. ड. छ.)

उद्धव सों मनुहारि करति सब पहुनाचारे लाल मिलाहु।
'परमानँद' स्वामी तुम्ह नागर मेटहु आइ बिरह-दौ[1]-दाहु॥

[१०६४]   सारंग

अब मन बसी गोपाल-मूरति।
कमलनयन भावै उह सूरति॥
जद्यपि मधुप ज्ञान दिखरावै।
हमारी आँखिनि-तर हुँ न आवै॥
दूरि बहाऊँ इहि उपदेस।
जीउ डरत है सुनत सँदेसु॥
चलत चारु गति मोहन-बानी।
'परमानंद' मिलहु आनी॥

[१०६५]   सारंग

ऊधौ जी[2]! मिलत ही लै धरियो पाँइ पाती।
सनमुख बचन कहियो माधौ सों
अति दुख-भरि मेरी छाती॥
बहुतै कहा लिखियें पतियनि में बिलपति रयनि बिहाती।
'परमानँद' स्वामी के बिछुरें बिरह भयो संघाती॥

[१०६६]   सारंग

ऊधौ भए बिदेसी माधौ।
जब तें ब्रज तजि गए मधुपुरी उहाँ न प्रेम अब आधौ॥

---

१. की दाह (घ.)   २. जू (ग. ड. छ.)

ओइ[1] जादौ-पति हम बनचारी कैसें बनें सगाई ।
जो घुँघची सोने-सँग तोली इतनी[2] बहुत बडाई ॥
अब उह सुरति जब आवति है बृंदाबन-द्रुमराजी ।
जमुना-पुलिन-समीर सु सीतल रास-केलि तब साजी ॥
'परमानंद' प्रीति गोपिनि की नयन रहे अरुझाई ।
बिनु गोपाल गोकुल के बासी निमिष कलप-सम जाई॥

[१०६७] सारंग

बारक गोकुल तन मन कीबौ ।
गोपी ग्वाल गाँइ बनचारी अपनों दरसन दीबौ ॥
ए सब लोग बिरह के कारन अंत कहाँ लगु[3] लीबौ ।
मथुरानाथ कृपा के सागर ! तुम्ह बिन कैसो जीबौ ॥
चरनकमल गहि बिनती कीनी इहि सँदेस मुख कहिबौ।
'परमानँद' स्वामी सुख-सागर सुनि कें नाहिंन रहिबौ॥

[१०६८] सारंग

प्रीति पुरानी जिनिऽब करहु[4] ।
बलि-बलि जाउँ नंद के नंदनु चितु[5] जिनि अनत धरहु॥
ऊधौ ! कहियो कमलनयन सों ब्रज-कुल[6] अपनों गाउँ।
नंद-जसोदा सों निज नाँतौ जानि तुम्हारो नाउँ ॥

१. वे (ग. घ. ङ. छ.) २. इसनिये (ग. घ. ङ. छ.)
३. लों (क. ग. घ. ङ. छ.) ४. करौ (ग. ङ. छ.)
५. तजि अनतें न धरौ (क. ग. ङ. छ.) ६. पुर (ग. क.)

तुम्हारे चरनकमल कौ अनुदिन सुनि ब्रजनाथ नरेस !
'परमानंद' मिलन अब नाँही गर्ग कहैं[1] उपदेस ॥

[१०६६]   सारंग

गोकुल सब गोपाल-उपासी ।
जे[2] गाहक साधन के ऊधौ ! ते[3] सब बसत ईस-पुर कासी॥
जद्यपि हरि हम तजीं अनाथ करि
अब छाँडति क्यों रति[4] की गासी[5] ।
अपनी सीतलता नहिं छाँडत
यद्यपि बिधु[6] राहु भयो ग्रासी ॥
किहिं अपराध जोग लिखि पठयो
प्रेम-भजन तें करत उदासी ।
'परमानँद' ऐसी को बिरहिनि
माँगति[7] मुकति छाँडि गुन-रासी* ॥

[१०७०]   सारंग

कहियो अनाथ के नाथहिं !
स्याम-मनोहर सब चाहति हैं बहुरों[8] तुम्हारे साथहिं ॥

---

१. गरग-वचन (क. ग.)   २. जो (ग. घ. ड. छ.)
३. सो (ग. घ. ड. छ.) ४. रस (ड. छ.) ५. जासी (ग. घ. ड. छ)
६. बिधू राहु है ग्रासी (क. ग. घ. ड. छ.) ७. मांगै (ग. ड. छ.)
* सूरसागर प० सं० ४५४६ पर भी   ८. बहुरचौं (ग. ड. छ.)

बार-बार बिरहिनि ब्रज-बनिता सुमिरति है गुन-गाथहिं।
मुरली अधर लोल कर-पल्लव ध्यान करति उहि हाथहिं॥
लोचन सजल प्रेम-बिरहातुर फुनि-फुनि ढोरति माथहिं।
'परमानंद' मिलन बहुरि कबहूँ दुखित निहारति पाथहिं॥

[१०७१] सारंग

मेरे मन गह्यो माई! मुरली कौ नाद।
आसन पवन ध्यान इहै[1] जानौं कौन करै अब बाद-बिबाद॥
मुक्ति देहु संन्यासिनि कौं हरि!
कामिनि देहु काम की रासि।
धर्मीनु देहि धर्म कौ मारगु
मेरौ मनु रह्यौ पद-अंबुज-पासि॥
जो कोउ कहै ज्योति सब या महिं
सपनें न छुहैं[2] तिहारौ जोग।
'परमानंद' स्याम-रँग-रातौ
सबै सह्यौ मिलि एक अँग लोग॥

[१०७२] सारंग

बहुरि कालीदह काली आयो।
मदनगोपाल तबहि काहे कौं रमन-द्वीप पठायो॥

---

१. नहिं (ग. घ. ङ. छ.)   २. छुएं (ङ. छ.)

पथिक ! सँदेस कहियहु हरि ब्रज काहे बिसरायो ।
नंदकिसोर अकेलेइ तुम-बिनु सब गोकुल दुख पायो ॥
सब विपरीति भई इहि औसर बिषम भयो हरि कीनों ।
'परमानँद' प्रभु तुम जग-मोहन ! रूप-तेज हरि लीनों॥

[१०७३] सारंग

मोहन ! परदेस रह्यो इहाँ इहि सूत ।
समाधान करिबे कों पठयो है दूत ॥
अब लौं ए प्रान रहे आवनि की आस ।
एते दिन अवधि गनत बीते ब्रज-बास ॥
नैननि नहिं[1] घट्यो नीर मुख न घटे स्वास ।
झंखत तन-रूप घट्यो 'परमानँददास' ॥

[१०७४] सारंग

सु रहौ ऊधौ ! तुम्हारी बसीठी ।
आपुन मधुबन पाँउ धारिये बिनु गोपाल बात सब सीठी॥
इहि[2] सँदेस कैसै मानें पैं कमलनयन लिखि पठई पाती ।
कारे कागद बाँचि सुनावहु[3]
इन्ह मँह कहाँ सरद की राती ॥
'परमानंद' स्वामी के आगें तुम सो दूत और पुनि कोउ।
को ऐसौ बिरहिनि ज्ञान मानति है
हम कों आनि दिखावहु सोउ ॥

---

१. है पूरे नीर (ड. छ.) २. ए संदेस (ग. ड. छ.) ३. सुनाओ या में (ड.छ.)

[१०७५] सारंग

माधौ ! आइबौ दिन च्यारि ।
पहिले उ[1] पहिचानि नागर उहै प्रीति सँभारि[2] ॥
बिरह तोरें[3] मरति मोहन ! रयनि नींद[4] न नारि ।
बाल-लीला सुमिरि भंखति कुंज-पुंज मुरारि ॥
कहियो ऊधौ ! कान्ह-आगें बसत घोष उजारि ।
'दास परमानंद' स्वामी उपरि उलटी सारि ॥

[१०७६] सारंग

✽उह सुधि कमलनयन बिसराई ।
मधुबन बसत और चित कीनौं बात सँदेसनि आई ॥
एक दिवस बिहरत कानन-मँह[5] कंटक अटकी सारी ।
ठाढी राखि बाँह गहि मोहन अपनें हाथ निवारी ॥
ऐसी बहुत[6] गुपत की चरचा कहाँ लगु बरनौं माई !
'परमानँद' स्वामी के बिछुरें विधि सौं कछु न बसाई ॥

[१०७७] सारंग

✽इन्ह बातनि के मारे मरियत ।
निर्गुन ज्ञान मधुप लै आए
बिनु गोपाल कैसै निस्तरियत ॥

---

१. हूँ (छ.) २. विचारि (घ. ङ. छ.)
३. तेरे (क. ग. घ. ङ. छ.) ४. दिन नर-नारि (ग. घ. ङ. छ.)
✽ वह० (ग. घ. ङ. छ.) से भी प्रारंभ ५. में (क. ग घ. ङ. छ.)
६. किती (ग.), केति (क.) ✽ इनि० से भी प्रारम्भ

सबै अटपटी कहैं रे मधुकर ! सुनी सखी ! मधुबन की रीति।
कौन हाल हमारे ब्रज बीतत जानतु नहीं बिरह की रीति॥
बुझी अग्नि बहुरयों सिलगाई अंतरगत बिरहानल जारत।
'परमानँद' स्वामी सुख-सागर
मिलि काहे न तन-ताप निवारत❀ ॥

[१०७८] सारंग

गोपालहिं पठै देहु हौं देखों।
एक बार मिलि जाउ पाहुने ! जनम सफल करि लेखों॥
कहियो जाइ सँदेसो ऊधो ! जहाँ देवकी मात।
तेरो पूत ठगि गयो जु हम कों घर-बन कछु न सुहात ॥
बारह बरस रहे ब्रज-भीतर सो पहिचानि बिसारी।
'परमानँद' स्वामी के बिछुरें मरतीं बिरह की मारी❀ ॥

[१०७९] सारंग

सँदेसनि क्यों निघटित दिन-राति
जब लगि कान्ह कमल-दल-लोचन
देखति नाहिं उहि भाँति ॥
स्रवननि सुनों मनोहर बानी वा मुरली की जाति।
रितु-बसंत कोकिल कल कूजत जहाँ बरहा बन- पाँति ॥

❀ पद स० ४४१० पर सूरसागर में भी
❀ पद सं० ४७०४ पर सूरसागर में भी

अब इहि भूमि स्यामसुंदर-बिनु धाइ-धाइ है खाति ।
'परमानंद'[1] बिरहिनी गोपी बार-बार बिलखाति❀ ॥

[१०८०] सारंग

पतियाँ बाँचे हू न आवै ।
देखत अंक नयन जल पूरैं गदगद प्रेम जनावै ॥
नंदकिसोर सुहथ अच्छर लिखि ऊधौ-हाथ हठाये ।
समाचार मधुबन-गोकुल के मुखहि बाँचि सुनाये ॥
ऐसी दसा देखि गोपिनि की भक्ति-मर्म तब[2] जान्यौं ।
मन-क्रम-बचन-प्रेम पद-अंबुज जन[3] 'परमानँद' मान्यौं ॥

[१०८१] सारंग

ऊधौ ! क्यों बिसरत उह बिनोद हरि की लरिकाई ।
कहते जब मधुर बचन बाबा अरु माई ॥
रेंगत[4] जब आँगन में करदम लपटानी ।
धाइ[5]-धाइ लै उछंग झारति नँदरानी ॥
गहते जब माट मथत करते हठि[6] झगरौ ।
खेलत रमनीय[7] भूमि गाइनि कौ बगरौ ॥

---

१. 'परमानँद' प्रभु बिरहिनि (ङ.)
❀ पद सं० ४३९१ पर सूरसागर में भी   २. सब (घ.)
३. 'परमानँद मन' (ग. घ. ङ. छ.)   ४. आँगन की रेंगनि कछु (क.)
५. लै उछंग चूँबति मुख पुनि-पुनि (क.)
६. कछु (क.)   ७. रमनीक (क.)

ऊधौ[1] ! ब्रज-बास देखि नाहिंन जिय[2] रहतौ।
'परमानँद' स्वामी गोपाल अंचल जब गहतौ❀॥

[१०८२] सारंग

मधुप ! बार-बार सुरति आवै हरि की वह बानि।
सुंदर मुख चंचल कर हँसि-हँसि लपटानि॥
जा कारन गोकुल बसि परिहरी कुल-कानि।
तेई गोपाल मधुबन बसि मेटी पहिचानि॥
तुम हू तो सुनियत हौ जदुकुल के मानि।
'परमानँद' स्यामसुँदर[3] मिलवहु किनि आनि॥

[१०८३] सारंग

लै चलि ऊधौ ! अपने संग।
नंदकुमार-राज-लीला धरि लै दिखाउ श्रीपति के रंग॥
बसत समीप मरम नहिं जान्यौं अति भोरे गोकुल के लोग।
तजि बैकुंठ बाल[4]-ग्वालनि में
कवन पुन्य तें भयो है सँजोग॥
जब हम दाम[5] उलूखल बाँधे
नाम धरयो प्रभु माखन-चोर।
सो अपराध मिटै अब कैसै खुनस करै जो नंदकिसोर॥

---

१. अब तौ (क.) २. मन (क.) ❀सूरसागर प० सं० ४६३५ पर भी
३. प्रभु गिरिधर (क.), नंदनँदन (ग. घ. ङ. छ.)
४. वास (ग. घ. ङ. छ.) ५. हाथ (घ.)

प्रीतम बहुरि मिलै जो कबहूँ
चरन-कमल गहि लाउँगी पोष।
'परमानँद' स्वामी सुख-सागर
दीनदयाल धरौ जिनि दोष[1]॥❀

[१०८४] सारंग

❀ अपनौं पहिलौ प्रेम बिचारिबौ।
ऊधौ! जाइ चरन गहि कहियो चित कौ हितु न उतारिबौ॥
जद्यपि राजकाज मधुबन कौ गोकुल कबहुँ[2] सँभारिबौ।
कमलनयन बारक चित दीजौ बन गोधन कौ चारिबौ॥
हम ब्रज-लोक मया के मानिस इतनौ काज सँवारिबौ।
'परमानँद' प्रभु एक बार मिलि बिपुल बिरह-दुख टारिबौ॥

[१०८५] सारंग

बारक बदन दिखाइ कें मोहन फिरि पाछें नहिं हेर्‌यौ।
मनहुँ कियो गोपाल पियारे ब्रज-जोगिन[3] कौ सौ फेरौ॥
उय लोचन चंचल कुंचित मानहुँ कमल मधुपनि है घेर्‌यौ।
ठाढे चतुर ठगे चतुरानन सर्वसु हरि लीनौ ब्रज केरौ॥
ऊधौ! पाइ लागौं इहि कहियो तुम जु कहत हे[4] ब्रज है मेरौ।
'परमानँद' प्रभु अब कहाँ छाँडत अपने नंद-बबा कौ खेरौ॥

---

१. रोष (ग)
❀'लै चलि ऊधौ! अपने देस' इस तुक से सूरसागर पद सं० ४४३७ पर भी
❀ पहिलौ प्रेम० (ग. क.) से भी प्रारंभ २. बहुत (ड. छ.)
३. गोपनि (ड. छ.) ४. हौ (ग. छ.)

[१०८६] सोरठ

ऊधौ ! इहि दुख छीन गई ।
बालक-दसा नंदनंदन सों बहुरि न भेंट भई ॥
नयन-नयन सों नयन मिलावैं बयन-बयन सों बात ।
बहुरि अंग को संग न पायो इहै क्रूर विधात ॥
बहुरि कान्ह क्यों न गोकुल आए मधुबन हम न बुलाईं।
'परमानँद' स्वामी के बिछुरें दसमी अवस्था आई ॥

[१०८७] सारंग

दिन च्यारि आइयौ मन-भावन !
कहिबी मधुप ! स्यामसुंदर सों अब लागी दुख पावन॥
कमलनयन की सुंदर लीला लागी गुपत बतावन ।
जहाँ-जहाँ खेलत नँद-नंदन आनँद-प्रेम बढावन ॥
कमलनयन दिन नाहिंन भूलत विरह-ताप बिसरावन।
'परमानंददास' कौ ठाकुर मुरली मधुर बजावन ॥

[१०८८] सारंग

मेरे जीवनि श्री गिरधारी ।
राधा-रँवन कमलदल-लोचन बृंदावन-संचारी ॥
जोग-मोट सिर-भार आनि कैं कत तुम घोष उतारी ।
इतनि दूरि जाउ चलि कासी जहाँ बिकै है प्यारी ॥

इहाँ[1] मुकति कों कौन छुहत है जदपि पदारथ चारी।
'परमानँद' स्वामी मनमोहन दरसन की बलिहारी ॥

[१०८६] सारंग

वे बातें जमुना-तीर की।
कबहूँ सुरति करत हैं ऊधौ ! हरनि हमारे चीर की ।
लै सब बसन महा ऊँचे द्रुम खकि चढनि बलबीर की
हाथ जोरि कें आए[2] सबनि पें दुहाई नंद-अहीर की ॥
अंग दुराइ रही सरिता में खरी जुडाई नीर की।
'परमानँद' प्रभु चतुर-सिरोमनि जो जानैं पर-पीर की❀॥

[१०६०] सारंग

सोई दिन सालत हैं छाती।
अब ऊधौ ! ऐसी उन्हें उपजी पठवनि लागे पाती ॥
तब हम कमलनयन-सँग रमती[3] सरद-चंद की राती ।
स्यामसुँदर के हित की बींधी भवन छाँडि बन जाती ॥
मरों न जियों विरह की जारी कंठ मूँठि लै काती ।
'परमानँद' स्वामी के बिछुरें हम चातक-पिक-घाती ॥

---

१. महा (क. ग. घ. ङ. छ.)

२. आउ सब मो पें (ङ. छ.), आइ वसन लै (घ.)

❀ पद सं० ४५३२ पर सूरसागर में भी साधारण पाठ-भेद से

३. खेलति (छ.)

[१०६१] सारंग

लिखि-लिखि पठवनि लागे जुहार।
ऐसी भई स्यामघन-सुंदर! पतियनि सों ब्यौहार॥
तब वह कृपा प्रीति गोकुल सों लेते सबै अभार।
गिरि उद्धरयो इन्द्र-बलि मेटी
जब ब्रज परयो हो दुख भार॥
जानो बात बहुरि नहिं आवै गरग-बचन भयो सार।
'परमानँद' प्रभु जे बिरही-जन तिनि कौ क्यों निस्तार॥

[१०६२] सारंग

बहुत गुन मानोंगी हौं तेरौ।
अब की बेर मिलाइ गोपालै प्रान-जीवन-धन मेरौ॥
कठिन बिरह उपज्यो उर-अंतर या कौ करिहि निबेरौ।
हस्त-कमल मेरे उर राखहु[1] अति सीतल सुख केरौ॥
एक बार लै आउ दगा दै करि उपकार घनेरौ।
'परमानँद' प्रभु बिरचि रहे सखि! बाँधि बिरह कौ बेरौ॥

[१०६३] धनाश्री

लरिकाई की प्रीति कहौ धौं अलि! कैसै छूटत।
कहा करौं ब्रजनाथ-चरित्र अंतरगत लूटत॥

---

१. राखहि (ग. ङ. छ.)

उह[1] चितवनि उह चालि मनोहर
उह कल बेनु मधुर धुनि गावनि ।
उह नट-भेषु[2] स्यामसुंदर कौ उह लीला बन तें ब्रज-आवनि ॥
चरन-कमल की सपत करति हौं
इहि सँदेस मोहि विष भरि-लागत ।
'परमानँद' प्रभु नाहिंन बिसरत
दिन अरु रयनि सोचत अरु जागत❀ ॥

[१०६४] सारंग

बातनि सब कोऊ समुझावै ।
ऐसौ नाहिंन प्रीतमु कोऊ जो ब्रजनाथु मिलावै ॥
आयो दूत निकट कौ बासी औघर[3] ज्ञान बतावै ।
जो हमारे हितु स्याम-मनोहर लोचन भरि न दिखावै ॥
पहिली कथा पुरातन-मुनि-कृत कहि-कहि स्रवन सुनावै ।
सो न कहै जो नंद-लडैतौ जन 'परमानँद' गावै卐 ॥

[१०६५] धनाश्री

गोपाल बटाउ की सी रीति ।
जिहिं उपदेस सँदेस पठायो उपर-मनै की प्रीति ॥

---

१. 'उह' के स्थान मैं 'वह' सर्वत्र (ग. घ. ङ. छ.) २. वेष (क.)
❀ लरिकाई कौ प्रेम' इस तुक से पद सं० ४६६४ पर सूरसागर में भी
३. निर्गुन (क.)
卐 पद सं० ३८०१ पर सूरसागर में भी

केतिक बीच मथुरा गोकुल सों निकट बसत परदेस।
एक दिवस मिलि जाहु मनोहर! मेटौ बिरह-कलेस॥
बाल-दसा कौ नाँतौ मानहु मोहन नंद-कुमार!
'परमानँद' स्वामी वह समुझहु जब गहते कुच-हार॥

[१०६६] धनाश्री

❀लोभ की प्रीति दिवस द्वै-चारि।
स्वारथ तें परमारथु नाँही इहि अपने मुख कही मुरारि॥
इहि उपदेस कह्यो ऊधौ सों केवल औधि[1] बिचारि।
सर्वात्मना भजन है मेरौ चिंतनु हृदय-मँझारि॥
तुम्हरें निकट हौं रहत सदाई देखौ दृष्टि पसारि।
'परमानँद' प्रभु इहि सब झूठी मूरति देखौं तुम्हारि[2]॥

[१०६७] सारंग

मो तें कछु सेवा न भई।
धोखें ही धोखें रही घोष-मँह[3] जाने नहीं त्रैलोक[4]-मई॥
राम-कृष्ण सों बिनती कीबी सब[5] अपराध क्षमा[6] कीबौ।
ऐसे भाग्य होंहिंगे कबहूँ बहुरि गोपाल गोद लीबौ॥

❀ लोभी प्रीति० (छ.) से भी प्रारम्भ

१. औधि मन-माँहि (ड. छ.) २. तिहारि (घ.)

३. में (क. ग. घ. ड.) ४. त्रैलोक्य (ग. ड. छ.) ५. अब (ड.)

६. छमा (क. ग. घ. ड. छ.)

चरन-कमल गहि इतनी[1] कहिबी एक बेर दरसन दीबौ।
'परमानँद' स्वामी कृपाल चित इतनौ अनुग्रह अब कीबौ॥

[१०६८] धनाश्री

मथुरा देखिबे की साध।
जहाँ निवासु कियो नँद-नंदन जादव[2] बोध अगाध॥
सब गोपी मिलि बूझनि लागीं उद्धव[3] हरि के दास।
एक बेर गोविंद[4] मिलावहु[5] सुँदर मोहन-हास॥
लोचन सजल-प्रेम-पुलकित तनु ऊभी[6] लेति उसास।
बढ्यो दुसह बिरह कहा कीजै सुनि 'परमानँददास'॥

[१०६६] धनाश्री

बहुत दिन बीते नंदकुमार!
बिनु देखे वह मोहन-मूरति हरि-लीला-अवतार॥
अवधि-बचनु दै गमन कियो हौ सो न परौ अब पार।
बिरहातुर व्याकुल ब्रज-नारी नाहिंन आनि अधार॥
इहि कहिबौ जादौपति-आगें चितन साँझ-सवार।
'परमानँद' प्रभु मिलहु कृपा करि प्रकट हरन भू[7]-भार॥

[११००] आसावरी

जैसी तुमऽब कहत[8] तैसी कौन मानै।
स्याम-सुरूप कमलदल-लोचन जो वा संग करै सो जानै॥

---

१. बिनती (घ.) २. जादौ (ग. घ. ड. छ.) ३. ऊधौ (ग. घ. ड. छ.)
४. गोपाल (ग. छ) ५. मिलावौ (छ.) ६. ऊरध (छ.)
७. भूतल (ड. छ.), भुव (ड.) ८. कहत हौ (ग. घ. ड.); कहौ (छ.)

साँचौ ग्यान-ध्यान साँचौ पुनि साँचौ इहि उपदेस।
इहि अध्यातम-मत जोगिन कौं
गोपी-जन के हृदै प्रवेस॥
जिहि मिलि खेल्यो कंठ बाहु धरि कालिंदी के कूल।
तिनि के हृदै अवर[1] क्यों आवै इहि देखैं पद-मूल॥
हम सों हरि सों काम-सगाई इहि कीनी जगदीस।
'परमानँद' प्रभु आनि मिलावहु जनम जातु है खीस॥

[११०१] मारू

मधुकर ! छुहौ जिनि चरन हमारे।
तहाँ[2] जाहु माधौ के प्यारे॥
काहू सखी देखि एक[3] मधुकर तुम्ह[4] जु इहाँ क्यों आए ?
चंचल जाति भाँति उनही की मुख कुमकुम लपटाए।
गावहु तहाँ जहाँ कछु पावत[5]
हो विजय[5]-सखा ! सखि आगें।
हम तौ दिन[6] दुखित बैरागिनि दैं कहा हम माँगें॥
अधर-सुधा-रस सकृत पान करि बन बिहंग भए जोगी।
'परमानंददास' क्यों जीवहि जे गोपाल-बियोगी॥

---

१. और (ध. छ.)
२. जहाँ (ग.) ३. इक (ङ. च.) ४. तुम धौं (घ.) हम लों (ग.)
५. पावहु (ग. घ. ङ. छ.) ६. दुःख (ग. घ. ङ. छ.)

[११०२] सारंग

*दिवस दस रहि चलिये हरिदास !
बहुरि गोविंद[1]-कथा कहाँ सुनिबी बैठि कौन के पास ॥
ऐते दिवस हम जात न जाने संतत[2] संगति-बास ।
एक दिवस कहँ आए ऊधौ ! कृपा करो षट मास ॥
पूरब[3]-कथा सँभारनि लागी ठाढी लै-लै स्वास ।
'परमानँद' प्रभु कबहु[4] देखिबे जगत-विमोहन हास ॥

[११०३] सारंग

मोहन-मुख देखें सुख-जीजै ।
जो पै राम-कृष्ण नाँही ज्ञान कहा लै कीजै ॥
औषध आन रोग आनै कछु इहि झूठौ उपचार ।
परमानँद' स्वामी के बिछुरें सब[5] चाँप्यो दुख-भार ॥

[११०४] सारंग

ऊधौ ! कवन बैरु चातक-पिक हम सौं जिनि[6] ठाने ।
नंदनँदन प्राननाथ दूरि गए जाने ॥

---

* दिन दस (क. ग. घ. ड छ.) से भी प्रारम्भ

१. गोपाल (,,)

२. सत-संगत की आस (ग. घ. ड. छ.)

३. ठाढी गोपी पंथ निहारति ऊरध लेति उसास (क. ग. घ. ड. छ.)

४. कबरो (क. ग. घ. ठ. छ,)

५. ब्रज (ग. घ. ड. छ.)   ६. जिय आनें (ड.)

रितु बसंत बिनु अनंत काहे कों आई ।
दुख-मँह[1] दुख को[2] ऽब सहै बरषा नियराई ॥
सरद-निसा चक्रवाक बोलि-बोलि रोवै ।
सहि न सकै[3] प्रान हमारो हियरा[4] जरावै ॥
धरनी-पेय[5] गगन-मेह मंद-मंद गरजै ।
'परमानँद' स्वामी गोपाल इन्ह कौं कोउ[6] बरजै ॥

[११०५] सोरठ

मेरौ मन हरयो री ! नागरु ।
कैसै ऽब जीवहिं चरन बिनु देखें
जानति करम उजागरु ॥
अवधि- वचन कहि गहरु लगायो कृपा-प्रेम के सागरु ।
मिलन-पियास[7] स्याम-जल मधुबन
अब गोकुल भयो बागरु ॥
कैसै मन पतियातु सँदेसनि लिखि-लिखि पठवत कागरु ।
'परमानंद' बिरहिनी कौ दुख बिनु प्रीतम दिन आगरु ॥

---

१. में (ग.) २. कौन (ग. घ. छ.)
३. सकत (घ.) ४. जियरौ (घ.)
५. पय (ग. ज.) ६. को (ग. घ. ङ. छ.)
७. प्यास (क. ग. घ. ड. छ.)

[११०६] सारंग

ऊधौ ! जाइ-जाइ कहौ दूरि करैं दासी ।
इहि बिचारि ब्रज की नारि करत हैं सब हाँसी ॥
हंस-काग खल-कपूर काच-कंचन ऐसौ ।
कुबिजा अरु कमलनयन संग बन्यो तैसौ ॥
जाति-हीन कुल-बिहीन कान्ह-कुँवरि दोऊ ।
जो जैसौ सँग करै तैसौ होइ सोऊ ॥
गोपिनि के बचन सुनत गदगद भई बानी ।
'परमानँद' बिरह-पीर बेदौ नहिं जानी❀ ॥

[११०७] सारंग

ऊधौ ! बिनु जीवन क्यों जीवहिं ।
तिरोधान रबि मधुबन आए नयन-द्वार कहा पीवहिं ॥
मम बियोग दुःखिनी गोपिका अनुदिन सूकनि लागी।
इहि अक्रूर निदाघ भयो तब उभि कमलिनि अनुरागी॥
मेरे कृपा पंक ओई कूर अवधि-आस मन राख्यो ।
हृदै कुराइ दास 'परमानँद' प्रभु सेवक-प्रति भाख्यो ॥

[११०८] कानरौ

अब राज पायो मथुरा कौ मोहन ।
परजा-लोक की कौन चलावै बिसरि गयो गो-दोहन ॥

❀ पद सं० ४२७१ पर सूरसागर में भी.

लोचन सजल कहति उद्धव[1]-प्रति पूरब-प्रीति सँभारति।
दुर्लभ मिलन कियो नँदनंदन बढी बिरह की आरति॥
मंद-भाग हम मरमु न जान्यो परब्रह्म ब्रज-माँही।
'परमानंददास' कहा कीजै सोचत ए दिन जाँही॥

[११०९] कानरौ

काहे कौं बिछुरि रहे करुना-मुरारि ?
तुम्हरौ कमल-बदन बिनु देखें
निमिष-निमिष बितवति जुग चारि॥
बसुदेव[2] के ढोटा सौं कहियहु अपनी ठगौरी लेहु उतारि।
तुम्हरे चेटकु सब जग मोह्यो बिरहिनि गए मदन-सर मारि॥
उह चितवनि उह चालि मनोहर
ते सब गावति ब्रज की नारि।
'परमानँद' प्रभु हमरे[3] सब सुख लै दीने कुबिजा टारि[4]॥

[१११०] कानरौ

गोविंद गोकुल की जीवनि।
वे बातें अब क्यौं बिसरति है दूध-पतूखी पीवनि॥
देखौ ऊधौ ! दसा हमारी जोग-ध्यान को[5] लेखें।
अंतरगत की बानि बिचारहु[6] जीवति गोपालहिं देखें॥

---

१. ऊधौ (ग. ड. छ.) २. वसुद्यौ ३. हमारे
४. ढारि ५. कहँ (घ.) ६. बिचारौ (ग. ड. छ.), बिचारौ (छ.)

जिहि मधुकर अंबुज-रस चाख्यो क्यों करीर-रति मानैं।
ताकी साखि 'दास परमानँद' बिरह-बिथा सब जानैं ॥

[११११] मलार

हमारे कोतें चरनै हाथ घालिबौ।
ता पाछें बिनती करि ऊधौ! इहि प्रसंग चालिबौ ॥
एक बार पहिलौ सौ मन करि अपनौं गोकुल पालिबौ।
नंद-जसोदा नाँहि[1] बिसारत कान्ह! तुम्हारौ लालिबौ॥
इहि ब्रज-दसा देखि गमनत हौ बिरहानल कौ जालिबौ।
'परमानँद' स्वामी सों कहियहु
कब लागि इहि तन गालिबौ ॥

[१११२] सोरठ

मथुरा रमि रह्यो नँद-नंदनु।
अब काहे कों गोकुल आवै जादव[2]-कुल-पद-बंदनु ॥
उह[3] औसर तब ही बीत्यो जब पूतना-निकंदनु।
मुरली-नाद स्रवन सुनि ऊधौ! मन करतौ असपंदनु ॥
ता की महत बडाई आदरु जिहि दीनौं तब चंदनु।
'परमानँद' स्वामी कत आवहिं बँधे काम के फंदनु ॥

---

१. नाहिन बिसरत (ग. घ. ङ. छ.) २. जादौ (ग. घ. ङ. छ.)
३. वह (ग. घ. ङ. छ.)

[१११३] मलार

किते दिन गए ऊधौ ! बिनु हरि-दरसनु ।
जब तें हरि मधुपुरी सिधारे
क्यों पईयतु चरननि कौ स्परसनु ॥
जहाँ नृप-जूथ रहत दरबारें ठाढे मुकुट छोजि पाँ लागत।
ब्रज-बासिनि की कौनु चलावै
ब्रह्मादिक प्रसादु जहाँ माँगत ॥
कृपनपालु है बिनोद कान्ह कौ[1]
एहि मानि जो आपने[2] जानै ।
स्याम-किसोर[3] जसोदा-लालै नंद-गोप कौ नातौ मानै॥
जब-जब सुरति संग की आवै
लोचन भरि-भरि लेत उसास ।
मन-क्रम-बचन आनि गति नाहीं
गोपी-जन 'परमानँददास' ॥

[१११४] सोरठ

मधुकर ! खेद करै कत कोई ?
टूटी प्रीति जो बहुरि जोरिये तौ गाँठि-गठीली होई ॥
गनिका सुखी भई आसा तजि रही सवारे सोई ।
हमारी आस जाति नहिं अजहूँ सरबसु बैठी खोई ॥

---

१. के इहि (ड. छ.) २. आपुनो (क.), प्रात-समै (छ.), अपने (छ.)
३. मनोहर (ड. छ.)

जब-जब सुरति करति वह लीला तब आवत है रोई।
परी जु कठिन ठगौरी माथें मनों रही बिष-भोई॥
हरि कृपाल करुना के सागर आवहिंगे ब्रज-बास।
'परमानँद' प्रभु बहुरि मिलहिंगे पूजैगी[1] मन की आस॥

[१११५] सोरठ

ऊधौ! हौं दूबरी बियोग।
प्रीतम हुते सु[2] चले मधुपुरी रहे बटाऊ लोग॥
जो जानत नहिं बिथा हमारी कहैं बनें तुम आगें।
देह-सिंगार-बिहार नहिं भावत मन तरसत हरि[3] लागे॥
'परमानँद' स्वामी के बिछुरें वा[4] गति भई हमारी।
प्रान रहत आवनि की आसा वेगि न मिलहु[5] मुरारी॥

[१११६] सारंग

❀ऊधौ! कमल-नयन कब आवैं?
ग्वालनि-सँग गोधन के पाछें गोपिनु[6] प्रेम बढावैं॥
मोर-चंद्रिका माथें सोहै महुवरि बेनु बजावैं।
गोरज गुंजा-धातु बनी अँग कोटिक[7] दुख बिसरावैं॥

---

१. पूजै (ग. घ. ड. छ) २. सो चलि गए (ग. घ. ड. छ.) ३. ताहि (ड. छ.)
४. इहि (ड. छ.) ५. मिलौ (ग. घ.)
❀ ऊधौ जू! (क. छ.), ऊधौ जी! (ग.) से भी प्रारम्भ
६. गोपिनि (ड.) ७. दरसन (ग.)

कान्ह-किसोर कुँवर कमलापति सुंदर अंग सुहावै।
'परमानँद' कहै रसिक-राधिका ऐसें क्यों[1] बिसरावै॥

[११११७] सोरठी

ऊधौ ! बेदन का सों कहिये ?
हमारे अभाग्य अक्रूर विधाता हरिहिं दोस कैसै दइये[2]॥
उदवस-नगर देव-जैसें देखियत सोई गति भई हमारी।
तन-मन-प्रान-नयन की सोभा हरि लै गए मुरारी॥
कबहु ऐसे भाग्य होंहिगे हरि आवें गोकुल बहोरी।
हम अहीर ओय त्रिभुवन-नायक काग-हंस कैसी जोरी ?
कबहु ऐसे दान-पुन्य किए रमानाथ घर आवै।
'परमानंद' प्रभु[3] सों नागरि छिनु-छिनु प्रेम[4] बढावै॥

[११११८] भैरव

बहुत दिवस भए देखे बिनु लाल।
मधुबन तें कोऊ नहिं आयो
अवधि अधिक गई मदनगोपाल॥
कहियो पथिक ! अवस्था मेरी
एक ग्वालिनि दियो है सँदेस।
'परमानँद' प्रभु ए[5] ही न बूझिये
इतनिहि दूरि कियो परदेस॥

---

१. को बिरमावै (क. ग. ङ. छ.), विरह (घ.) २. दीजे (ख.)
३. स्वामी ४. प्रीति (ग. ङ. छ.) ५. ऐसी (छ.), इहि (ग.)

[१११९] सारंग

ऊधौ ! सुनि-सुनि आवत हाँसी ।
कहाँ वे ब्रह्मादिक कौ ठाकुर कहाँ कंस की दासी ॥
इन्द्रादिक की कौन चलावै संकर करत खवासी ।
निगमादि[1] बंदी-जन जा के चक्र-कोस के बासी ॥
कमला जा के चरन पलौटै[2] कौन गनैं कुबिजा सी ।
'परमानँद' प्रभु दृढ करि बाँधे प्रेम-भगति की पासी ॥

[११२०] सारंग

कहा रस बरियाई की प्रीति ।
जब लगु अंतर गडै न ऊधौ भुस ऊपर की भीति ॥
नयन बयन सों[3] हृदौ मिलत है उपजत प्रेम-प्रतीति ।
दोउ हँसि मिले मानों सनमुख मान[4] लियो मानों जीति ॥
एक विचार सुनौ[5] धौं ऊधौ ! ब्रज में कैसी रीति ।
'परमानँद' जन सोउ जानैं जा मँहि[6] गई होइ बीति ॥❀

[११२१] आसावरी

रहै रहे रे ! जान्यो ग्यान तिहारौ ।
जानैं कहा राज-गृह-[7]लीला वे अहीर विचारौ ॥

---

१. निगमादिक (घ.) २. पलैटैं (ङ. छ)
३. जो (ख,) ४. मानो मनु लियो (ख.)
५. सुनु हो. (ख.) ६. में (ग. ङ. छ.)
❀ पद सं० ४५२३ पर सूरसागर में भी पाठ–भेद से ७. घर (घ.)

ऊधौ एक भली हम सबै अयानी कुबरी सौं मन मान्यौं।
सुनि री सखी! वे लाज धरत हैं आवत नाहिं खिसान्यौं॥
लै आवहु हम कछु न कहेंगी मिलवहु प्रान-पियारौ।
जीवहु लाख करहु दस कुबरी अंतहि स्याम हमारौ॥
सुनि री! सखी जिनि बात चलावहु माधौ आवनि दीजै।
'परमानँद' प्रभु आइ मिलें तो हाँसी करि[1] जीजै॥

[११२२]   सारंग

गोपालहिं लै आवहु मनाइ।
एक बार कैसें करि ऊधौ छल-बल करि गहि पाँइ॥
उनहिं उसारि उराहनु दीजहु संधि-संधि समुझाइ।
जिनहिं छाँडि बटियाँ मँह आए कैसी भई ब्रजराइ॥
तुम सों[2] कहा कहौं हो मधुकर! बिनती बहुत बनाइ।
बाँह पकरि 'परमानँद' प्रभु की नंद की सौंह दिवाइ卐॥

[११२३]   सारंग

❀अब ब्रजनाथ कछू करौ।
जा कारन इह देह धरी है ताहि[3] के लेखैं परौ॥

---

१. करि-करि (घ.)

२. अब हौं कहा कहौं हो! तुम सों (ग. ङ. छ.)

卐साधारण पाठभेद से पद सं ४३९३ पर सूरसागर में भी

❀आली अब० (ग. ङ. छ.) से भी प्रारंभ

३. ताही (ग. ङ. छ.)

प्रथम हीं हम सरबसु लै अरप्यो ता' ही के बिरह जरौ ।
कोटि मुगति वारों मुसकनि पर जोग बापुरो कौस रौ ॥
सगुन जु बाँट परयो गोपिनि कें निगुन तिहारौ औसरौ
ता की छठी छार 'परमानँद' जो ब्रत जानै दोसरौ ॥

[११२४] सारंग

गोबिंद गोकुल की सुधि कीबी ।
पहिले हु नाँते स्याम-मनोहर इतनिक पाती दीबी ॥
गाउँ तुम्हारौ देस तुम्हारौ भूमि तुम्हारी देवा ।
चूक परी अपराध हमारौ नाथ न कीनी सेवा ॥
चंदन भील-पुलिदनि के घर ईंधन करि ताहि मानें ।
'परमानँद' प्रभु जो जहाँ सो तहाँ जो न महातमु जानें ॥

[११२५] केदारौ

करि सनेह दै गए बियोग ।
दावा-अनल दहै तन आली !
वैद न जानें अपर-बल-रोग ॥
नैननि नीर बहै निसि-बासर कंचुकी भई निचोरन-जोग ।
'परमानंद' प्रभू सों कहियो अंतर भयौ मधुवन के लोग ॥

[११२६] सारंग

कमल-नयन मधुवन पढि आए ऊधौ! गोपिनि पास पठाए।
ब्रज-जन जीवति हैं किहिं लागी रहती संग सदा अनुरागी

---

१. वाही (ड. छ.)

उनके उर कौ दाह मिटावौ। निर्गुन ब्रह्म-समाधि लगावौ
तन-मन प्रेम-समाधि लगावैं। उर-अंतर जैसें सचु पावैं
सजन-बियोग बिधाता दीनौ। एक नगरी औतार न लीनौ
अरु[1]कहियो हमरी कुसलाता। बूझैंगी दिन-दिन की बाता
अरु कहियो तुमतें नहिं दूरी। जोति-सरूप रहैं भरिपूरी
अरु कहियो कथा समुझाई।
बिछुरन-मिलन रच्यौ जदुराई॥
तुमसौं बहुत कहा समुझाऊँ। तुमसौ सखा विचित्र न पाऊँ
आयसु लै ब्रज कौं पाउँ धारे। कमलनयन के हेत बिचारे
जब रथ दृष्टि परयो ब्रजबाला।
कुंडल मुकुट और बनमाला।
स्याम सरीर पीत उपरैना मनमोहन वेई कर बैंना॥
सबै सखी एकत भई निरखत स्याम-सरीर।
आए चित के चोरनाँ कहाँ रहे[2] बलवीर॥
ज्यौं नलिनी पूरन समैं बाढी उदधि-तरंग।
निरखति चंद-चकोर ज्यौं बिसरि गई सब अंग॥
फूली आवति देखिकैं 'परमानँद' प्रभु है सही।
बचन कियो प्रतिपालना कमलनयन बिछुरत कही॥

१. वारुक (छ.) २. गए (ग.)

गोपी पद-अंबुज परसनि आईं। ए तो होहिं न कुँवर कन्हाईं
ए कोइ हैं उनके अगवानी। ऊधौ देखत ही मुरझानी
ऊधौ मुख बोलन हूँ न पाए।
जोग-जुगति-मति सिखै पठाए।
एक बेर अक्रूर जु आए। प्रान-जीवनि कों लेत सिधाए
इहि अपराधी अजुगति कीनौ।
हरि कों गवन मधुवन कों दीनौ।
मुख अति मधुर मैल मन माँही।
हृदै कठोर दया जिय नाँही॥
ऊधौ जू! जबरी चले ब्रजनाथा।
नंद पिता ब्रज-बालक-साथा।
हम हीं चलिबे कों घेरि कें आई।
फिरि चितए कछु सैन बुझाई॥
ता दिन तें सपने नहिं देखे। नैननि मोर-चंद जिमि रेखे
नख-सिख लों देखनि नहिं पाए।
ए दोऊ नैन सजल भरि आए॥
अहि-मनि माथे तें हरि लीनी।
हम ब्रजनाथ अनाथ जु कीनी।
हमतौ तन-मन हरिसों सान्यों[1]। ज्यों मधुकर मधु लेत उडानो

---

१. मान्यों (छ.)

इक चातक पिक रटति तिसारी ।
पिउ-पिउ करि अधरात पुकारी ।
रजनि भई इक नागिनि कारी । है कोउ लेहि जु प्रान उबारी
इक-अंगी सों प्रीति न कीजैं ।
ज्यों जल-मीन तलफि तनु छीजैं ॥

मीन मरैं जल ना मरैं जल-बिन मीन मरंत ।
मीन किये है नीर कों जल के जीव अनंत ॥
तुम जानों सब की गतिहिं मोहन के मन मांहि।
नैंन निमेष न बीसरैं सपने हू सचु नांहि ॥
मृगी स्याम कुरंग बिनु जीवति लेहि उसास ।
'परमानँद' प्रभु बिन मले कैसें जीवन आस ॥

रे षटपद! उर-अंतर कारे। तुम जिनि परसहु चरन हमारे
तुम्हरे पीत बरन मुख केसा । मधुबन जाइ करहु उपदेसा
बिजै-सखा-सखियनि मिलि गावौ ।
दंपति मिलि आनंद बढावौ ।
किंचक अधर-सुधा-रस दीनौ । मेलि ठगौरी मनु हर लीनौ
ऊधौ ! पढि-पढि भए अब ज्ञानी ।
नीति-अनीति सबैं पहिचानी ।
निर्गुन-ज्ञान तब हि तुम कहते ।
सत-संजम-ब्रत दृढ करि गहते ॥

नैननि तें सरिता कत बहती।
हरि-बिछुरन की सूल न सहती।
ऊधौ जू! मृतक मारन आए। सूर-सुभट अबलनि पर धाए
अबै क्रिया करि जाहु हमारी। तुम्हरौ गुन मानें बनबारी
ऊधौ! भाग हमारे आए। स्याम सखा हित जानि पठाए
अब हरि हम मिलिबे की आसा।
जीवत-मृतक ज्यों लेहिं उसासा।
जीव-दया बधिक कहा पारे। हम तौ डसी भुवंगम कारे

ऊधौ हम से होहुगे जानोगे बिनु ही कही।
हरि-बिछुरन की सूल है तिरछी हिरदे में बही॥
'परमानँद' प्रभु कारनें जरि भई देह की खेह।
उलटि विधाता जो रचै नँदनंदन सों नेह॥

अब कछु कहिबे की नहिं बाता।
बिरहिनि पीर लहै कोउ ज्ञाता।
तब ऊधौ बोले मधु बानी। धन्य ब्रज नंद-जसोमति रानी
धन्य सु गोप गोकुल की नारी।चरनकमल-रजदेवनि वारी
तुम सी तुम ही होहु सयानी।लोक-बेद-कुल-अटक न मानी
ता तें तुम हम निज गुरु जानी।
तुम्हरी प्रीति रटें मुनि-ज्ञानी।

कुरु-पुर मिलिहैं नंदकुमारा । तुम्हरी जीवनि-प्रान-अधारा
जाइ कहौं नँदनंदन आगें । गोपी आन प्रबोध न लागें
देह-दसा बिसरी मोहि नाथा।गावत सुनि तुम्हरे गुनगाथा
कहौं कहा जैसी मैं देखी । रसना कोटि बिरंचि बिसेखी
तुम्हरे चरनकमल बिनु देखें।जीवन जनम गनत नहिं लेखें
जो रस सिव-सनकादि न पावै।गोपी मगन भईं जसु गावै

सोवति सुमिरें स्याम कों जागति लेहिं उसास ।
निसिदिन मगु जोवति रहें सदा मिलन की प्यास॥
सरिता सों बिनती करें उडुपति सों अनुराग ।
प्रेम-भगति-घट भरि लई कहाँ धरें वैराग ॥
सुर-नर-मुनि खोजत फिरें केवल ब्रह्म कौ ज्ञान।
'परमानँद' प्रभु बिनु मिलें गोपी अनल-समान॥

[११२७] बिलावल

कबहूँ सुमिरत हैं वे बतियाँ ।
बेनु बजाइ रास-रस-कारन बन बोली अधरतियाँ ॥
एक द्यौस सँग क्रीडा करत हीं घन बरख्यो बहु भतियाँ।
अपनौ पीतांबर मोहि उढायो अरु लै लाई छतियाँ ॥
जेई-जेई चोंप करति चित-अंतर
सोइ पुरबत बिधि मतियाँ ।
'परमानँद' स्वामी के बिछुरें बिरह मदन-सर छतियाँ ॥

[११२८] सारंग

ऊधौ ! कछु नाँहिन परत कही ।
जब तें हरि मधुपुरी सिधारे बहुतै बिथा सही ॥
बासर कलप भए अब मोकों रैंनि न परत गही ।
सुमिरि-सुमिरि इहि सुरति स्याम की बिरहा बहुत दही ॥
निकसत प्रान अटक में राखे अवध्यौ जानि रही ।
'परमानँद' स्वामी के बिछुरें नैंननि नदी बही ॥

[११२९] सारंग

बिरचि मन बहुरि न राचत आहि ।
टूट्यो जुरै बहुत जतननि पै ऐंच्यो तऊ न जाहि ॥
फाट्यौ दूध भयो जब काँजी कहा स्वाद दिखराइ ।
कपट कौ हेतु प्रीति ऐसी ज्यों बोथि चुखाई गाइ ॥
स्वाति-बूँद जो[1] परै फनग-मुख अचवत बिष ह्वै जाइ ।
केरा पास जु बेरि लगाई छिनु-छिनु परसि चिराइ ॥
ऊधौ ! हम हेत कियो हरि जल सों मीनहीं बूझौ जाइ।
'परमानंद' दिगंबरपुर में रजक कहा ब्यौसाइ ❀ ॥

[११३०] सारंग

मधुप ! काहे कों बार-बार और कथा कहत ।
हरि की परतीति गए नाँहिन कछु रहत ॥

---

१. ज्यों (ग. घ.)

❀ पद सं० ४५७५ पर सूरसागर में भी पाठ-भेद,तुक-परिवर्तन से

तेज वायु अरु अकास पिरथी अरु पान्यों।
तिनमें तें नँदनंदन कहाँ घालि सान्यों॥
कमलनयन स्यामसुँदर देखत जिय भावै।
ता कों तू गुपति करै औरें कछु गावै॥
'परमानँद' स्वामी गोपाल लीला-तनु लीनों।
निर्गुन तें सगुन भए संतनि सुख दीनों॥

[११३१]　　　　गौरी

कैसें धौं कमलनयन बिनु रहिये ?
निसि-बासर औसेर घनेरी दुसह बिरह क्यों सहिये॥
ज्यों ऊजर[1] खेरे की मूरति को पूजै को मानें।
त्यों भई बिनु गोपाल हम ऊधौ ! कठिन बिपति को जानें॥
हमरौ तन-मन चरनकमल मँह[2] हरि मिलिबे की आसा।
'परमानंद' बिकल-मन गोपी लोचन-भृंग पियासा॥

[११३२]　　　　सारंग

केते ही दिन होइ गए ऊधौ ! चरनकमल-विमुख हीन।
विमुख हीन दूखत तिल-तिल विलपत दरस-हीन॥
रजनी अति प्रेम-पीर सूने घर मन न धरै धीर।
निसि-वासर मग जोवति और सरिता बहै नैननि नीर॥
जब लागि हरि अवधि-आस घटिका गनत रहै साँस।
बिरहिनी अति व्याकुल लखि प्रभु मिलें 'परमानंददास'॥

---

१. उजरे　२. में (ग. छ.)

[११३३] सारंग

मधुकर ! स्याम हमारे चोर ।
मन हरि लियो तनक चितवनि में चपल नयन की कोर॥
पकरे हुते हृदैं उर-अंतर प्रेम-प्रीति के जोर ।
गए छिडाइ तोरि सब बंधन दै गए हँसनि अँकोर ॥
कहा करों कित जाउँ सखी री ! चित न रहत है ठौर ।
'परमानँद' प्रभु सरबसु लूटे लै गए नँदकिसोर* ॥

[११३४] सारंग

हम बनचारी कैसैं बनैं सगाई ।
जो घुँघुची सोने-सँग तोली इतनीये बहुत बडाई ॥
अब वह सुरति जबहि आवति है वृंदावन-द्रुमराजी ।
जमुना पुलिन समीर सुसीतल रास-केलि तब साजी॥
परम प्रीति गोपिनि की नैंन रहे अरुझाई ।
बिनु गोपाल गोकुल के बासी निमिष कल्प-सम जाई ॥
मोहन परदेस रह्यो इहाँ रहे सूत
समाधान करिबे कों पठये दूत ।
अब लों ए प्रान रहे आवन की आसा
एते दिन अवधि गए बीते ब्रज-वासा ॥
नैंननि है घट्यो नीर मुख न घटे साँसा
झंखत तन रूप घट्यो 'परमानँददासा'॥

---

* कुछ परिवर्तन से पद सं० ४३५२ पर सूरसागर में भी

[११३५] मलार

माई ! हरि प्रीतमु परदेस ।
छायो नाथ द्वारका-नगरी कव[1] नहिं दियो सँदेस ॥
सोच-समुद्र पर्‌यो मनु[2] मेरौ कहाँ[3]-कहाँ मैं[4] जाउँ ।
देखि-देखि वृंदावन जमुना अकेली खरी डराउँ ॥
जा बिनु एक घरी नहिं रहती बीतनि लागे मास ।
कष्टनु प्रान धरति 'परमानँद' बहुरि मिलन की आस ॥

[११३६] सारंग

सराहत राधिका की बात ।
सुरति जु करी[5] बाल-दसा की लोचन जल न समात ॥
मृगमद-तिलक सरद-बिधु[6] बदनी कनक-लता सम-गात ।
जमुना-तीरु संग मिलि खेलत दिवस[7] न जाने[8] जात ॥
मम मद-मगन रहति मदमाती गनति न जननी-तात ।
'परमानंद' सुमिरि वे बातें नंदनँदन पछितात ॥

[११३७] सारंग

ऐसौई रथ ऐसौई सब साजु ।
बहुर्‌यौ कछु बिचारि मतौ कियो
सुफलक-सुत आए ब्रज आजु ॥

---

१. कबहुँ न दियो (ग. ङ. छ.) २. मेरी जिय (घ.)
३. कहो कहाँ, ४. हौं (ग.)
५. करि-करि ६. ससि ७. द्यौस ८. जान्यौं

प्रथमहिं गमन गए लै हरि कौं
परम सुमति रचि राख्यो राजु ।
अब धौं कहा कियौ चाहत हैं
या तें अधिक कंस कौ काजु ॥
ब्याध जु मृगनि बधत सुनि सजनी !
सो सर काढें संतनु लेत ।
या अक्रूर कठिन कीनौ है
पै नाँहिन आजु इतौ दुख देत ॥
ऐसेई बचन बहुत बिधि कहि-कहि
लोचन भरि सींचत तन गात ।
'परमानँद' प्रभु अवधि-आस-लगि
मिलि बूझनि लागीं कुसलात❀ ॥

यशोदा-नंदजू के बचन

[११३८] मारू

कहियो जसोदा की असीस ।
जहीं रहहु[1] तहाँ लाड लडहु मेरे जीवहु कोटि बरीस ॥
नंद जु दई दोहनी घीउ[2] भरि ऊधव[3] धरि लई सीस ।
कहियो इहि तुम्हारी[4] धौरी कौ न्यारौ है जगदीस ॥

❀सूरसागर पद सं० ३४७८ पर भी 'वैसौई रथ वैसौई'

१. जहाँ रहौ (ङ. छ.) २. घी की (घ. छ.) घिउ की (ङ.)
३. ऊधौ (घ. छ.) उद्धव (ङ.) ४. तिहारी (घ.)

ऊधौ चलत सबै मिलि आए गोपी-ग्वाल दस-बीस ।
ब्रज-बासिनि की बिनती कहिबी[1] 'परमानँद' के ईस॥*॥

[११३९] धनाश्री

अपनी गरीबी नंद सुनावै ।
एक बार बसुदेव कौ ढोटा बहुरि हमारैं आवै ॥
जद्यपि चूक परी अनजानत कहा अबकैं पछिताने ।
बासुदेव गृह-भीतर आए हम ग्वालनु करि जाने ॥
जद्यपि गरगु कह्यौ अबिनासी संग-दोष तैं भूले ।
'परमानँद' स्वामी के मिलन कहँ[2] राति-दिवस उर-सूले॥

[११४०] सारंग

अब सब चाहन लागे ।
जो गोविंद गए गोकुल तजि तौ सोवत तें जागे ॥
बैरु परस्पर उपज्यौ है बन बाघ गाइ कौं मारत ।
घर-घर तें बछरा बृक काटत सब प्रानो अति आरत॥
कहत नंद ऊधौ के आगै नैन नीर भरि आवत ।
मंद-भाग हम ब्रज के बासी कृष्ण-बिना दुख पावत ॥
निकट बसत मति-हीन भए हम पुत्र-मित्र करि मान्यौं।
'परमानँद' स्वामी गोपाल कौं गएँ महातमु जान्यौं ॥

---

१. कीबी (ग. घ. ड. छ.)

* कुछ परिवर्तन से पद सं० ४७०८ पर सूरसागर में भी

२. कों (ग. ड. छ.)

उद्धव-वचन प्रभु-प्रति—

[११४१] सारंग

ऐसी मैं देखी ब्रज की बात।
तुम बिनु कान्ह कमल-दल-लोचन !
जैसें दूलह-बाजु बरात ॥
ओई[1] मोर कोकिला ओई ओई पपीहा हे बन बोलत।
ओई ग्वाल गोपिका ओई ओई गोधन कानन डोलत॥
है सब संपति नंद-गोप कें[2] तुम्हारे प्रसाद रमा के नाथ!
'परमानँद' प्रभु एक बार मिलहु
पतियाँ लिखि दीनी मेरे हाथ ॥

[११४२] बिहागरौ

ब्रज के विरही लोग बिचारे।
बिनु गोपाल ठगे से ठाढे अति दुर्बल तन हारे॥
प्रात जसोदा पंथ निहारति निरखति साँझ-सकारे।
जो कोउ कान्ह-कान्ह कहि टेरत अँखियनि बहत पनारे॥
यह मथुरा काजर की रेखा जोई निकसत सोइ कारे।
'परमानँद' स्वामी बिनु ऐसे जैसे चंद-बिनु तारे*॥

[११४३] गौरी

नंद निहोरौ बहुत कियो।
सुनहु स्रवन दै स्याम-मनोहर ! मुख संदेस दियो॥

---

१. (सर्वत्र) वेई (क. ग. ड. छ.) २. की (ग. ड. छ.)

* अष्टछाप-वार्ता विद्याविभाग-प्रकाशन

एक बार मुख-कमल दिखावहु हित करि गोकुल आवहु।
जननी-तात को नाँतौ मानों सो काहे बिसरावहु ॥
ऊधौ-बचन सुने जब श्रीपति लागे लैन उसास।
फिरि प्रति-उत्तर बहुरि न दीनों हित 'परमानँद्दास' ॥

---

२५. जरासंध युद्ध-प्रसंग

[११४४]   बिलावल

आजु रन जीत्यो है गोविंद।
जरासंध कौ सैन सँघारयो बृंदाबन के चंद ॥
दिव्य-लोक तें दोउ रथ आए आयुध-तुरी-समेत।
कहत गोपाल सुनहु संकरषन ! आजु मारिहों खेत ॥
मथुरा मंगल गावनि लागे सब कोउ करत अनंद।
कुसुम देवता बरसनि लागे नाचे 'परमानंद' ॥

---

२६. द्वारका—लीला

द्वारका-निवास—

[११४५]   सारंग

स्यंदन बैठि चलत जिहिं मारग नर-नारी को मनु मोहैं।
आछी दृष्टि परी मुख-अंबुज
तृपति न आवै[1] सब अँग सोहैं॥

---

१. पावै (ग. ड. छ.)

कोटि मदन कौ देख्यो सारु
नयन-कमल-दल चितवनि चारु ।
पीतांबर-परिधान मनोहर नख-सिख सुंदर बन्यों सिंगारु॥
पुरी द्वारका घर-घर मंगल जदुनंदन लीला-अवतारु[१] ।
'परमानँद' प्रभु सब सुख-दाइक
दानव-दलन हरनु-भुव-भारु ॥

[११४६] गौरी

गोबिंद ! सोई दिन नीकौ जौ लौं मिलेई रहौ ।
बलि-बलि जाउँ बात चलिबे की तुम्ह मत कबहुँ कहौ॥
राजसूय-क्रतु जीति सकल नृग इहि जानी संसार ।
दुर्जोधन कौ मान-भंग कियो पाँडौ बाँह पगार ॥
बिनती करै जोरि कर कुंती लागति हरि के पाँइ ।
'परमानँद' स्वामी तुम राजा कत छाँडत इहि दाँइ ॥

रुक्मिणी-सत्यभामा-प्रसंग—

[११४७] सारंग

जा के पति माधौ सो काहे न फूलहि ।
सुंदर चतुर मनोहर मूरति दूलहु कान्ह रुकुमिनी दूलहि॥
बहुत पुन्य तप को इहै फलु लोचन
भरि देखहि स्तु ति-मूलहि ।
राजु करौ दंपति उह नगरी जोरी आनि बनी समतूलहि॥

---

१. अवतार (ग. ड. छ.)

'परमानँद' गौरी जिहिं[1] पूजी
क्यों न होहि बिधिना अनुकूलहि।
हरि लै चले पद्मिनी छल-बल को मेटै सिसुपाल की सूलहि

[११४८] सारंग

रुक्मिनी बूझति है गोपालहिं।
कहहु[2] बात अपने गोकुल की पहिलौ रस ब्रजबालहिं॥
जब तुम गाँइ चरावनि जाते उर धरते बनमालहिं।
परम रसिक रीझी ही राधा अंबुज-नैंन बिसालहिं॥
सुनि इहि बचन सजल भरि लोचन प्रीति नंद के लालहिं।
'परमानँद' प्रभु रहे मौन धरि घोष-बात जिनि चालहिं❀॥

[११४९] सारंग

जब तुम रहते ग्वालनि-साथ।
अपने गाँउ की पहिली बातें क्यों न कहत जदुनाथ?
सतिभामा के बचन सुनत ही नीचौ करि रहे माथ।
आई सुरति नंद-जसुदा की च्हीर[3] पियो जिनि हाथ॥
पर उत्तर[4] को देइ त्रिया सों[5] सुमिरे बाल-बिनोद।
'परमानँद' प्रभु रहे मौन धरि चित गौ[6] गोकुल-कोद॥

---

१. जिनि (ङ. छ.) २. कहौ (ङ. छ.)
❀ साधारण परिवर्तन के साथ पद सं० ४८८८ पर सूरसागर में भी
३. छीर (ग. घ), खीर (ङ. छ) ४. ऊतर (छ)
५. कौं (ङ. छ.) ६. गयो (ग. घ. ङ. छ.)

श्रीबलदेवजी–प्रसंग—

[११५०] सारंग

चलहु राम ! जईये ब्रजवास ।
सुंदर-स्याम कहत अपने मुख बैटी[1] कुँवरि रुकमिनी-पास॥
सो सुख हम द्वारका न पायो अरु मथुरा के राज-बिलास।
जो सुख हम बृंदावन पायो
गोपिनि मुख-अवलोकन-हास ॥
राजसूय-प्रसंग जमुना-तट सकल कुटुँब-सँग करि लेहु ।
'परमानँद स्वामी सुख-सागर सुमिरत राधा-बाल-सनेहु॥

[११५१] सारंग

गोबिंद ! गोकुल चलौ जहाँ आनंद रहत मनु ।
गोपी गाँइ ग्वाल[2] मात जसोदा खेलनि कों बृंदावनु॥
जद्यपि राज द्वारका हमारौ बिलसत है रजधानी ।
बाल-केलि-सुख कबहुँ न पायो बिनु प्रभु जमुना-पानी॥
पिता नंद अति भलौ मानिहै बेगि पयानौं कीजै ।
कहि[3] बलभद्र सुनु[4] जदुनंदन ! उन्हें जाइ सुख दीजै॥
'परमानँद स्वामी सब जाने आधि-मध्य-अवसान ।
बिदा राम की करी प्रीति करि हँसि उठि दीने[5] पान ॥

---

१. बैठे (ग. घ. ड. छ.) २. ग्वाल जसोदा (ग. घ. ड. छ.)
३. कहे (ग. घ. ड. छ.) ४. सुनौ (ग. घ. ड. छ.)
५. दीनों (घ.)

[११५२] सारंग

तुम चलि जाहु गोकुल हीं रामु ।
बहुत दिवस बीते ब्रज देखें बाल-बिनोद हमारे धामु ॥
ऐसे बचन सुने जु मया के संकर्षनु माँग्यो रथ साजि ।
तजि द्वारका घोष-गमन कों कंचन जीन पलाने बाजि॥
पाँइ-लागन माता सों कहियो पिता नंद सों चरन-प्रनामु।
सब ग्वालनि सों अंक-मालिका
गोपिनि सों सँदेसनि कामु ॥
ऐसी कृपा प्रीति ब्रज-ऊपर
नाहिंन छिनु बिसरति उह बात ।
रास-बिलास 'दास परमानँद' कालिंदी बृंदाबन-पात ॥

[११५३] धनाश्री

अब ए नैन भए अपराधी ।
दरसन-हीन दीन-दुर्बल तनु देह जु रहत कर्म की बाँधी॥
जाम गए बासर बहु बीते बरषौ गए सँदेसु न आयो ।
कैसैं प्रान रहें प्रीतम-बिनु सागर-तीर स्यामु लै छायो ॥
सोच करति बैठी ब्रज-ललना
तौ लगि संकर्षनु चलि आयो ।
'परमानँद' स्वामी के आगें समाधान कै सब समुझायो॥

[११५४] सारंग

इहि गोपाल की राजधानी ।
अहो सुनु राम ! जहाँ तुम फिरते खेलत किसोहितानी॥
असम-सिला जहाँ भोजन करते इहि झरना इहि पानी ।
इहि तरुवर इहि पत्र मनोहर जहाँ चातक-पिक-बानी ॥
हँसि बलभद्र कह्यो गोपिनि प्रति औरैं रचना ठानी ।
सोर सहस्र अठोतर सौ पै कहियत हैं घर-रानी ॥
क्यों[1] हरि बसहिं द्वारका-नगरी सिंधु-तीर-रति मानी ।
'परमानँद' स्वामी मनमोहन काम-प्रेम-सुख-दानी ॥

[११५५] सारंग

मिलन-हीन दुख पईयतु राम !
विरमि जु रहे द्वारका-नगरी बाढी प्रीति कनक-रुचि-धाम ॥
कहिबे कोंऽब रही वे बातें सुनिबे कोंऽब रहे गुन-ग्राम।
मनु अरु नयन अनाथ भए बल !
बिनु देखें मूरति-घनस्याम ॥
राजा भए बिसरि गयो गोकुल भावन लागीं लोचन-बाम।
'परमानँद' प्रभु सबै बिसराई इहि रस तज्यो दोहनी-दाम॥

[११५६] गौरी

कत हरि आवत हैं ब्रज-बास ।
अब भए पुरी द्वारका-राजा बहुत नारि हैं पास ॥

---

१. कै हरि (क. ग. ङ. छ.)

कहिबे कों रही उय[1] बातें सुनिबे कों गुन-ग्राम
दरसन-मिलन भयो अब दुर्लभ तुम परदेसी राम।
लोचन सजल प्रेम-पुलकित तनु ऊभी लेति उसास
कृष्ण-ध्यान लीला-गुन गावति हित 'परमानँददास'॥

[११५७] सारंग

बृंदाबन काहे कों भूल्यो रामु।
बाल-बिनोद किए सुख बिलसे कमलनयन घनस्यामु॥
पुरी द्वारका भए बहुत दिन हरि सागर के तीर।
सुनियतु बात राज-लीला की गृह-मेधी जदुबीर॥
बहुतै नारि बिवाहीं सुंदरि सब ही पर अनुराग।
सत्यभामा रुकिमनी सुहागिनि पूरे तिनि के भाग॥
एक तेरे दरसन के कारन तरसत[2] बल! ब्रज के लोग।
'परमानँद' प्रभु करुना-सागर काहे न हरत बियोग॥

[११५८] सारंग

अब घर कियो द्वारका-नगरी प्रभु सागर[3] के तीर।
महा बिभूति राज-लीला में को कहि सकत अभीर॥
जे बिनोद कीने बृंदाबन आपुन[4] तिरीछे होत।
'परमानँद' प्रभु आनि मिलावहु चरन-कमल भव-पोत॥

---

१. ए ही (ग.), आई (ड.) वेई (छ.) २. तरसत हैं ब्रज लोग (ड. छ.)
३. सायर (ग. घ. ड. छ.) ४. अपुन

[११५९] सारंग

जद्यपि पाई राजधानी ।
बार-बार बृंदाबन की हरि कहत कथा अपनी ॥
अब ए कनक-पर्जंक परम रुचि रची रुचिर रमनी ।
सो सुख पत्र डसाइ राधिका सँग सोवत अवनी ॥
अब ए भूषन अंग-अंग प्रति मरकत-लाल-मनी ।
'परमानँद' प्रभु गुंजा-पुंज की सोभा तउ न बनी ॥

[११६०] सारंग

राम देखनि लागे ब्रज-साजु ।
पुरी द्वारका काहे लागै नंद हमारौ[1] राजु ॥
हौ तुम दुखी बिरहके कातर सहि न सकत बियोग ।
गोपी-गाँइ घोष के बासी प्रीतमु अपने लोग ॥
अनुज हमारे ऐसी कीनी तुम सों राख्यो बीच ।
देव-काज माँगे नहिं राखे बरु उह भलौ दधीच ॥
बाल-दसा पोषि प्रतिपाले उइ जननी तुम तात ।
'परमानंद' कहैं संकर्षनु अँसुअनि सींचत[2] गात ॥

[११६१] सारंग

बहुत दिन समाचार नहिं पाए ।
कमल-नयन की कुसल पूछिये राम पाहुने आए ॥

---

१. हमारे (ग. घ. ड. छ.) २. सेंचत (ख.)

जब तें गए द्वारका माधौ राज-काज चितु दीनों।
हमारे भाग्य[1] की चरचा देखौ बहुरि न इत मन कीनों॥
बहुत लालसा गोप-ग्वालिनि कें कान्हें कहाँ हौं मिलिये।
'परमानँद' स्वामी कों भेटन इनि के सँग उठि चलिये॥

[११६२] सारंग

करत गोपाल की दुहाई।
मात्यौ हलधर बदत[2] न काहू जमुना उलटी बहाई॥
घूमत[3] नयन चलत डगमगत जनुऽब रूप कौ कूट।
अंबर नील अटपटे ओढें कनक-कटोरिया घूँट॥
जुवती-सहस्र संग इक लीनें बन-बन गावति गीत।
मारयो द्विविद कंस कौ साथी कर बलभद्र पुनीत॥
जय-जय राम करत देवांगन बरषत कुसुम अपार।
'परमानँद' स्वामी के भ्राता फनि-मनि धरनि-अधार॥

[११६३] सारंग

कबहुक ऐहें हो! कुंती-दुख-दाहक।
कहहु राम! अब इहि सुनियत है अर्जुन के रथ-वाहक॥
द्रुपद-सुता की लाज निवारी सभा-माँझ पत राखी।
दुर्जोधन कौ मान-भंग कियो देव-मनुज-मुनि साखी॥

---

१. भाग (ग. घ. ड. छ.) २. गनत (ग. ड. छ.) ३. घूरत (ग. ड. छ.)

जद्यपि राज द्वारका कीनों ब्रज काहे बिसरायो ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर करत आपनौं भायो ॥

सुदामा-चरित्र—

[११६४] सारंग

सुदामा मंदिर देखि डरयो ।
इहाँ हुती मेरी तनक मडइया कौन भूप उतरयो ॥
द्वारे ह्वै कें कामिनि बिनवति जात कहाँ डगरयो ।
आवहु कंत ! अनंत कृपा भई कमला-कंत ढरयो ॥
बाँह पसारि लै चली भवन में जित-तित धाम भरयो ।
'परमानँद' प्रभु के दरसन तें आप समान करयो❀ ॥

कुरुक्षेत्र-मिलन—

[११६५] सारंग

आए मेरे पाहुने मिलनु ।
नंद-जसोदा उठि-उठि भेटत आपुनें ललनु ॥
सूरज-पर्व भयो कुरु-मंडल सब कोउ आयो जात ।
सब जादौ बसुदेव-देवकी रच्यो सँजोग बिधात ॥
गोपी-ग्वाल सबै मिलि आए पूजे चरन-सरोज ।
भरि-भरि अंक परस्पर भेटत नैननि उमग्यो रोज ॥

❀ कुछ अन्तर से पद सं० ४८५३ पर सूरसागर में भी

काली-दमन पूतना-सोषन संखचूड किया घात।
'परमानँद' गोवर्द्धन राख्यो एक हाथ दिन सात॥

[११६६] सारंग

माधौ जू! ओइ[1] औसर चलि बीत्यो।
बृंदाबन महँ मिलि खेलत हे करत हमारौ चीत्यौ॥
काल एक-रस कह्यो न जाई त्रिविध बात दरसावै।
कबहुँ बियोग होइ प्रीतम सौं कबहूँ आनि मिलावै॥
हम गोकुल तुम पुरी द्वारका भाग्यनि[2] दरसनु पायो।
जब रबि-ग्रहन भयो कुरु-मंडल तब सब कोऊ आयो॥
गोपी-बचन कहति बिरहातुर प्रेम न हृदै समाई।
'परमानँद' प्रभु रसिक-सिरोमनि जीवें कौन उपाई॥

---

१. वह (ग. घ. ड. छ.)
२. भागनि (ड. छ.)

अवशिष्ट—

[११६७] बिलावल

卐लाल कौ सिंगार बनावत[1] मैया।
करि उबटनौ न्हवावत[2] सुत कों हरि-हलधर दोउ भैया॥
हँसुली हेम हमेल अरु दुलरी बनमाला उर पहरैया।
'परमानंददास' की जीवनि हँसि-हँसि बाबा लेत बलैया॥

---

[२०७] विहागरौ

❀इहि तन नवल कुँवर पर वारों साँवरिया मोहि भावै री।
चरनकमल की रेंनु जसोदा लै लै सीस चढावै री॥
लै उछंग मुख निरखनि लागी राई-लोंन उतारै।
कौन निरासी दृष्टि लगाई लै-लै आँचल झारै॥
तू मेरौ बालक जदुनंदन तोहि बिसंभर राखै रे।
'परमानंददास' चिरजीवौ बार-बार यों भाखै रे॥

卐 यह पद 'बाल-लीला' में देने से रह गया है, अतः यहाँ दिया जा रहा है।

१. करावत २. न्हवाये रुचि सों

❀सं० २०७ पर 'लालन ! छाँडि दै इहि बानि' यह पद पुनः छप गया है, यही पद सं० १८४ पर 'ग्वालिनी ! छाँडि दै इहि बानि' तुक से आ चुका है। अतः वहाँ इस पद को स्थान दे कर पढ़ा जाय।

प
रि
शि
ष्ट

* (क) उत्सव और त्योहार
* (ख) आश्रय और विनय
* (ग) फ़कीरां

(क) उत्सव और त्यौहार

[१] वामन-द्वादशी

[११६८] बिलावल

वामन आए बलि पैं माँगनि।
अति अनूप रूप कछ कहियतु ठाढे पौरी के आँगनि॥
पढत बेद-धुनि कहत सुकंठनि गावत मधुरे रागनि।
सुनत राग मन लागत नीकौ बालक गनियतु जागनि॥
सुनि बलि राजा मुदित भए अति कहाँ तें आए भागनि।
विद्या अधिक अगाध अंबु-निधि कौ कहुँ पावत थागनि॥
लाए बोलि होत जहाँ जग्य अजिन कमंडलु हाथनि।
'परमानंद' चकृत बलि राजा कोऊ नहिं संग न साथनि॥

[११६९] बिलावल

बलि राजा कौ समर्पन साँचौ।
बहुत कह्यो गुरु सुक्र देवता
मन कौ दृढ आपुन नहिं काँचो॥
जग्य करत हैं जा के काजें सो प्रभु आपुहिं जाँचौ।
'परमानंद' प्रसन्न भए हरि जो जन कों जानत हैं साँचौ॥

[११७०] सारंग

देव-काज करन कों प्रगटे ब्राह्मन ह्वै हरि आए।
ठाढे हैं द्वारें जग-जीवन सेवक सबद सुनाए॥

बालक एक अनूपम द्वारें बोलत बेद सुबानी ।
रूप अनूप कहाँ लौं बरनों अंग-अंग प्रतिदानी॥
देखनि उठे जग्य-साला तें बलि राजा सुख पायो।
देखत देव-देव कहि बोले परे चरन सिर नायो ॥
आज्ञा कीजैं बाल मनोहर ! जो माँगौ सो दीजै ।
गाँउ कोटि अरु रतन पदारथ जो चाहौ सो लीजै ॥
सुनहु नृपति ! देवे कों समरथ इहि नहीं काज हमारे ।
तीन पैंड बसुधा मोहि दीजै जहाँ रचों आगारे ॥
बालक-बुद्धि यह माँगि न जानै माँगौ और बिसेखैं ।
त्रैलोकी लौं जो तुम देहौ सो तौ हमहि अलेखैं ॥
पद-त्रै भई अवनि त्रिभुवन की बहुत लोभ नहिं मेरे ।
मन भावै तो दीजै राजा ! जो सरधा है तेरे ॥
सुक्र कहै बालक-बुद्धि राजा कपट-भेष हरि लीनों ।
ऐसैं करिकें सरबसु लीनों स्वर्ग-मर्त्य-अध तीनों ॥
दैन कह्यो मैं असत न भाषों जो कछु कहौ करौंगौ सोई।
जज्ञ-पिता अपनें कर लेत हैं सकल पदारथ काहे न होई॥
देत दान नृप अति आदर करि हरि कीजेऽब बलि दीनों।
ततछिन जाइ अकासहि पहुँच्यो और रूप हरि कीनों॥
पुहमी स्वर्ग भए दोऊ पद एक पाँउ नहिं पइये।
मापौ पीठ हमारी प्रभु तुम ! ऐसौ तुमकों चहिये ॥

तीनों लोक देंन कों बैठे लाज न आवत अपनें।
बस्तु बिरानी दीजे तुम कों सुख नहिं पइयतु सपनें ॥
घर-घर नीके बचननि सुनि कें राजा मन हरषाने।
आनँद भयो जबहि बलि बाँधे तऊ न मन करषाने ॥
पद एक पीठि पुनीत करी हरि बरु पायो अति भारी।
'परमानंद' भक्त-हित-कारन सदा रहत आगारी ॥

[११७१] सारंग

भक्त-बछल गोपाल दयानिधि देवनि कों सुख दीनों।
अति प्रताप वेद नहिं समुझत
तनक ही में लघु तन कीनों ॥
बलि राजा कें अति कृपा जिहिं निगम नेति करि गीनों।
'परमानंद' पूरन कृपा हरि घर बसि आनँद दीनों ॥

[११७२] देवगंधार

बलि के द्वारे ठाढे वामन।
स्रवन सुनत ही आनँद उपज्यो कह्यो भीतरें आवन ॥
चरन धोइ चरनोदक लीनों कहौ विप्र! मन-भावन।
तीन पैंड धरती हौं माँगों परन-कुटी इक छावन ॥
या कों विप्र! कहा तुम माँग्यो देहुँ हीरा-रत्न बहु गाँवन।
'परमानँद' प्रभु वचन न पलट्यो लाग्यो पीठ मपावन ॥

[११७३] सारंग

बलि राजा कौं पताल पठायो देव अभै-पद पायो ।
वामन-रूप धर्यो जग-जीवन कस्यप-सुत होइ आयो ॥
अति सुंदर बालक बलि-द्वारें लघु तन देखियत नीकौ।
दृष्टि परी बलि राजा महाबलि सबै देवनि कौ टीको॥
कहाँ सों आए भाग सों पाए कछु सेवा हमें दीजै ।
जो आग्या दीजै कछु हम कौं चाहौ सो तुम लीजै ॥
पद-त्रय भूमि दीजै महाराजा !
कुटी एक पढिबे कौं पइये ।
और नहीं कछु तुम सों माँगों इतनौ हमकों चहिये ॥
बलि राजा हरष्यो अति मन में रूप-छक्यौ अति भारी।
जो भावै सो लीजै महाप्रभु ! 'परमानँद' बलिहारी ॥

[११७४] सारंग

बलि राजा है मन कौ मोटौ ।
शुक्र-गुरू की बात न मानी हरि सौं पर्यो न खोटौ ॥
जो बोल्यो सो प्रतिपालन कीनों
मति कहूँ न इति-उति डोलै ।
ताकौ प्रण राख्यो हरि-नागर जो बोलै सो बोलै ॥
देखौ बलि राजा के कारन वामन-तनु वर लीनो ।
पद-त्रय-मिस छल पहुँच्यो पातालै मापि पीठ दृढ कीनों॥

बलि राजा बड़भागी कहियतु जाके हेत अवतरन कीनों।
'परमानंद' देव-दुख निवर्‌यो भक्तनि कों सुख दीनों ॥

[११७५] सारंग

ऐसौ बटुक कहौ कैसै पैयतु ।
बहुतइ काल समाधि में बैठे अन्न-उदक-बिनु थैयतु ॥
द्वारावति षट्मास जो बसियतु
भुव-मंडल दहिनौ व्रत फेरियतु ।
यज्ञ अयुत धन धेनु-कनक दै विप्र त्रिवेनी में मरियतु ॥
तौ हूँ या बलि कों दरसन पुन्य-बिना कैसै करि पैयतु।
कहा जानैं को यज्ञ-रूप तुम !
जा कों निगम नेति कहि गैयतु ॥
कछु आग्या तुम हम कों दीजै
लीजै जो कछु अपुने चहियतु ।
देखे नहीं सुने नहीं कबहूँ कौन ठिकाने कहाँ तुम रहियतु॥
सत्य वचन तू मानै राजा ! वेद-वचन सत्य सो खैयतु ।
सुक्र कहै तुम सुनौ राजा जू !
देव नहीं श्रीकृष्ण कहैयतु ॥
कपट-रूप करि सर्वसु हरिहैं
कहौ पाछैं तुम कहाँ जाइ रहियतु।
कहै राजा तुम सुनौ गुरुदेवा ! ऐसौ कहाँ भाग्य तें पैयतु॥

जाकौं यजत सो लेत अपुने कर
सर्बसु लेहु सरजै रहियतु ।
कर-जल लेत मेटि गए लघु तन
पद दो मापै सरग-मृत भैयतु ॥
एक पद पुहुमी दीजै मोहि राजा !
करि कुटी छावत तहाँ सुखी रहियतु ।
राखौ सत्य पीठ मोहिं मापौ तीन चरन पूरन कर दैयतु ॥
दै पद पीठ पाताल पधारे वर पायो घर सदा हरि रैयतु।
बलि राजा महा बडभागी संत-समागम-गुन-गैयतु ॥
'परमानंद' कृपाल भए हरि बरु जसु जग में छैयतु ॥

---

[२] दशहरा

[११७६] सारंग

विजय-सुदिन आनंद अधिक छबि मोहन बसन बिराजत।
सीस पाग रही बाम भाग पर लटकि जवारे छाजत ॥
तिलक तरल द्वै रेख भाल पर
कुंडल-तेज तरनि द्वै काननि ।
मुख की सोभा कहाँ लौं बरनों मगन होत मन माननि॥
कटि-पट छुद्र-घंटिका मनि-गन सोहत जोहत मोहत ।
'परमानंद' निरखि नँद-रानी लेति बलैया दोउ हत ॥

[११७७] सारंग

सुदिन सुमंगल जानि जसोदा लाल कौं पहिरावति बागौ।
अँग-अँग भूषन ललित मनोहर लटकि जवारें पागौ॥
ब्रज-सुंदरी निरखि मन हरषति मगन होत मन फूलत।
रूप-रासि रस-रसिक लाडिलौ देखियतु नव तन भूलत॥
मैया देखति लेतिं बलैया मुख चूँबति सचु पावति।
'परमानंददास' मन हरषत सुमिरि-सुमिरि गुन गावति॥

[११७८] सारंग

जवारे पहिरें गिरिवरधारी।
जुवती-जन-मन-ताप-निवारन आनद-मंगलकारी॥
सुंदर लाल माल ललित तन देखि जननी कर वारी।
मनमोहन के रसिक-रूप पर 'परमानँद' बलिहारी॥

[११७९] सारंग

आसौ मास सुभ मंगल दसमी धरत हैं लाल जवारे री।
सबै सिंगारत स्यामसुँदर कौं तन-मन-धन सब वारे री॥
गृह-गृह तें सब सखी बुलाईं नाचत-गावत आवें री।
देखि सरूप मदनमोहन कौ प्रमुदित मोद बढावें री॥
मेवा-मिठाई देति सबनि कौं उन्मत ग्वालि लै आई री।
आप हीं खात-खवावति औरनि
तब जसुमति मुसिकाई री॥

सबै सखी मिलि खेल मचायो आए जमुना-तीरे री।
'परमानँद' स्वामी-सँग क्रीडत
बहोत गोपिनि की भीरे री❀॥

[११८०] सारंग

गिरिधर लाल बैठे हैं बाजी।
बाँध बाम कर दच्छिन चाबुक हरि की फौज चले साजी॥
बाजत बेनु सखा सब आए अमर-पुरी सब भाजी।
'परमानंददास' कौ ठाकुर राखी अपनी बाजी॥

[११८१] सारंग

जवारे बाबा मोहि पहिरायो।
या ही छिन अब ही पहिरोंगो हौं तोहि देखि बन आयो॥
हौं वारी मेरे लाल-ललू पर बचन सुनत सचु पायो।
'परमानँद' जसोमति रानी देह-दसा बिसरायो॥

[११८२] सारंग

जवारे जग-मोहन के माथें पहिरे हैं सुखकारी।
निरखत लाल-अँग-अँग-छबि मोही ब्रज की नारी॥

❀ यह पद इस रूपान्तर से 'अ' ६१ में—
आजु हमारें विजय-दसहरा धरिये लाल जवारें हो।
करि सिंगार स्यामसुंदर कौ अपनौ तन-मन वारें हो॥
सब सखियनि मिलि मतो उपायो चलिथे जमुना-तीर हो।
'परमानंद' जसुमति प्रफुल्लित बहु गोपिनि की भीर हो॥

पहिरें रुचिर बसन अरु भूषन
कोटि काम छबि कीने वारी ।
नंद-कुँवर नख-सिख लौं निरखैं 'परमानँद' बलिहारी॥

[११८३] सारंग

दसहरा पूज्यो री ! नँदलाल ।
रहे लटकि ज्यों पाग अलक पर झलकि रह्यो सब भाल॥
नख-सिख-प्रति बहुमोलिक भूषन उर मोतिनि की माल।
कौस्तुभ-पट्टिक-पाँति पचलर सों उदर रुक्यो दुति-जाल॥
हाइ-भाइ-भरि भृकुटी दोऊ अँग-अँग रसिक-रसाल ।
नैननि सों नैननि अवलोकित बिथकि रही ब्रज-बाल॥
ढिंग द्विज नंदराइ जू ठाढे ओर-पास हैं ग्वाल ।
सोभा सांग करी ब्रज-रानी दियो है डिठौना भाल ॥
जगमगात बागोऽरु काछनी चलत मधुर-गति चाल ।
'परमानँद' पट खुले बंद देखे निजु सुभट गोपाल ॥

[११८४] गौडी

बेगि चलो उनि देखिये बैठे सिंह-द्वारे ।
आजु बने नंदलाल जू पहिरें जु जवारे ॥
प्यारी जवारा कर लियें पिय पाग सु चोपैं ।
कुमकुम-तिलक सु भाल दै अछत सु ओपैं ॥
कर ही जवारा देखि कैं जसोमति पैं दोरे ।
बलदाऊ कूँ बोहोत हैं मेरे हैं थोरे ॥

तब जसोमति मुसकाइ कैं लीनी जु बलैया।
चाहौ तौ कछु और लेहु मेरे कुँवर कन्हैया॥
घर-घर तें आईं सबैं आजु परब मनायो।
'परमानँद' रानी भनै भलै दसहरा आयो॥

[११८५] रामकली

आजु बड़ौ दिन बिजै-दसमी लालन उबटि न्हवाए हो।
रतन-खचित कंचन के भूषन नए-नए बसन पहिराए हो॥
लटपटि पाग जवारे सोभित कुंकुम-तिलक बनाए हो।
बारंबार करति नौछावरि जसोमति लेत बलाए हो॥
सखा संग संकर्षन आगें बाजे बिबिध बजाए हो।
जै-जैकार करत सुर-नर-मुनि निरखि परम सुख पाए हो॥
कुलह-पाग सिर सोभित सुंदर ता पर बने हैं जबारे हो।
बीत्यो सरद दिवारी आई 'परमानँद' बलि जाए हो॥

[११८६] कान्हरौ

आजु दसहरा दिन सुखदाई।
करहु सिंगार स्यामसुंदर कौ लाल माँगै सो कुँवर कन्हाई॥
नौतन पट-भूषन पहिरावत लियो सरस सुगंध बनाई।
बानिक बिबिध बनाइ सुंदरी कुँवर तहाँ लै टीकौ आई॥
बिच-बिच हार लाल-उर-सोभित
मधु-मेवा पकवान-मिठाई।
'परमानंददास' कौ ठाकुर तब ही गोपी महानिधि पाई॥

[३] श्रीगुसाइंजी

[११८७] देवगंधार

श्रीवल्लभनंदन आनँद-कंद ।
मायावाद-निवारन-कारन प्रगटे द्विज वृंदावन-चंद ॥
भजनानंद निकुंज-निवासी रास-बिलासी परम आनंद ।
'परमानँद' प्रभु अगनित महिमा
पार न पावत है स्तुति-छंद ॥

[११८८] देवगंधार

श्रीवल्लभ-गृह सदा बधाई ।
जब तें प्रगट भए श्रीविट्ठल तब तें महा-निधि आई ॥
भक्ति-भागवत कथा-कीरतन महा-महोच्छव प्रगट गुसाँई।
कल्प-बृच्छ-फल फलित मनोहर नंद-सुवन सुखदाई ॥
परम भजन पुरुषोत्तम-लीला प्रगट ब्रह्मादिक गाई ।
लाल गोवर्द्धनधर की पद-रज 'परमानँद' बलि जाई ॥

---

[४] बसन्त

[११८९] बसंत

खेलि-खेलि हो लडैती राधा ! हरि के संग बसंत ।
मदनगोपाल मनोहर मूरति मिल्यो भाँवतौ कंत ॥
कौन पुन्य तप कौ फल भामिनि ! चरन-कमल-अनुराग।
कमल-नयन कमला कौ वल्लभ कनकहिं मिल्यो सुहाग॥

इहि कालिंदी इहि बृंदाबन इहि तरुवर की पाँति।
'परमानँद' स्वामी-सँग क्रीडत[1] द्यौस न जानी राति ॥

[११६०] बसंत

❀लालन-सँग खेलनि फागु चली।
चोबा-चंदन अगर-कुमकुमा छिरकति घोष-गली ॥
राती-पीती चोली पहिरें नौतन झूमक सारी।
मुखहिं तँबोरु नयन-भरि काजर देति भाँवती गारी ॥
रितु बसंत-आगमु रति-नाइक जोबन-भार-भरी।
देखनि चली लाल[2] गिरिधर कौं नंद के द्वार खरी ॥
ताल-पखावज बेनु-बाँसुरी गावत गीत सुहाये।
नवल गोपाल नवल ब्रज-बनिता निकसि चौहटें आए॥
देखहु आइ कृष्ण जू की लीला क्रीडत गोकुल माँही।
कहत न बनें दास 'परमानँद' इहि सुख अनतऽब नाँही॥卐

[११६१] बसंत

सहज प्रीति गोपालहि भावै।
मुखु देखें सुख होइ सखी री! प्रीतम नैननि नैन मिलावै॥

---

१ बिहरत (घ.)

❀ मोहन-संग० (अ. ग. घ. ङ. छ.) से भी प्रारंभ

२. रसिक (अ.)

卐 पद सं० ३४९१ पर सूरसागर में भी पाठ-परिवर्तन से प्रारंभ—
'हरि-सँग खेलनि फाग चली'

सहज प्रीति कमलनि अरु भानै
सहज प्रीति कुमुदनि अरु चंदै ।
सहज प्रीति कोकिला-बसंतै सहज प्रीति राधा-नँदनंदै॥
सहज प्रीति चातक अरु स्वातैं
सहज प्रीति धरनी-जल-धारै ।
मन-क्रम-वचन 'दासपरमानँद' सहज प्रीति कृष्णा-अवतारै॥

[११६२] सारंग

राजति है वृषभानु-किसोरी ।
ब्रज के आँगन खेलति पिय सौं
रितु बसंत आगम जैसें होरी ॥
ताल मृदंग बेनु चंग बाजै राजै[1] सरस[2] बंस-धुनि थोरी।
अगर जवादि कुमकुमा केसरि
छिरकत स्याम राधिका गोरी ॥
जबहि रबकि कैं पीत-पट पकरत
इहि रसु रसिक देत झकझोरी ।
'परमानंद चरन-रज बंदित राधा-स्याम बनी है जोरी॥

[११६३] बसंत

फिरि पछिताहुगी राधा ।
कत तू कत हरि कत ए औसर न करि प्रेम-रस-बाधा॥

१. सरस रबाब (ग.) २. उपंग (छ.)

बहुरि को[1] गोप-भेष ब्रज धरिहैं कत[2] निकुंज-बन बसिहैं।
इहि जडता तेरे जिय उपजी चतुर नारि सुनि हँसिहैं ॥
रसिक गोपाल मिलत सुख उपजै आगम-निगम पुकारै।
'परमानँद' स्वामी पें आवत को इहि नेति बिचारै ॥

[११६४] बसंत

❀चलि राधा ! तोकों स्याम बुलावै ।
उहै देखि बैनु मधुर धुनि तेरौ नामु लै-लै गावै ॥
देखहु बृंदाबन की सोभा ठौर-ठौर द्रुम फूले ।
कोकिल-नाद सुनत मन आनँद भँवर[3] भ्रमत रस-भूले[4] ॥
उन्नत जोबन मदन-कुलाहल इहि औसर है नीकौ ।
'परमानँद प्रभु प्रथम समागम मिलै भाँवतौ जी कौ ॥

[११६५] बसंत

खेलत मदनगोपाल बसंत ।
नागरि नवल रसिक-चूडामनि
सब बिधि रसिक राधिका-कंत ॥
नैन-नैन-प्रति चारु बिलोकनि बदन-बदन-प्रति सुंदर हास।
अंग-अंग-प्रति प्रीति निरंतर
रितु-आगम निसि करहिं बिलास ॥

---

१. गोपाल-भेष कब (अ.) २. कब वे कुंजनि (अ.)

❀ प्यारी! तू चलि स्याम० (२८,४), तू चलि भामिनि ! स्याम० (४०.२) से भी प्रारभ

३. मिथुन-विहंगम झूले (अ.) ४. मूले (ग. ड. छ.)

बाजत ताल मृदंग अधौटी डफ बाँसुरी कोलाहल केलि।
'परमानँद' स्वामी के संगम
मिलि नाचत-गावत रँग-केलि ॥

[११९६] बसंत

नवल बसंत नवल बृंदावन नवल स्याम खेलैं होरी।
चोवा चंदन अगरु कुंकुमा छिरकत राधा गोरी ॥
नव-सत साज सिंगार सुँदरी चली सबै ब्रज-खोरी।
और सुगंध लिये पहिरनि कों
अबीर-गुलाल-भरी झोरी ॥
बाजत ताल पखाज झाँझ ढफ और मुरली-धुन थोरी।
गावत राग बसंत सरस सुर बाला-बैसि किसोरी ॥
चढि विमान देव-गन आए निरखि-निरखि यह जोरी।
'परमानँद' प्रभु के सँग खेलत बोलत हो हो होरी ॥

[११९७] बसंत

मदन-महोच्छव आजु राधे।
मदन-गोपाल बसंत खेलिहैं नागरि बोध अगाधे ॥
निसि बुधवार बसंत पंचमी रितु कुसुमाकर आई।
जगत विमोहत मकरध्वज की दुहुँ दिसि फिरिहै दुहाई॥
रति-पति राज-सिंहासन बैठ्यो तिलक पितामह दीनों।
छत्र चमर तूनीर-संख-धुनि धनुष-चाप कर लीनों ॥

चलहु सखी ! तहाँ देखनि जैये हरि उपजावें प्रीति ।
'परमानंददास' को ठाकुर सब जानत हैं रीति ॥

[११६८] बसंत

सुनि प्यारी के लाल बिहारी ! खेलनि चलिये खेलें ।
चंदन-बंदन और अरगजा कुमकुम-रस सब रेलें ॥
और लियें अबीर-अरगजा सत आछौ कुंज-कुंज में केलें।
तुम हम कों हम तुम कों छिरकें रंग परस्पर भेलें ॥
अंतर-सुख मन की मन जानें मुसकि छबीले छैलें ।
'परमानंद' रसिक रस जानें बाँटत रस की रेलें ॥

[११६६] बसंत

चतुर नारि नागर नायक सों खेलनि आई हो ! होरी।
अंग-अंग भूषन अति राजत दियें लिलाट बेंदी रोरी॥
सौंधें भीनी सारी सोहै नील कंचुकी कसी डोरी ।
उडत गुलाल अरगजा छिरकत केसर की छूटी कमोरी॥
ताल-मृदंग उपंग-बाँसुरी द्वार निसान घनघोरी ।
नवल बसंत होत 'परमानँद' नवल नवल पिया जोरी॥

[१२००] बसंत

अब जिनि मोहि भरौ नँदनंदन हौं! व्याकुल भई भारी।
कहत-कहत कह्यौ नहिं मानत देखे नये खिलारी ॥
कालि गुलाल परयो आँखिनि में अजहूँ न गई पीर सारी।
'परमानंद' नंद के आँगन खेलति ब्रज की नारी ॥

[१२०१]   बसंत

मधुर-मधुर मुरली बन बाजै चलौ सखी ! देखनि जैये।
सकल सुगंध सँवारि अरगजा लालन के सिर नैये ॥
गीत तुम सखी ! झेलत नँदनंदन राग बसंते गैये।
'परमानँद' स्वामी रस-बस करि तुम अति सुख दै सैये॥

---

[५] धमार

[१२०२]   जैतश्री

रितु बसंत के आगमें हो ! प्रचुर मदन कौ जोर।
केलि-रस झूमकरा।
राधा गोरी सुंदरी हो ! सुंदर नंदकिसोर ॥ केलि०
झुंडनि मिलि गावति चलीं हो ! झूमक नंद के द्वार।
नृत्य करें ब्रज-सुंदरी हो ! मोहि लियो मन मार॥केलि०
विपिन-गली सुंदर बनी हो ! ललित लवंगनि मेलि।
अंब मनोहर मौरिया हो ! करनि केतकी-बेलि ॥केलि०
गोकुल गाँउ सुहावनौ हो ! वृंदावन कौ ठौर।
खेलहिं ग्वालन-ग्वालिनी हो ! रसिक कान्ह सिरमौर॥के०
इक गोरी इक साँवरी हो ! इक चंद्र-बदन सोहै बाल।
एकनि कुंडल जगमगै हो ! एकनि तिलक सुभाल॥केलि०

एकनि चोली अधखुली हो ! एक रही बँद छूटि ।
एक इकावलि उर डोलैं हो! एक रही लर टूटि ।।केलि०
एकनि चीर जु खसि परे हो ! एकनि लरकत लूमि ।
एक अधर-रस घूँटिही हो ! एक रही कंठ झूमि।।केलि०
ताल पखावज रँगु रह्यो हो ! बीना-बेनु रसाल ।
महुबरि-चंग जु बाँसुरी हो ! बजावत गिरधरलाल।।केलि
चोबा-चंदन कुमकुमा हो ! उडत गुलाल-अबीर ।
सुर-नर-मुनि-जन मोहिया हो ! व्योम विमाननि भीर।।के०
सुरत-समागम-रसु रह्यो हो ! मानहु महागज मंत ।
'परमानँद' प्रभु श्रीपति हो ! रसिक राधिका-कंत।।केलि०

[१२०३] गौरी

चलौ सकल मिलि खेलिये ! नंदा कैं द्वार ।
खेलत फागु गोपाल ।
रितु बसंत बन गहगह्यौ । प्रफुलित ताल तमाल।।नंदा०
अति सुंदरि ब्रज-भामिनी । आइ भईं इक ठौर ।
नव-जोवन वृषभानुजा । सखि-गन नवल किसोर।।नंदा०
ढोल-दमामा बाजहीं । श्री-मंडल मुख चंग ।
मुरज रंज डफ दंदुभी । बीना बेनु उपंग ।। नंदा०
गो-मुख भेरी बाजहीं । झालर झाँझि मृदंग ।
घोर निसान गगन-धुनी । ब्रज-जनि लावहिं रंग।।नंदा०

चोबा चंदन अरगजा। बहु बिधि मलय सुगंध।
दै-दै तारी कंठ लावहीं। आलिंगन भुज-बंध ॥ नंदा०
नौतन केसरि घसि घोरी। कुमकुम रस-सुख-सार।
छुटीं पिचकाईं जित-तितै। लागत हृदै-मँझारि ॥ नंदा०
तनसुख सारी लपटि रही। सकति न अंग सँभाल।
बूका बंदन उडि रह्यो। दुहुँ दिसि अरुन गुलाल॥नंदा०
नव सर माला गूंथि कें। जाई जूई बेलि।
पुलकि प्रेम पहिरावहीं। आनँद की झकझेलि ॥ नंदा०
नंदनँदन ब्रज-नाइका। भूतल करहिं अनंद।
गारी परस्पर गावहीं। नाचहि आपु सुछंद ॥ नंदा०
राग-भोग-रस-पूरिता ! मुख-कर बीरा-पान।
जन 'परमानँद' बलि बली। चरन-सरन भगवान॥नंदा०

[१२०४]	काफी

तुम आवौ री ! तुम आवौ ॥
मोहन जू कों गारी सुनावौ। होरी-रस-रंग बढावौ ॥
हरि कारौ री ! हरि कारौ। द्वै बापनि-बिच बारौ ॥
हरि नटवा री ! हरि नटवा। राधा जू के आगें लटवा॥
हरि मधुकर री ! हरि मधुकर। रस चाखत डोलत घर-घर॥
हरि नागर री ! हरि नागर। जाके बाबा नंद उजागर॥
हरि खंजन री ! हरि खंजन। राधा जू के मन कौ रंजन॥

हरि रंजन री! हरि रंजन। ललिता लै आई अंजन॥
हम जानें री ! हम जानें । राधा गहि मोहन आनें ॥
मुख माँडौ री ! मुख माँडौ । हरि हा-हा खाइ तौ छाँडौ॥
हम भरिहैं री ! हम भरिहैं। काहू तें नेंक न डरिहैं ॥
हरि होरी हो ! हरि होरी । स्यामा जू केसरि ढोरी ॥
हरि भावै री ! हरि भावै। राधा-मन-मोद बढावै ॥
रँग-भीनें री ! रँग-भीनें । राधा-बस मोहन कीनें ॥
हरि प्यारौ री ! हरि प्यारौ । राधाजू कौ नैननि तारौ॥
हम लैहैं री ! हम लैहैं ! फगुवा लै गारि न दैहैं ॥
इहि जसु 'परमानँद' गावै । कछु रहसि बधाई पावै ॥

[१२०५] काफी

राधा माधौ सँग-खेली ।
बार-बार लपटाति स्याम-तन कनक-बाहु पिय-गल मेली॥
चोवा-चंदन सरस कुमकुमा बहुत सुगंध अबीर ।
कुसुम-माल राजति उर-अंतर प्रहसित जादौ-बीर ॥
मदन-महोच्छव फाग मनोहर रति-रस फागुन मास ।
गोप-बधू गावति नाना रँग बलि 'परमानँददास' ॥

[१२०६] बसंत

आजु माई ! मोहन खेलत होरी ।
नौतन भेष काछि ठाढे भये संग राधिका गोरी ॥

अपने भवन तैं आई देखनि श्रीवृषभानु-किसोरी।
चोबा चंदन और कुमकुमा मुख मींडत लै रोरी॥
छूटी लाज तब तन न सँभारति
अति विचित्र बनी जोरी।
माँच्यो खेल रंग भयो भारी या उपमा कों को री॥
देति असीस चली ब्रज-बनिता अंग-अंग सब भोरी।
'परमानँद' प्यारी की छबि पर गिरिधर देत अँकोरी॥

[१२०७] जैतश्री

नंदकुँवर खेलत राधा-सँग जमुना-पुलिन सरस रँग होरी।
नव घनस्याम मनोहर राजत स्यामा सुभग दामिनी गोरी॥
केसर के रँग कलस भरे बहु संग सखा हलधर की जोरी।
हाथनि लिए कनक-पिचकाईं
छिरकी ब्रज की नवलकिसोरी॥
चीर अबीर उडावत नाचत
कटि सों बांधि गुलाल की झोरी।
मगन भईं क्रीडति ब्रजसुंदरि प्रेम-समुद्र-तरंग झकोरी॥
बाजत चंग मृदंग अधौटी पटह झाँझ झालर सुर घोरी।
ताल रबाब मुरलिका बीना मधुर सब्द उघटत धुनि थोरी॥
अति अनुराग बढ्यो तिहि औसर
कुल-लज्जा-मरजादा तोरी।
मदनगोपाललाल-सँग बिहरत देह-दसा भूली भईं बौरी॥

एक गहति फेंटा फगुआ कौ एक करति ठाढी जु ठठोली।
एक जु आँखि आँजि कें भाजी
एक बिलोकि हँसी मुख मोरी ॥
एकनि लई छिडाइ मुरलिका देति गारी मोहन कों भोरी।
एकफुलेल अरगजा चोवा कुमकुम-रस-गागरि सिर ढोरी॥
बिबिध भाँति फूल्यो बृंदाबन
कूजत कीर षट्पद पिक मोरी।
निरखति नेह-भरी अँखियाँ सों
ज्यों चाहति निसि चंद-चकोरी ॥
थके देव किन्नर मुनि-गन सब
मनमथ निज मन गह्यो लजोरी।
'परमानंददास' या सुख कों चाहत बिमल मुक्ति-पदछोरी॥

[१२०८] ईमन

हम-तुम मिलि दोऊ खेलें होरी नव निकुंज में जैये।
अबीर गुलाल कुमकुमा केसरि रंग परस्पर नैये ॥
और सखी कोउ भेद न जानति ग्वालनि हूँ न जनैये।
'परमानँद' स्वामी-सँग खेलत मन-भावत सुख पैये ॥

[१२०९] बसंत

खेलत गिरिधर रगमगे रंग।
गोप-सखा बनि-बनि आए हैं श्रीहलधर के संग ॥

बाजत ताल मृदंग झाँझ ढफ अरु मुरली मुख चंग ।
अपनी-अपनी फेंटनि भरि-भरि लिये गुलाल सुरंग ॥
पिचकाई नीचे कर छिरकत गावत तान तरंग ।
उत आईं ब्रज-बनिता बनि-बनि मुक्ताफल भरि मंग ॥
अचरा उरसि फेंट कंचुकी कसि राखत उरज उतंग ।
चोबा चंदन-वंदन में मलि भरति भामते अंग ॥
केसौ-किसोरी दोउ मिलि विहरत इत रति उतहि अनंग।
'परमानँद' दोऊ मिलि बिलसत केलि-कला जु निसंक॥

[१२१०]   बसंत

हो हो होरी ! हलधर आवैं ।
ऐसी प्रीति स्यामसुंदर सौं हरि-लीला अपने मुख गावैं॥
पियें बारुनी मत्त संकरषन नैंन रसमसे कच कछु ढीले।
भौंह चढी सिर पाग लटपटी
बचन गँभीर अधर-पुट गीले ॥
नील बसन-छबि डगत चरन-गति
सुभ्र सरीर रोहिनी-नंदन ।
'परमानंद' राम जुवती-प्रिय कुंडल एक चढाए चंदन ॥

[१२११]   सारंग

अहो ! रस-मौरन मौरे लाल स्याम-तमाल होरी खेलहीं।
कनक-लता-संकुलित सघन में आनँद-मय फल फैलहीं ॥

अहो ! गृह-गृह तें नवला चपला सी
जुरि-जुरि झुंडनि आईं ।
अहो ! लहँगा पीत हरे अरु राते सारी सेत सुहाईं ॥
अहो ! अति झीनी झलकति तन नवसत
रतन-जटित पिचकाईं ।
कंचुकी कनक-कपिस सब पहिरें तहाँ झलकनि की झाईं ॥
अहो ! कहाँ लौं कहों सकल सोभा-जुत
या गोकुल की नारी ।
अँग-अँग-प्रति गिरधर गुनलंकृत
विधिना जात बिस्तारी ॥
अहो ! प्रफुलित बदन बोलत मुख
गावति मीठी-मीठी गारी ।
धुनि सुनि स्रवननि निकसी सिंहपौरी
मोहनलाल निहारी ॥
अहो ! उत तें श्रीवृषभानु-दुलारी आवति रूप-घटा री ।
छापे ही झूमकी अंग सजि चहुँ-दिसि लगी किनारी ॥
अहो ! बेनी चंपक-बकुलनि-ग्रंथित
रचि-रुचि सखी सँवारी ।
मोतिनि-माँग और सीस-फूल मधि रतन-जटित फुलकारी ॥

अहो ! स्रवननि कुसुम-जराई राजैं लर द्वै-द्वै दुहूँ ओरी
अहो ! लटियन पै जु लसत दमकन तें
छबि की उठति झकोरी ॥
चल दल-पत्र प्रवाल वज्र सो कौंधत पंगति जोरी ।
भाल दीपत आड मृगमद में वक्र भौंह-जुग मोरी ॥
अहो ! अँखियाँ सुखियाँ सुखनि बडेडी
कहा कहों जु लुनाई ।
अहो ! सेत-अरुन ऊपर मधुराई ता में कछुक चिकनाई ॥
वसीकरन-रस सों मिलि रचि-पच अंजन-रेख बनाई ।
रति-पति ललकै रस-पति झलकै परमावधि चपलाई ॥
अहो ! नासा सुभग निपट सुढारी बेसरि ससि आकारी ।
अहो ! पन्ना की रचि चुनी बहु बरनी छाँह सीस पर कारी॥
अहो ! सलिल कुँवर सातों-जग-ऊपर
अधर-अरुनता भारी ।
गवन करत जब हंस लजावत अरक-थरक दुति न्यारी॥
अहो ! दसनावलि धनि-संपति लिये
दरसत जब मुसिकानी ।
चिबुक-मध्य सामलतन राजें सुख में सुखद सयानी ॥
अहो ! ग्रीवा लटक अटक नागर की
बोलति अमृत-बानी ।
चोली मुलकट हेम-गुननि की कवच सुभटता तानी॥

अहो ! चौकी चंपकली कौस्तुभ-मनि बृंदावन में लीनी।
कहत न बनैं रहसि में रीझे मदनगोपाल मैं दीनी ॥
अहो ! चंपा-हार पचलरी छाए
परसत किंकिनी कटि छीनी।
ऊपर भेद भारी भूषन की अद्भुत रचना कीनी ॥
अहो ! बाजूबंद ताटंक सोहैं नव बहु मोती लागे।
अहो ! तूइँ तडित कीनी मैं तीन्यों रंग पागे ॥
अहो ! नवग्रह गजरा जगमगात मन
जगमग पोहोंची चूरी आगें।
अचल सुहाग-भाग की लहरैं कर में मेंहदी दागें ॥
अहो ! पाँच कमर-पटियनि में गूँथी
डोरी चुनाव पै डोले।
फूलत झबी-फबी सुंदरता फुंदना जहाँ मखतूले ॥
अहो ! लहँगा लाल गुलाल रंग-सम
पुरट उदक सों झूलै।
झंकृत कोकिल-स्वरमर्दन करि निपुन छबीलौ बोलै ॥
अहो ! दर्पन दिपति मुँदरिया धरनी तेज-पुंज की मगरी।
दस ससि कैं उनमान-प्रमाननि चमक जनावति सगरी ॥
अहो ! हाव-सागर-रबनी बाँधेगी कृष्ण-साँझ के पगरी।
मिलि करि बृंदारन्य-बिपिन में जब-तब यों मगरी ॥

अहो। जेहरि तेहरि पाँइनि अनवट
कुंदन की हीरा-वलिता।
पीन पिंडरिया तैं सेई चरननि जावक दीनों ललिता॥
अहो। इहि विधि राधा-रानी गाई नाँहि सामरी-सरिता।
जो-जो रसिक गाइये सो-सो प्रेम-पुंज-फल-फलिता॥
अहो। सब समाज भामिनी-दामिनी
वृंदनि-वृंदनि हेली।
अहो। कंज-पराग अरगजा गोरा साजि लियें जु सहेली॥
अहो। लटकत आवत भामिनि-कंठनि बाँह परस्पर मेली।
उनमद कोऊ बदत न काहू स्याम-समर बनि-बेली॥
अहो। बाजत ताल मृदंग
ढोल डफ झाँझनि झमक लगायो।
करत टोक हरि प्रीतम सों दुरि-मुरि नैन नचायो॥
अहो! मुरली-सुर फेरत घोरन में टेरि यह दरसायो।
चल्यो सुगंध सहस्र चारि लौं कोऊ क्यों रहवायो॥
अहो! बगर-बगर तें सखा स्रवन सुनि
जूथनि-जूथनि धाए।
अपनी भीर-सहित संकर्षन लै श्रीदामा आए॥
अहो। केसरि-कुंकुम-माट औरु मथना
तेल-फुलेल मिलाए।
तोले तोक सुबल श्रीदामा आगे लौनि पठाए॥

अहो ! इतहूँ बाजे लागे बाजनि दुंदुभि धौंसा साजे ।
रुंज मुरज आवज सारंगी जंत्र किन्नरी बाजे ॥
अहो ! इनि मधि मुकुट धरें नँदनंदन नटवर-भेषनि साजे।
यह सिंगार नंदराइ हस्त कौ कोटिक मन्मथ लाजे ॥
अहो ! नख-सिख तें आभूषन किएँ
जगमगाइ मेरी माई ।
मानत नहीं जब वचन अटपटे उत तें अँगुरी फिराई ॥
अहो ! चली हैं निसंक निरंकुस करिनी
भई इक ठौर तहाँ ई ।
सुबल तोक दोउ गहि लीने जानि काहू नहीं पाई ॥
अहो ! राखे हैं ओलक-हेतु ब्रज-सुंदर
फिर तुम कौं कहाँ पैये ।
दगा कियो किधौं साँची कहत हैं कहौ किहि बात पतैये॥
अहो ! जो को तोहि बाँधि-बाँधि कें साटनि नृत्य नचैये।
जो साँचे ही इनि बातनि तें देह छाँडि पुनि नैये ॥
अहो ! बड़ी बेर भई सुधि जब लीयें खेले दोउ घेरे ।
दूरि भाजि अब कहत स्यामघन पीतांबर कौं घेरे ॥
अहो । जानी सोई ढूँढि पकरे न छूटे दौरि दिये दरेरे।
खिरका खेंचि दई लै साँकर तरुनी गहि हरि हेरे ॥

अहो। चढ़ि-चढ़ि अटा चहूँधा चितवति
भरि-भरि कनक-कमोरी।
नाहिंन दाऊ बदलौ लेवे कौं सहचरी रँग-रँग बोरी॥
अहो। रंग जु छूटत हैं जल-जंत्रनि
बोलत हो-हो होरी।
सुबल भली विधि चौंकि मिलि-मिलि
यह सुख दीनौं गोरी॥
अहो। भई मोर गोचर की नीके ललिता सैन जनाई।
दुरि पकरौ तुम अब मोहि मेलौ सौंठ लाल की खाई॥
तब जो जीव दाव छिटकायो समझै न भेद कन्हाई।
घर के पाट उघारि भजे दुहुँ फिरि मोहि सिढी बताई॥
अहो। उत आसा न भई संपूरन इतहि सबै विधि पूरी।
अहो। गई है ऊपर गिनी न जातही मैन-मुनैया-चूरी॥
अहो। बिंदु महा विदिसनि सौं कोपि
इंद्रावलि विधि पूरी।
किये हैं मार उलडी हैं गागरि आँधी बंदन दूरी॥
अहो। कृष्णागरु और अबीर सानि कै
गेंदुक सरस सँवारी।
श्रीदामा आदि सखा जे कहियत
तिनिकैं तकि-तकि मारी॥

अहो। कूदत जित-तित लागत गाहक
हलधर बाँह पसारी।
लगे हैं अति सकुमार लाल के कहाँ गई प्रीति तुम्हारी॥
अहो ! हम ऐसौ नहीं खेल खिलैये जो लागै वा तन कों।
देहु भजाइ यह सैन तिहारी गहिहैं दोऊ जन कों॥
अहो। आँकें आइ मिलौ किनि अग्रज !
पूजि आपने मन कौ।
अहो। तुम तौ कहत ललित वह मूरति
जीवन सब ब्रज-जन कौ॥
जेरी निसंक लई ठाले कर पकरि लिए भरि कौरी।
अहो। गाजि उठ्यो ब्रजराज-सदन सब
ऐसी भाँतिनि दौरी॥
मुख मींडत सुवरन पंकनि सों उर सों चोबा बोरी।
अहो। उलहि रहे बादर रँग-रंगनि तैसीय होत है होरी॥
अहो। उत इक मनोरथ बाके देखि मनोरथ लाजी।
अहो। जीतिहैं रस-रीति कटकवर सुरति छबीली साजी॥
'परमानंद' आनंद-दुंदुभि आइ वगर में बाजी।
दै-दै कूक ब्रज-भूप प्रभृति सब सभा अथाँई भाजी॥

---

[६] डोल

[१२१२] गौरी

मदनगोपाल झूलत डोल ।
वाम-भाग राधिका बिराजित पहिरें नील निचोल ॥
गौरी राग अलापति-गावति कहति भाँवतौ बोल ।
नंदनँदन सों भलौ मनावति जासों प्रीति अतोल ॥
नीकौ भेष बन्यो मनमोहन आजु लाइहौं मोल ।
वलिहारी या[1] बानिक-ऊपर जगत देऊँ सब ओल ॥
अद्भुत रंग परस्पर बाढ्यो आनँद हृदैं कलोल ।
'परमानँददास' तिहि औसर उडत होलिका झोल ॥

[१२१३] देवगंधार

डोल माई ! झूलत हैं ब्रजनाथ ।
सँग सोभित वृषभानु-नंदिनी ललिता बिसाखा साथ ॥
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ रुज मुरज बहु भाँति ।
अति अनुराग भरे मिलि गावत
अति आनँद किलकाँति ॥
चोबा-चंदन बूका-बंदन उडत गुलाल अबीर ।
'परमानंददास' बलिहारी राजत हैं बल-बीर ॥

---

१. मनमोहन-मूरति

[१२१४] देवगंधार

झूलत नवल किसोर-किसोरी ।
उत ब्रजभूषन कुँवर रसिकवर इत बृषभानु-नंदिनी गोरी॥
पीतांबर-नीलाम्बर फरकत
उपमा घन[1]-दामिनि-छबि थोरी ।
देखि-देखि फूलति ब्रज-बनिता देति झुलाइ गहें कर डोरी॥
मुदित भए जु मिले सुर गावत
किलकि-किलकि दै उरज-अँकोरी ।
'परमानँद' प्रभु मिलि सुख-बिलसत
इंदु-बधू इत नैन-चकोरी ॥

[१२१५] कल्यान

डोल चंदन कौ झूलत हलधर-बीर ।
बृंदावन अति ही राजत है कालिंदी के तीर ॥
गोपी रही अरगजा छिरकति भरें[2] गुलाल-अबीर ।
सुर-नर-मुनि सब कौतुक भूले व्योम विमाननि भीर ॥
बाम-भाग राधिका बिराजित पहिरें कसूँभी चीर ।
'परमानँद' स्वामी सँग झूलति बाढ्यो रंग सरीर ॥

[१२१६] पंचम

आजु बने मोहन झूलत डोल ।
बाम अंग लगि सोहति भामिनि सौभग-सींव अतोल॥

---

१. गगन-दामिनी (ग.) २. उडत (अ. ग.)

दुहूँ ओर प्रमुदित मन पुलकित ब्रज-बनिता मिलि टोल।
तेल-गुलाल मिलाइ करनि सों मंडित करत कपोल ॥
रतन-जटित पिचकारिनि छिरकत केसरि-रंग अमोल ।
पंचम राग अलापति-गावति मधुरे-मधुरे बोल ॥
सुरँग गुलाल अबीर उडावत चहुँ-दिसि भरि-भरि डोल।
बाढी भक्ति दास 'परमानँद' जग में बाजत ढोल ॥

[१२१७] कल्यान

डोल झूलत नँदनंदन छिरकत चोबा-चंदन ।
ललिता-बिसाखा झुलवति ठाढी कर गहि डोल जु कंचन॥
बृंदावन प्रफुलित द्रुम-बेली कोकिल कुंजन हंसन ।
नौतन चूत प्रवाल रहे लसि एक लिये ठाढे हैं अंजन॥
अबीर-गुलाल उडावत दुहुँ दिसि
लियें भराईं भरि-भरि झोरनि ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर गोपिनि के चित-चोरनि ॥

—————

[७] फूल-मण्डनी

[१२१८] कानरौ

फूलनि की चोली फूलनि कौ चोलना
फूल माथें फूल हाथें काननि कें फूल ।
फूलनि की सेज नीकी फूलनि के चंदवा
फूलनि के बीजना फूल फोंदा फूल ॥

फूलनि के गेंदुवा फूलनि के गालमसूरी
फूलनि के जंघा[1] सूई आगें-पाछें फूल।
फूलनि के महल फूलनि के चित्र[2]-परदा
'परमानंद[3]दास' राधा—माधौ फूल ॥

[१२१६] सारंग

फूल के अठखंभा राजत सँग वृषभानु-दुलारी।
मोर-चंद सिर मुकुट बिराजत पीतांबर छबि भारी ॥
फूलनि के हार-सिंगार फूलनि के संग सखी सुकुमारी।
'परमानंददास' कौ ठाकुर ब्रज-जीवन बलिहारी ॥

[१२२०] सारंग

बात कहत रस-रंग उछलता।
फूलनि के महल बिराजत दोऊ
मंद-सुगंध निकट बहै सरिता ॥
मुख मिलाइ हँसि देखत दर्पन
सुरति-स्रमित अरु माल-बिगलिता।
'परमानँद' प्रभु प्रेम-बिबस ह्वै
कहैं हम में सुंदर को ललिता ?

---

१. जाघ (क.), झब्बा सैया० २. चित्रसारी
३. राधा-माधौ फूले अति फूल

[८] रामनवमी

[१२२१] सारंग

माई ! प्रगट भए हैं राम ।
सब[1] जंजाल मिटे दसरथ के सुनत मनोहर नाम ॥
जै-जैकार भयो त्रिभुवन में करत निगम-स्तुति-गान ।
सुर-नर-मुनि-जन कौतुक आए[2] रघुपति रूप-निधान ॥
बंदी-जन सब द्वारें ठाढे संतनि के[3] अभिराम ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर मोहन पूरन-काम ॥

[१२२२] सारंग

आजु अजोध्या प्रगटे राम ।
दसरथ-बंस दोउ कुल-दीपक
सिव-विरंचि मन भयो विस्राम ॥
घर-घर तोरन-बंदन-माला मोतिनि-चौक पुरे निज धाम।
'परमानंददास' तिहिं औसर बंदी-जन कौ राखत मान ॥

[१२२३] सारंग

आजु सखी रघुनंदन जाए ।
सुंदर रूप नैन-भरि देखौं गावत मंगलचारु बधाए ॥

---

१. हत्या तौन गई दसरथ की (अ. ग.)
२. भूले राघव-जन्म (अ.) ३. मन (अ.)

परम कुतूहल नगर अजोध्या
घर-घर मोतिनि-चौक पुराए।
द्वार-द्वार मारग गिरि पारे तोरन-कंचन कलस बँधाए ॥
पूरन ब्रह्म सनातन कहियतु जे प्रभु वेद-उपनिषद गाए।
महा-भाग राजा दसरथ के
जिहिं घर राघौ जनमत आए ॥
ब्रह्म-घोष मिलि करत बेद-धुनि जै-जै दुंदुभि देव बजाए।
गन-गंधर्ब-चारन जसु बोले भवन चतुर्दस आनँद पाए॥
पान फूल फल चोबा चंदन बहु उपहार लोक लै आए।
'परमानँद' प्रभु मनमोहन कों कौसल्या-जननी उर लाए॥

[१२२४] सारंग

आजु अजोध्या मंगलचार।
मंगल कलस-माल-तोरन-छबि बंदीजन गावैं द्वार ॥
दसरथ-कौसल्या जु केकई बैठे आइ मंदिर-मँझार।
रघुपति भरत सत्रुघन लछमन चारौं धीर उदार ॥
एक नाचै एक करत कुलाहल पाइनि नूपुर की झनकार।
'परमानँद' मनमोहन प्रगटे भुव-असुरनि-संहार ॥

[१२२५] आसावरी

नौमी के दिन नौबत बाजै कौसल्या सुत जायो।
सात घरी दिन उदित भयो रवि[1] सखियनि मंगल गायो॥

१: सब (ग.)

काँप्यो सिंधु कँगूरा ढायो[1] लंका आगम जनायो ।
सब लंका में सोच[2] परयो है राज[3] देव-गृह आयो ॥
दसरथ-मन आनंद भयो है बंस हमारें आयो ।
विप्र बुलाइ सोधनाँ कीनी अभै-भंडार लुटायो ॥
कंचन के बहु कलस बनाए[4] मोतिनि-चौक पुरायो ।
घरी एक निगम सोच हिय भाख्यो रामचंद्र गृह आयो॥
गृह-गृह तें सब सखी बुलाईं आनँद-मंगल गायो ।
दसरथराइ दोउ आँगन में आदर करि बैठायो ॥
दसरथ उठि बाजार पधारे सारी सुरंग बसायो ।
जो जाके जैसौ मन भायो तैसौ ताहि पहिरायो ॥
पाट-पटंबर खासा-झीनौ जैसौ जाहि मन-भायो ।
'परमानंद' कहाँ लौं बरनौं तीन लोक जसु गायो ॥

[१२२६] बिलावल

श्रीरघुनाथ पालने झूलें कौसल्या गुन गावै ।
बलि-अवतार देव-मुनि-बंदित राजीव-लोचन भावै ॥
राजा दसरथ पलना गढायो नव चंदन कौ साजु ।
हीरा-जटित पाट की डोरी रतन-जराए बाजु ॥
राते चरन-कमल कर राते नील जलद-तन सोहै ।
मृगमद-तिलक अलक घुँघरारी मृदुल हास मन मोहै ॥

---

१. ढरक्यो (अ.) २. सोर (अ.) ३. राजा (अ.) ४. मँगाए (ग.)

घर-घर उच्छव चारु अजोध्या राघव-जनम-निवास ।
गावत-सुनत लोक-त्रय-पावन बलि 'परमानँददास'।।

[१२२७] बिलावल

घुँघरू बाजत झनक-झनक ।
दसरथ-नंदन-बंदन खेलत आँगन तनक-तनक ।।
पीति झगुली हिये हसुली केहरि नख उपमा नाहीं अनक।
कटि-पट फेरि धरें कर सायक हाथ धनैंयाँ तनक-तनक।।
राम लच्छमन भरत सत्रुघन
उपमा कहुँऽब न बनक-बनक ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर जानत जननी जनक-जनक।।

[१२२८] देवगंधार

राम-मुख देखत नैन आनंद ।
सीतल सुभग सकल सुखदाता प्रगटे पूरनचंद ।।
बार-बार चितवति वह सीता कुँवरि झरोखा लागी ।
पूरव-संचित सुकृति रसीलौ लीनों विधि पें माँगी ।।
राजा जनक-सुता वर उन कों दीनों धनुष दिखाई ।
'परमानँद' प्रभु आनि बाहु-बल लीनों आपु चढाई ।।

[१२२९] देवगंधार

राम देखियत सुंदर गात ।
दसरथ-कौसल्या-मन आनँद प्रेम न हृदै समात ।।

बदन इंदु राजीव-विलोचन स्रवननि कुंडल लोल।
कुंचित अलक तिलक मृगमद रुचि भ्राजत चारु कपोल॥
बालक-दिसा कंठ मुक्ता-मनि नगस चूडामनि हाथ।
कर-तल बान-धनैया सोभित कुँवर अजोध्या-नाथ॥
बिस्वामित्र सकल सब मुनि-जन ठाढे देत असीस।
'परमानँद' प्रभु अविचल-कीरति महाराज जगदीस॥

[१२३०] मारू

मानों माई ! सिंधु फिर्‍यो तनयानिति।
चाहत कियौ प्रलय लंक-पुर ता तें उमगि तजी मिति॥
सिंधु अरुन अरु स्याम-पीत सब ज्यों गज-जूथनि डोलत।
बदत न काहू अति मदमाते जै जै राघौ बोलत॥
चलहु न जाइ कहँहि रावन-प्रति इक अचरजु हम पेख्यो।
मानों काल साजि सौं दल-बल निधि-उतरत हम देख्यो॥
'परमानँद' कत रावन ! सुनि अब सिर-ऊपर आई।
तीनहुँ लोक कहुँ ठाहरु नाहीं बिना सरन रघुराई॥

[१२३१] मारू

जानकी देहु हमारे जाननि।
अनुचर एक लंकपुर जारी उदधि बाँधि पाषाननि॥
कहा कियो बल-बीर तुम्हारे खर दूषन त्रिसरानन।
अब तुम कहा कियौ चाहत तिल अंजलि दैनि सतानन॥

मंदोदरि कहि बचन सुनावति पिय बूझौ परधाननि ।
'परमानँद' जब लगु नहिं कोपें सारँग लै निज पानिनि॥

[१२३२] मारू

जबहिं सारँगु लैहें रघुनाथ।
सुनि रावन ! सुरपति भव बिधि कहि कौन निवारै हाथ॥
कहा भयो दस सीस चढाए परस्यो गिरिजानाथ ।
अब फिरि ते आनन नहिं टरिहें टरहि जु बाननि साथ॥
जानकि देहु बिलंबु न लावहु कछू-कछू सब गाथ ।
आगें करहु स्यामसुंदर के बिन बहु दीनानाथ❀ ॥

[१२३३] रामग्री

हौं जानति री अपने पिय की ।
सोना की मुँदरी दै पठई अधिक कृपा अब जिय की ॥
लै उठाइ हस्त-अंबुज करि लोचन निरखति कंठ लगाई।
बहुत बिचारु कियो चित-अंतर इहि ऊपरतें किहिं छिटकाई॥
बनचर एक राम कौ सेवकु कहहुँ सँदेसऽब पाइनि लागौं।
हौं रघुपति पठतो तो कारन देहिअसीस इहै बर मागौं ॥
कुसलइ राम-लछमन दोउ भाई
जिनि डरु करहि सुहागिल रानी ।
'परमानँद' प्रभु अब सागर-तट
दिवस चारि में मिलोंगा आनी ॥

❀ इसमें 'छाप' नहीं है.

[१२३४] रामकली

बेगि न सिंधु बाँधहु राघौ! बहुरि बहुरु भरिबौ।
सीता-नयन-वारि-बारिधि कैसें कै तरिबौ॥
कितीक बात कोसलपति! रावन कौ लरिबौ।
इहि तौ हम प्रगट देखी लंका कौ जरिबौ॥
तव प्रताप एक बान रिपु कौ बल हरिबौ।
'परमानँद' कौन सहै पानि धनुष कौ धरिबौ॥

[६] श्रीमहाप्रभुजी

[१२३५] भैरव

प्रात-समय उठि करिये श्रीलच्छमन-सुत-गान।
प्रगट भये श्रीवल्लभ प्रभु देत भक्तनि दान॥
श्रीविट्ठलेस प्रभु रूप के निधान।
श्रीगिरिधर उदै भयो भान॥
श्रीगोविंद आनँदकंद कहा बरनौं गान।
श्रीबालकृष्ण बाल-केलि रूप ही सुजान॥
श्रीगोकुलनाथ प्रगट कियो मारग बखान।
श्रीरघुनाथलाल देखि मनमथ ही लजान॥
श्रीजदुनाथ महाप्रभु पूरन भगवान।
श्रीघनस्याम पूरन-काम पोथी में ध्यान॥
पांडुरंग विट्ठलेस करत वेद-गान।
'परमानँद' निरखि लीला थके सुर-विमान॥

[१२३६] ईमन

जै श्रीवल्लभ देव धनी ।
रास-विलास करत गोवर्धन मूरति ललित बनी ॥
पुरुषोत्तम मुख-कमल विकसित रसिकनि-मध्य मनी ।
वरन निवेदन दैवि-जीवनि कों कृपा करी जु घनी ॥
श्रीभागवत-सुधा-निधि मथिकें बानी निगम बनी ।
लीला-सृष्टि सिंधु सब पूरित दैवी निज अपनी ॥
श्रीविट्ठल प्रगटित 'परमानँद' भजन-प्रचार बनी ।
श्रीजमुना-पुलिन-केलि वृंदावन गिरिधर गुनित गुनी॥

[१२३७] विहाग

सुभग सेज पौढे श्रीवल्लभवर
सँग सुख-पौढे श्रीनवनीतप्रिया ।
ज्यों जसुमति-सुख नंदनँदन कौ
त्यों प्रमुदित मन लाइ हिया ॥
हुलरावत दुलरावत गावत अँगुरिनि अग्र दिखाइ दिया।
कहत न बनत देखत द्रगननि सों
दुख बिसरत सुख होइ जिया ॥
डरत जानि बालक-सँग पौढे हाव-भाव चित-चाव किया।
'परमानंददास' गोपी-जन सो जसु गायो घोष-तिया ॥

[१२३८] बिहाग

श्रीवल्लभ रतन-जतन करि पायो ।
बह्यौ जात मोहि राखि लियो है ये सुनि हाथ गहायो॥
दु:संग-संग सब दूरि किये हैं चरननि सीस नवायो ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर नैननि प्रगट दिखायो ॥

---

[१०] चन्दन-धारण

[१२३९] सारंग

बन्यो बागौ वामना चंदन कौ ।
चंपकली सी पाग बनाई भाल तिलकु बन्यो बंदन कौ॥
चोली की छबि कहत न आवै ठाँ-ठाँ काछ कुंदन कौ ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर देव-लोक-मुनि-बंदन कौ ॥

[१२४०] सारंग

चंदन पहिरें लाल ललित तन श्रीवृषभानु-किसोरी ।
बिच-बिच बंदन कुंकुम की सुभग
तिलक कुंडल-कल-जोरी ॥
सरस पिछौरा कटि-प्रदेस वर सुमन-माल मुक्ता-जर दोरी!
नैन-कमल-दल से सुख-पुंजनि
पाग भृकुटि छुहिं जगत-ठगोरी ॥
गोपीजन देखत सुख पावत वारि फेरि डारत तृन तोरी।
'परमानँद' प्रभु सुख-सागर नित आनँद सदा ब्रज-खोरी॥

[१२४१] सारंग

चंदन पहिरि देखि चित चोरयो ।
चंपक-दाम-बेलि बन-माला सँग राधे-तन गोरयो ॥
तिलक भाल लाल कुमकुम कौ स्रवननि कुंडल जोरयो।
कोमल कर वर कमल गह्यो है कटि-पट पीत पिछोरयो॥
देखत सुर-मुनि सुमन सु झरि कर
निरखि मदन-मुख मोरयो ।
'परमानँद-सुख कैसे कहियतु आनँद-सिंधु झकोरयो ॥

[१२४२] सारंग

चंदन पहिरयो ऊजरो अंगनि ।
सुंदरस्याम कुँवरि रसिक-मनि राजत हैं दोऊ संगनि ॥
पीत पिछौरा कटि-तट बाँध्यो मोर-चंद्रिका माथें बलकनि।
उर बन-माल गुंजा-बन-माला
कुंडल कर्न दोऊ दिन-मनि झलकनि॥
तिलक-सुरेख लाल भाल पर
नासा मोती मनों भृगुपति राजत।
'परमानंद' निरखि नँदनंदन तन-मन-धन वारि डारत॥

---

[११] नृसिंह-चतुर्दशी

[१२४३] बिलावल

यह व्रत माधौ प्रथमु लियौ ।
जे प्रानी[1] भगतनि कौं दुख दैं ता कौ फारौं नखनि हियौ ॥
पराधीन हौं अपने भगत कौ जा कारन अवतार धरौं ।
मारैं दुष्टनि असुर जहाँ लगि अभिमानी कौ गरबु हरौं ॥
मेरे[2] भक्त कौं जे कोउ सतावैं ते जन मो सौं बैरु करैं ।
रखवारी कौं चक्र-सुदरसन माथे-ऊपर सदा फिरै ॥
भजते भजौं तजौं नहिं कबहूँ श्रीपति-मुख तें यौं भाखी ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर देव[3]-मुनी सब हैं साखी ॥

[१२४४] कान्हरौ

हरि राखै ताहि डर का कौ ।
महापुरुष समरथ कमला-पति नर-केहरि ईस है जा कौ ॥
अनेक सासना करि-करि देखे निष्फल भई खिसाइ रह्यौ ।
ता बालक कौ बार न बाँकौ हरि के सरन प्रहलाद गयौ ॥
हिरनकसिपु कौ उदर बिदार्यौ अभै-राज प्रहलादै दियौ ।
'परमानँद' स्वामी दयालु-चित अपने भक्त कौं नीकौ कियौ ॥

[१२४५] कान्हरौ

श्रीनरसिंह भक्त-भय-भंजन रंजन-मन सब सुखकारी ।
भूत प्रेत डाकिनी दुरागम जंत्रमंत्र भवभयहारी ॥

---

१. मेरे २. जो भक्तनि सों बैरु करत हैं सो पुनि ३. सकल भुवन सब

सबै मंत्र तें अधिक नाँउ जिनि रहत निरंतर उर धारी।
निज जन-सब्द सुनत आनंदित
गिरि गए गर्भ दनुज-नारी ॥
कोटिक कला दुरासद त्रिसै महाकाल कौ संहारी।
श्रीनरसिंह-चरन-पंकज पर जन 'परमानँद' बलिहारी ॥

[१२४६] बिलावल

पढौ भैया ! राम गोविंद मुरारी ।
कहै प्रह्लाद सुनो रे बालक ! लीजै जनम सुधारी ॥
डर जिनि करौ रहो रे ! दृढ-मति भजन करहु दिन-चारी।
हरि के चरन-कमल आराधौ कबहुँ न आवै हारी ॥
हिरनकसिपु को है अभिमानी कहा तुमहिं सकैगो मारी।
राखन-हारो है कोउ औरै स्याम-भुजा धरै चारी ॥
ब्रह्म-स्वरूप देव नारायन सो राखौ हृदौ बिचारी।
'परमानँद' स्वामी सुख सागर जो दाइक-फल चारी❀॥

[१२४७] बिलावल

ऐसो जन प्रह्लाद उबारयो ।
प्रगटे खंभ फारि कैं नरहरि
हिरनकसिपु लै नखनि बिडारयो॥
लछमी हरि के निकट न आवति
इहि स्वरूप कबहुँ न निहारयो ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर भक्त-वचन प्रतिपारयो ॥

❀ पद सं० ४२२ पर पाठ-परिवर्तन के साथ सूरसागर में भी

[१२] गङ्गा-दशमी

[१२४८] रामकली

जे जन गंगा-गंगा रटैं।
पातक कोटिक जनम-जनम के ततछिन माँझ कटैं ॥
मज्जन कियें होत तन निर्मल आवागमन मिटैं।
'परमानँद' जल-पान किए तें बसि जमुना-सु तटैं ॥

[१२४६] विभास

गंगा तीन लोक-उद्धारक।
ब्रह्म-कमंडलु तें तुम प्रगटी[1] सकल विस्व[2] की तारक ॥
दरसन[3] परसन पान किये तें कीने जीव कृतारथ।
'परमानँद' स्वामी के संगम आपुनि भई सुकारथ ॥

[१२५०] सारंग

गंगा पतितनि कौं सुख-दैंनी।
सेवा करि भागीरथ लाये पाप-काट को छैंनी ॥
सकल ब्रह्मांड फोरि कें निकसी चलत चाल गज-गैंनी।
'परमानँद' प्रभु चरन-परस तें भई कमल-दल-नैंनी ॥

[१२५१] विभास

परमेस्वरी देव मुनि-बंदित पावनि देवी गंगे !
वामन-चरन-कमल-वर-रजित सीतल वायु-तरंगे ॥

---

१. निकसी (बं० १५ पु० २) २. पाप की हारक
३. दरस परस जल

मज्जन-पान करत जे प्रानी त्रिविध-ताप-दुख-भंगे।
तीरथराज प्रयाग प्रगट भए त्रिवेनी जमुना गिरा जु संगे॥
भागीरथ के सगरे कुल तारे बालमीकि-जसु गाये।
तुव प्रताप हरि-भक्त-प्रेम-रस जन 'परमानँद' गाये॥

[१३] स्नान-यात्रा

[१२५२] सारंग

पूरन मास पूरन तिथि गिरिधर स्नान करत मन भायो।
अति आनँद सों न्हवावत विट्ठल प्रभु
जा विधि बेद बतायो॥
पून्यों ज्येष्ठ नच्छत्र ज्येष्ठा अभिषेक भक्त-मन भायो।
'परमानंददास' कौ ठाकुर अति उदार दरसायो॥

[१४] रथ-यात्रा

[१२५३] मलार

देखौ माई! रथ बैठे गिरिधारी।
राजत परम मनोहर सब अँग संग राधिका प्यारी॥
मनि-मानक हीरा-कुंदन खचि डाँडी पाँच प्रवारी।
बिधि-कर रच्यो विचित्र विधाता अपने हाथ सँवारी॥
गादी सुरँग ताफता सुंदर फबै वाद छबि न्यारी।
छत्र अनूपम हाटक कलसा झूमक-लर मुकता री॥

चपल अस्व द्वै चलत हंस-गति उपजति है छबि भारी।
दिव्य डोर पचरंग पाट की कर गहें कुंज-बिहारी ॥
बिहरत ब्रज-बीथिनि बृंदावन गोपी-जन मनुहारी।
कुसुमांजलि बरषत सुर-नर-मुनि 'परमानँद' बलिहारी ॥

[११५४] मलार

रथ चढि आवत गिरिधरलाल।
रतन-खचित अरु मनि-मुकता-फल नील पद्म की माल॥
बर दुलरी जु मोर-चंद्रिका[1] कुंडल गंड बिसाल।
बसन-पीत परिधान मनोहर बिमल गुंज-बनमाल ॥
सोभित सुभग चारु लोचन-मृग मोहत मनमथ-जाल।
झलकत ललित कपोल लोल पर स्रम-जल-बूँद रसाल॥
अमर-नारि अवलोकि रूप-छबि देखि डिगे दिगपाल।
तन-मन-धन वारत 'परमानँद' बिबस भई ब्रज-बाल ॥

[१२५५] मलार

देखौ माई ! रथ चढि जादौपति आवै।
मोर-मुकुट वन-माल पीत-पट नटवर-भेष बनावै ॥
गरजत गगन दामिनी चमकति पीत-धुजा फहरावै।
संख-चक्र बाजत वेद-धुनि सुनि जलधर माथौ नावै ॥
नाचत देव-मुनि सिव-सनकादिक नारद-तुंबुरु गावै।
सकल नैन-लोचन-फल दीने जन 'परमानँद' पावै ॥

---

१. चंद्रावलि (ग.)

[१२५६] मलार

देखौ माई ! रथ बैठे गोपाल ।
सुंदर बदन अनूप बिराजित उर सोहत बनमाल ॥
तैसेई घन उनये बहु दिसि तें गरजत परम रसाल ।
यह सुख निरखि-निरखि ब्रज-बनिता वारत मोतिनि-माल॥
सुर-विमान सब कौतकु भूले बरषत पुहुपनि आइ ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर सब भक्तनि मन-भाइ ॥

[१२५७] मलार

जसोदा रथ देखनि कों आई ।
देखि री ! मेरौ लाल रीझैगौ अब कहा करों मेरी माई॥
मेरौ ढोटा पलना पौढि ऊझकि-ऊझकि कै रोवै ।
अघासुर-बकासुर मारे नैन निरंतर जोवै ॥
मूँग चिरोंजी बीज के लडुवा भरि-भरि लीने थाल ।
मिस्री-पना बोहोत करि लीनें स्वादू आँब रसाल ॥
देहरी उलँघत ढोटा गिरि गयो सो बात मैं जानी ।
'परमानँद' रथ बोहोत चलत है कहति नंद जू की रानी॥

[१५] वर्षा (मल्हार)

[१२५८] मलार

बरसि रे ! सुहाए मेहा ! जो पैं हरि कौ संग पायो ।
भींजनि दै पीतांबर सारी सघन[1] बूँद नीके आयो ॥

---

१. नन्हीं-नन्हीं बूँदनि (अ.), बड़ी-बड़ी बूँदनि (ग.)

ठाढे हँसत राधिका-मोहन राग मलार मुदित ह्वै गायो।
'परमानँद' प्रभु तरुवर-तर हरि करत सकल मन-भायौ।।

[१२५९] मलार

बरसनि लाग्यो बूँदनि चहुँदिसि
ग्वाल हँसत सब दै-दै तारी।
हरि-हलधर देखत बन-सोभा
छाँह ढूँढत इत-उतपुनि टारी।।
भाजे फिरत बचावत बूँदनि इक रोकत इक देत बिडारी।
पनवारौ हाथनि 'परमानँद' दौरत निबरयो आचारी।।

[१२६०] मलार

बूँदनि झर लाग्यो आँगन में
जहाँ तहाँ करत कलेऊ दोऊ भैया।
भुवन में आवौ लाल! संग लियें ग्वाल-बाल
बार-बार कहति जसोदा मैया।।
भींजेंगे बसन-तन खेलिबे कों सब दिन
मेरौ कह्यौ मानि लीजे लैहौं बलैया।
'परमानँद' प्रभु जोइ-जोइ भावै
सोई लीजै पकवान और घैया।।

[१२६१] मलार

पिय-बिनु लागति बूँद करारी।
दादुर मोर पपैया बोलत कोइल बोलति कारी।।

यह जोर लखावनि आए पहिले क्यों न बिचारी ।
'परमानँद' प्रभु तिहारे मिलनि कों प्रगटी रयनि पुकारी॥

[१२६२] मलार

देखौ जू ! स्याम बादर की उत कारी घटा सुहाई ।
चढि गिरि सिखर रीझि मनमोहन मुरली मधुर बजाई॥
सुनि धुनि स्त्रवन मुदित छकिहारी अति आतुर उठिधाईं।
'परमानंददास' प्रभु के ढिंग गइयाँ सिमिटि सब आईं ॥

[१२६३] मलार

देखौ माई ! चहुँ दिसि छाए बादर ।
समुझि बिचारि लेहु किनि मन में बहुरि फिरौगे निरादर॥
निर्मल ताल-तलैया के जल बोलत नीके दादर ।
बरषा-ऋतु बिन छाँह न लीजै भोजन-संग बिरादर ॥
हरी-हरी भूमि छाँडि कित जैयतु ओट-कदम-तर कादर।
खिसलि परे 'परमानँद' हरि जुरि मिलि बैठे आदर ॥

[१२६४] मलार

आजु ब्रज पर बरषत बरषा सी ।
देखत-सुनत अधिक रुचि उपजत तन-मन होत हुलासी॥
आए मेघ चहुँदिसि गरजत विज्जु चमकति चपला सी।
कोकिला सब्द करत द्रुम-ऊपर नाचत मोर कला सी॥
.... जल-पूरित सर अरझाई ।
विरहिनी दास 'परमानँद' धरनी परी मुरझाई ॥

[१२६५] मलार

चलि सखि ! देखनि नंदकिसोर ।
श्रीराधिका संग लियें बिहरत रुचिर कुंज बन-खोर ॥
उमडी घटा मेघ चहुँदिसि तें गरजत हैं घनघोर ।
तैसिये लहलहाति सौदामिनि पवन चलत अति जोर॥
पीत-बसन बन-माला स्याम कें सारी सुरँग तन गोर ।
जुग-जुग केलि करत 'परमानँद' नैन सिरावत मोर ॥

---

[१३] हिंडोरा

[१२६६] गौरी

हिंडोरें झूलति भामिनि ।
राधा-कान्ह[1] बराबर बैठे सरद[2]-सुहाई जामिनि ॥
पाँच बरस के स्याम-मनोहर सात बरस की बाला ।
कमल-नयन हरि वे मृग-नैनी चंचल चारु बिसाला॥
एक भुजा करि डाँडी टेकत एक धरें अस्कंध ।
मीठी बातें करत परस्पर उभय प्रेम-अनुबंध ॥
लरिकाई में सबहि बनत है कोउ न जानें सूत ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर नंदराइ कौ पूत ॥

---

१. स्याम-स्याम (अ. ग.)   २. सुखद (ब. छ.)

[१२६७] मलार

गोपी गोविंद-गुन विमल परम हित गावहिं ॥
प्रथम मास[1] असाढ आगम गगन घन गंभीर ।
लवहि[2] दामिनि दिसा-पूरित अति प्रचंड समीर॥
मोर[3]-चातक बन-कुलाहल मधुर[4] बानी बोल ।
गोपाल-बाल निकुंज बिलसत[5] सखा-संग कलोल॥
बकहि दादुर मुग्ध कोकिल मूढ़ पावस धीर ।
छुद्र नदी अपार उमगी मलिन बसुधा-नीर ॥
हरित तृन में चंद-बधू-गन अति मनोहर लाग ।
बलभद्र-केसौं[6] धेनु चारत नंद के अनुराग ॥
कंदरा-गिरि चढे हेला करहिं बाल-विनोद ।
जाइ खोजें वृच्छ-कोटर मच्छिका-मधु-खोज ॥
कोऊ बोलहिं पंखि-बानी कोऊ गावहिं गीत ।
कोऊ जानें गोप-लीला ब्रह्म-गति विपरीत ॥
चक्रवादि चकोरचातक हंस सारस मोर ।
सारिका[7] सारौ सुआ भृंगी करत चहुँ रोर ॥
बाटिका सर[8] मध्य नलिनी मधुप करैं मधु-पान ।
नंद गोकुल कृष्ण पालै अमर-पति अभिमान ॥

---

१. पावस-मास (ख.) २. लसै ३. हंस ४. वचन अद्भुत
५. विहरत करत कान्ह ६. के सँग
७. सुआ सारस सरस भृंगी करत चहुँ दिसि ८. सरोवर (ख.)

रचि हिंडौरौ धवल बानी कासमीरी खंभ।
हीरा प्रबाली[1] लाल लागे और बहु आरंभ॥
रचे चित्र-विचित्र-चित्रित तीर-धनु-संधान।
राम-रावन-जुद्ध क्रीडत देख ता उनमान॥
बहुत गोरस-माट-माथन खसित[2] कंकन-चीर।
मल्लिका सिर गुँथी बेनी स्रवन सोभित बीर॥
कनक-बरन सुढार सुंदरि अमी-बचन रसाल।
प्रेम-मुदित मुरारि चित धरि गावें राग मलार॥
होत मंगल घोष घर-घर जहाँ राम अनंत।
बैकुंठनाथ दयाल श्रीपति सोइ श्री भगवंत॥
सब देव-मुनि-जन हँसत जदुबर प्रनत-पूरन-काम।
देव-बानी बदत निसि-दिन भक्त-जन-विस्राम॥
जन्म-कर्म असेस महिमा[3] सेस-सारद भाखै।
देवकी[4]-नंदन नाम पावत त्रिविध दुख तें राखै॥
चरन-अंबुज दिपै नख-मनि चिंतिता अविनास।
मन-कर्म-बचन-सुभाय 'परमानंददास' निवास॥

[१२६८]   मल्हार

लाल प्यारौ झूलत है संकेत।
सँग झूलति वृषभानु-किसोरी ललिता झोटा देत॥

---

१. पिरोजा पाँति-मुक्ता और अति   २. चलित कंकन-हीर

३. लीला (ग.)   ४. नँद

मुदित परस्पर गावत दोऊ अलापत राग मल्हार ।
खसि-खसि परत नील-पीतांबर कछुअ न अंग-सँवार ॥
उनए मेघ सकल बन राजत अदभुत सोभा देत ।
'परमानँद' प्रभु रस में झूलत सखी बलैया लेत ॥

[१२६९] सोरठी

हिंडोरें झूलत गिरिवरधारी ।
तट जमुना कौ परम मनोहर संग राधिका प्यारी ॥
झूलनि आईं सबै ब्रज सुंदरी षट-दस भूषन सारी ।
नाचत-गावत करत कुलाहल देत परस्पर तारी ॥
दादुर मोर चकोर पपैया बोलत हैं सुखकारी ।
सारस हंस कोकिला कूजत गूँजत हैं अति भारी ॥
सुर-मुनि सब मिलि कुसुमनि बरषत मुनिवर छूटी तारी ।
इहि सुख निरखि दास 'परमानँद' तन-मन-धन बलिहारी ॥

[१२७०] मल्हार

हिंडोरे झूलनि आईं राधा के संग सहेली ।
बरन अंबर तन पहिरें मानों कंचन-बेली ॥
चहूँ ओर झुलावति-गावति सकुचति रूप-नवेली ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर लाल-भुजा उर झेली ॥

[१२७१] जैतश्री

हिंडोरे माई ! झूलत हैं गिरिधारी ।
गौर-स्याम छबि-ऐन बिराजत घन-दामिनी उनिहारी ॥

मोतिनि-माल बिराजति प्यारी पहिरें कसूँभी सारी।
रमकि-रमकि लेत दोउ झोटा छबि लागति अति भारी॥
लाल मधुर धुनि बेनु बजावत गावति हैं ब्रज नारी।
'परमानँद' प्रभु तुम चिरजीऔ श्रीवृषभानु-दुलारी॥

[१२७२]   मालव

हिंडोरे झूलत रँग-बोरे।
नबल घटा सुहाई थोरी-थोरी बूंदें-बिच नव घन की घोरें॥
कंचन के द्वै खंभ मनोहर डाँडी चार झकोरें।
मालव राग अलापति भामिनि 'परमानँद' तृन तोरें॥

[१२७३]   मलार

हिंडोरे माई ! झूलत गोकुल चंद।
रच्यो है हिंडोरौ श्रीजमुना-तट आवत मंद-सुगंध॥
बाजत ताल मृदंग बेनु-धुनि गावत हैं नँद-मंद।
बोलत मोर पपैया टेरत घन गरजत हैं मंद॥
सावन सुभ दिन है हरियारौ राधा-मन आनंद।
सब ब्रज-नारि झुलावति हरषति बढ्यो प्रेम-गुनसंद॥
श्री वृषभानु कीरति औ जसोमति देखत बाबा नंद।
निरखत सोभा लेत बारनें बलि-बलि 'परमानंद'॥

[१२७४] गौरी

हिंडोरे झूलत मोहन प्यारौ ।
देखि सखी ! लाग्यो मेरी अँखियनि
निमिष न कीजै न्यारौ ॥
आजु गई ही नंद-भवन में तहाँ देख्यो मुख सारौ ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर अँखियनि ही कौ तारौ॥

[१२७५] मलार

हिंडोरे माई ! झूलें श्रीमदनगोपाल ।
पटुली रतन-जटित की बनी है कंचन-खंभ बिसाल ॥
झोटा देत परसपर जुव-जन गावत गीत रसाल ।
'परमानँद' स्वामी-सँग क्रीडत प्रेम-मुदित ब्रज-बाल ॥

[१२७६] पूर्वी

हिंडोरौ माई ! ब्रज के आँगन माच्यो ।
सुर-ब्रह्मादिक कौतुक भूले संकर तांडव नाच्यो ॥
सुक-सनकादिक नारद मुनिवर सब मिलि देखनि आए।
नंदकुमार हिंडोरे झूलत निरखि नैन सुख पाए ॥
गोकुल[1]-बधू झरोखा झाँकति अपुनौ सरबसु वारे।
'परमानंददास' कौ ठाकुर चित चोरयो इहि कारे ॥

---

१. ब्रज-जुवती अटन चढ़ि (बं० १३,१)

[१२७७]　　मलार

आली री ! सावन-तीज सुहाग ।
निरखि बदन-तन हरषि नवेली होत है अनुराग ॥
तहाँ लाडिली बृषभानु-तनया पास जे सकल सिंगार ।
सुरंग तन पचरंग चूनरी केसर-आडि लिलार ॥
तैसीय षट्-दस बरस की सखी मिली है एकसार ।
चली है वर हिंडोरे झूलनि नंद के दरबार ॥
कुरँग-नैनी चंद-बदनी चलति मृगराज-चाल ।
बिहँसि मधुरे बोल बोलत करति बहु विधि ख्याल ॥
गावति सावन-गीत प्रमुदित कोकिल-कंठ रसाल ।
सब चली चंचल चपला से लोचन मन-हरन नँदलाल॥
झूलत नवलकिसोर-राधा बनी अद्भुत जोर ।
देत झोटा प्रेम-रस-भरि सहचरी चहुँ ओर ॥
लाल गिरिधर रस-भरे रस-केलि-सिंधु-झकोर ।
विहँसि 'परमानँद' चितवत दास जन की ओर ॥

[१२७८]　　मलार

हिंडोरे झूलें हो माई !
जोरी अद्भुत-रूप बिराजित सोभा बरनी न जाई ॥
मनि-कंचन को सुरँग हिंडोरा डाँडी चार सुहाई ।
'परमानँद' प्रभु हिंडोरा झूलें गोपी झुलावनि आई ॥

[१२७६] मलार

सरस हिंडोरना माई ! झूलैं श्रीमदनगोपाल ॥
हरि हिंडोरौ है रच्यो सुंदर जमुना-कूल ।
जहाँ बेलि चंपौ केतकी केवरौ और ही फूल ॥
निरखि सोभा थकित रही मिटि गयो मन कौ सूल ।
गोपी हरि-सँग झूलहीं हो ! आनँद-सुख कौ मूल ॥
रतन-जटित द्वै खंभ हैं डाँडी प्रवारी लाल ।
कंचन कौ मरुवौ बन्यो पटुली जु सरस रसाल ॥
तन कसूँभो चीर पहिरें आईं सब ब्रज-बाल ।
अँग सजे नवसत भामिनी हो ! दिये तिलक सु भाल॥
पटिला जु खुभी चित्र-विचित्र नैन बने दुकोर ।
वक्र भौंह लगाव बेसरि मुख-भरे तंबोर ॥
सबै सुंदरि निकसि ठाढीं अपनी-अपनी पौर ।
गावतिं राग मलार दोऊ मिलि देति हिंडोर झकोर॥
धनि-धनि जीवन सुफल गोपी करत हँसि सँग केलि।
कृष्ण कहि-कहि नाम उचारति लेति हैं रस झेलि ॥
चिरजियौ सखि ! मदनमोहन फूलौ जसोदा-बेलि ।
'परमानंद' सु नंदनंदन चरन चित निज मेलि ॥

[१७] पवित्रा

[१२८०] सारंग

पवित्रा-उच्छव कौ दिन आयो।
ब्रज-बासिनि मिलि मंगलगायो स्याम निरखि सचु पायो॥
इहि बलि-जित मोहन आयो है संतनि के जिय भायो।
नंद-जसोदा हँसि-हँसि भेटत मोतिनि-चौक पुरायो॥
सुर-नर-मुनि-जन देखनि आए ढोल-निसान बजायो।
'परमानँद' स्वामी की लीला निगमनि अगम बतायो॥

[१२८१] सारंग

पवित्रा पहिरें श्रीगिरिवरधारी।
वृषभानु-नंदिनी सँग राजति है अंग-अंग छबि न्यारी॥
हाटक-पुहुप पाट-पचरँग के अरु माला ढिंग सोहै।
निरखत नैन मैन-गति थाकी जो देखै सो मोहै॥
सोभा-सिंधु सकल सुख-सींवा माँगत गोद पसारी।
'परमानँद' पहिराइ पवित्रा निरखि थकी ब्रज-नारी॥

[१२८२] सारंग

पवित्रा लाल के कंठ सोहै।
सोने के गेंदा रूपे के गेंदा पचरँग पाट के पोहै॥
अति विचित्र माला वर देखियतु सुर-नर-मुनि-जन मोहै।[1]
'परमानंद' देखि सुख[2] पायो हृदय हरष दृग जोहै॥

---

१. जसोदा रानी मन (अ.) २. इहि सोभा जसुदा रानी (ग.)

[१२८३] सारंग

गेंदा गिनती के हैं नीके ।
पीरे-राते ऊजरे-भूरे नील-कमल से फीके ॥
पहिरें परम मनोहर माला जुवती-जन के जी के।
देखत हरषत नैन सिराने लेत बलैयाँ पी के ॥
पहिरि पीतांबर पाग मनोहर कुमकुम-तिलक सु नीके ।
'परमानंद' भागि तें पंइयतु देखत सुख दृग ही के ॥

[१२८४] सारंग

बठे पहिरि पवित्रा दोऊ निरखत नैन सिराने हो ।
राजत रुचिर कुंज-भवन में कोटिक काम लजाने हो॥
रहसि बिलास हरत सब कौ मन अंग-अंग सुख साने हो।
'परमानँद' स्वामी सुख-सागर उपजत तान-बिताने हो॥

[१२८५] सारंग

पवित्रा पहिरें श्रीगिरिधरलाल ।
सुंदर-स्याम छबीलौ नागर सकल घोष-प्रतिपाल ॥
हठि मन हरत हमारौ मोहन संग नागरी-बाल ।
फूले फिरत मत्त-बल करनी अति आनँद नँदलाल॥
देखि सरूप ठगी सी ठाढी दंपति दल के साज ।
'परमानँद' प्रभु न्योंछावरि करि प्रान-प्रिया के काज ॥

[१२८६]   सारंग

पवित्रा पहिरत राजकुमार ।
तीनों लोक पवित्र किये हैं श्रीबिट्ठल गिरिधार ॥
अति ही पवित्र पिया बहु बिलसत
निरखि मदन भयो भार ।
'परमानँद' पवित्र की माला गोकुल की निजु नार ॥

[१२८७]   सारंग

पवित्रा पहिरत श्रीमहाराज ।
घर-घर तें सब देखनि आईं नए-नए भूषन-साज ॥
जै-जै सब्द बोलें ब्रज-बनिता मंगल गावें चारु ।
'परमानँद' स्वामी की महिमा अगम-निगम जानें पारु ॥

---

[१८] राखी

[१२८८]   सारंग

रच्छा बाँधति जसुदा मैया ।
सकल सिंगार साजि भूषन तन गिरिधर-हलधर भैया ॥
रतन-कनक[1]-राखी बंधन करि फुनि फुनि-लेति बलैया ।
सकल भोग आगें धरि राखे तनक[2] जु लेहु कन्हैया ॥
यह छबि देखि मगन नँद-रानी निरखि-निरखि सचु पैया ।
जियौ जसोदा ! पूत तिहारौ जन 'परमानँद' गैया ॥

---

१. खचित राखी बाँधी कर (अ.)   २. रुचि सों (ग.)

[१२८९] सारंग

राखी-बंधन नंद कराई।
गरगादिक सब रिषिनि बुलाए लालहिं तिलक बनाई॥
सब गुरु-जन मिलि देत असीसें चिरजीवौ ब्रजराई।
बडौ प्रताप बढै ढोटा कौ प्रतिदिन-दिनहिं सवाई॥
आनंदे ब्रजराज-जसोदा मानों अधन निधि पाई।
'परमानंददास' की जीवनि चरन-कमल लपटाई॥

[१२९०] सारंग

सब ग्वालिनि मिलि मंगल गायो।
राखी बाँधति मात जसोदा मोतिनि-चौक पुरायो॥
विप्र जु देत असीस सबनि कों प्रनय करि मंत्र पठायो।
नंद देत दच्छिना गाँइनि-सँग मंगलचार बधायो॥
सावन सुदि पून्यौ कौ सुभ दिन रोरी-तिलक बनायो।
पान मिठाई नारिकेल फल सोना हाथ धरायो॥
नव भूषन नव बसन जसोदा सबहिनि कों पहिरायो।
देत असीस बिरध नर-नारी चिरजियौ जसुमति-जायो॥
याही भाँति सलौनो तुम कों गिरिधर नित-नित आवौ।
जनम-द्यौस नियरौ आयो है घोष विचित्र बनाओ॥
ताल किन्नरी ढोल दमामा भेरी मृदंग बजायो।
लीला जनम-करम हरि जू कें 'परमानँद' जसु गायो॥

[१२६१]   सारंग

अहो ! नँदरानी कौ भाग्य बड़ौ कहाँ लौं बरन्यौं जाई।
तीन भुवन जाके बंधन में तिहिं
हरि सुभग कर राखी बँधाई ॥
नाना विधि के भोग बनाए सबै स्वादु रस सौं अधिकाई।
चिरजियौ जसोदा ! पूत तिहारौ
कछुक जूठन 'परमानँद' पाई ॥

[१२६२]   सारंग

आवौ मेरै रच्छा बाँधौ लाल !
बरस-द्यौस की कुसल मनावति गोकुल के प्रतिपाल ॥
बहुत उपद्रव भयो या ब्रज में बैरिनि के उर-साल ।
'परमानँद' प्रभु तुम चिरजीवौ केसी-कंस के काल ॥

[१२६३]   सारंग

लाल कौ रच्छा-बंधन कीजै ।
नंद-महर-जसुमति-जीवन कौं आसिस-बचननि दीजै ॥
भूसुर मिलि आए हैं महरि कें करि सनमान बुलाए ।
रच्छा-बंधन करि नँदलालै मन-बांछित फल पाए ॥
पढि आसीस चले द्विज मंदिर पायो मन कौ भायो ।
'परमानँद' तहाँ दच्छिना पायो श्रीगोपालै गायो ॥

[१२६४]   सारंग

रच्छा बाँधति जसोदा मैया ।
देति असीस चिरजिओ मेरे लालन !
चूमति मुख लै लेति बलैया ॥

तिलक कियो रोचन रुचिकारी मिस्री मिठाई पाई।
जो भावै सो मुख में मेलौ पुनि बाबा-ढिंग आई॥
करि बाबा जो-जो तुम अपने
कर दच्छिना विप्रनि कों दीजै।
'परमानंद' प्रसन्न भए तुम देउ दच्छिना लीजै॥

[१२६५] सारंग

रच्छा बाँधति जसोदा मैया।
विविध सिंगार साजि नाना रँग बैठे कुँवर कन्हैया॥
आरती करति वारति तन-मन-धन
चिरजियौ गोकुल के रैया।
'परमानंददास' कौ ठाकुर मन-आनंद-बढैया॥

[१२६६] सारंग

राखी बाँधत मदनगोपाल।
सुंदर कर पर फौंदा सोभत मानहुँ झलकत लाल॥
ताके मधि मुक्त.फल राजत उडुगन की जनु माल।
छोटी-छोटी चुनी मनोहर देखियतु परम रसाल॥
बलैया लेति बहिन और फूफी हँसति सकल ब्रजबाल।
'परमानँद' प्रभु सब कछु दीनों ब्रज-जन के प्रतिपाल॥

[१२६७] सारंग

राखी बाँधत श्रीगिरधारी।
कनक-थार अच्छित कुमकुम धरि हाथ लियें ब्रजनारी॥

मात जसोदा तिलक प्रथम करि तंदुल दिये सुधारी।
अपने कर हरषि दोऊ हाथनि राखी बाँधि सँवारी॥
विप्र सबै मिलि करत वेद-धुनि मंगल सब्द उचारी।
देत दान-दच्छिना बहु रुचि सों बिविध रतन मुक्तारी॥
करि आरती निरखि मुख-सोभा तन-मन-धन सब वारी।
नंद-कुँवर मनमोहन-छबि पर 'परमानँद' बलिहारी॥

[१२६८] सारंग

रच्छा-बंधन करत गरग गुरु नंद-महर कें आए।
नंदराइ कर जोरें ठाढे हरषित होत चरन सिर नाए॥
करत तिलक रोचन कर लीने
कहें नँदलाल बाँधो कर मेरे।
पढि मंत्र तिलक सिर कीजै रूप-रासि बाबा कर तेरे॥
कीनों तिलक रच्छा कर बाँधी बहुत प्रसन्न होत है राई।
मुक्ता-माला अति वर सुंदर रच्छा-बंधन-दच्छिना पाई॥
अति प्रसन्न गुरु मन-माहिं हरषे
चिरजीओ तुम लाल कन्हाई!
दोहरी दच्छिना जसुमति रानी
'परमानँद' सकल सिद्धि पाई॥

(ख) आश्रय और विनय

[१] अपनौदीनत्व

[१२६६] कान्हरौ

चरन-कमल बंदौं जगदीस जे गोधन के सँग धाए।
जे पद-कमल धूरि लपटाने कर गहि गोपिनि उर लाए॥
जे पद-कमल युधिष्ठिर-पूजित राजसूय में चलि आए।
जे पद-कमल पितामह भीषम भारत में देखनि पाए॥
जे पद-कमल संभु-चतुरानन हृदै-कमल-अंतर राखे।
जे पद-कमल रमा-उर-भूषन वेद-भागवत मुनि भाखे॥
जे पद-कमल लोक-त्रै-पावन बलि राजा के पीठ धरे।
ते पद-कमल दास 'परमानँद' गावत प्रेम-पीयूष भरे❀॥

[१३००] विभास

बलिहारी पद-कमल की जिनि मँह सत लच्छन।
ध्वजा वज्र अंकुस जव-रेखा ध्यान करत विचच्छन॥
ते चिंतन त्रै-ताप हरत सीतल सुख-दाइक।
नख[१]-मनि की चंद्रिका-ज्योति उज्ज्वल ब्रज-नाइक॥
वृंदावन गो-संग फिरत भूतल-कृत पावन।
गंगादिक तीरथ-प्रसाद भक्तनि के भावन॥

❀ सूरसागर पद सं० ११८९ पर भी

१. कृष्ण कुँवर जसोदा-नंदन सब व्रज के हैं नाइक (छ.)

भक्ति धाम कमला-निवास माया-गुन-बाधक ।
'परमानँद' ते धन्य जनमु जे सगुन-अराधक ॥

[१३०१] विभास

काहे न सेईये गोकुल-नाइक ।

भक्तनि कौ ठाकुर भगवानु सकल सुखनि कौ दाइक ॥
ब्रह्मा-महादेव-इंद्रादिक जाके आज्ञाकारी ।
सुर-तरु कामधेनु चिंतामनि बरुन-कुबेरु भंडारी ॥
औरों नृपति कह्यौ सब मानें सनमुख बिनती कीजें ।
तुम प्रभु अंतरज्यामी व्यापक दुतिय साखि को[1] दीजें॥
जनमु करम अवतार रूप गुन नारदादि मुनि गावें ।
'परमानंददास' श्रीपति-जसु अधमु भलें बिसरावें ॥

[१३०२] आसावरी

प्रीति तौ कमलनयन सों कीजें ।

संपति-बिपति परें प्रतिपालें कृपा-अवलोकनि जीजें ॥
परम उदार चतुर चिंतामनि सुमिरन सेवा मानें ।
हस्त-कमल की छाया राखै अंतरगत की जानें ॥
वेद[2]-भागवत हीं जसु गायो कियो भगत कौ भायौ ।
'परमानंद' इंद्र कौ बैभव बिप्र सुदामा पायो ॥

१. कहा (घ.) २. पुरान-भागवत-गीता गावें करें (घ.)

[१३०३] बिलावल

जब गोविंद[1] कृपा करै तब सब बनि आवै ।
सुख-संपति-आनंद घनौ घर-बैठें पावै ॥
कुबिजा कहा उद्यम कियो मथुरा के माली ।
इहि चंदन उहि फूल[2] दै अरचे[3] बनमाली ॥
बिनु तीरथ[4] बिनु दान-पुन्य बिनु ही तपु कीनें ।
पांडव-कुल-हित जानि कें अपने कर लीनें ॥
ऐसी बहुत[5] गोपाल की ता के मुनि साखी ।
'परमानँद' प्रभु सभा-माँझि द्रौपदि-पत राखी ॥

[१३०४] सारंग

नाचत हम गोपाल भरोसैं ।
गावत बाल-बिनोद कान्ह के नारद के उपदेसैं ॥
संतनि कौ सर्बसु सुख-सागर नागर नंदकुमार ।
परमकृपाल जसोदा-नंदन जीवन-प्रान-आधार ॥
ब्रह्म-रुद्र-इंद्रादि देवता ता कौ करत कैवार[6] ।
पुरुषोत्तम सब ही कौ ठाकुर इहि लीला-अवतार ॥
सरग-नरक कौ अब डरु नाहीं बिधि-निषेध की आस ।
चरन-कमल मनु राखि स्याम पें बलि 'परमानँददास' ॥

---

१. गोपाल (छ.)   २. पुहुप लै (ड. छ.), पुष्प लै (इ.)
३. चरचे (ड. छ.)   ४. सेवा (च.)
५. कृपा गोविंद (छ.), प्रीति गोपाल सों जा के मुनिवर (च.)
६. विचार (ग. च.)

[१३०५] सारंग

हरि कौ भगत मानें डरु का कौ ।
जा के कर जोरें ब्रह्मादिक देवता
सब दिन दंड बहत है जा कौ ॥
सिंधु-सखा करि गो-मय कर डरु
वह बिपरीति सुनीं नहिं देखी ।
हाथी चढ़ै कूकर[1] की संका इहि धौं कौन पुरानें लेखी ॥
सकल लोक अरु निगम-गूढ़-मति
कृपा-सिंधु समरथ सब लाइक ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर दीनानाथ अभय-पद-दाइक ॥

[१३०६] सारंग

जा कों तुम अंगीकार कियो ।
तिनि के कोटि बिघन हरि टारे अभय-प्रतापु दियो ॥
बहु सासन दई प्रह्लादै सबहि निसंकु जियो ।
निकसे खंभ-मध्य[2] तें नर-हरि आपु हि राखि लियो ॥
दुर्बासा अंबरीष कों सतायो सो फुनि सरन गयो ।
प्रतिज्ञा राखि मदनमोहन उन हीं पें पठै दियो ॥
मृतक भाइ[3] हरि सबै जिवाए दृष्टि हि अमृत पियो ।
'परमानंद' भगत-बस केसौ उपमा कौन बियो❀ ॥

१. कहा कूकर (छ.) २. फारि (अ.) ३. भाय (ग.)

❀पद सं० ३८ पर सूरसागर में भी पाठ-भेद, तुक-परिवर्तन और साम्य

[१३०७] सारंग

सब सुख सोई लहै जाहि कान्ह पियारौ।
करि सत-संग बिमल जस गावै रहै जगत तें न्यारौ ॥
तजि पद-कमल मुक्ति जे चाहैं ता कौं दिवस अँध्यारौ।
कहत सुनत फिरत हैं भटकत छाँडि भगति उजियारौ ॥
जिनि जगदीस हृदै धरि गुरु-मुख एकौ छिनु न चितारौ।
बिनु भगवंत-भजन 'परमानँद' जनमु जु आयो हारौ॥

[१३०८] सारंग

जाकौं माधौ करै सहाइ।
हस्त[1]-कमल की छाया राखै बार न बाँकौ जाइ ॥
कंस रिसाइ सचीपति कोप्यो कैसें नंद दुलराइ।
गल गरजौ गोकुल में बैठे जगत निसान बजाइ ॥
जहिं जे बिगरत तहिं ते सँवारत समरथ जादौराइ।
'परमानंददास' सुख-दाइक राखै सूत बनाइ ॥

[१३०९] सारंग

मदनगोपाल हमारे राम।
धनुष-बान धरि बिमल बेनु कर
पीत-बसन अरु घन-तन-स्याम ॥

---

१. नंदराइ के कुँवर लाडिले सब ही के सुखदाइ (ङ छ.)

अपनी भुजनि जिनि जल-निधि बाँध्यो
रास नचाए कोटिक काम ।
दस सिर हति[1] सब[2] असुर सँघारे
गोवर्द्धन धारयो कर बाम ॥
तब रघुबर अब जदुबर नागर
लीला-ललित बिमल बहु नाम ।
'परमानँद' प्रभु भेद-रहित हरि
निज जन मिलि गावै गुन-ग्राम ॥

[१३१०] सारंग

ता तें मोहि तुम्हारौ भरोसौ आवै ।
दीनदयाल पतित-पावन-जसु बेद-उपनिषद गावै ॥
जो तुम कहौ कौन खल तारे तौ हौं जानौं साखि ।
पुत्र-हेत हरि-लोक चल्यौ द्विज सक्यो न कोऊ राखि ॥
गनिका कहा कियो ब्रत-संजम सुक-हित मनहिं खिलावै।
कारन करि सुमिरै गज बापुरौ ग्राह परम गति पावै ॥
कठिन आपदा तें द्विज-पतिनी पति द्वारका हि पठावै।
ऐसौ को ठाकुर जे जन कौं सुख दै भलौ मनावै ॥
देखे दुखित सुत द्वै कुबेर के तिनि तें आप बँधावै ।
करुना-नाथ अनाथ-बंधु-बिनु इहि मोहसर[3] को है आवै॥

---

१. हनि (इ. च:) २. अरु (इः) ३. मौसर कौ पावै

ऐसे दुष्ट देखि हरि राच्छस दिन प्रति त्रास दिखावै ।
सिसु प्रह्लाद प्रगट हित-कारन इंद्र निसान बजावै ॥
द्रुपद-सुता दुष्ट दुरुजोधन सभा माँहि दुख पावै ।
ऐसी करै कौन पै होवै बसन-प्रवाह बहावै[1] ॥
बकी गई इहि भाँति घोष में जसोदा की गति दीनी ।
जे मति कही सुक प्रगट व्याधि की प्रभु जैसी तुम कीनी ॥
अभय-दान-दावान प्रगट प्रभु साँचौ बिरद बुलावै ।
कारन कौन दास 'परमानँद' द्वारै दाद न पावै❀ ॥

[१३११] कानरौ

बुहुतै देबी बहुतै देवा कौन-कौन कौ भलौ मनाऊँ ।
हौं आधीन स्यामसुंदर कौ[2] जनम-करम पावन जसु गाऊँ ॥
लोक-लोक-प्रति सब कोउ ठाकुर
अपनि भगतनि के सुख-दाइक ।
मेरे[3] ओरंगो धीर मुरलीधर गोपी-बल्लभ गोकुल-नाइक ॥
देव असुर मानव मुनि ज्ञानी
हरि जू कौ दियो सबै कोउ पावै ।
हौं बलिहारी दास 'परमानँद' करुना-सागर काहे न भावै ॥

---

१. बढावै (ग. च.)

❀ पद सं० १२२ पर सूरसागर में भी तुक परिवर्तन तथा विपर्यय व साम्य से २. कें (छ.) ३. हौं (ङ. छ.), मैं

[१३१२] विलावल

गोविंद ! तुम्हारौ सुरूप निगम नेति-नेति गावैं ।
भक्तनि-हित स्यामसुँदर देह धरें आवैं ॥
जोगी जप ध्यान ज्ञान सपनें नहिं पावैं ।
नंद-घरनि बाँधि-बाँधि कपि ज्यों नचावैं ॥
गोपी अति प्रेम-आतुर संग लागि डोलैं ।
मुरली-नव नाद सुनत गृह तें बन बोलैं ॥
स्रुति-स्मृति बेद-पुरान सोइ रहे बिचारी ।
'परमानँद' प्रेम-कथा सबहिनि तें न्यारी❀ ॥

[१३१३] आसावरी

माधौ ! हम उरगानें लोग ।
प्रातकाल उठि माथौ नाऊँ उचित पाउँ उपभोग ॥
दुर्लभ मुगति तुम्हारे घर की संन्यासिनु कों दीजै ।
अपने चरन-कमल की सेवा इतनि कृपा मोहि कीजै ॥
जहाँ राखौ[१] तहाँ रहौं चरन-तर परयो रहौं दरबार ।
जा की जूठिनि खाउँ रयनि-दिन ता की करौं किवार ॥
जहाँ पठवौ तहाँ जाउँ बिदा लै बुतकारी आधीन ।
'परमानंददास' की जीवनि तुम पानी हौं मीन ॥

❀ पाठभेद और परिवर्तन से पद सं० १०१२ पर सूरसागर में भी

१. गयो तहाँ रह्यो (इ.)

[१३१४] केदारौ

कमल-नयन गोकुल के नाइक ।
जा कौ वैभव निगम बखानत
सिव-बिरंचि-इंद्रादिक पाइक ॥
सो गाइये सो गावत नौतन सो पूजिये सो पूजन-लाइक।
सो देखिये सो देखत नीकौ
सो सेइये सो सब सुख-दाइक ॥
जा कौऽब रूप बिचारत मुनि-जन
कुंचित केस मदन के साइक ।
सोई गोपाल 'परमानँद' स्वामी
गुन-बिचित्र मुरली-कल-गाइक ॥

[१३१५] गौरी

माधौ ! परि गई लीक सही ।
साँचो छाप स्यामसुंदर की आदि-अंत निबही ॥
जा कों राजु दियो सो अबिचलु मुनि भागवत कही ।
ध्रुव प्रह्लाद बिभीषन बलि ना संपति सदा रही ॥
जो मुख तें निकसी मधु बानी सो दूसरी नहिं भाखी ।
दियो प्रसाद दास 'परमानँद' देव-मनुज-मुनि साखी ॥

[१३१६] सारंग

जा के मन बसै[1] स्याम-घन माधौ ।
सो सुंदर सो धनी दच्छ सो सोई कुलीन सोई साधौ ॥

---
१. बसे (क. ग. छ.)

सो पंडित सो गुनी पूज्य सोई जो गोपाल कहँ गावै ।
कोटि प्रकार धन्य सोई नर जो न हरिहिं बिसरावै ॥
सो बड सूर बेद-बिद्या-रत सो भूपति सो ज्ञानी ।
'परमानँद'धन्य सो समरथु जिहिं लाल-चरन-रति मानी॥

[१३१७] सारंग

क्यों न जाइ ऐसे की सरन ।
प्रतिपालै पोषै माता ज्यों चरन-कमल भवसागर-तरन॥
कठिन अवस्था जानिए जा की
प्रगट जगत-गुरु कियो सहाइ ।
उग्रसेन हठि कियो जादौपति दीनौं राज निसान बजाइ॥
नंदादिक ब्रजबासी जेते गोपी-ग्वाल कियो प्रतिपाल ।
इंद्र-कोप तें गिरि धरि राख्यो
भक्त-बछल दुख-हरन गोपाल ॥
ऐसौ ठाकुर त्रिभुवन मोहै[1] जैसै माधौ दीनदयाल ।
'परमानंददास' कौ[2] ठाकुर केसी-मर्दन कंस-कुल-काल॥

[१३१८] गौरी

पद्म धरयौ जिन[3] ताप-निवारन ।
चारि भुजा चारि आयुध लै[4] नारायन भू-भार-उतारन॥

---

१. को है (ङ. च. छ.) २. की जीवनि (ग. ङ. छ.)
३. जन (ग.) ४. धरे (छ.)

चक्र-सुदर्सन धर्यो कमल-कर भगतनि के रच्छा के कारन।
संख धर्यो रिपु-हृदै-विदारन गदा धरी है दुष्ट-सँघारन ॥
दीनानाथ दयाल जगत-गुरु
आरति-हरन भक्तनि-चिंतामनि ।
'परमानंददास'कौ ठाकुर भूतल-काज करे भगतनि पनि॥

[१३१९] सारंग

जाहि बिसंभरु दाहिनौ सो काहे न गावै।
कुबिजा ते कमला करी हरि ऊ चितु पावै ॥
इहि रस राधा चाखि कें पाँइ लागि मनावै ।
सो गोपाल त्रिभुवन-धनी[1] घर-बैठे पावै ॥
अपने करम साझे[2] नहीं जो श्रीपति मानी ।
'परमानँद' अंतर-दसा जग-जीवन जानी ॥

[१३२०] सारंग

ते भुज माधौ ! कहाँ दुराए ?
ते भुज प्रगट करहु किनि नरहरि
जन कलि-जुग-महँ बहुत सताए ॥
जेहि भुज गिरि-मंदरु उत्पाट्यो
जेहि भुज-बल रावन-सिर तोरे ।
जेहि भुज-बल बलि-बंधन कीनों
अपने काज सँकुचि भए थोरे ॥

---

१. पति (च.) २. साझौ

जेहि भुज हिरनकसिपु उर फारयो
जेहि भुज प्रह्लादहि वरु दीनौं।
जेहि भुज अर्जुन के हय हाँके
जेहि भुज लीला भारथ[1] कीनौं ॥
जेहि भुज-बल गोवर्द्धन राख्यो
जेहि भुज-बल कमला घर आनी।
जेहि भुज कंसादिक रिपु मारे
'परमानँद' प्रभु सारँग-पानी ॥

[१३२१] सारंग

तुम तजि कौन नृपति पैं जाऊँ।
का कें द्वार पैठि[2] सिर नाऊँ पर-हथ कहाँ बिकाऊँ ॥
तुम कमलापति त्रिभुवन-नाइक बिसंभर जाकौ नाऊँ।
सुर-तरु कामधेनु चिंतामनि सकल[3] भुवन जा कौ ठाऊँ॥
तुम तें को दाता[4] को समरथ जा के दिए अघाऊँ।
'परमानँद'[5] हरि-सागर तजि कें नदी-सरन कत आऊँ[6] ❀

[१३२२] कानरौ

मोहि भावै देवाधिदेवा।
सुंदर-स्याम कमल-दल-लोचन गोकुल-नाथ एकमेवा ॥

१. भारत (इ. ड. च.) २. जाइ (घ.) ३. अखिल (घ.)
४. समान अब नहिं कोऊ दूजौ (घ.)
५. 'परमानंद' सिंधु-हरि परसे (घ.) ६. जाऊँ
❀ पद सं० १६४ पर सूरसागर में भी

तीन देवता मुख्य देवता ब्रह्मा विष्णु अरु महादेवा।
जे जानिये सकल बर-दाइक गुन-बिचित्र कीजिये सेवा॥
संख चक्र सारंग गदा-धर रूप चतुरभुज आनँदकंदा।
गोपीनाथ राधिका-वल्लभ ताहि उपासत 'परमानंदा' ॥

[१३२३] कानरौ

बलि-बलि माधव-स्याम-सरीर !
पुरुषारथ ब्रह्मादि बिचारत जै-जै-जै-जै बलभद्र-बीर ॥
नंदादिक बल्लव ब्रज-बासी जानतु है हरि सब की पीर।
सक्र-मान खंडन करि श्रीपति गोवर्द्धन-उद्धरन-धीर ॥
बाजत बेनु राधिका-बल्लभ कछू आस नहीं बरषत नीर।
'परमानँद' प्रभु सब विधि समरथ
विपुल बिनोद गहैं कर चीर ॥

[१३२४] धनाश्री

बड़ी है कमलापति की ओट।
सरन गएँ ते पकरि न आये कियो कृपा कौ कोट ॥
जा की सभा एक-रस बैठत कौन बड़ौ को छोट।
सुमिरत नाम अघै-भव-भंजन कहा पंडित कहा बोट॥
जद्यपि काल बली अति समरथ नाहिंन ता की चोट।
'परमानँद' प्रभु पारस-परस ते लोह कनक नहिं खोट॥

❀ 'बड़ी है राम-नाम की ओट' इस तुक से पद सं० २३२ पर सूरसागर में भी संक्षिप्त रूप, पाठभेद और परिवर्तन से

[१३२५] कान्हरौ

माधौ ! तुम्हारी कृपा तें को को न बढ्यो ?
मन-क्रम-बचन नाउँ जिनि लीनों
ऊँची पदई[1] सोई चढ्यो ॥
तुम जाहि जमलु[2] दियो जग-जीवन !
सो पुरान कुतर्क कढ्यो।
गनिका व्याध अजामिल गजेंद्र
तिननु कहा हौ बेद पढ्यो ॥
ध्रुव प्रह्लाद भगत हैं जेते
तिनि कौ निसान बाज्यो बिनु ही मढ्यो।
'परमानंद' प्रभु भगत-बच्छल हरि
इहै जानि जिय नामु भिढ्यो[3] ॥

[१३२६] धनाश्री

रसिक-सिरोमनि प्रेम-भगति-बस[4]
आपु बँधाइ[5] लाल औरनि छोरत।
ऐसे प्रभु कों छाँडि कुमति अनतहिं[6] दौरत ॥
परम कृपाल गोपाल-बालक[7] कटि ऊखल डोरत।
ऋषि-जन-वचन-प्रमान किए सुर सुनतहि बहोरत ॥

१. पदवी (ग. छ.) २. जमलो (इ.), जिहि मेलौ (ड. छ.)
३. हढ्यो (इ. ग.) ४. हित (इ.) ५. बँधाए (इ. छ. च.)
६. बहुत (इ) ७. बाल (क.)

निगम-गूढ़ हरि प्रगट भए दधि माखन चोरत ।
'परमानँद' प्रभु गृह-गृह डोलत भाजन फोरत ॥

[१३२७] सारंग

तुम तजि कौन सनेही कीजै ।
सदा एक-रस को निबहतु है जा की चरन-रज लीजै ॥
इहि न होइ अपनी जननी तें पिता करत नहिं ऐसी ।
बंधु-सहोदर तेउ न करत हैं मदन-गोपाल करत हैं जैसी ॥
सुख अरु लोक देत हैं ब्रजपति
अरु बृंदाबन-बास बसावत ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर नारदादि पावन जसु गावत ॥

[१३२८] कल्यान

माधौ ! इह घर अधिक धरी ।
स्रवन-कथा[1] कों लीला कीनी मरजादा न टरी ॥
जो गोपिनि कों बिरह न होतौ अरु भागवत[2]-पुरान ।
तौ सब औघड-पंथी होते कथत रमैया-ज्ञान ॥
बारह बरस के होत दिगंबर ज्ञान-हीन संन्यासी[3] ।
खान-पान घर-घर सबहिनि कें राख लगाइ उदासी[4] ॥
पाखँड-दंभ बढ्यो कलिजुग में सुद्ध धरम भयो लोप ।
'परमानंद' बेद पढि बिगरयो का पर कीजै कोप ॥

---

१. कथन (ङ छ.) २. भागौत (ङ छ.)
३. संन्यास (ख.) ४. उदास (ख.)

[१३२९] टोडी

कमल-नयन कमलापति त्रिभुवन-नाथ।
एक प्रेम तैं सब बनै जो मन होइ हाथ॥
सकल लोक की संपदा जो आगें धरिए।
भक्ति-बिना मानैं नहीं जो कोटिक करिए॥
दास कहावत कठिन है जौ लौं चित-राग।
'परमानँद' प्रभु साँवरो पैयतु बड भाग॥

[१३३०] कल्यान

साँचौ दीवान है री! मेरौ कमल-नयन।
तू मेरौ ठाकुर तू जदुनंदन जगत-जीवन॥
जाके छत्र अकास सिंघासन वसुधा अनुचर सहस्र अठासी।
सेवक चपरि ता ही कों मारत जे हठि होत मवासी॥
जा के ब्रह्म बजीर सखा उमापति सुरपति पान खवावै।
नारद-तुम्बरु[१] कीरति गावैं मारुत चमर दुरावै॥
जा के कमला सी दासी पाइ पलोटै
रिधि-सिधि द्वार बुहारै।
दफ्तर लिखै सारदा-गनपति रवि-ससि न्याउ निवारै॥
जा के बंदी बेद पुकारत द्वारें मोंहों लौं कोउ न पावै।
ताहि निहाल करै 'परमानँद' नेकु मौज जो आवै॥

---

१. सुक अरु व्यास विभीषन सोई कीरति गावै (इ.)

[१३३१] बिलावल

ता तें ना कछु माँगिहों रहों जिय जानि।
मन-कलपित कोटिक करै उदधि-लहर समानि ॥
बिनु माँगे ही आपदा आवै भर-पूरि।
ता ठाकुर कों[1] संपदा कहो केतिक दूरि ॥
जे-जे देव आराधिये सो हरि के भिखारी।
माँगि दिये कत सेइयें बिगरें उपकारी ॥
सो ठाकुर कत सेइये माँगनि लौं राखै।
माँगे जन-पद जात है 'परमानँद' भाखै ॥

[१३३२] सारंग

गई न आस पापिनी दहै।
तजि सेवा वैकुंठनाथ की नीच लोग के संग रहै ॥
जिन कौ मुख देखे दुख लागत तिनसों राना-राइ कहै।
फिरि मंद-मूढ अधम अभिमानी
आसा लगै दुरबचन सहै ॥
नँहिन कृपा स्यामसुंदर की अपने खाँगे[2] जात बहै।
'परमानँद' प्रभु सब सुख-दाता
गुन बिचारि नहिं नेमु गहै ॥

[१३३३] सारंग

ता तें दसधा भक्ति भली।
जिन-जिन कीनी तिन के मन तें नेंकु न अनत चली ॥

१. कें (ग. ङ) २. स्वाँगे (छ.)

स्रवन परीच्छित तरे राजरिषि कीरति करि सुकदेव।
सुमिरन करि प्रहलाद निरभै भयो कमला करी पद-सेव॥
पृथु अरचन सुफलक-सुत बंदन दास-भाव हनुमंत।
सखा-भाव अर्जुन बस कीनें श्रीहरि श्रीभगवंत॥
बलि आतमा-समर्पन कीनौं हरि राखे अपने पास।
अविरल प्रेम भयो गोपिनि कौ बलि 'परमानँददास'॥

[१३३४] सारंग

जा कौं कृपा-कटाच्छ करैं श्रीवृंदावन-नाथ।
बरन-हीन अहीरिनी खेलें मिलि साथ॥
नाभि-सरोज बिरंचि कौ हुतौ जनम-अस्थान।
बच्छ-हरन अपराध तें[1] कीनौं गत-मान॥
मारकंडेय तें को बडौ मुनि ज्ञान-प्रवीन।
माया-उदधि-तरंग में कीनौं मति-लीन॥
कहौ तपसा[2] कौनें करी संकर की नाँई।
जीते मन सँग-सँग फिरे मोहिनी के ताँई॥
गनिका कें कहा कुल हुतौ कहा गज के आचार।
कौन वैभौ स्रुतदेव कें गवन कियो हरिद्वार॥
जो कोऊ कोटिक करैं बुधि-बल-जंजाल।
'परमानँद' प्रभु साँवरौ दीननि कौ दयाल॥

---

१. तेहि (इ. च.) २. तपस्या (इ.)

[१२३५] सारंग

माधौ ! संगति पोच[1] हमारी।
स्वारथ-मीत मिले बहुतेरे एक आधार तुम्हारी ॥
इहि तो लाज तुमहिं कमलापति ! जो हमारी पत जाई।
जद्यपि पाखंडे जो आराधत ता दिन नाम-सगाई ॥
व्याध गीध गनिका अरु पूतना बिगरी बात सँवारी।
'परमानंददास' को ठाकुर औगुन कौं गुनकारी ॥

[१२३६] सारंग

हरि के भजन कों कहा चहियत है
स्रवन नैन रसना पद पानि।
ऐसी संपति आनि बनी है
नाहीं[2] भजत ताहि बडी हानि ॥
पूरव-जनम-सुकृत-फल पायो अति पवित्र मनुषा-अवतार।
पाप-पुन्य जा तें चीन्ह परत हैं
उपजत ब्रह्म-ज्ञान अति सार ॥
गुरु कौ निहारि पोत-पद-अंबुज
भव-सागर तरिबे कौ हेतु।
प्रेरक पवन कृपा केसौ की 'परमानंददास' चित चेतु ॥

---

१. चोप (ग.) २. जेइ न भजें (इ. ग. च.)

[१३३७] सोरठी

मैं मन बहुत भाँति समुझायो।
मदनमोहन की सेवा न कीनी ता तें बहुत दुख पायो ॥
भज्यो नहीं भगवंत भली फिरि पर-दारा चितु लायो।
हर्यो पर-धन पर-निंदा कीनी बिषै परम बिषु खायो ॥
उदर भर्यो अपने कुनबा कौ
हरि-दासनि कछू न जिवायो।
जमदूत जब मारनि लागे कोऊ न आडौ आयो ॥
थाके नैन बैन सब थाके थाकी सुंदर कायो।
लाठी लैंनि चलनि जब लाग्यो तृष्णा तउ न अघायो॥
किये करम आगनें सब भुगते दुख कौ अंत न आयो।
'परमानँद' प्रभु कृष्ण-कृपा-बिनु ऊँचे सिर छिटकायो❀॥

[१३३८] सारंग

सेवा मदनगोपाल की मुगति हू तें मीठी।
जानें रसिक उपासिका सुक-मुख जिनि दीठी॥
चरन-कमल-रज मन बसी सब धर्म बहाए।
स्रवन कथन चिंतन बढ्यो पावन गुन गाए॥
वेद-पुरान निरूपि कें रस लियो निचोइ।
पान करत आनँद भयो डार्यो सब छोइ ॥

❀ पद सं० २५०७ सूरसागर में भी

'परमानंद' बिचारि कैं परमारथ साध्यो ।
रामकृष्ण-पद-प्रेम बढ्यो लीला-रस बाँध्यो ॥

[१३३९] टोडी

जा पर कमला-कंत ढरैं ।
लकरी घास कौ बेचनिहारौ ता सिर छत्र धरैं ॥
विद्यानाथ अविद्या-समरथ जो कछु चहैं सो करैं ।
रीते भरैं भरैं फिरि ढारैं जो चाहैं तौ फेरि भरैं ॥
सिद्ध पुरुष अविनासी समरथ काहू तें न डरैं ।
'परमानंद' देइ मन-संपति या तें कछु न टरैं ॥

[१३४०] टोडी

कियौ गोपाल कौ सब होइ ।
जो मानैं पुरुषारथ अपनौ अतिसै झूँठौ सोइ ॥
सुख-दुख लाभ-अलाभ सहज गति ताहि न मरिये रोइ।
जो कछु लेख लिख्यो नँदनंदन मेटि सकै नहिं कोइ ॥
साधन मंत्र जंत्र उद्यम बल यह सब डारौं धोइ ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर चरन-कमल चित पोइ ॥

[१३४१] टोडी

तुम्हारे चरन-कमल कौ महातम
सिव जानैं कै गौतम नारि ।
जटाजूट में पावन गंगा अजुहूँ लियें बहत त्रिपुरारि ॥

कै जाने लच्छमी महामति कै जानै वसुमती कुमारि ।
कै जानै नारद मुनि ज्ञानी
गावत फिरत तिहुँ लोक-मँझारि ॥
कै जानै नृग नृपति कूप में ततछिनु तार्यो देव मुरारि ।
कै जानै व्याध अधम गति चढि बिमान गयो देव-दुवारि॥
कै जानै विक्रम महाबली सरबसु दै मेटी कुल-गारि ।
कै जानै 'दास परमानंद' जा के हृदै बसै भुज-चारि ॥

[१३४२] धनाश्री

रे मन ! सुनि पुरान कहा कीनों ।
अनपाइनी भक्ति न उपजी भूखे दान न दीनों ॥
काम न बिसर्यो क्रोध न बिसर्यो लोभ न बिसर्यो देवा
पर-निंदा मुख तौ नहिं बिसरी निफल भई सब सेवा ॥
बाट-परी घर मूसि परायौ पेट भर्यो अपराधी ।
परलोक जाइगौ जातें सोई सोई अविद्या साधी ॥
चरन-कमल-अनुराग न उपज्यो भूत-दया नहिं पाली ।
'परमानँद' साधु-संगति बिनु कथा पुनीत न चाली ॥

[१३४३] टोडी

❀औरंगो माधौ जानराई ।
जा के घर की आदि ठकुराई तोहि बहुत संतनि परभाई॥

❀और माँगौ० (ग.) से भी प्रारंभ,

जा के दिएँ बहुरि नहिं जाचौं दुख-दारिद नहिं जानैं ।
बारंबार सँभार न भूलैं सुमिरन-सेवा मानैं ॥
पारथ-सूत दूत पांडव के उग्रसेन-अधिकारी ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर गोपिनि कौ हितकारी ॥

[१३४४] बिलावल

माधौ ! इह प्रसाद हौं पाऊँ ।
तव भृत-भृत्य-भृत्य-परिचारक दास कौ दास कहाऊँ ॥
इह परमारथ गुरु मोहि सिखायो स्याम-धाम की पूजा ।
इह बासना घटै न कबहूँ देव न देखौं[1] दूजा ॥
'परमानंददास' तुम ठाकुर इह नातौ जिनि टूटै ।
नंद-किसोर[2] जसोदा-नंदन हिलि-मिलि प्रीति न छूटै ॥

[१३४५] सारंग

आँधरे की दई चरावै ।
जा कौं कितहू ठौर नहीं सो तुमरी सरनागति आवै ॥
गंगा मिलै सकल जन-पावन लोक-वेद-गुन सब बिसरावै।
स्वपच बलिष्ठ होइ 'परमानँद' ऐसौ ठाकुर काहि न भावै॥

[१३४६] धनाश्री

तन-मन जुगल-नयन पर वारौं ।
कुंज-रंध्र गौर-स्याम-छबि बारंबार निहारौं ॥

१. देख्यो (छ.) २. कुमार (ग. छ.)

अपनी टहल कृपा करि दीजै ता सँग जीव-उधारों।
'परमानंद' जु लाभ-भजन-बिनु काज सबै लै जारों ॥

[१३४७] रामकली

ऐसी बिषै-विष-पान सों प्रीति मेरी।
कहत ही सुनत गोबिंद-गुन रटत नहीं
दुश्र-दुवास नारदै कै री ॥
काल-गति देह-गति गृह कहूँ तजत नहिं
देह-रोगादि दुख-सुख-ढेरी।
भूलि वन भौं परौ पार पानु नहि अरभि
नख-सिख रही कमी जेरी ॥
चोर बटपार भुज रोकि दुहुँ दिसि रहे
बोल बोलत फिरत लेट लै घेरी।
जाउँ जिहिं ओर तिहि ठौर कहुँ
कुसल नहिं आनत नहीं मपानुन सेरी॥
टेरि भुज ऊँच करि राधिका-रवन सों
दूरि मोतें रही भक्ति तेरी।
'दासपरमानंद' ए हाल ऐसे भए
ऐसे सत-संग बिनु बूडि बेरी ॥

[१३४८] कान्हरौ

आए मोरें नंदनँदन के प्यारे।
माला तिलक मनोहर बानौ त्रिभुवन के उजियारे ॥

का जानौं कहा पुन्य उदय भए मेरे घर जु पधारे।
हृदय-कमल के मध्य बिराजत श्रीब्रजराज-दुलारे ॥
प्रेम-सहित उर बसत निरंतर नेंकहु टरत न टारे।
'परमानंद' करी न्यौंछावरि बार-बार हौं जाऊँ बारे ॥

[१३४९] कान्हरौ

यह माँगौं जसोदा-नंदन !
चरन-कमल मेरौ मन-मधुकर या छबि नैननि पाऊँ दरसन॥
चरन-कमल की सेवा दीजै
दोउ तन राजत बिज्जु-लता-घन।
नंदनँदन वृषभानु-नंदिनी मेरे सरबसु प्रान-जीवन-धन॥
ब्रज बसिबौ जमुना-जल अचिबौ
श्रीबल्लभ कौ दास इहै पन।
महाप्रसाद पाऊँ हरि-गुन गाऊँ
'परमानंददास'-दासी-जन ॥

[१३५०] कान्हरौ

यह माँगौं गोपी-जन-बल्लभ !
मानुस-जनम और हरि-सेवा
ब्रज-बसिबौ दीजै मोहि सुल्लभ ॥
श्रीबल्लभ-कुल कौ हौं चेरौ बैष्णव-जन को दास कहाऊँ।
श्रीजमुना-जल नित-प्रति न्हाऊँ
मन-बच-कर्म कृष्ण-गुन गाऊँ ॥

श्रीमद्भागवत स्रवन सुनौं नित
इन तजि चित कहुँ अनत न लाऊँ ।
'परमानँद' इहि माँगत नित-नित
निरखौं हौं कबहूँ न अघाऊँ ॥

[१३५१] बिलावल

यह माँगौं संकरषन-बीर ।
चरन-कमल-अनुराग निरंतर भावत है भगतनि की भीर॥
संग देहु तौ हरि-दासनि[1] कौ बास देहु तौ जमुना-तीर।
भक्ति देहु तौ स्रवन-कथा रुचि ध्यान देहु तौ स्याम-सरीर॥
इह बासना घटौ जिनि निसि दिन मज्जन-पान सुरसरी-नीर।
'परमानंददास' कौ ठाकुर गोकुल-मंडन[2] सब बिधि धीर॥

[१३५२] सारंग

अनुग्रह तौ मानौं गोबिंद ।
बारक चरन-कमल दिखरावहु बृंदाबन के चंद ॥
नीके सों नीकौ सब कोऊ सुनु प्रभु आनँद-कंद ।
पतितनि देत प्रसाद कृपा करि सोई ठाकुर नँद-नंद॥
अपराधी आदरै न कोऊ अधम नीच मति-मंद ।
ताकौं तुम परसिद्ध पुरुषोत्तम गावै 'परमानंद'॥

---

१. भगतनि (इ. ग.) २. नाइक (अ.)

[१३५३] धनाश्री

कबहूँ करिहौ धौं दाया ।
हस्त-कमल की हमहूँ ऊपर फिरि जैहौ[1] छाया ॥
जिहि प्रसाद गोकुल प्रतिपाल्यो कर-तल अद्रि उचायो।
जिहि कर-अंबुज परसि चारु कुच राधाहि भलौ मनायो॥
जिहि कर-कमल बाल-लीला-रस धेनुक दैत्य फिरायो ।
जिहि कर-कमल मात जसोदा पै माखन-लौंदी खायो॥
जिहि कर-कमल कोपि झूँटै[2] धरि भूतल कंस गिरायौ।
तिहि[3] कर-कमल दास 'परमानँद' सुमिरत इहि दिन आयो॥

[१३५४] टोडी

❀अपने चरन-कमल कौ मधुकर मोहू काहे[4] न करहू जू ।
कृपावंत भगवंत गुसाँई ! इहि विनती चित धरहू जू ॥
सीतल आतपत्र को छाया कर-अंबुज सुखकारी ।
पद्म[5]-प्रवाल नयन रतनारे[6] कृपा-कटाच्छ मुरारी ॥
'परमानंददास' रस-लोभी भाग्य-बिना क्यों[7] पावै ।
जा[8]कों द्रवत रमापति स्वामी सो दुख निकट न आवै॥

---

१. जैहै (छ.) २. जूडै (छ.) ३. जिहि (क.)
❀ तिहारे० (ग.) से भी प्रारंभ ४. कबहुँ करौगे, धरौगे (ग.)
५. प्रेम (ग.) ६. अनियारे (ग.) ७. को (ग.)
८. तापर कृपा करत नँदनंदन ताहि सबै बनि आवै (ग.)

[२] नाम-माहात्म्य

[१३५५] भैरव

मंगल माधौ-नाम उचार ।
मंगल बदन कमल-कर मंगल मंगल जन की सदा सँभार॥
देखत मंगल पूजत मंगल गावत मंगल चरित उदार ।
मंगल स्रवन कथा सुनि मंगल मंगल तनु बसुदेव-कुमार॥
गोकुल मंगल मधुबन मंगल मंगल चरित[1] बृँदावन-चंद।
मंगल कर्म[2] गोवर्द्धन-धारी मंगल भेष जसोदा-नंद ॥
मंगल धेनु-रेनु सुचि[3] मंगल मंगल मधुर बजावत बेनु ।
मंगल गोप-बधू-परिरंभन मंगल कालिंदी-पय-फेनु ॥
मंगल चरन-कमल सुर-बंदित मंगल कीरति जगत-निवास।
मंगल ध्यान-विचारित अनुदिन मंगल मति[4] 'परमानँददास'

[१३५६] भैरव

प्रात-समै उठि हरि नाँउ लीजै
आनँद सौं[5] सुख में दिन जाइ ।
चक्रपानि[6] करुना[7] कौ सागर विघन-विनासन जादौराइ॥
कलि-मल-हरन तरन-भव-सागर भक्त-चिंतामनि काम-धेनु।
ऐसें[8] सुमिरत नाँउ कृष्ण कौ बंदनीक पावन पद-रेनु ॥

---

१. रचित ख.) २. करन (छ.) ३. भुवि (ख.) ४. मन (ग.)
५. में (क.), ही (ग. ड.) ६. मोहनलाल (छ.)
७. करुनामय केसौ (इ) ८. ऐसौ सुमिरन (क.)

सिव-विरंचि-इंद्रादि देवता मुनि-जन करत नाम की आस।
भक्त-बछल ऐसौ नाम कल्पद्रुम वर-दाइक 'परमानँददास' ॥

[१३५७] गौरी

हरि जू कौ नाम सदा सुख-दाता ।
करौ जु प्रीति निश्चल मेरे मन ! आनँद-मूल-विधाता ॥
जाके सरन गए भय नाँही सकल बात कौ ज्ञाता ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर संकरषन कौ भ्राता ॥

[१३५८] विहाग

जो पै श्रीनंदनँदन-गुन गाऊँ ।
मुख सों रटत रहौं निसि-बासर
जो कहुँ स्रवन कथा सुनि पाऊँ ॥
कर सों सेवा करौं तन-मन-धन सरबसु जग बिसराऊँ ।
निरखत उर में यही सदा रट पद-रज-वास बसाऊँ ॥
नवधा भक्ति इंद्रि दस अर्पित प्रेम प्रगट सरसाऊँ ।
'परमानँददास' कौ ठाकुर नवनीत-चेरौ सदा कहाऊँ ॥

[१३५९] सारंग

जो जन हिरदै नाउँ धरै ।
अष्ट-सिद्धि नौ-निधि को बपुरी लटकत लार फिरै ॥
ब्रह्मलोक सिवलोक इंद्रलोक सब हू तें उपरै ।
जो न पत्याहु तौ चितवौ ध्रुव-तन टारयौ हू न टरै ॥

सुंदर-स्याम कमल-दल-लोचन सब दुख दूरि करै ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर वाचा तैं न टरै ॥

[१३६०] बिलावल

काम-धेनु हरि-नाउँ लियो ।
मन-क्रम-बचन की कौन संपति कहै
महा पतित द्विज अभै दियौ ॥
कौन नृपति की हुती कुल-बधू
गनिका कौ कहा पवित्र हियौ ।
जज्ञ-जोग तौ किये महा नृग कौन बेद गज-ग्राह कियौ॥
द्रुपद-सुता दीन हरि सुमिरे
नृपति नगन बपु कर न छियो ।
असुर-त्रास त्रैलोक्य-सुसंकित सुत कौ काहे न पोच कियो॥
भव-जल-ब्याधि असाध्य रोग कौ
जप-तप-ब्रत औषध न दियो ।
गुरु-प्रसाद साधु की संगति जन 'परमानँद' रंक कियो॥

[१३६१] सारंग

हरि-जसु गावत होइ सु होइ ।
बिधि-निषेध के खोज परौ जिनि अनुभव देख्यो जोइ॥
आदि मध्य अवसान बिचारत हरि-स्वरूप ठहरात ।
बीच ही एक अविद्या भासै बेद-बिदित इहि बात ॥

राम-कृष्ण अवतार मनोहर भक्त-अनुग्रह-काज।
'परमानंददास' इहि मारग बीतत राम के काज ॥

[१३६२] सारंग

हरि के भजन मँह सब बात।
ज्ञान-कर्म सो कठिन करि कत देत हौ दुख गात ॥
बदत[1] बेद-पुरान छिनु-छिनु साँझ अरु परभात।
संत-जन-मुख-द्रवत हरि-जसु नंदलाल-पद-अनुरात ॥
नाहिंन भव-जलधि कोउ औरों बिघन के सिर लात।
दास 'परमानंद' प्रभु पै मारि मुख ए जात ॥

[१३६३] सारंग

हरि जू की लीला काहे न गावत।
राम-कृष्ण गोबिंद छाँडि मनु औरऽब कें कहा पावत॥
जैसें सुक-नारद मुनि ज्ञानी इहि रस अनुदिन पीवत।
आनँद-मूल कथा के लंपट इहि[2] रस-ऊपर जीवत ॥
देखि बिचारि कहाँ धौं नीकौ जेइ भवसागर छूटै।
'परमानंद' भजन-बिनु साधें बाँध्यौ अविद्या फूटै ॥

[१३६४] सारंग

तुम्हरौ भजन सब ही कौ सिंगार।
जे कोउ प्रीति करै पद-अंबुज उर-मंडन निर्मोलक हार॥

---

१. बदै (इ. ग. ङ. छ.) २. या (इ. ड. च. छ.)

कंचन-भूषन पाट-पटंबर मानहुँ लियें बहत सिर-भार ।
मनुषा[1]-जनमु पूरब-फल पईयतु
भगति-बिना मिथ्या अवतार ॥
जननी बाँझ भई बरु काहे न गरभु गिरि न गए ततकार।
'परमानँद' प्रभु तुम्हारे भजन-बिनु
जैसें सूकर स्वान सियार❀ ॥

[१३६५] सारंग

कृष्ण-कथा-बिनु कृष्ण-नाम-बिनु
कृष्ण-भगति-बिनु दिवस जात ।
ते प्रानी काहे कों जीवत
जे[2] नाहीं बदत[3] कृष्ण की बात ॥
स्रवन न कथा स्यामसुंदर की राम-कृष्ण रसना न स्फुरत।
मानुष-जन्म कहाँ पावैगौ
ध्यान करहि[4] घनस्याम चतुर नट[5] ॥
जो इहि लोगु परम सुख राखत
अरु परलोक करत[6] प्रतिपालु ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर अति गंभीर दीनानाथ दयालु॥

---

१. मानुष (ग. च.)
❀ पद सं० ४१ पर सूरसागर में भी पाठ-भेद परिवर्तन साम्य सहित
२. नहिं मुख (इ. ग. ङ. च) ३. बदत (ग.)
४. धरहि (इ. क. ग. ङ. च. छ.) ५. मत (ग. ड. च. छ.) ६. रटत (इ.)

[१३६६] विलावल

ता तें गोविंद नाम लौं[1] गुन गायो चाहौं।
चरन-कमल-हित प्रीति कर सेवा-निरबाहौं ॥
जो हौं तुम में मिलि रहौं कछु भेद न पाऊँ।
प्रलै-काल के मेघ ज्यों तुम माँझ समाऊँ ॥
जीव-ब्रह्म अंतर नहीं कंचन-मनि जैसें।
जल-तरंग प्रतिमा-सिला कहिबे कौं ऐसें ॥
जिनि[2] सेवा सचु पाइये पद-अंबुज-आसा।
सो मूरति मेरे हृदै बसौ 'परमानंददासा' ॥

---

[३] ब्रज-महिमा

[१३६७] सारंग

❀गोकुल के लोग बडभागी।
नित उठि कमल-नयन-मुख निरखत
चरन-कमल के अनुरागी ॥
जा कारन मुनि जप-तप साधत धुमर-पान तन कीनों हो।
सोउ नंद जू के आँगन खेलत ज्यों पानी में मीनों हो ॥
आसन भोजन सयन परम रुचि मानत कुल कौ नातौ हो।
'परमानंददास' कौ ठाकुर ग्वालिनि-सँग रँग-रातौ हो ॥

---

१. ल्यो (ग. ङ. छ.) २. निज (क.)
❀मधुवन के० (क.) से भी प्रारंभ

[१३६८] सारंग

ब्रजबासी जानें रस-रीति ।
जा कै हृदै और कछु नाहिंन नंद-सुवन-पद-प्रीति ॥
करत महल में टहल निरंतर जात जाम पल[1] बीति ।
सर्ब-भाव आत्मा निबेदित रहै त्रिगुनतातीति ॥
उनकी[2] गति औरै नहिं जानत बीच अवनिका-भीति ।
कोउक[3] लहै 'दासपरमानंद' गुरु-प्रसाद-परतीति ॥

[१३६९] कान्हरौ

गावति गोपी मृदु-मधु बानी ।
जा के भवन बसत त्रिभुवन-पति राजा नंद जसोदा रानी ॥
गावत वेद भारती गावति गावत नारदादि मुनि ज्ञानी ।
गावत गन[4] गंधर्ब काल सिव गोकुलनाथ महातमु जानी ॥
गावत चतुरानन जग-नायक गावत सेस सहस-मुख-रास ।
मन-क्रम-बचन-प्रीति पद-अंबुज
अब गावत 'परमानँददास' ॥

[१३७०] सारंग

जब लगि जमुना गाइ गोवर्द्धन
जब लगि गोकुल गाउँ गुसाँई ।
जब लगि श्री भागवत-कथा-रस
जब लगि कलिजुग नाँई ॥

---

१. सब (व. ङ. छ) २. इनकी (ग. घ. ड. च.)
३. कछुक लहत (ग. घ. ङ. छ.) ४. गुन (घ. च.)

जब लगि रस सेवक-सेवा-रस नँदनंदन सों प्रीति लखाई।
'परमानँद' तासों हरि क्रीडत
श्रीबल्लभ-चरन-रेनु जिनि पाई ॥

[१३७१] बिहागरौ

कहा करों वैकुंठहि जाइ।
जहाँ नहिं नंद जसोदा[1] गोपी
जहाँ नहिं बच्छ[2] ग्वाल और गाँइ ॥
जहाँ नहिं निर्मल जल जमुना कौ
जहाँ[3] नहिं वृच्छ कदम की छाँइ।
'परमानंद' प्रभु चतुर ग्वालिनी
ब्रज-रज तजि मेरी जाइ बलाइ ॥

[१३७२] सारंग

धन्य-धन्य वृंदावन-वासी।
नित-प्रति चरन-कमल-अनुरागी स्यामा-स्याम-उपासी ॥
पारस कौ जो मरमु न जानै जाइ बसौ जो कासी।
भसम लगाइ गरें लिंग बाँधौ सदाई रहौ उदासी ॥
अष्ट-महा-सिधि द्वारें ठाढी मुक्ति चरन की दासी।
'परमानंद' चरन-कमल भजि सुंदर घोष-निवासी ॥

---

१. जहाँ नहिं (ग.) २. ग्वालवाल नहिं (ग.)
३. और नहीं कदमनि की (ग.)

[१३७३] सारंग

गोपिनि की सरभर कौन करै ।
जिन कीचरन-कमल-रज पावन ऊधौ सीस धरै ॥
चतुरानन तें अधिक न कोऊ सोऊ पन इह जु बरै ।
माँगत जनम लता-द्रुम-बेली तऊ अति जिय में डरै ॥
इह अचरजु कहाँ लौं बरनौं जो मनु हरि कौ हरै ।
'परमानँद' प्रभु-चरन-कमल भजि सब कौ काज सरै ॥

[१३७४] बिलावल

लगै सखि ! वृंदावन कौ रंग ।
तब अभिमान सबै छुटि जैहै और विषइनि कौ संग ॥
सखी-भाव सहज होइ सजनी ! पुरुष-भाव होइ भंग ।
श्रीराधावर सुमिरत-सेवत मिटै जो कोटि अनंग ॥
तन के ताप सबै छुटि जैहैं मनसा व्हैहै पंग ।
'परमानँद' स्वामी-गुन गावत उठै जो प्रेम-तरंग ॥

[१३७५] मलार

वृंदावन क्यों न भये हम मोर ।
करत बिहार गोबर्द्धन-ऊपर निरखत नंदकिसोर ॥
क्यों न भये बंसी-कुल सजनी अधर पिवत घनघोर ।
क्यों न भये गुंजा-वन-बेली रहत स्याम जू की ओर ॥
क्यों न भये मकराकृत कुंडल स्याम-स्रवन झकझोर ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर गोपिनि के चित-चोर ॥

[१३७६] सारंग

* बने माधौ जू के महल।
जेठ[1] मास अति जुडात माघ मास कहल ॥
दूरि भयें[2] देखियत है बादर के से पहल।
बीच-बीच हरित-स्याम जमुना के से दहल ॥
ब्रजपति कें कहा अनूप इहै बात सहल।
'परमानंददास' तहाँ करत[3] फिरत टहल ॥

[४] श्रीयमुनाजी

[१३७७] रामकली

श्रीजमुना इहै प्रसाद हौं पाऊँ।
तुम्हारे निकट बसौं निसि-बासर राम-कृष्ण-गुन गाऊँ ॥
मज्जन करौं बिमल पावन जल चिंता-कलुष[4] बहाऊँ।
तेरी कृपा भानु की तनुजा[5] हरि-पद-प्रीति बढाऊँ ॥
बिनती करौं इहै बरु माँगौं अधम-संग बिसराऊँ।
'परमानंददास'[6] सुख-दाता मदनगोपालहिं भाऊँ[7] ॥

[१३७८] रामकली

श्रीजमुनाजी ! दीन[8] जानि मोहिं दीजै।
नंद कौ लाल सदा वर माँगौं सब गोपिनि की दासी कीजै ॥
तुम हौ परम कृपाल दयानिधि संत[9]-जननि सुखकारी।

* देखियत माधौ जू कें० से भी प्रारंभ १. ग्रीषम-रितु (क.)
२. दूरि ही तें (अ.) ३. नीके करत (क.) ४. कलह नसाऊँ (अ.)
५. तनया (अ.) ६. चारिफल (अ. ग.) ७. गाऊँ (ध.), गोपाल लडाऊँ (अ.)
८. यहै दान (बं० ३,१) ९. चरन-सरन

तिहारे बस बर्त्तत है राधावर तट क्रीडत गिरिधारी ॥
ब्रज-नारी सब खेलत हरि-सँग अद्भुत रास-बिलासी ।
तिहारे पुलिन-मध्य निकट कुंज-द्रुम कमल-पुहुप हैं सुवासी॥
स्रम-जल-सहित न्हात सब सुंदरि जल-क्रीडा सुखकारी।
मनहुँ तारा मध्य चंद बिराजत भरि-भरि छिरकत नारी॥
रानी जू के पाँइ परों नित गृह कौ कारज सब कीजै ।
'परमानंददास' ह्वै इहि रस नैननि भरि-भरि पीजै ॥

[१३७६] बिभास

तू जमुना गोपालहिं भावै ।
जमुना-जमुना नाम उच्चारै धर्मराज ताकौ न चलावै ॥
जे जमुना कौ दरसन पावैं जे जमुना-जल-पान करैं ।
सो प्राणी जम-लोक न देखें चित्रगुप्त लेखौ न धरैं ॥
जे जमुना कौ जानि महातमु बारंबार प्रनाम करैं ।
जे जमुना-अवगाहन-मंजन करैं चिंतन तन-ताप हरैं ॥
पद्म-पुरान कथा ए पावन धरनी मुख-वाराह कही ।
तीर्थ महातमु जानि जगत-गुरु यह प्रसाद 'परमानँद' लही॥

[१३८०] बिलावल

श्रीजमुना गोपालहि भावैं ।
जो जमुना के दरसन कीजै कोटि जनम के पाप नसावैं॥
जे जमुना-अस्नान करत हैं बहुर्यौ संकट और न आवैं।
जो जमुना-जल-पान करत हैं धर्मराज-लेखौ न गनावैं॥

पद्म-पुरान कथा सत्र-ऊपर धरनी सों बाराह जसु गावैं।
ते तीरथ ए प्रगट जगत में 'परमानंद'-प्रसादें पावै ॥

[१३८१] रामकली

जमुने ! पिय कों बस तुम जो कीने ।
प्रेम के फंद तें घेरि राखै जो निकट ऐसे
निरमोल नग मोल लीने ॥
तुम जो पगबत तहाँ अब धावत
निसि-दिन तिहारे रस-रंग-भीने ।
'दासपरमानंद'पाइ अब व्रजचंद परमउदार अबजमुनेदीने॥

[१३८२] रामकली

जमुना के साथ अब फिरत हैं नाथ ।
भक्त के मनोरथ पूरत सबैं
कहाँ लौं कहिये अब इनकी जो बात ॥
विविध सिंगारि भूषन अँग-अँग सजे
बरनी न जात सोभा बनी गात ।
दास 'परमानंद' पाइ अब व्रजचंद राखि
अपने सरन बहे जो जात ॥

[१३८३] रामकली

जमुना की आस अब करत हैं दास ।
मन-क्रम-बचन करि जोरि कें माँगि
निसि-दिन राखि अपने पास ॥

जहाँ अब रसिकिनी राधिका
दोउ जने संग मिलि करत रास ।
'दास परमानंद' पाये अब चंद देखि
सिरात मन-नैन मंद हास ॥

[१३८४] रामकली

जमुने ! सुख-कारिनी प्रान-पति के ।
पीय जे भूलत जिन्हें सुधि करि देति
तिन्हें कहाँ लौं कहिये अति इनके हिति के॥
पिय-संग गान करै अति रस उमगि भरै
देत तारी करै हेत जिति के ।
'दास परमानंद' पाइ अब ब्रजचंद
एक हि जानत अति प्रेम-गति के ॥

[१३८५] विभास

कालिंदी कलि-कलमल-हरनी ।
रवि-तनया जम-अनुजा स्यामा महा सुंदरी गोविंद-धरनी॥
जै जमुना ! जैकृष्ण-बल्लभा पतितनि कों पावन भव तरनी।
सरनागति कों देत अभै-पद
जननी तजि जैसे सुत की करनी ॥
सीतल मंद सुगंध सुधा-निधि
धारा बधरत बपु उतरत धरनी ।
'परमानंद' प्रभु परम पावन
जुग-जुग साखि निगम नित बरनी ॥

[१३८६] वसंत

कालिंदी-कूल कलोल लोल। मधु-रिपु माधौ मधुरि बोल॥
वन-माला जो रात्र पुनीत। सुंदर गावै वेनु-गीत॥
बहुत गोप बलभद्र-साथ। महा आनंद-घन वैकुंठ-नाथ॥
देवकी-नंदन जनम-वादि। माया-मानुष देव आदि॥
'परमानंद' स्वामी गोपाल। सरनागति भय-हरन-काल॥

[१३८७] विभास

अति मंजुल जल-प्रवाह मनोहर।
सुखावगाहन त्रिदित राजत अति तरनि-नंदिनी॥
स्याम-बरन-झलक-रूप सेवत संतनि मनोज्ञ अति
सीतल सुखद वहति वायु—मंदिनी॥
कुमुद-कुंज वन-विकास मंडित द्रुग-द्रुग सुवास
कूजत कल हंस कूक मधुर-छंदिनी॥
विकसित अरबिंद-कंज कोकिला-सुख-सार-पुंज
कूजत अलि-वृंद-गुंज बिबुध-बंदिनी॥
नारद सिव सनक व्यास ध्यावत मुनि करत आस
चाहत तुव पुलिन-वास दुख-निकंदनी॥
नाम लेत कटत पाप रसिक-वृंद-मुनि-कलाप
'परमानंद' करत जाप महा आनंदिनी॥

———

(ग) प्रकीर्ण卐

[१]

*नव भूषन नव वसन जसोदा सबहिनि कों पहिरायो ।
देत असीस बिरध नरनारी चिरजियो जसुमति जायो ॥
याही भाँति सलौनो तुमकों गिरिधर नित नित आयो ।
जनम द्यौस नियरो आयो है घोष विचित्र बनायो ॥
ताल किन्नरी ढोल दमामें भेरि मृदंग बजायो ।
लीला जनम करम हरिजू की 'परमानंद' जसु गायो ॥

[२]

यों रहे निसिदिन तेरे ही ध्यान मध्य आली तैं तो बस करि लीने ललना।
अति चतुर महा री ! ता तें तू प्रानप्यारी
तो बिनु पिय कों परति न कलना ॥
एक टक मगु जोवत हैं ठाढे नैन निमेषनि लागति पल ना ।
गिरिधरलाल पिय तो ही सों प्रेम नेम
काहू सों कीनी है प्रीति अचल ना× ॥

[३]

सुमिरों नंदराइ कुँवार ।
नंद-आंगन करत रिंगन बदन बिथुरे बार ॥
चरन नूपुर, किंकिनी कटि कंठ कठुला हार ।
करन पहुँची उरसि बघना तिलक सोहे लिलार ॥

卐 यहाँ वे पद दिये जा रहे हैं जिनका प्रारम्भिक अंश अथवा अन्तिम पंक्तियाँ वा छाप प्राप्त नहीं हुये हैं । अग्रिम गवेषणा में यह सामग्री उपयोगी हो सकती है ।

* इसका प्रारंम्भिक अंश नहीं मिला × इसमें छाप नहीं है

सुनत फिरिके चकृत चित निज किंकिनी झनकार ।
ठठुकि दौरत निहिचे हँसत परम उदार ॥
पंक लेपन अंग कीनें नचत नैंन सु ढार ।
करि बडाई गोद जननी लेति मोद अपार ॥
गहत बछ्रा-पुच्छ रोचत रूप जीत्यो मार ।
देखि परबसु हँसति गोपी मुगध तजति अगार ॥
कुरके ढिंग जात खेलन फेर जननी लार ।
काज विसरति सबै गृह के विग्रहता के भार ॥
बालकनि संग राजलीला करत ब्रज गृह-द्वार ।
देत आनंद जुवति जन कों पठै गृह-गृह चार ॥
करत चोरी भवन प्रति धँसि लेत मोर संसार ।
पैठि जेंवत निडर पति ज्यों परोसि राखी थार ॥
देत माखन बनचरनि कों बांटि बांटि अकार ।
खसत चोहोंटी निपट बालक भजत देकर तार ॥
माघ ढिग मोनो लगसुध साध मन दु खरार ।
गोपी देन उराहनो जुरि आवें अति ही सवार ॥
सुमिरि कृत संकेत गोपी हँसति झूठी रारि ।
बारि डारों निरखि सोभा रसिक बारंबार* ॥

[४] कान्हरौ

卐ब्रज जन सम धर पर कोउ नाहीं ।

[५] कान्हरौ

×हरिजन-संग छनिक जो होई ।

---

* इसमें छाप नहीं है

卐 अष्टछापवार्ता विद्या विभाग प्रकाशन में केवल प्रथम तुक ही प्राप्त है

× अष्टछापवार्ता विद्या विभाग प्रकाशन में केवल प्रथम तुक ही प्राप्त है

अंतिम समय
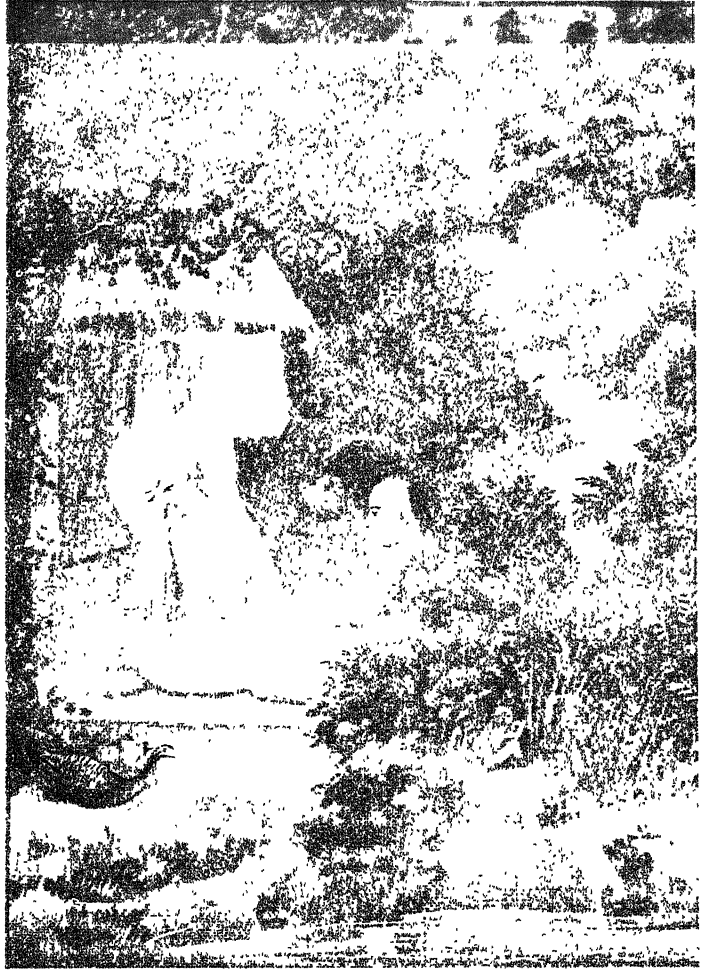
★ पद ★

राधा बैठी तिलकु सँवारति ।
मृग-नैनी कुसुमायुध के डरु सुभग नंद-सुत रूप विचारति ।।
दरपन हाथ सिगार बनावति, बासर-जाम जुगति यों डारति ।
अंतर-प्रीति स्यामसुंदर सों, प्रथम समागम केलि सँभारति ।।

परमानन्दसागर-पद-प्रतीक-सूची
(अकाराद्यनुक्रमणिका)

★

पृष्ठ-संख्या

(अ)

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

* पृष्ठ सं० २८० पर इस पद की पुनरावृत्ति अनवधानता से हो गई है।

पृष्ठ-सख्या

(इ)

(उ)

(ऊ)

* पृष्ठ सं० ५१२ पर इस पद की अनवधानता से पुनरावृत्ति होगयी है।

पृष्ठ-संख्या

(ए)

(ऐ)

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

---

* 'लालन छाँडि दै इहि बान' तुक से पृ० सं० ८६ पर अनवधानता से इसकी पुनरावृत्ति हो गयी है ।

पृष्ठ–संख्या

पृष्ठ-संख्या

(घ)

(च)

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

(झ)

(ट)

पृष्ठ-संख्या

(ठ)

(ड)

(ढ)

(त)

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

(द)

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

(फ)

(ब)

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ–संख्या

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ–संख्या

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

(य)

(र)

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ–संख्या

(व)

पृष्ठ-संख्या

(श)

(स)

पृष्ठ–संख्या

पृष्ठ–संख्या

पृष्ठ-संख्या

(ह)

पृष्ठ-संख्या